भारतीय शिक्षा का इतिहास
(HISTORY OF INDIAN EDUCATION)

भारतीय शिक्षा का इतिहास

(HISTORY OF INDIAN EDUCATION)

[षष्ठम् संस्करण : संशोधित एवं परिवर्द्धित]

लेखक

बी० पी० जौहरी

प्रिंसिपल एण्ड प्रोफेसर ऑफ हिस्ट्री ऑफ ऐजूकेशन
आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज
दयालबाग

एवं

पी० डी० पाठक

लेक्चरार इन हिस्ट्री ऑफ ऐजूकेशन
आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज
दयालबाग

प्रकाशक

विनोद पुस्तक मन्दिर

कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–२

बिक्री-केन्द्र हॉस्पिटल रोड, आगरा–३

प्रथम् संस्करण : १९७१

मूल्य : १०.००

कम्पोजिंग : हिन्दी कम्पोजिंग गृह, आगरा

मुद्रक : कैलाश प्रिन्टिङ्ग प्रेस, आगरा–२

[२२/१२/७०]

विनोद पुस्तक मन्दिर

एव

भारती भवन, आगरा

के

प्रतिष्ठाता तथा प्रोन्नायक

: स्वर्गीय :

श्री राजकिशोर जी अग्रवाल

को

सादर समर्पित

"विपुल कल्पनाएँ लहरों में,
तरु-छाया में विरह-विषाद।
मिली कृपा सरिता की गति में,
तम में अगम, गहन उन्माद॥"

—सुमित्रानन्दन पंत

भूमिका

[षष्ठ संस्करण]

स्वतन्त्र भारत मे जनतान्त्रिक आदर्शो के अनुसार देश मे शिक्षा का पुनर्संङ्गठन और विस्तार करके सभी नागरिको को 'शिक्षा' का समान अवसर प्रदान किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। आज भारत में 'शिक्षा' एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय है, जिसकी समस्याओ पर देश के नेताओ और शिक्षाविदो द्वारा गम्भीर चिन्तन एव विचार-विमर्श किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति मे 'शिक्षा के इतिहास' के छात्रो और शिक्षा-नौका के कर्णधार के रूप मे अध्यापको के लिये शिक्षा की विभिन्न समस्याओ और उसके क्रमिक विकास का विवेचनात्मक अध्ययन अनिवार्य हो गया है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये **'भारतीय शिक्षा का इतिहास'** प्रस्तुत किया जा रहा है।

यो तो 'शिक्षा के इतिहास' पर अनेक सुन्दर और उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु गत कुछ वर्षों मे हमे एक ऐसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था, जो भारतीय दृष्टि से देश की शिक्षा के विकास का विवेचन तथा मूल्याकन करते हुए, प्रशिक्षण-महाविद्यालयो के छात्राध्यापको के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके। इसी लक्ष्य को सामने रखकर प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई थी। हमे आशा थी कि छात्राध्यापको के लिये यह पुस्तक सुविधाजनक और लाभप्रद सिद्ध होगी। हमारी आशा निष्फल सिद्ध नहीं हुई, क्योकि कुछ ही समय मे इस पुस्तक का पष्ठ सस्करण प्रकाशित होना, इस बात की ओर सकेत करता है कि जिस उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई थी, उसकी शत-प्रतिशत प्राप्ति हो सकी है।

इस पुस्तक को संशोधित और परिवर्द्धित करने मे हमे हिन्दी के विद्वान् श्री वी० के० अग्रवाल, एम० ए० से जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिये हम उनके अति आभारी हैं।

बी० पी० जौहरी
पी० डी० पाठक

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

१. वैदिक-शिक्षा

२. बौद्ध-शिक्षा

३. मुस्लिम-कालीन शिक्षा

४ भारतीय शिक्षा का रूप

(१९वीं शताब्दी के आरम्भ में)

५. आधुनिक शिक्षा का बीजारोपण

६. ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-प्रयास

(१६००–१८१३)

७ शिक्षा की अनिश्चित नीति

(१८१३–१८३३)

११. शिक्षा की प्रगति
(१८५४–१८८२)

१२. भारतीय शिक्षा-आयोग (हन्टर कमीशन)
(१८८२–१८८३)

१५. राष्ट्रीय आन्दोलन एवं शिक्षा की प्रगति (१६०५–१६२१)

१६. द्वैध-शासन में शिक्षा की प्रगति
(१९२१–१९३७)

१७. प्रान्तीय स्वशासन में शिक्षा की प्रगति
(१९३७–१९४७)

१८. प्राथमिक शिक्षा की नवीन योजनाएँ
[विद्या-मन्दिर, वालन्टरी स्कूल व बेसिक शिक्षा]
(१९३७–१९४७)

१९. युद्धोत्तर शिक्षा-प्रगति
(सार्जेन्ट-योजना : १९४४)

२०. अंग्रेजी शासन-काल में शिक्षा
(सिंहावलोकन)

२१. प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा
(१९४७–१९७०)

२२. माध्यमिक शिक्षा और उसके दोष
(१९४७–१९७०)

२३. माध्यमिक शिक्षा-आयोग
'मुदालियर कमीशन'
(१९५२–१९५३)

२४. विश्वविद्यालय-शिक्षा
(१९५२–१९५३)

२५. विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग

'राधाकृष्णन् कमीशन'

(१६४८–१६४६)

२६. शिक्षा-आयोग

'कोठारी कमीशन'

(१६६४–१६६६)

२७. शिक्षा के अन्य क्षेत्र
(१९४७–१९७०)

२८. पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा

भारतीय शिक्षा का इतिहास
(HISTORY OF INDIAN EDUCATION)

विषय-प्रवेश

बॉयड एच० बोड का कथन है —"समाज और शिक्षा का एक-दूसरे से पारस्परिक कारण और परिणाम का सम्बन्ध है। किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा-व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करता है और इस व्यवस्था का स्वरूप समाज के स्वरूप को निर्धारित करता है।"[1] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि—'शिक्षा' और 'समाज'—दोनों अविच्छिन्न रूप से परस्पर गुँथे हुए हैं। शिक्षा समाज मे ही फलती-फूलती है और समाज भी शिक्षा की छाया मे अपने को अधिक प्राणवान्, गतिशील, सजग एवं सुसंस्कृत बनाता है। एक की प्रगति पर दूसरे की प्रगति निर्भर है, एवं एक की अवनति बहुत अंशो तक दूसरे के नाश का कारण भी बन जाती है। किसी भी समाज में प्रचलित शिक्षा के दृष्टिकोण एवं विधियो का उस समाज की अन्य सामाजिक संस्थाओ पर अति महत्त्वपूर्ण तथा व्यापक प्रभाव पडता है। किसी भी समाज मे प्रचलित शिक्षा की प्रणाली उस समाज को प्रभावित करती है एवं वह उस समाज से प्रभावित भी होती है। शिक्षा, समाज के हाथ में ऐसा अद्वितीय उपकरण है, जिसके द्वारा वह उन परम्पराओ, नियन्त्रणो एवं सास्कृतिक तत्वो को सुरक्षित रखता है, जो उसने मानव के लम्बे एवं सतत प्रयासो के फलस्वरूप संग्रहीत किये हैं। इस संदर्भ मे हार्न के ये शब्द अवलोकनीय है —"शिक्षा, अतीत का चित्र प्रस्तुत

---

1. "Society and education stand in a relation of reciprocal cause and effect. The character of a given society determines the character of its educational system and the character of this system, in turn, determines the character of the society."—Boyd H Bode : *Fundamentals of Education*, p. 221.

करने का उत्तम कार्य करती है, और उस चित्र को प्रस्तुत करके अतीत को सुरक्षित रखती है। यह वर्तमान समय मे मृतकाल की उपलब्धियो की रक्षा करने का उत्तम कार्य करती है। यह ज्ञान और शक्ति के वर्तमान संग्रह मे वृद्धि करके, और इस प्रकार *भविष्य को भूत से अच्छा बनाने की सम्भावना का सर्वोत्तम कार्य करती है।*"[1]

शिक्षा से हमारा अभिप्राय, जैसा कि जॉन ड्यूवी ने लिखा है—"औपचारिक अथवा संस्थागत शिक्षा" (Formal or Institutional Education) से है।[2] यों तो हमको अपने जीवन मे जन्म से मृत्यु-पर्यन्त प्रतिक्षण शिक्षा प्राप्त होती रहती है। ज्ञात एवं अज्ञात रूप मे हम कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। पर यह स्वीकार किया गया है कि व्यक्ति के व्यवहार की उस समाज पर, जिसका वह सदस्य है, महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अत यह आवश्यक है कि उसे उसके प्रारम्भिक जीवन के *कतिपय निश्चित वर्षों मे नियमित रूप से शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए,* जिससे वह समाज से अपना अनुकूलन कर सके और समाज की सेवा भी कर सके। प्लेटो, अरस्तू और प्लूटार्च से लेकर पेस्टॉलॉजी, रूसो, हरबार्ट तथा स्पेन्सर तक—सब ने इस बात की ओर संकेत किया है कि प्रशिक्षण तथा अनुशासन की सहायता के बिना प्रकृति उन सब बातो को प्राप्त नही कर सकती है, जिनकी व्यक्ति से माँग की जाती है। यदि हम इन बातो पर मनन करे, तो ये हमे इस बात का ज्ञान प्रदान कर सकती है कि शिक्षा-व्यवस्था से कौन-से कर्त्तव्यो के पालन करने की आशा की जाती है, और वह किन कर्त्तव्यो का वस्तुतः पालन करती है।

"शिक्षा-व्यवस्था का प्रमुख कर्त्तव्य", जैसा कि पेनुनजियो ने बताया है—"*उन प्रथागत विधियो तथा क्षमताओ के ज्ञान को सम्प्रेषित करना है, जिनको समाज* अपने दीर्घ जीवन और प्रगति के लिए अनिवार्य समझता है।"[3] ज्ञान तथा क्षमताएँ प्रदान करने के साथ-साथ, शिक्षा—*समाज के नैतिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक महत्त्वो* को भी सम्प्रेषित करती है, और इस प्रकार विचारात्मक तथा भावनात्मक—दोनो तत्त्वो के शिक्षण का, जो वयस्क व्यक्ति का निर्माण करते हैं, उत्तरदायित्व लेती है।

---

1. "Education does well to reproduce, and by reproducing to conserve the past; it does well to protect the past in the present; *it does best of all* in adding to the present accumulation of knowledge and power, thus making possible a future better than the past."—**H. H. Horne**: *The Philosophy of Education*, pp 160-161.

2. **John Dewey** : *Democracy and Education*, pp. 7-11.

3. "The primary function of the educational system is to transmit a knowledge of the forms and skills society regards as indispensable to its survival and improvement." —**C. Panunzio** : *Major Social Institutions*, p. 242.

इस दृष्टिकोण से शिक्षा मानव-समाज के पुनर्म्युत्थान तथा प्रगति—दोनो के लिए सारभूत रूप से आवश्यक है। शिक्षा के अभाव मे मानव की उपलब्धियाँ सीमित रहेगी और सस्कृति का विकास नही हो सकेगा।

इस प्रकार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—व्यक्ति को जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करना है जिससे उसके हितो का समाज के हितो के साथ न्यूनतम सघर्ष हो, और वह समाज के आदर्शों के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत कर सके, साथ ही उन आदर्शों का उन्नयन करके समाज के स्वस्थ तथा वाछित विकास मे योग प्रदान कर सके। जैसा कि समनर ने लिखा है, शिक्षा के द्वारा "मनुष्य यह सीखता है कि कौन-सा आचरण समाज के द्वारा स्वीकृत अथवा अस्वीकृत है, किस प्रकार के मनुष्य का सबसे अधिक समादर होता है, सब प्रकार के कार्यो मे उसे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, और उसे किस बात मे विश्वास अथवा अविश्वास करना चाहिए।"[1] इस अर्थ मे कहा जा सकता है कि शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य व्यक्ति का समाजीकरण करना है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा की प्रमुख समस्या है—बालक के उन जन्मगत आवेगो (Native Impulses) का किसी प्रकार दमन करना जो तत्कालीन सामाजिक आचरण से मेल नही खाते है, अथवा इन आवेगो को प्रवृत्तियो (Tendencies) मे परिवर्तित करना जिससे व्यक्ति का सभ्य समाज की रीतियो, आदर्शों तथा सस्थाओ से सामजस्य हो जाय।[2]

ओशिया (O'Shea) का उपर्युक्त उद्धरण हमारे समक्ष यह प्रश्न उपस्थित करता है कि—'शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिए ?' इस सम्बन्ध मे नन (Nunn) का मत है कि शिक्षा का कोई भी सार्वभौमिक उद्देश्य नही हो सकता है। शिक्षा का प्रयास यह होना चाहिए कि वह व्यक्ति के लिए उन अवसरो को जुटाये जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास हो सके। अन्य अनेक सुविख्यात शिक्षाशास्त्रियो का भी यही मत है। परन्तु वास्तविक रूप मे शिक्षा का यह उद्देश्य दृष्टिगत नही होता है। वेंकटारायप्पा ने ठीक ही लिखा है —"शिक्षा का उद्देश्य—युवको को सामाजिक मूल्यो, विश्वासो और समाज के प्रतिमानो को आत्मसात् करने के लिये तैयार करना और उनको समाज की क्रियाओ से भाग लेने के योग्य बनाना है।"[3]

---

1 "He learns what conduct is approved or disapproved, what kind of man is admired most, how he ought to behave in all kinds of cases, and what he ought to believe or reject "—W G Sumner : *Folkways*, p 638

2 O' Shea : *Social Development and Education*, p 249

3 "Education aims at preparing the youths to absorb the social values, beliefs, and norms of the society, and render them fit to participate in the activities of the society "—K N Venkatarayappa *Education & Society in India*, p 23

परन्तु यह बात निर्विवाद है कि शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य—व्यक्ति के मानसिक विकास के लिए साधनों को जुटाना है। शिक्षा के इस पहलू के प्रति उतना ही ध्यान दिया जाना आवश्यक है, जितना कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को समाज के अनुकूल बनाने के पहलू के प्रति। वास्तविक शिक्षा न केवल चरित्र, आदत तथा मानसिक अनुशासन—अपितु बुद्धि, विवेक एव गुण दोष विवेचन शक्ति के निर्माण मे भी सहायता करती है। विवेकपूर्ण निणय एव गुण-दोष विवेचन की शक्ति के विकास के अभाव म मानव एक यत्र के समान समाज के हित अथवा अहित के लिए कार्य करने वाला हो जायगा, उसे इस बात का ज्ञान न हो सकेगा कि उसके कार्य किस प्रकार उत्तम अथवा अधम हैं और वे किस प्रकार सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

इसके विपरीत, वस्तुत एक शिक्षित व्यक्ति से समाज चाहे जिस प्रकार कार्य नही करवा सकता है। वास्तव म, वह कभी-कभी समाज का नेतृत्व कर सकता है। उसमे निरूपण करने, अन्तर जानने एव मूल्याकन करने की शक्ति तथा अपने तर्कपूर्ण विचार का अनुसरण करने का पर्याप्त साहस होना चाहिए।

अत हम कह सकते है कि शिक्षा के किसी भी तर्कसगत सिद्धान्त म व्यक्ति की मानसिक शक्तियो को समाज के प्रति उसके व्यवहार से पृथक् नही किया जाना चाहिए। दोनो की एक दूसरे पर गम्भीर प्रतिक्रिया होती है। अतएव शिक्षा का उद्देश्य—'व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का निर्माण' उसकी तर्क शक्ति एव विवेक पर आधारित करना होना चाहिए, न कि केवल सामाजिक स्वीकृति अथवा अस्वीकृति पर। किसी भी प्रकार के बाह्य तत्वो से प्रभावित हुए बिना मानव के मस्तिष्क को विकसित करना—शिक्षा का प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए। जो शिक्षा व्यवस्था मानव के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करती है वह उसे निश्चय रूप से तर्कपूण विवेचन की शक्ति प्रदान करती है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था मस्तिष्क मे उन रूढिगत तथा अनुदार विचारो का प्रादुर्भाव नही होने देती है, जो सामाजिक, राजनीतिक तथा चारित्रिक क्षेत्रो मे नवीन धारणाओ को अगीकार करने मे सकोच करते है।

इसके अतिरिक्त मानव के व्यक्तित्व के विकास से समाज को वास्तविक उन्नति करने का अवसर उपलब्ध होगा। ऐसी परिस्थिति मे समाज पूर्व निश्चित धारणाओ का अन्धानुकरण न करके उनसे सम्बन्ध विच्छेद करने का सतत प्रयास करेगा और इस प्रकार तर्क पर आधारित माग का अनुसरण करके प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। इस प्रकार, शिक्षा का यह पहलू—मानव के व्यक्तित्व का विकास—उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि समाज से अनुकूलन करने का अन्य पहलू। "वस्तुत वास्तविक शिक्षा का महत्व मानव के व्यक्तित्व को विकसित करने और इसके साथ ही व्यक्ति का समाजीकरण करने तथा इस प्रकार उसको समाज की

नैतिक तथा भौतिक संरचना के अनुकूल बनाने मे है। शिक्षा के उचित आदर्श मे इन दोनो उद्देश्यो का समन्वय होना आवश्यक है।"[1]

शिक्षा की समस्या तथा उद्देश्यों के सम्बन्ध मे इस प्रारम्भिक विवेचन के उपरान्त, अब हम प्राचीन भारतीय शिक्षा के अन्तर्गत वैदिक शिक्षा और बौद्ध-शिक्षा का अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि उस युग मे शिक्षा की समस्या का समाधान करने का किस प्रकार प्रयास किया गया।

---

1. "In fact, real education has value both in so far as it evelops the individual personality as well as it socializes the erson and thus enables him to keep in harmony with the material od moral frame-work of the group to which he belongs. The roper ideal of education must envisage a co-ordination of these vo aims."—**P. H. Prabhu** : *Hindu Social Organization*, p 108.

१

वैदिक शिक्षा

प्रस्तावना

'शिक्षा' व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है। भारतवासियो ने शिक्षा के इस गहन महत्त्व को समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के सुदूर अतीत मे भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली ने विशाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे मौलिक विचारको एव विद्वानो को जन्म दिया, जिनसे इस देश का मस्तक आज भी यश और गौरव से उन्नत है। "ऐसा कोई भी देश नही है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय मे आरम्भ हुआ हो, या जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो। वैदिक युग के साधारण कवियो से लेकर आधुनिक युग के बंगाली दार्शनिक तक, शिक्षको और विद्वानो का एक निर्विघ्न क्रम रहा है।"[1]

शिक्षा का तात्पर्य

"वैदिक युग से लेकर आज तक भारत मे शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है—शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे हमारा सच्चा

---

1 "There has been no country where the love of learning had so early an origin or has exercised so lasting and powerful an influence From the simple poets of the Vedic Age to the Bengali philosopher of the present day, there has been an uninterrupted succession of teachers and scholars"—**F. W. Thomas** : *The History and Prospects of British Education in India*, p 1

पथ-प्रदर्शन करती है।"[1] एक विद्वान का कथन है कि—"ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्त्वो के मूल को समझने की क्षमता प्रदान करता है एवं उसे उचित व्यवहार करने मे प्रवृत्त करता है।"[2] शिक्षा से हमे इस संसार मे सुख, समृद्धि एवं सुयश प्राप्त होता है तथा परलोक मे मोक्ष। शिक्षा द्वारा प्राप्त प्रकाश से हमारे संशयो का उन्मूलन एवं कठिनाइयो का निवारण होता है और जीवन के वास्तविक महत्त्व को समझने की शक्ति उत्पन्न होती है। शिक्षा से हमे ऐसा सही दृष्टिकोण उपलब्ध होता है कि हम मे बुद्धि, विवेक तथा निपुणता की वृद्धि होती है। प्राचीन भारतीयो का दृढ विश्वास था कि—"शिक्षा से विकसित बुद्धि ही यथार्थ बल है। उन्होने दृढता से कहा था कि शिक्षा कल्पलता के समान हमारे समस्त मनोरथो को सिद्ध करती है।"[3] भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' मे लिखा है—"विद्याहीन मनुष्य पशु है।"[4] अतः हम कह सकते है कि शिक्षा ही हमे मनुष्य बनाती है और शिक्षा से रहित हमारा जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार प्राचीन भारतीयों का यह दृढ विचार था कि शिक्षा ही मनुष्य के नैसर्गिक जीवन को पूर्णता प्रदान करती है।

"क्योंकि शिक्षा का तात्पर्य प्रकाश से है, अत. यह कहना व्यर्थ है कि (प्राचीन भारत मे) केवल पुस्तकीय ज्ञान ही शिक्षा का पर्यायवाची नही माना गया।"[5] यह कहा गया है कि एक मनुष्य ने भले ही विभिन्न शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, पर यदि उसमे अन्तर्दृष्टि का विकास नही हुआ है और उसे अपने अध्ययन के फलस्वरूप अन्तर्ज्योति नही प्राप्त हुई है, तो वह मूर्ख है। केवल क्रियाशील मनुष्य ही वास्तव मे शिक्षित है।[6] शिक्षा उदर-पूर्ति की समस्या को अवश्य हल करती है, परन्तु वैदिक काल मे शिक्षा को जीविका का साधन नही माना गया और जिन्होने ऐसा मत व्यक्त किया है, उनकी घोर निन्दा की गई।

साराश मे, वैदिक शिक्षा का तात्पर्य अन्तर्ज्योति और शक्ति से था, जिससे मानव की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथा आत्मिक शक्तियो का सन्तुलित विकास हो सकता था।

---

1 "From the Vedic Age downwards the central conception of education of the Indians has been that it is a source of illumination, giving us a correct lead in the various spheres of life."—**A. S. Altekar :** *Education in Ancient India*, p. 4.

2. "ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्त तत्त्वार्थं विलोकदक्षम्।"
—*Subhashita Ratna Sangrah*, p. 194.

3. *Subhashita Ratna Bhandar*, p. 31.

4. "विद्याविहीनः पशुभि समानः।"

5. "Since illumination is the central conception in education, it is needless to add that mere book-learning was not regarded as synonymous with education."—**Altekar :** *op. cit.*, p. 7.

6. *Subhashita Ratna Sangrah*, p. 40.

शिक्षा के उद्देश्य तथा आदर्श

वैदिक काल मे शिक्षा के उद्देश्यो का विवेचन करते हुए अलतेकर ने लिखा है—"ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार—प्राचीन भारत मे शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे।"[1] *हम अब इनमें से प्रत्येक का विस्तृत अध्ययन करेंगे; यथा—*

१. ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का विकास—वैदिक काल मे 'धर्म' वरासन पर प्रतिष्ठित था। पुरोहित ही प्रायः शिक्षक होते थे। अत. शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य—बालक मे ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का समावेश करना था। प्रत्येक प्रकार की शिक्षा मे विभिन्न संस्कारो की व्यवस्था, छात्रो द्वारा *विभिन्न व्रतो का पालन, नियमित संध्या एवं धार्मिक उत्सव—इन सब का लक्ष्य*—तरुण छात्रो के हृदय मे ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना की जडो को गहरी जमा देना था।

२. चरित्र-निर्माण—शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—ब्रह्मचारियो के चरित्र का निर्माण करना था। वैदिकयुगीन भारतीयो का विश्वास था कि चरित्र-निर्माण के *अभाव मे बौद्धिक विकास निरर्थक है। उन्होने घोषित कर दिया था कि केवल* गायत्री मन्त्र का ज्ञान रखने वाला सुचरित्र ब्राह्मण—समस्त वेदो के ज्ञाता चरित्रहीन विद्वान से कही श्रेष्ठ है।[2] चरित्र-निर्माण के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रो की पाठ्य-पुस्तको मे सदाचार के उपदेश होते थे, उनको अपने आचार्यों से सदाचार के उपदेश मिलते थे, उन्हे ऐसे वातावरण मे रखा जाता था, जिससे उनका चारित्रिक उत्थान हो सके और उनके समक्ष राष्ट्र की महान् विभूतियो के आदर्श बारम्बार उपस्थित किये जाते थे, जिससे उनके चरित्र का निर्माण हो सके।

३. व्यक्तित्व का विकास—*शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—विद्यार्थियो के व्यक्तित्व* का विकास करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रो मे आत्म-सम्मान की भावना का विकास, आत्म-विश्वास को प्रोत्साहन, आत्म-संयम के महत्त्व पर बल तथा न्याय एवं विवेक की शक्ति को जन्म देने की विधियो को अपनाया जाता था।

४. नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन—शिक्षा का चौथा *उद्देश्य—ब्रह्मचारियो मे नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो के पालन की भावना को*

---

1. "Infusion of a spirit of piety and *righteousness, formation* of character, development of personality, inculcation of civic and social duties, promotion of social efficiency and preservation and spread of national culture may be described as the chief aims and ideals of ancient Indian education."—**Altekar** : *op. cit*. p. 9.

2. *Manusmriti*, p. 2.

भरना था। उनको स्वार्थपूर्ण जीवन व्यतीत न करने की शिक्षा दी जाती थी। शुल्क न मिलने पर भी वैदिक साहित्य का अध्यापन शिक्षकों का कर्त्तव्य बताया जाता था। छात्रों को पुत्र, पति तथा पिता के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करने का उपदेश दिया जाता था। उन्हें अपने धन से अतिथियों का सत्कार एवं दुखियों की सहायता करना आवश्यक था। रोगी को कष्ट से मुक्त करना चिकित्सक का परम धर्म माना गया था। इस प्रकार वैदिक शिक्षा-व्यवस्था में नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों के पालन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

५. सामाजिक कुशलता की उन्नति—शिक्षा का पाँचवाँ उद्देश्य—सामाजिक कुशलता की उन्नति और इसके फलस्वरूप मानव के सुख की वृद्धि करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति विभिन्न शास्त्रों, व्यवसायों तथा उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था करके की गई थी। छात्रों का मानसिक विकास करने के साथ-साथ उनको उन व्यवसायों की शिक्षा निश्चित रूप से प्रदान की जाती थी, जिनको वे अपने भावी जीवन में अपनाना चाहते थे। सामान्य रूप से ब्रह्मचारियों को वर्ण-व्यवस्था के अनुसार अपने कार्यों की पूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती थी। फलस्वरूप, वे अपने व्यवसायों में दक्षता प्राप्त करके अपने तथा समाज के सुख की वृद्धि में योग देते थे।

६. राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार—शिक्षा का छठा और अन्तिम महत्त्वपूर्ण उद्देश्य—राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार करना था। वैदिकयुगीन भारतीय अपनी साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा व्यावसायिक परम्पराओं का संरक्षण करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे और इस दिशा में कार्य करने में सदैव संलग्न रहते थे। यही कारण था कि प्रत्येक पिता अपने पुत्र को अपने व्यवसाय की शिक्षा देता था, प्रत्येक आर्य वैदिक साहित्य के किसी न किसी भाग को याद करता था और प्रत्येक ब्राह्मण वेदों को कंठस्थ करता था। इन कार्यों से भारतीयों को कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होता था, पर इनको सम्पन्न करके वे अपने पूर्वजों के ज्ञान का संरक्षण तथा प्रसार करते थे।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वैदिक शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्श व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करना था।

शिक्षा की व्यवस्था

वेदों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि सुदूर अतीत में भी भारत में संगठित रूप से गुरुओं द्वारा शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद में कुछ इस प्रकार का संकेत मिलता है, जिससे पाठशाला के समान किसी संस्था का अनुमान किया जा सकता है। 'छान्दोग्य उपनिषद्' से ज्ञात होता है कि बालक गुरु-गृह में रहकर विद्याध्ययन करते थे। वैदिक साहित्य में इस बात का उल्लेख मिलता है कि वैदिक युग में संघ, परिषद्, चरण, मठ, गुरुकुल तथा आश्रम स्थापित हो गये थे,

जहाँ गुरु वैयक्तिक रूप से स्वयमेव शिष्यो को शिक्षा प्रदान करते थे। ग्रामो मे भी प्राथमिक पाठशालाएँ थी।

उपर्युक्त सभी शिक्षा-संस्थाएँ 'सावास' (Residential) थी और बाह्य नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त थी। इनमे छात्रो का प्रवेश एक निश्चित आयु मे होता था। प्रवेश के समय छात्रो को लिखने-पढने और गणित का ज्ञान होना आवश्यक था। प्राचीन भारत मे ५वी, ६वी (ईसवी) शताब्दी तक समाज या राज्य की ओर से शिक्षा प्रदान करने के लिए आधुनिक समय के समान सुसंगठित शिक्षा-संस्थाओ का अभाव था। इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाओ का विकास सर्वप्रथम बौद्ध विद्वानो द्वारा किया गया।

वैदिक युग तथा महाभारत-काल मे वेद, पुराण, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, कला आदि विषयो का अध्ययन किया जाता था। इनके अतिरिक्त, श्रम-विभाजन पर आधारित समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ण के अनुसार भी शिक्षा दी जाती थी। उदाहरणार्थ—ब्राह्मणो को धर्म-कर्म की, क्षत्रियो को युद्ध-विद्या और राजनीति की, वैश्यो को वाणिज्य और कृषि-विज्ञान की तथा शूद्रो को विविध साधारण कलाओ और हस्त-कार्य की।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ[1]

उपरिकथित शिक्षा के उद्देश्यो तथा आदर्शों की प्राप्ति के लिए वैदिकयुगीन शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा की एक विशिष्ट प्रणाली का निर्माण किया, जो साम्राज्यो के पतन तथा समाज के परिवर्तनो से प्रभावित नही हुई और जिसने इन सहस्रो वर्षों के उपरान्त भी हमारे देश मे शिक्षा की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा है। इस शिक्षा-प्रणाली के कुछ आधारभूत तत्त्व एव कुछ विशेषताएँ थी। इन्ही पर हम यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं, यथा—

(१) उपनयन[2]—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण का प्रत्येक बालक उपनयन-संस्कार के पश्चात् विद्याध्ययन प्रारम्भ करता था। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है—'पास ले जाना', अर्थात् शिक्षा के लिए गुरु के पास पहुँचाना। उपनीत बालक को ही गुरु 'सावित्री मंत्र' (गुरु मन्त्र) का उपदेश देकर शिक्षा देना आरम्भ करता था। जिस प्रकार बिना बपतिस्मा के कोई ईसाई नही होता और बिना कलमा के मुसलमान नही कहा जा सकता, उसी प्रकार वैदिक युग मे उपनयन-संस्कार को सम्पादित किये बिना कोई बालक ज्ञानार्जन नही कर सकता था।

(२) *विद्याध्ययन प्रारम्भ करने की आयु*—बालक को किस आयु मे विद्याध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए, इस सम्बन्ध मे हिन्दू-शास्त्रकारो मे मतभेद है।

---

1 Basic Principles and Features of Education

2. Initiation

कुछ शास्त्रकारों के मतानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य छात्र का उपनयन-संस्कार क्रमशः ८, ११ और १२ वर्ष की आयु में हो जाना चाहिए।[1] याज्ञवल्क्य के अनुसार, कुल की प्रथा के अनुसार किसी भी सुविधापूर्ण समय पर उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया जा सकता है, परन्तु इस बात का परामर्श दिया गया है कि ब्राह्मण को अपने पाँचवें वर्ष में, क्षत्रिय को छठे वर्ष में और वैश्य को आठवें वर्ष में विद्याध्ययन प्रारम्भ कर देना चाहिए।[2] जिन छात्रों का उपनयन-संस्कार निश्चित आयु में सम्पन्न नहीं हो पाता था, वे 'सावित्री मंत्र' को सीखने के अधिकारी नहीं रह जाते थे। शूद्रों को विद्याध्ययन का अधिकार नहीं था।

(३) अध्ययन-काल—वैदिक काल में यह बात स्वीकार कर ली गई थी कि वेदों के अध्ययन के लिए अति दीर्घकाल की आवश्यकता है। भारद्वाज ने तीन जन्मों में तीन वेदों का अध्ययन किया। इन्द्र ने प्रजापति के शिष्य बनकर १०५ वर्ष तक विद्या का अध्ययन किया। वैदिक युग में सामान्य रूप से अध्ययन-काल १२ वर्ष का था। इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा गया है कि १२ वर्ष की अवधि केवल एक वेद के अध्ययन के लिए थी। यदि एक छात्र चारों वेदों का अध्ययन करता है, तो उसे प्रत्येक वेद के अध्ययन में १२ वर्ष लगाने पड़ते थे।[3] पर सभी छात्र चारों वेदों का अध्ययन नहीं करते थे। साहित्य तथा धर्मशास्त्र के छात्र अपना अध्ययन १० वर्ष में समाप्त कर देते थे।

(४) शिक्षा-सत्र—शिक्षा-सत्र की अवधि एक वर्ष में साढ़े चार या साढ़े पाँच मास की होती थी। साधारणतः विद्याध्ययन का कार्यक्रम श्रावण मास की पूर्णिमा को 'उपाकर्म' समारोह से प्रारम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को 'छन्दसाम-उत्सर्जनम्' समारोह के साथ स्थगित होता था।

(५) शिक्षण का समय—शिक्षण का कार्य किस समय से किस समय तक चलता था, इस सम्बन्ध में 'स्मृतियाँ' बिलकुल मौन हैं। पर क्योंकि वैदिक काल में मुद्रणालय, कागज एवं सस्ती पुस्तकें नहीं थी, अतः स्वाभाविक निष्कर्ष यही निकलता है कि पठन-पाठन का सब कार्य आचार्य की देख-रेख में होता था। सम्भवतः शिक्षण का कार्य प्रातःकाल से मध्याह्न तक और फिर कुछ विश्राम तथा भोजनादि के उपरान्त सायंकाल तक चलता था। प्राचीन ढंग की संस्कृत पाठशालाएँ कुछ समय पूर्व तक इसी प्रकार के कार्यक्रम का अनुसरण करती थी।

(६) विद्यालय-भवन—वैदिक काल में विद्यालय-भवन किस प्रकार के थे, इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार के साधन उपलब्ध नहीं है।

---

1 *Manusmriti*, p 37

2 **Prabhu** *op cit*, p 111

3. **Gautama—**II, 45–7

खुले मौसम मे अध्ययन-अध्यापन का कार्य वृक्षो के नीचे होता था, परन्तु वर्षा के समय किसी प्रकार के आच्छादन की व्यवस्था अवश्य होगी। विहारो एवं देवालयो मे पढने वाले छात्रो के लिए भव्य भवन बने हुए थे।

(७) **गुरुकुल-प्रणाली**—वैदिक काल की शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता—गुरुकुल-प्रणाली थी। छात्र अपने गुरु के कुल अथवा किसी आश्रम मे रहते थे। वही रहकर वे ज्ञान का अर्जन करते थे। गुरुकुल साधारणतः नैसर्गिक सौन्दर्य से सुरभित, जन-पद कोलाहल से दूर, प्रकृति के सुरम्य कक्ष मे स्थित होते थे। परन्तु वे किसी गाँव या नगर के समीप अवश्य होते थे, जिससे उनमे निवास करने वाले छात्रो की अल्प आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके।

(८) **छात्र एवं उनका जीवन**—छात्रो के खान-पान, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार आदि के सम्बन्ध मे निश्चित नियम थे, जिनका पालन करना अनिवार्य था, यथा—

(i) **खान-पान**—मनु ने लिखा है कि छात्रो को दिन मे केवल दो बार भोजन करना चाहिए—एक बार प्रात काल और एक बार सायंकाल। इन दोनो भोजनो के मध्य मे उनको अन्न ग्रहण नही करना चाहिए। उनको अति भोजन से बचना चाहिए, क्योकि यह रोग का कारण तथा आध्यात्मिक उन्नति मे बाधक होता है। उनको मास, मधु, पान और बासा भोजन न खाने का आदेश था।

(ii) **वेष-भूषा**—छात्रो की वेष-भूषा निर्धारित थी। उपनयन के उपरान्त धारण की जाने वाली मेखला विभिन्न जातियो के छात्रो के लिए विभिन्न वस्तु की बनी हुई थी। ब्राह्मण की मेखला मूँज घास की, क्षत्रिय की ताँत की और वैश्य की ऊन की बनी हुई होती थी। अपने शरीर के निम्न भाग को ढकने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य छात्र क्रमशः सन, रेशम और ऊन के वस्त्रो के टुकडो का; और ऊपरी भाग के लिए क्रमश' काले मृग, चित्तीदार मृग एवं बकरे की खालो का प्रयोग करते थे। छात्र जिन डण्डो को लेकर इधर-उधर आते-जाते थे—उन्हे उनको खडा पकड़ना पडता था और वे बिना जले हुए देखने मे सौम्य और भय-उत्पादक नही हो सकते थे, क्योकि उनका प्रयोग केवल सुरक्षा के लिए किया जाता था। छात्रो को अंजन, सुगन्धि, छाते तथा जूतो का प्रयोग निषेध था। वे अपने शरीर को किसी प्रकार भी अलंकृत नही कर सकते थे। केशो के प्रसाधन की मनाही थी।

(iii) **आचार-व्यवहार**—छात्रो का जीवन शिष्टाचार, मर्यादा तथा आत्म-संयम से पूर्ण होता था। उन्हे अपने जीवन को पवित्र रखने के लिए दोनो समय संध्या-वंदना एवं हवन करना पडता था। उन्हे गुरुजनो के प्रति आदर तथा सम्मान प्रदर्शित करना होता था। उन्हे असत्य भाषण, गाली-गलौज एवं चुगलखोरी से दूर रहने की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उनके द्वारा ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन किये जाने पर बल दिया जाता था। वे अपने पास न तो धन रख सकते थे और न कोई वस्तु

खरीद सकते थे। वे नृत्य, संगीत तथा द्यूतक्रीडा का आनन्द नही ले सकते थे। वे स्त्रियो से आवश्यकता से अधिक बातें नही कर सकते थे। उन्हे आत्म-संयमी बनने और काम, क्रोध तथा लोभ से मुक्त रहने की शिक्षा दी जाती थी। साराश मे, उन्हें अपने व्यवहार मे सादगी तथा विचारो मे श्रेष्ठता के सिद्धान्तो का अनुसरण करना पड़ता था।

(iv) **आदतों की सादगी**—प्रत्येक छात्र को सादी आदतो की शिक्षा दी जाती थी। इस बात से कोई प्रयोजन नही होता था कि वह किस कुल का है। धनवान तथा निर्धन—सभी परिवारो के बालको को जीवन का एक ही ढंग अपनाना पड़ता था। 'महाभारत' तथा 'रामायण' मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि राजकुमारो को भी छात्र-जीवन की उन्ही कठिनाइयों का सामना करना पडता था, जिनका सामना उनके निर्धन सहपाठी करते थे।

(v) **छात्रों की दिनचर्या**—छात्र, पक्षियो के चहचहाने से पूर्व तडके उठते थे। नित्य-क्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् वे स्नान तथा संध्या करते थे। वेदो का अध्ययन करने वाले छात्र प्रातःकाल का अधिकाश भाग हवन आदि से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओ के सम्पादन मे व्यतीत करते थे। उस समय मे अन्य विषयो के छात्र पुराने पाठो को दोहराते तथा नये पाठो को पढते थे। मध्याह्न के समय वे भोजन करने के लिए अपना कार्य स्थगित कर देते थे। कुछ समय के उपरान्त, वे फिर विद्याध्ययन मे जुट जाते थे और सायंकाल तक इस कार्य मे रत रहते थे। सूर्यास्त के समय वे संध्या तथा हवन करने के उपरान्त भोजन करते थे।

(६) **अध्यापकों के प्रति छात्रों के कर्त्तव्य**—वैदिक काल मे अध्यापको के प्रति छात्रो के अनेक कर्त्तव्य थे। वे गुरु का स्थान—राजा, माता, पिता एवं देवता से निम्न नही समझते थे और उनका हृदय से सम्मान करते थे। वे प्रात.काल गुरु से पूर्व उठकर उनका अभिवादन करते थे और उनसे नीचे आसन पर बैठते थे। वे आचार्य की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते थे। पर यदि गुरु धर्माचरण से च्युत हो जाता था, तो वे उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य नही थे। वे गुरु की सेवा करना अपना परम धर्म समझते थे। वे आचार्य के लिए प्रतिदिन निश्चित समय पर जल और दांतौन पहुँचाते थे, उनके स्नान की व्यवस्था करते थे, उनकी गृहस्थी के छोटे-मोटे काम करते थे और उनके खेतो मे कार्य करते थे।

(१०) **छात्रो के प्रति अध्यापकों के कर्त्तव्य**—वैदिक ऋषियो ने आचार्य को छात्र का 'मानस पिता' (Spiritual father) कहा है। अतः वैदिक काल मे आचार्य छात्रो के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करते थे। अध्यापक का यह कर्त्तव्य तो था ही कि वह अपने छात्रो को ज्ञान प्रदान करे, परन्तु इसके अतिरिक्त उसके कुछ कर्त्तव्य और थे। वह अपने विद्यार्थियो के चरित्र का सदैव ध्यान रखता था। अतः वह उनको बताता था कि उन्हे किन आदतो का निर्माण एवं किन का परित्याग करना चाहिए,

उन्हे अपने स्वास्थ्य की उन्नति किस प्रकार करनी चाहिए, उन्हे किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, और उन्हे कैसे व्यक्तियो से सम्पर्क रखना चाहिए। यदि कोई छात्र रुग्ण हो जाता था, तो अध्यापक पिता के समान उसकी चिकित्सा तथा सुश्रूषा करता था। साराश मे, उसका कर्त्तव्य था—अपने विद्यार्थियो का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करना।

(११) दण्ड—भारत की वैदिककालीन शिक्षा-व्यवस्था मे दण्ड का स्थान था, पर शारीरिक दण्ड के सम्बन्ध मे शिक्षा-शास्त्रियों मे मतैक्य नही था। आपस्तम्ब ने लिखा है कि—गुरु हठी छात्रो को अपनी उपस्थिति से दूर भेज दे या उनसे उपवास करवाये। मनु का कथन है कि—शिक्षक छात्र को बिना कष्ट दिये मधुर भाषा मे अध्यापन का कार्य करे। पर अन्यत्र उन्होने लिखा है कि यदि छात्र ने अपराध किया है, तो गुरु उसको रज्जु या पतली छडी से दण्ड दे सकता है। इसी प्रकार का मत गौतम और विष्णु के द्वारा तथा 'महाभारत' मे व्यक्त किया गया है। साराश मे, साधारण रूप मे तो नही, पर विशेष परिस्थितियो मे छात्रो को शारीरिक दण्ड दिया जाता था।

(१२) निःशुल्क शिक्षा—ब्राह्मणो का कर्त्तव्य—शिक्षा देना समझा जाता था। जब तक एक छात्र विद्या का अर्जन करता रहता था, तब तक गुरु उससे किसी प्रकार का शुल्क स्वीकार नही कर सकता था। शिक्षा समाप्त होने पर छात्र का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने गुरु को कुछ दक्षिणा दे। धनी विद्यार्थियो के अतिरिक्त कोई भी अन्य छात्र गुरु को इतनी दक्षिणा नही दे पाता था, जिसे शिक्षक का उचित पारिश्रमिक कहा जा सके।[1] मनु ने लिखा है कि दक्षिणा के रूप मे छात्र अपने गुरु को गाय, अश्व, अन्न इत्यादि कुछ भी दे सकता है।

(१३) बाह्य नियन्त्रण से मुक्ति—यह बात उल्लेखनीय है कि वैदिक काल मे शिक्षा पर राज्य, सरकार अथवा किसी राजनैतिक दल का नियन्त्रण नही था। राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह इस बात को देखे कि विद्वान पंडित बिना किसी विघ्न-बाधा के अध्यापन के कार्य मे रत रहे। इसी प्रकार, भारत मे शिक्षा पर कोई जातीय प्रभाव नहीं था।[2]

---

1. F. E. Keay: *Indian Education in Ancient and Later Times*, pp. 27-28.

2. "Education in ancient India was free from any external control like that of the State or the Government or any party politics. It was one of the King's duties to see that the learned pundits persued their studies and their duty of imparting knowledge without interference from any source, whatever. So also, education did not suffer from any communal interest or prejudices in India."—Prabhu: *op. cit.*, p. 134.

(१४) पाठ्यक्रम—वैदिक काल मे वेदो की शिक्षा के अतिरिक्त और भी अनेक विषयो की शिक्षा दी जाती थी। 'छादोग्य उपनिषद' तथा 'वृहदारण्यक उपनिषद' मे जिन विषयो की सूची मिलती है, वह इस प्रकार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास अथवा पौराणिक कथाएँ; पुराण, देव-विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान अथवा आलोचना, राशि (Science of Numbers), दैव (Science of Portent), निधि (Science of Time), वाको-वाक्य (Logic), नैतिक शास्त्र, देव-विद्या (Etymology), ब्रह्म-विद्या, भूत-विद्या, शस्त्र-विद्या, नक्षत्र-विद्या, सर्प-विद्या, व्याकरण, ज्योतिष, तथा कल्प (Ceremonial and Religious Practices)। इन विषयो के अतिरिक्त, वैदिककालीन भारतीयो को बीजगणित तथा औषधि-विज्ञान के शिक्षण के भी अवसर सुलभ थे।

(१५) शिक्षण-विधि—शिक्षण-विधि मौखिक थी और छात्रो को आचार्य द्वारा बताई गई सभी बातो को कंठस्थ करना होता था। प्रत्येक पाठ के प्रारम्भ मे छात्र गुरु का चरण-स्पर्श करते थे और उससे पाठ प्रारम्भ करने की प्रार्थना करते थे। गुरु गम्भीर वाणी मे मन्त्रो का उच्चारण करते थे और छात्र उसका अनुसरण करते थे। गुरु उच्चारण किये गये मन्त्रो की व्याख्या भी करते थे। शिक्षण समाप्त होने पर छात्र गुरु के चरणो का स्पर्श करके विदा लेते थे।

(१६) शिक्षा की पद्धति—वैदिक काल मे शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी। इस सम्बन्ध मे मिरडेल ने लिखा है :—"हिन्दू-धर्म की सीमा में शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी, क्योंकि प्रत्येक गुरु के अपने स्वयं के शिष्य होते थे।"[1]

(१७) कक्षा-नायकीय पद्धति—जब किसी गुरु के पास छात्रो की संख्या अधिक हो जाती थी, तब वह उनको व्यक्तिगत रूप से शिक्षा प्रदान करने मे कठिनाई का अनुभव करता था। इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिये वह सर्वोच्च कक्षा के सबसे अग्रिम छात्रो का सहयोग प्राप्त करता था। ये छात्र, जिनको 'नायक' कहा जाता था, गुरु की सामान्य देख-रेख मे निम्न कक्षा के छात्रो का अध्यापन और पथ-प्रदर्शन करते थे। इस प्रणाली की सराहना करते हुए, डा० वेद मित्र ने लिखा है :—"कक्षा-नायकीय पद्धति बुद्धिमान छात्रो को शिक्षण-कला सीखने का अवसर प्रदान करती थी और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उसी कार्य को करती थी, जिसे आधुनिक शिक्षक-प्रशिक्षण कॉलेज सम्पन्न करते हैं।"[2]

1. "The method of education within the bounds of Hinduism was individualistic; each guru had his personal disciples."—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol III. p. 1627.

2. "The monitorial system afforded opportunities to intelligent students to learn the art of teaching, and thus indirectly performed the same function as the Teachers' Training Colleges discharge today."—Dr. Veda Mitra : *Education in Ancient India*, p. 21.

(१८) **समावर्तन-उपदेश**—जब ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा समाप्त करके घर लौटते थे, तब आचार्य उनको समावर्तन-उपदेश देते थे। इसी उपदेश को 'दीक्षान्त-भाषण' कहा जाता है। समावर्तन-उपदेश साहित्य तथा आयुर्वेद के स्नातकों के लिए भिन्न थे। 'तैत्तिरीय उपनिषद्' (१-११) मे साहित्य के स्नातकों को दिये जाने वाले समावर्तन-उपदेश का हिन्दी रूपान्तर अधोलिखित है—

"सर्वदा सत्य बोलना। अपने कर्त्तव्य का पालन करना। स्वाध्याय मे प्रमाद न करना। आचार्य को दक्षिणा दे देने पर संतति-उत्पादन की परम्परा विच्छिन्न मत करना। सत्य से न हटना। धर्म से मत हटना। लाभकार्य मे प्रमाद न करना। महान् बनने के सुअवसर से न चूकना। वेदो के पठन-पाठन के कर्त्तव्य मे प्रमाद न करना। देवताओ और पितरो आदि के कार्य मे प्रमाद न करना। माता को देवी समझना। पिता को देव समझना। आचार्य को देव समझना। अतिथि को देव समझना। जो कार्य दोष-रहित हो—वही करना, अन्य नही। जो कुछ अच्छे कार्य हमने किये है, तुम उन्ही का अनुकरण करना, अन्य का नही। कुछ ब्राह्मण हम से भी श्रेष्ठ है, अत तुम आसन देकर उनका समादर करना। जो कुछ दान दो—वह श्रद्धा से देना, प्रसन्नता से देना, शीलपूर्वक देना, भय से देना और दया से देना। यदि धर्म या शिष्टाचार के सम्बन्ध मे तुम्हे कोई शंका हो तो तुम उन ब्राह्मणो से परामर्श करना, जो समदर्शी हो, इस कार्य के लिए युक्त हो किन्तु कठोर स्वभाव के न हो। जैसा व्यवहार करते हो, वैसा ही करना। यही तुम्हे हमारा आदेश है। यही उपदेश है। 'वेद' और 'उपनिषद्' का तत्त्व यही है। यही अनुशासन है। तुम इसी की उपासना करना। तुम इसका इसी रूप मे पालन करना।"

(१९) **स्त्री-शिक्षा**—वैदिककालीन शिक्षा की अन्तिम विशेषता यह थी कि स्त्रियो को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। वैदिक काल मे नारी-शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी। ब्रह्मचर्य-व्रत से सम्पन्न शिक्षिता कन्या को ही गृहस्थ-आश्रम मे प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त था। समय की गति के साथ समाज मे स्त्रियो का महत्त्व तथा उसके फलस्वरूप उनका शिक्षा-अधिकार कम होता चला गया। ऐसा ईसा-पूर्व २०० वर्ष के लगभग हुआ। इस प्रकार अति प्राचीन काल से लेकर इस समय तक स्त्रियो की शिक्षा का कार्यक्रम प्राय अबाध गति से चलता रहा। बालको ने समान बालिकाएँ भी उपनयन ग्रहण करती थी। सह-शिक्षा का भी प्रचलन था। बालिकाओ को साहित्य, नृत्य, संगीत, काव्य-रचना, वाद-विवाद, दर्शन आदि विषयो की शिक्षा दी जाती थी।

(२०) **व्यावसायिक शिक्षा**—वैदिक समाज ने धर्म-प्रधान होने के कारण धर्म पर विशेष बल दिया, पर उसने व्यावसायिक शिक्षा की उपेक्षा नही की। इसी शिक्षा के आधार पर ही प्राचीन भारत अपने स्वयं के आर्थिक जीवन और वैभव का निर्माण

कर सका। यह शिक्षा बालकों को इसलिये दी जाती थी, जिससे कि वे समाज में अपने भावी कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें। इस शिक्षा के मुख्य अंग निम्नांकित थे —

(i) **पुरोहितीय शिक्षा**—यह शिक्षा ब्राह्मणों को दी जाती थी। उनको धर्म, यज्ञ, हवन, बलि आदि कार्यों की शिक्षा देने के लिये पृथक् प्रशिक्षण केन्द्र थे।

(ii) **सैनिक शिक्षा**—यह शिक्षा विशेष रूप से क्षत्रियों को दी जाती थी, पर ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों की सेनाओं के भी प्रमाण मिलते हैं। इस शिक्षा के लिए संस्थायें नहीं थीं। यह साधारणतः राज्य-सेनाओं के अवकाश-प्राप्त सैनिकों द्वारा दी जाती थी।

(iii) **कृषि और वाणिज्य की शिक्षा**—यह शिक्षा वैश्यों को दी जाती थी। प्रारम्भ में यह शिक्षा बालक को अपने पिता से मिलती थी, पर **"राजतरंगिणी"** पुस्तक में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कुछ समय के उपरान्त यह कार्य शिक्षकों द्वारा किया जाने लगा था।

(iv) **औषधि-शास्त्र की शिक्षा**—यह शिक्षा भारत में अति प्राचीन काल में भी विद्यमान थी। २५० ई० पू० से सन् ८०० ई० तक यह शिक्षा अति उन्नत दशा में थी। डॉ० आर० के० मुकर्जी के अनुसार औषधि-शास्त्र के अध्ययन की अवधि ७ वर्ष थी।

(v) **अन्य व्यवसायों की शिक्षा**—वैदिक भारत में उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों की शिक्षा की भी व्यवस्था थी, यथा—सोने और चाँदी के आभूषण बनाना, लोहे, लकड़ी, पीतल और मिट्टी की वस्तुएँ बनाना, कपड़ा बुनना आदि। यह शिक्षा विभिन्न व्यवसायों में संलग्न, संघों, व्यापारियों और परिवारों द्वारा दी जाती थी।[1]

उपसंहार

वैदिककालीन शिक्षा-व्यवस्था के जिन प्रमुख तत्वों तथा विशेषताओं का ऊपर की पंक्तियों में दिग्दर्शन किया गया है, उनसे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि दीर्घ अतीत में हमारे देश में शिक्षा की अति सुन्दर व्यवस्था थी। शिक्षा का लक्ष्य था—व्यक्ति का बहुमुखी विकास करना। शिक्षा—मानव के व्यक्तित्व का निर्माण, उसकी मानसिक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास, उसके जीवन के लिए जीवन के अर्थ तथा महत्व की व्याख्या और उसे इहलोक तथा परलोक—दोनों में आत्मिक उत्थान करने में सहायता देती थी।

---

1 "Each trade, guild and family trained its children in its own profession."—**Dr. Veda Mitra :** *op. cit.*, p. 26.

सारांश

शिक्षा का तात्पर्य—वैदिक युग से लेकर आज तक भारत मे शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है—"शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करती है।" क्योंकि शिक्षा का तात्पर्य प्रकाश से है, अत वैदिक काल मे केवल पुस्तकीय ज्ञान ही शिक्षा का पर्यायवाची नही माना गया। वैदिकयुगीन शिक्षा का तात्पर्य—अन्तर्ज्योति तथा शक्ति से था, जिससे मानव की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक शक्तियो का सन्तुलित विकास हो सकता था।

शिक्षा के उद्देश्य तथा आदर्श—(१) ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का विकास, (२) चरित्र-निर्माण, (३) व्यक्तित्व का विकास, (४) नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन, (५) सामाजिक कुशलता की उन्नति, तथा (६) राष्ट्रीय संस्कृति का सरक्षण एव प्रसार।

शिक्षा की व्यवस्था—पाठशाला के समान सस्था, गुरु-गृह मे अध्ययन, सघ, चरण, परिषद, मठ, गुरुकुल व आश्रम, ब्राह्मणो को धर्म-कर्म की, क्षत्रियो को युद्ध-विद्या व राजनीति की, वैश्यो को वाणिज्य व कृषि विज्ञान की तथा शूद्रो को हस्त-कलाओ की शिक्षा।

शिक्षा के तत्त्व एव विशेषताएँ—(१) उपनयन-सस्कार के उपरान्त विद्या का अध्ययन आरम्भ होता था। (२) अध्ययन प्रारम्भ करने की आयु के सम्बन्ध मे याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि ब्राह्मण को अपने पाँचवें वर्ष मे, क्षत्रिय को छठे वर्ष मे और वैश्य को आठवें वर्ष मे विद्या का अध्ययन प्रारम्भ कर देना चाहिए। (३) अध्ययन-काल साधारणत १० वर्ष का था। (४) शिक्षा-सत्र श्रावण मास की पूर्णिमा को प्रारम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को समाप्त होता था। (५) शिक्षण का समय सम्भवत प्रात काल से मध्याह्न तक और फिर कुछ विश्राम के उपरान्त सायकाल तक चलता था। (६) विद्यालय-भवनो के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही है। (७) गुरुकुल प्रकृति के कक्ष मे, पर किसी नगर या ग्राम के समीप थे। (८) छात्रो को तामसी भोजन करने का निषेध था। उनकी वेश-भूषा निश्चित थी। उन्हे संध्या और हवन करना पडता था। वे नृत्य तथा सगीत का आनन्द नही ले सकते थे। उन्हे सादी आदतो की शिक्षा दी जाती थी। (९) छात्र गुरु की सेवा करते थे। (१०) अध्यापक छात्रो के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करते थे। (११) विशेष परिस्थितियो मे छात्रो को शारीरिक दण्ड दिया जाता था। (१२) शिक्षा नि शुल्क थी। (१३) शिक्षा वाह्य नियन्त्रण से मुक्त थी। (१४) पाठ्यक्रम मे वेद, उपनिषद आलोचना, देव-विद्या, ज्योतिष, औषध-विज्ञान आदि विषय थे। (१५) शिक्षण-विधि मौखिक थी। (१६) शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी। (१७) कक्षा-नायकीय पद्धति का प्रचलन था, (१८) जब छात्र शिक्षा समाप्त करके घर लौटते थे, तब आचार्य उनको

समावर्तन-उपदेश देते थे। (१६) स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। (२) व्यावसायिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं की गई।

TEST QUESTIONS

1. What were the aims and ideals of education in ancient India ?
   प्राचीन भारत मे शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श क्या थे ?

2. Describe the salient features of the system of education prevailing in ancient India. To what extent are they discoverable in the present system ?

   प्राचीन भारत मे शिक्षा-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओ का वर्णन कीजिए। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था मे वे विशेषताएँ किस सीमा तक पाई जाती है ?

3. "It is said that education was a handmaid to religion in ancient India." How far do you agree with this view ? How did religion influence educational theory and practice in ancient India ?
   "कहा जाता है कि प्राचीन भारत मे शिक्षा धर्म की अनुचरी थी।" आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं ? प्राचीन भारत मे धर्म ने शिक्षा-सिद्धान्त और अभ्यास को किस प्रकार प्रभावित किया ?

4. In what respects do the aims of education in British period and independent India differ from those in ancient India ?
   ब्रिटिश-काल और स्वतन्त्र भारत के शैक्षिक उद्देश्य प्राचीन भारत के शैक्षिक उद्देश्यों से किस प्रकार भिन्न है ?

२

बौद्ध-शिक्षा

प्रस्तावना

ईसा की छठी शताब्दी मे भारत भूमि पर महान् शिक्षक और धर्मोपदेशक महात्मा बुद्ध का निवास था । उन्होने निर्वाण की प्राप्ति के लिए 'अष्ट मार्ग' बताया । उन्होने बौद्ध-धर्म मे चारा जातियो के व्यक्तियो को स्थान दिया । उन्होने वैदिककाल के देवी-देवताओ की उपेक्षा नही की, पर आचरण पर अधिक बल दिया । उन्होने एक नवीन शिक्षा-व्यवस्था को जन्म दिया, जो वैदिककालीन शिक्षा के समान होते हुए भी कुछ बातो मे भिन्न थी । "उचित रूप से विचार किये जाने पर बौद्ध-शिक्षा, प्राचीन हिन्दू या ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली का एक रूप है ।"[1]

शिक्षा की व्यवस्था

बौद्ध-धर्म का विकास सघो के रूप मे हुआ था । अत बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र 'सघ' ही थे । केवल संघा म ही बौद्ध शिक्षा दी जाती थी, अन्य किसी स्थान पर नही । बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली मे केवल सघ के श्रमणा को ही धार्मिक और सासा रिक शिक्षा दी जाती थी । श्रमणो के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति शिक्षा देने का अधिकारी नही था । बौद्ध-काल मे यज्ञ का स्थान सघ ने ले लिया था । अत बौद्ध-संघ की पद्धति ही बौद्ध-शिक्षा-पद्धति थी । "बौद्ध शिक्षा-पद्धति प्राय बौद्ध-सघ की पद्धति है । जिस प्रकार वैदिक युग मे 'यज्ञ' सस्कृति के केन्द्र थे, उसी प्रकार बौद्ध-युग मे 'सघ' शिक्षा और विद्या के केन्द्र थे । बौद्ध-ससार म अपने सघो से पृथक् या

---

1 "Buddhist education rightly regarded is but a phase of the ancient Hindu or Brahmanical system of education"—R K Mookerji *Ancient Indian Education*, p 374.

स्वतन्त्र रूप से शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था। सब प्रकार की शिक्षा —धार्मिक तथा लौकिक—श्रमणो के हाथ मे थी।"[1]

सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा

हमे 'जातक कथाओ' से ज्ञात होता है कि बौद्ध-युग मे प्राथमिक शिक्षा की कैसी व्यवस्था थी। बौद्ध-मठ इस शिक्षा के केन्द्र थे। प्रारम्भ मे यह शिक्षा केवल धार्मिक थी, पर कुछ समय के बाद सासारिक शिक्षा भी दी जाने लगी। कारण यह था कि ब्राह्मणो द्वारा चलाई जाने वाली प्रतिद्वन्द्वी शिक्षा-संस्थाओ मे दोनो प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था थी। ऐसी दशा मे यह आवश्यक था कि बौद्ध धर्मावलम्बियो के लिए भी दोनो प्रकार की शिक्षा का आयोजन हो। ऐसा करके ही शिक्षा पर से ब्राह्मणों के एकमात्र अधिकार को समाप्त किया जा सकता था। फ़ाहियान के भारत-आगमन के समय (३९९-४१४ ई०) बौद्ध-मठो मे केवल बौद्ध-संघ मे सम्मिलित होने वालो की शिक्षा के साथ-साथ सामान्य शिक्षा की भी बहुत अच्छी व्यवस्था थी।

हमे चीनी-यात्रियो—हुएनसाग और आईसिंग, जो भारत मे ७वी शताब्दी मे आये थे, के लेखो मे सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा का उल्लेख मिलता है। इन यात्रियो के अनुसार प्राथमिक शिक्षा ६ वर्ष की आयु से आरम्भ होती थी। छात्रो को छः माह तक "सिद्धिरस्तु" (Siddhirastu) नामक बालपोथी पढनी पडती थी, जिसमे वर्णमाला के ४९ अक्षर थे। इसको समाप्त करने के बाद छात्रो को पाँच विद्याओं—शब्द-विद्या, शिल्पस्थान-विद्या, चिकित्सा-विद्या, हेतु-विद्या और अध्यात्म-विद्या का अध्ययन करना पडता था।

प्राथमिक शिक्षा के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध-मठो मे धार्मिक, सासारिक, दार्शनिक और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता था। इस शिक्षा को न केवल बौद्ध-भिक्षु वरन् गृहस्थ और बौद्ध धर्मावलम्बी भी प्राप्त करने के अधिकारी थे। यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक जान पडता है कि शिक्षा का माध्यम 'पाली' भाषा थी, जो जन-साधारण के द्वारा बोली जाती थी, न कि संस्कृत—जैसा कि ब्राह्मणो द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थाओ मे था।

उच्च शिक्षा

पाँच विद्याओं का अध्ययन समाप्त करके प्राथमिक और सामान्य शिक्षा का

---

1. "The Buddhist system is practically that of the Buddhist order or *Sangha*. Buddhist education and learning centred round monasteries as Vedic culture centred round the sacrifice. The Buddhist world did not offer any educational opportunities apart from or independently of its monasteries. All education sacred as well as secular, was in the hands of the monks."—**R. K. Mookerji**: *op. cit.*, p. 394.

पाठ्य-क्रम पूर्ण हो जाता था। उसके बाद उच्च शिक्षा का पाठ्य-क्रम प्रारम्भ होता था। इस शिक्षा के केन्द्र भी बौद्ध-मठ थे। उच्च शिक्षा मे अध्ययन के विविध विषयो और विशेषज्ञता (Specialization) का प्रबन्ध था। छात्र—व्याकरण, धर्म, ज्योतिष, दर्शन, औषध-विज्ञान आदि का अध्ययन करके इनमे से किसी मे विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। हुएनसाग के अनुसार उच्च शिक्षा मे अक्रियात्मक और क्रियात्मक (Theoretical and Practical), शिक्षा के दोनो पहलुओ पर बल दिया जाता था। "मठो ने अपनी उच्च शिक्षा की योग्यता से, जहाँ अध्ययन करने के लिए कोरिया, चीन, तिब्बत और जावा ऐसे सुदूर देशो से छात्र आकर्षित होते थे, भारत की अन्तर-राष्ट्रीय स्थिति को ऊँचा उठा दिया।"[1]

उच्च शिक्षा के केन्द्रो मे नालन्द, वलभी, विक्रमशील, जगदल, ओदन्तपुरी मिथिला और नादिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सब मे सर्वप्रथम स्थान नालन्द विश्वविद्यालय को प्राप्त था। यह आधुनिक ग्राम बरगा मे राजगीर (विहार) से लगभग ८ मील दूर था। सन् ४५० से लेकर लगभग ३५० वर्ष तक यह अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर था। यूएनच्वाग के भारत-आगमन के समय इसमे लगभग ५,००० भिक्षु थे, जिनमे से १,००० के ऊपर ४,००० विद्यार्थियो की शिक्षा का भार था। विश्वविद्यालय मे प्रवेश के समय द्वार-पण्डित कहलाने वाला विद्वान् शिक्षक विश्वविद्यालय के द्वार पर बैठकर छात्रो की कडी मौखिक परीक्षा लेता था। विश्वविद्यालय मे बौद्ध-धर्म, जैन-धर्म, वैदिक धर्म, वेदो, व्याकरण, ज्योतिष, पुराणो, दर्शनशास्त्र और औषध-विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। लगभग ८०० वर्ष के बाद ज्ञान और विद्या से सब दिशाओ को आलोकित करने वाला भारतीय दर्शन, कलाओ और सभ्यता का यह केन्द्र १३वी शताब्दी के प्रारम्भ मे बख्तियार खिलजी के द्वारा धूल मे मिला दिया गया।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ

बौद्ध धर्मावलम्बियो ने अपने धार्मिक सिद्धान्तो और आदर्शों के प्रसार के लिए एक विशिष्ट शिक्षा-पद्धति को अपनाया। हम इसके आधारभूत तत्त्वो और विशेषताओ का उल्लेख नीचे की पंक्तियो मे कर रहे हैं :—

१. विद्यार्थित्व—बौद्ध-शिक्षा-संस्थाओ मे सभी जातियो, पदो और वर्गों के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। केवल चाण्डालो का प्रवेश वर्जित था।

२. छात्रो का चुनाव—अग्रलिखित छात्रो का विद्याध्ययन के लिए चुनाव नही

---

1. The monasteries raised the international status of India by *the efficiency of their higher education, which attracted students* from distant countries like Korea, China, Tibet and Java."—A. S. Altekar : *op. cit.*, p. 234.

किया जाता था—(१) जिन्होंने अपने माता-पिता की आज्ञा न ली हो, (२) जिनको कोढ, तपेदिक आदि रोग हो, (३) जो राजा की नौकरी करते हो, (४) जो डाकू रह चुके हो, (५) जो जेल से भाग आये हो, (६) जिनको राज्य से किसी प्रकार का दण्ड मिल चुका हो, (७) जिनका कोई अंग-भग हो या जिनके शरीर का कोई भाग विकृत हो, (८) दास, और (९) नपुंसक।

३. **विद्याध्ययन प्रारम्भ करने की आयु**—डा० एफ० ई० केई (F E. Keay) के अनुसार विद्याध्ययन आरम्भ करने की आयु ८ वर्ष की थी। प्रवेश के बाद छात्र "श्रमण" या "सामनेर" (Samanera) या "नवशिष्य" कहलाता था। इस दशा मे वह १२ वर्ष तक विद्याभ्यास करता था। २० वर्ष की आयु मे वह भिक्षु के रूप मे प्रवेश कर सकता था।

४. **पबज्जा-सस्कार**—प्रवेश के समय 'पवज्जा-सस्कार' होता था। 'पवज्जा' का अर्थ है—बाहर जाना। इस सस्कार का अर्थ था कि छात्र अपने परिवार से अलग होकर बौद्ध-संघ मे प्रवेश करता था। 'विनय पिटक' (Vinaya Pitaka) मे पबज्जा-सस्कार का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है

छात्र अपने सिर के बाल मुंडाता था, पीले वस्त्र धारण करता था, मठ के भिक्षुओ के चरणो मे अपना माथा टेकता था और फिर पालती मारकर बैठ जाता था। मठ का सबसे बडा भिक्षु उससे तीन बार यह कहलाता था—"बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, सघ शरणं गच्छामि।" इसके बाद उसे आगे लिखे १० आदेश दिये जाते थे—(१) जीव-हत्या न करना, (२) चोरी न करना, (३) अशुद्धता से दूर रहना, (४) असत्य न बोलना, (५) मादक पदार्थों का प्रयोग न करना, (६) वर्जित समय पर भोजन न करना, (७) नृत्य, सङ्गीत और तमाशो के पास न जाना, (८) शृङ्गार की वस्तुओ (फूलमालाओ, सुगन्धियो, आभूषणो आदि) का प्रयोग न करना, (९) ऊँचे बिस्तर पर न सोना, और (१०) सोने या चाँदी का दान न लेना।

५. **उपसम्पदा**—नवशिष्य १२ वर्ष तक अध्ययन करने के बाद २० वर्ष की आयु को प्राप्त होता था। उस आयु मे वह 'उपसम्पदा-सस्कार' सम्पादित करके भिक्षु के रूप मे सघ म रह सकता था। 'पवज्जा' के समान 'उपसम्पदा' एकपक्षीय सस्कार नही था। 'उपसम्पदा-संस्कार' संघ के कम से कम १० योग्य भिक्षुओ की उपस्थिति मे होता था। उनमे से एक श्रमण का परिचय कराता था। उसके बाद अन्य भिक्षु उससे अनेक प्रश्न पूछते थे। उनके उत्तर सुनने के बाद उपस्थित भिक्षु यह निर्णय करते थे कि नवशिष्य 'उपसम्पदा' ग्रहण करने का अधिकारी है या नही। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'उपसम्पदा' की प्रणाली जनतान्त्रिक थी। 'उपसम्पदा' के बाद श्रमण पक्का भिक्षु और सघ मे रहने का अधिकारी हो जाता था। उसे आगे लिखे नियमो का पालन करना पडता था—(१) भोजन के लिए भिक्षा माँगना, (२) साधारण वस्त्र पहनना, (३) वृक्ष के नीचे निवास करना, (४) गो-मूत्र को औषधि के रूप

प्रयोग करना, (५) स्त्री-समागम, चोरी जीव-हत्या और अलौकिक शक्तियों का दावा करने से दूर रहना।

६. **अध्ययन-काल**—अध्ययन-काल २२ वर्ष का था—१२ वर्ष पवज्जा का, और १० वर्ष उपसम्पदा का। अध्ययन-काल ८ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर ३० वर्ष की आयु मे समाप्त होता था।

७ **छात्र-जीवन सम्बन्धी नियम**—बौद्ध शिक्षा प्रणाली मे छात्रो को निम्न लिखित नियमो का पालन करना पडता था —

(i) **भिक्षाटन**—छात्रो को प्रात जल्दी उठना पडता था और फिर भिक्षाटन के लिए जाना पडता था। वे मौन रूप से भिक्षा मागते थे, बोलकर नही। वे भिक्षा मे केवल उतना ही भोजन माँग सकते थे जितने की उनको आवश्यकता होती थी।

(ii) **भोजन**—विद्यार्थियो का भोजन बहुत सादा और दिन मे साधारणत तीन बार होता था। रात्रि भोजन के लिए वे और उनके शिक्षक प्राय कही न कही आमन्त्रित रहते थे।

(iii) **वस्त्र**—छात्रो को कम से कम वस्त्र पहनने का आदेश था। उनके वस्त्र तीन होते थे। अत उनको 'तिसिवरा (*Ticivara*) कहा जाता था।

(iv) **स्नान**—स्नान करते समय छात्रो को पानी मे खेल करने और अपने शरीर को लकडी या दूसरे के शरीर से रगडने का निषेध था। पर वे हाथ से अपने शरीर को मल सकते थे।

(v) **अनुशासन**—अनुशासन पर बहुत बल दिया जाता था। छात्र फूल पत्तो पौधो और वृक्षो को हानि नही पहुँचा सकते थे, सम्पत्ति नही रख सकते थे, खेल-तमाशे नही देख सकते थे, शरीर को अलकृत नही कर सकते थे और व्यर्थ की बातें नही कर सकते थे। इन नियमो का पालन न करने वालो को दण्ड दिया जाता था। कभी-कभी अनुशासनहीनता के कारण पूरे सघ को दण्ड दिया जाता था। उसके सब सदस्यो को सघ से निकाल दिया जाता था।

८ **गुरु के प्रति छात्र के कर्त्तव्य**—छात्र को अपने शिक्षक से पहले उठकर उसकी दातौन और हाथ मुँह धोने के लिए पानी का प्रबन्ध करना पडता था। वह गुरु के बैठने का स्थान ठीक करता था झाडू लगाता था और उसके बर्तनो को साफ करता था। वह गुरु के साथ भिक्षा मागने जाता था और उसके लौटने से पहले वापस आकर गुरु के लिए जल और भोजन का प्रबन्ध करता था।

९ **छात्र के प्रति गुरु के कर्त्तव्य**—जिस प्रकार गुरु के प्रति छात्र के कर्त्तव्य थे, उसी प्रकार छात्र के प्रति गुरु के भी कर्त्तव्य थे। गुरु का प्रमुख कर्त्तव्य यह था कि वह अपने शिष्य का मानसिक और आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन करे। उसे अपने छात्र के लिए वस्त्र, भिक्षा-पात्र और अन्य आवश्यक वस्तुओ का प्रबन्ध करना पडता था। शिष्य के बीमार होने पर गुरु उसकी सेवा-सुश्रूषा करता था।

१०. गुरु-शिष्य सम्बन्ध—गुरु और शिष्य का सम्बन्ध स्नेहपूर्ण था। गुरु अपने शिष्य के समक्ष सादा जीवन, निरन्तर अध्ययन, निष्कलंक चरित्र और ब्रह्मचर्य के आदर्श प्रस्तुत करता था। अनेक वर्षों तक निरन्तर साथ रहने के कारण गुरु और शिष्य में पारस्परिक श्रद्धा, निर्भरता और प्रेम का विकास हो जाता था। "अपने गुरु के साथ नवशिष्य के सम्बन्धों का स्वरूप पुत्रानुरूप था। वे पारस्परिक सम्मान, विश्वास और प्रेम से आबद्ध थे।"[1]

११. पाठ्यक्रम—बौद्ध-मठों में जो उच्च-शिक्षा के केन्द्र थे, अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी, जैसे—बौद्ध-धर्म, हिन्दू-धर्म, जैन-धर्म, दर्शनशास्त्र (Philosophy), अध्यात्म-विद्या (Metaphysics), तर्क-शास्त्र (Logic), संस्कृत, पाली, नक्षत्र-फल-गणन-विद्या (Astrology), खगोल-विज्ञान (Astronomy), औषध-विज्ञान (Medicine), न्याय-शास्त्र (Law), राज्य-व्यवस्था (Polity), और प्रशासन (Administration)।

१२. शिक्षण-विधि—शिक्षण-विधि मुख्यतः मौखिक थी। रटने पर बल दिया जाता था, पर रटने के बाद छात्र को याद की हुई बातों पर मनन करना पड़ता था। वाद-विवाद, तर्क, विश्लेषण, व्याख्या और स्पष्टीकरण की विधियों का भी प्रयोग किया जाता था। हुएनसांग (Hiuen Tsang) ने शिक्षण की अन्य विधियों के बारे में इस प्रकार लिखा है—"शिक्षक पाठ्य-वस्तु का सामान्य अर्थ बताते हैं और छात्रों को सविस्तार पढ़ाते हैं। वे उन्हें परिश्रम के लिए प्रोत्साहित करते हैं और कुशलता से उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं। वे क्रियाशून्य छात्रों को निर्देशित करते हैं और मन्द-बुद्धि विद्यार्थियों को ज्ञान के अर्जन के लिए उत्सुक करते हैं।"[2]

१३. शिक्षा का माध्यम—बौद्ध-मठों में रहने वाले भिक्षु भारत के विभिन्न भागों से आते थे और विभिन्न भाषाएँ बोलते थे। 'छलवग्गा' (Challavagga) की एक कहानी के अनुसार बौद्ध-धर्म के अनुयायी दो ब्राह्मणों ने महात्मा बुद्ध से उनके उपदेशों को संस्कृत में लिखने की आज्ञा माँगी। बुद्ध ने इसको अस्वीकार करते हुए कहा—"ओ भिक्षुओ! मैं तुममें से प्रत्येक को बुद्ध के उपदेशों को अपनी स्वयं की भाषा में सीखने की आज्ञा देता हूँ।" फलस्वरूप, शिक्षा का माध्यम देश की प्रचलित भाषाएँ थीं।

---

1. "The relations between the novice and his teacher were filial in character; they were united together by mutual reverence, confidence and affection."—**A. S. Altekar** : *Education in Ancient India*, *pp*. 61-62.

2. "The teachers explain the general meaning and teach them the minutiae; they rouse them to activity and skilfully win them to progress; they instruct the inert and sharpen the dull." —Quoted by **R. K. Mookerji** : *op. cit.*, p. 506.

१४. शिक्षा की पद्धति—बौद्धो ने ब्राह्मणो की वैयक्तिक शिक्षा-पद्धति के विपरीत सामाजिक पद्धति को अपनाया। मठो और शिक्षा के अन्य केन्द्रो मे अनेक भिक्षु होते थे, जिन पर सामूहिक रूप से छात्रो की शिक्षा का भार रहता था।

१५. शास्त्रीय विवाद—बौद्ध-शिक्षा-पद्धति की एक उल्लेखनीय विशेषता थी—शास्त्रीय विवाद। छात्र समय-समय पर एकत्र होकर विभिन्न विषयो पर परस्पर वाद-विवाद करके अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। मिरडेल का कथन है —"शास्त्रीय विवादो को प्रोत्साहन दिया जाता था। इस प्रकार की विश-मंडलियाँ बौद्ध उच्च शिक्षा की एक अनोखी विशेषता थी।"[1]

१६. सामान्य विद्यालय—बौद्ध-शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता थी—अपने माता-पिता एक साथ रहने वाले बालको के लिये सामान्य विद्यालयो का आयोजन। मिरडेल ने लिखा है —"मठ-विद्यालय बहुत कुछ सामान्य विद्यालयो के समान कार्य करने लगे, जिनमे बालक अपने परिवारो मे रहकर शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।"

१७. स्त्री-शिक्षा—बौद्ध-धर्म मे स्त्रियो का स्थान पुरुषो से निम्न है और भिक्षुओं को स्त्रियो से दूर रहने का आदेश दिया गया है। फलस्वरूप, संघ मे स्त्रियो को स्थान नही दिया गया। कुछ समय के बाद बुद्ध ने अपनी विमाता महाप्रजापति के आग्रह पर स्त्रियो को संघ मे प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। जो स्त्रियाँ संघ मे प्रवेश करती थी, उनको भिक्षुणी कहा जाता था। उनको भिक्षुओ के समान ही जीवन व्यतीत करना पडता था। उनके मठ भिक्षुओ से अलग होते थे। संघ मे प्रवेश करने की आज्ञा मिलने के कारण स्त्री-शिक्षा का काफी विकास हुआ। "स्त्रियो के संघ मे प्रवेश करने की आज्ञा ने स्त्री-शिक्षा को, विशेष रूप से समाज के कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियो की शिक्षा को, बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया।"[2] पर हमें इससे यह निष्कर्ष नही निकाल लेना चाहिए कि स्त्री-शिक्षा की बहुत प्रगति हुई। संघ मे विशेष रूप से कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियों ने ही प्रवेश किया। इन स्त्रियों की संख्या कम थी, क्योंकि इनका प्रवेश भिक्षुओ की इच्छा पर आधारित था और वे साधारणत. सभी स्त्रियों को प्रवेश नही देते थे। जहाँ तक साधारण स्त्रियों की बात थी, उनकी शिक्षा के लिए बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे कोई स्थान नही था।

---

1. "Scholastic debates were encouraged. Such learned assemblies were a novel feature of Buddhist higher education."—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, p. 1629.

2. "The permission given to women to enter the Order gave a fairly good impetus to the cause of female education, especially in aristocratic and commercial sections of society."—A. S. Altekar : *op. cit.*, p. 233.

१८ व्यावसायिक शिक्षा—बौद्ध-शिक्षा मे प्रमुख स्थान धर्म का था। पर उस समय के बौद्ध-साहित्य मे ऐसे अनेक उल्लेख मिलते है, जिनसे सिद्ध होता है कि व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा की उपेक्षा नही की गई। भिक्षुओ और जन-साधारण को विभिन्न व्यवसायो और उद्योगो की शिक्षा दी जाती थी। 'महावग्गा' (Mahavagga) मे भिक्षुओ के लिए कताई-बुनाई और सिलाई के प्रशिक्षण का वर्णन है। उनको यह प्रशिक्षण इसलिए दिया जाता था, जिससे वे अपने वस्त्रो की आवश्यकताओ को पूरा कर सकें। बौद्ध-कालीन विहार, स्तूप और चैत्य उस युग की भवन-निर्माण कला के प्रतीक है, और इस बात को प्रमाणित करते है कि इस कला मे उच्च कोटि के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। भिक्षुओ को भी इस कला स अवगत होना पडता था, जिससे कि वे विहारो के भवनो का निर्माण अपनी आवश्यकताओ के अनुसार करवा सकें। भवन-निर्माण कला के अतिरिक्त मूर्तिकला और चित्रकला के प्रशिक्षण की भी सुन्दर व्यवस्था थी, जैसा कि नालन्द और विक्रमशील विश्वविद्यालयो के भवनो तथा अन्य तत्कालीन इमारतो से प्रकट होता है।

गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वालो और बौद्ध-धर्म के अनुयायियो को जीविकोपार्जन मे सहायता देने के लिए विभिन्न उद्योगो की शिक्षा दी जाती थी, जैसे—लेखन, गणना (Accountancy), रुपम (Drawing), कृषि, वाणिज्य, कुटीर उद्योग और पशु-पालन। "मिलिन्द पन्हा" (Milinda Panha) मे १६ सिप्पाओ (Sippas) या शिल्पो का उल्लेख है, जो बौद्ध-काल मे प्रचलित थे। इनमे स अग्रलिखित की शिक्षा तक्षशिला के कुछ उच्च शिक्षा-केन्द्रो मे दी जाती थी—हस्ति-ज्ञान (Elephant Lore), इन्द्र जाल (Magic Charms), मृत व्यक्तियो को जीवित करने का मन्त्र, आखेट (Hunting), सब पशुओ की बोलियाँ समझने का ज्ञान, धनुर्विद्या, भविष्य-कथन, इन्द्रिय सम्बन्धी सब क्रियाओ को वश म करने की कला, शारीरिक सकेतो का अर्थ, और औषध-विज्ञान। छात्र इन विषयो मे से केवल एक का अध्ययन कर सकते थे। इस प्रकार जैसा कि डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है, यह स्पष्ट हो जाता है कि "सिप्पाओ या प्राविधिक तथा वैज्ञानिक शिक्षा के ज्ञान की माग सामान्य शिक्षा या धार्मिक अध्ययन की माँग से किसी प्रकार कम नही थी।"[1]

ब्राह्मणीय और बौद्ध-शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

समानता (Comparison)

"जहाँ तक सामान्य शिक्षा-सिद्धान्त या कार्य-प्रणाली का सम्बन्ध था, हिन्दुओ और बौद्धो मे कोई आधारभूत अन्तर नही था। दोनो पद्धतियो के समान आदर्श य

1. The demand for the knowledge of the *Sippas* or for technical and scientific education was not less keen than that for general education or religious studies."—R. K. Mookerji : *Ancient Indian Education*, p. 472

और दोनो समान विधियो का अनुसरण करती थी।"[1] वस्तुत., बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली ने प्राचीन हिन्दू-संस्थाओ का अनुकरण किया। अब हम दोनो पद्धतियों की समानताओ पर विचार करेगे, यथा—

(१) बौद्ध-धर्म ने अपने भिक्षुओ के लिए ब्रह्मचर्य के अनेक नियमो को अपनाया। ब्रह्मचारी का प्रथम कर्त्तव्य—भिक्षा माँगना था। बौद्ध शब्द "भिक्षु" का अर्थ है—"भिक्षा माँगने वाला।" ब्रह्मचारी के समान भिक्षु को भी भिक्षा माँगनी पडती थी।

(२) ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित भिक्षा-पात्र, भिक्षा माँगने की विधि, भोजन करने बैठने, सोने, केश कटवाने, वस्त्र, पुष्पमालाओं, सुगन्धियो, तेलो आदि विलास की वस्तुओ के सभी नियमो को बौद्ध-धर्म ने अपने भिक्षुओ के लिए अपना लिया था।

(३) बौद्धो का "अहिंसा" का सिद्धान्त ब्राह्मणीय है। ब्रह्मचारी को जुती हुई भूमि और फसल के ऊपर चलने का निषेध था, जिससे वह जीव-हत्या न करे। यही कारण था कि भिक्षु को वर्षा ऋतु मे यात्रा करने की आज्ञा नही थी।

(४) ब्राह्मणीय पद्धति मे "संन्यासी" अपना घर छोड देता था और वृक्ष के नीचे निवास करता था। "भिक्षु" को भी वृक्ष के नीचे निवास करने का आदेश था।

(५) बौद्ध-धर्म शारीरिक पवित्रता पर उतना ही बल देता है, जितना कि वैदिक धर्म। वेदो के अनुसार 'धर्म' व्यवहार मे लाई जाने वाली वस्तु है। इसका सम्बन्ध ज्ञान की अपेक्षा व्यवहार से अधिक है। "ब्रह्मचर्य" का शाब्दिक अर्थ है—"ब्रह्म का अभ्यास" (The Practice of *Brahma*)। शिक्षक को "आचार्य" अथवा "धर्म के आदेशो का पालन करने वाला" कहा जाता है। इस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति पुस्तको के अध्ययन की अपेक्षा उचित आदतो पर अधिक बल देती है। बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे भी ऐसा ही है।

(६) ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली म छात्रो द्वारा उपवास रखने की विधि को बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली ने भी अपनाया।

(७) जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे "उपनयन संस्कार" सम्पादित किया जाता था, उसी प्रकार बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे "पबज्जा-संस्कार" का सम्पादन होता था। दोनो सस्कारो मे छात्रो को अपने माता-पिता को छोडकर गुरु के पास रहना पडता था।

---

1. "There was no fundamental difference between Hindus and Buddhists as far as the general educational theory or practice was concerned. Both systems had similar ideals and followed similar methods."—**A. S. Altekar** : *Education in Ancient India*, **p. 228.**

(८) जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे विद्याध्ययन प्रारम्भ करने की आयु निश्चित थी, उसी प्रकार बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे भी थी।

(९) ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे अध्ययन की न्यूनतम अवधि १२ वर्ष की थी। इतनी ही अवधि बौद्ध-धर्म मे नवशिष्य के लिए थी।

(१०) जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे "उपनयन-संस्कार" के बाद विद्यार्थी को "ब्रह्मचारी" की उपाधि दी जाती थी, उसी प्रकार बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे "पबज्जा-संस्कार" के बाद छात्र को "सामनेर" की उपाधि दी जाती थी।

(११) ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति के "गुरु-शिष्य सम्बन्ध" के प्रमुख विचारो को बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे अपना लिया गया था।

असमानता (Contrast)

बौद्ध-धर्म का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि संसार दुःखो और कष्टो से परिपूर्ण है और इसका त्याग करके ही व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। अतः बौद्ध-शिक्षा-पद्धति का आयोजन ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति से विभिन्न ढंग से किया गया। इन दोनो शिक्षा-पद्धतियो मे पाई जाने वाली असमानताओ का वर्णन आगे किया गया है, यथा—

(१) ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति को 'शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली' (Domestic System of Education) कहा जा सकता है, क्योंकि इस प्रणाली मे शिक्षक का घर या परिवार—छात्र का विद्यालय होता था। बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली बौद्ध संघ की प्रणाली थी। इसमें परिवार का स्थान संघ या विहार ने ले लिया था। इस प्रकार बौद्ध-शिक्षा ने गुरु और शिष्य के पारिवारिक बन्धनो को नष्ट कर दिया।

(२) ब्राह्मणीय प्रणाली मे शिक्षा का केन्द्र 'गुरु-गृह' था। इसका विकास अनेक शिक्षको वाली शिक्षा-संस्था मे नही हुआ। बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली की यह एक प्रमुख विशेषता थी। बौद्ध-विहारो मे अनेक शिक्षक अध्यापन का कार्य करते थे।

(३) बौद्ध-विहारो मे अतुलित सम्पत्ति होती थी और वे धनी होते थे। हमे "विनय पिटक" (Vinaya Pitaka) स ज्ञात होता है कि विहारो का जीवन उनके बाहर के जीवन से अधिक सुखी और सुविधापूर्ण था। भिक्षुओ को भोजन का अभाव नही था और रोगग्रस्त होने पर उनका उपचार देश के सर्वप्रथम वैद्य 'जीवक' (Jivaka) के द्वारा किया जाता था। अत. उसमे कोई आश्चर्य नही था कि अनेक अवांछित मनुष्यों ने सघ मे प्रवेश ले लिया। फलस्वरूप, विहार सद्गुण और सद्ज्ञान के केन्द्र न रह गये। क्योंकि इन दूषणो ने ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे प्रवेश नही किया, इसलिए भारत में एक बार फिर ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ।

(४) बौद्ध-शिक्षा-पद्धति मे गुरु-शिष्य के सम्बन्ध इतने अच्छे नही थे, जितने कि ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे थे। दूसरे शब्दो मे, हम कह सकते है कि प्रथम शिष्

प्रणाली मे छात्र के ऊपर गुरु का अधिकार कम हो गया। विहार के सभी भिक्षु पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। संघ के सभी प्रस्ताव भिक्षुओ की सभा के द्वारा पारित किये जाते थे और सब भिक्षुओ को मतदान का समान अधिकार प्राप्त था। इस प्रकार बौद्ध-शिक्षा-प्रणाली "प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त" (Democratic Principle) पर आधारित थी, जबकि ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति का आधार "एक स्वामिक सिद्धान्त" (Monarchical Principle) था।

(५) "उपसम्पदा-संस्कार" दोनो शिक्षा-पद्धतियो के एक प्रमुख अन्तर की ओर संकेत करता है। ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति मे ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद घर लौट आता था, विवाह करता था और गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करता था। इसके विपरीत, "उपसम्पदा-संस्कार" के बाद भिक्षु को संसार से अपने सभी बन्धनो को तोड देना पडता था और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने और बौद्ध-धर्म का उपदेश करने मे अपने सम्पूर्ण जीवन को व्यतीत करने की शपथ लेनी पडती थी।

(६) वैदिक सस्कृति का आधार—व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाएँ और गुरुओ तथा शिष्यो की आदर्श परम्पराएँ थी। इसके विपरीत, बौद्ध-संस्कृति विशाल विहारो मे स्थित शिक्षा-संस्थाओ के संघ पर आधारित थी, जिनमे अनेक शिक्षक और विद्यार्थी रहते थे।

(७) दोनो पद्धतियो मे भिक्षाटन की प्रथा थी। पर भिक्षा माँगने के ढंग मे अन्तर था। ब्रह्मचारी बोलकर भिक्षा माँग सकता था, पर भिक्षु को मौन रूप से भिक्षा माँगनी पडती थी।

(८) ब्राह्मणीय शिक्षा के समान बौद्ध-शिक्षा वेदो पर आधारित नही थी और इसके शिक्षक ब्राह्मण नही थे। केवल वे ही ब्राह्मण अध्यापन का कार्य कर सकते थे, जो बौद्ध-धर्म को अंगीकार कर लेते थे। ब्राह्मणीय शिक्षा-संस्थाओ के विपरीत, बौद्ध-शिक्षा-शालाओ के द्वारा प्रत्येक जाति के व्यक्तियो के लिए खुले हुए थे।

(९) ब्राह्मणीय पद्धति मे प्रत्येक विद्यालय या आश्रम का स्वतन्त्र अस्तित्व था। इसका अन्य शिक्षा-संस्थाओ से कोई सम्बन्ध नही होता था। बौद्ध-प्रणाली मे प्रत्येक विद्यालय आन्तरिक मामलो मे स्वतन्त्र होता था, पर अन्य विद्यालयो के समान इसका सम्बन्ध संघ से होता था।

(१०) ब्राह्मणीय शिक्षा-केन्द्रो मे शिक्षा का माध्यम 'संस्कृत' थी। बौद्ध-विहारो मे स्थित विद्यालयो मे शिक्षा का माध्यम 'पाली' और देशी भाषाएँ थी।

(११) व्यावसायिक शिक्षा पर जितना बल ब्राह्मणो ने दिया, उतना बौद्धो ने नही दिया।

उपसंहार

भारत मे वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के कारण बौद्ध-धर्म का ह्रास होता चला

गया और कालान्तर मे लुप्त हो गया। पर शिक्षा के क्षेत्र मे बौद्ध-धर्म ने क्रान्ति उत्पन्न कर दी। "ब्राह्मणीय विद्यालयो के एकमात्र अधिकार को समाप्त करने और सब जातियों के मनुष्यो को शिक्षा का अवसर सुलभ करने मे, बौद्ध धर्म ने भारत के लोगो मे जन-सामान्य की शिक्षा की इच्छा का कुछ विस्तार किया, और उस माँग को प्रोत्साहित किया, जिसके कारण सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयो का विकास हुआ।"[1]

सारांश

शिक्षा की व्यवस्था—बौद्ध-शिक्षा के प्रमुख केन्द्र 'संघ' थे। केवल संघ के श्रमणो को ही शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध-संघ की पद्धति ही बौद्ध-शिक्षा-पद्धति थी।

सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा—इस शिक्षा के केन्द्र 'बौद्ध-मठ' थे। प्रारम्भ मे यह शिक्षा केवल धार्मिक थी, पर बाद मे सासारिक शिक्षा भी दी जाने लगी। प्राथमिक शिक्षा ६ वर्ष की आयु मे प्रारम्भ होती थी। शिक्षा का माध्यम 'पाली' भाषा थी।

उच्च शिक्षा—इसके केन्द्र 'बौद्ध-मठ' थे। व्याकरण, धर्म, ज्योतिष, दर्शन, औषध-विज्ञान आदि किसी मे विशेष योग्यता प्राप्त की जा सकती थी। उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र नालन्द, वलभी, विक्रमशील, जगदल, ओदन्तपुरी, मिथिला और नादिया थे।

शिक्षा के तत्त्व एवं विशेषताएँ—(१) चाडालो के अतिरिक्त सभी जातियो के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। (२) छात्रो के चुनाव के ६ आधार थे। (३) विद्याध्ययन आरम्भ करने की आयु ८ वर्ष की थी। (४) प्रवेश के समय पवज्जा-संस्कार होता था। (५) २० वर्ष की आयु मे उपसम्पदा-संस्कार सम्पादित होता था। (६) अध्ययन-काल २२ वर्ष का था। (७) छात्रो के लिए भिक्षा मांगने, साधारण भोजन करने, कम वस्त्र पहनने, पानी मे खेल न करने व अनुशासन मे रहने का आदेश था। (८) गुरु और छात्रो के एक-दूसरे के प्रति निश्चित कर्त्तव्य थे। (९) गुरु-शिष्य सम्बन्ध स्नेहपूर्ण थे। (१०) पाठ्य-क्रम मे बौद्ध, हिन्दू व जैन-धर्म, दर्शन, अध्यात्म-विद्या, तर्कशास्त्र, संस्कृत, पाली, औषध-विज्ञान, प्रशासन आदि विषय थे।

---

1. "In breaking down the monopoly of Brahmanic schools and offering the possibility of education to men of all castes, Buddhism may have done something to extend amongst the people of India the desire for some popular education and to have stimulated a demand which led to the growth of the popular elementary schools."—F. E. Keay : *Indian Education in Ancient and Later Times*, p. 109.

(११) शिक्षण-विधि मौखिक थी। पर तर्क, वाद-विवाद, विश्लेपण, व्याख्या व स्पष्टीकरण विधियो का भी प्रयोग किया जाता था। (१२) शिक्षा का माध्यम देश की प्रचलित भापाएँ थी। (१३) शिक्षा की पद्धति सामाजिक थी। (१४) शास्त्रीय विवाद प्रोत्साहित किये जाते थे। (१५) सामान्य विद्यालयो का आयोजन था। (१६) स्त्री-शिक्षा का स्थान पुरुप-शिक्षा से निम्न था। (१७) विभिन्न उद्योगो व १६ शिल्पो की शिक्षा दी जाती थी।

ब्राह्मणीय व बौद्ध-शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

समानता—(१) भिक्षा माँगना, (२) विलास की वस्तुओ का निपेध, (३) अहिसा, (४) वृक्ष के नीचे निवास, (५) शारीरिक पवित्रता, (६) उपवास, (७) प्रवेश-संस्कार, (८) शिक्षा आरम्भ की निश्चित आयु, (६) ब्रह्मचारी व सामनेर की उपाधि, (१०) गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर बल।

असमानता—(१) ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली, बौद्ध-शिक्षा-पद्धति बौद्ध-संघ की प्रणाली, (२) ब्राह्मणीय मे शिक्षा का केन्द्र गुरु-गृह, बौद्ध मे शिक्षा का केन्द्र विहार, (३) ब्राह्मणीय मे धन का अभाव, बौद्ध मे धन की प्रचुरता, (४) ब्राह्मणीय मे गुरु-शिष्य सम्बन्ध–बौद्ध की अपेक्षा अधिक उत्तम, (५) ब्राह्मणीय मे गृहस्थ आश्रम की आज्ञा, बौद्ध मे नही, (६) ब्राह्मणीय मे व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाएँ, बौद्ध मे ऐसा नही, (७) ब्राह्मणीय मे बोलकर भिक्षाटन, बौद्ध मे मौन रूप से, (८) ब्राह्मणीय मे शिक्षक केवल ब्राह्मण, बौद्ध मे प्रत्येक जाति के, (६) ब्राह्मणीय मे विद्यालय का स्वतन्त्र अस्तित्व, बौद्ध मे नही, (१०) ब्राह्मणीय मे शिक्षा का माध्यम 'संस्कृत', बौद्ध मे 'पाली' और देशी भापाएँ, (११) ब्राह्मणीय मे व्यावसायिक शिक्षा पर अपेक्षाकृत अधिक बल।

TEST QUESTIONS

1. Bring out some of the salient features of Brahmanical and Buddhist education. Which of them, in your opinion, has stood the test of time?

   ब्राह्मणीय और बौद्ध-शिक्षा की कतिपय प्रमुख विशेपताओ का वर्णन कीजिए। आपके विचारानुसार उनमे से कौन-सी समय की कसौटी पर पूरी उतरी हैं?

2. "Buddhist education shows several radical departures from the Brahmanic." Elucidate.

   "बौद्ध-शिक्षा अनेक महत्त्वपूर्ण बातों मे ब्राह्मणीय शिक्षा से भिन्न है।" स्पष्ट कीजिए।

3. Give an account of the organization and salient features of the Buddhist education.

   बौद्ध-शिक्षा की व्यवस्था और प्रमुख विशेपताओ का वर्णन कीजिए।

३

मुस्लिमकालीन शिक्षा

प्रस्तावना

भारत की आर्थिक उन्नति तथा सम्पन्नता से आकर्षित होकर मुसलमानों ने ईसा की ८वीं शताब्दी में भारत पर अपने आक्रमण प्रारम्भ कर दिए। महमूद गजनी ने अनेक बार यहाँ की दौलत से अपने हाथ रँगे, पर प्रत्येक बार वह स्वदेश को वापस लौट आया। मुहम्मद गौरी प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसने १२वीं शताब्दी के अन्त में भारत में मुस्लिम राज्य का शिलान्यास किया। १२०६ में उसकी मृत्यु के समय से १७५७ ई० तक, जब अंग्रेजों ने प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त की, भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। लगभग ५५० वर्ष के इस दीर्घकालीन आधिपत्य में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का कलेवर पूर्णतः परिवर्तित हो गया।

भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना से पूर्व यहाँ बौद्ध तथा ब्राह्मणीय शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। परन्तु मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता के कारण अनेक हिन्दू-शिक्षा-केन्द्र नष्ट कर दिए गए और उनकी पुस्तकों को जलाकर राख कर दिया गया। इसके बावजूद भी प्राचीन एवं सुव्यवस्थित संस्कृति पर आधारित तथा धर्म से प्रेरित भारतीय शिक्षा की धारा मुस्लिम प्रभाव से दूर स्थित स्थानों में अबाध गति से आगे बढ़ती रही। इसी के साथ-साथ जिन नगरों में मुसलमान विशाल संख्या में निवास करते थे अथवा कोई मुसलमान शासक रहता था, वहाँ मुस्लिम-शिक्षा की धारा भी, जिसका प्रेरणा-स्रोत धार्मिक प्रवृत्तियाँ थी, प्रवाहित होने लगी। यहाँ हम सर्वप्रथम यह देखेंगे कि मुस्लिम शासकों ने इस धारा को किस दिशा में प्रवाहित किया।

मुस्लिम शासकों के समय में शिक्षा

मुहम्मद साहब का एक उपदेश यह था—"दान में सोना देने की अपेक्षा अपने बच्चे को शिक्षा देना श्रेष्ठ है।" उनके अनुयायियों ने इस आदेश का अक्षरशः पालन

किया और ससार के उन भागो मे जहाँ उनका शासन था, शिक्षा के क्षेत्र म सराहनीय कार्य किया। यूरोप के सर्वप्रथम विश्वविद्यालया म 'कारडोवा' (Cordowa) मुसलमानो के द्वारा स्थापित किया जाने वाला विश्वविद्यालय था। भारत के दुर्भाग्य से उन्होने शिक्षा के प्रति यहाँ वह रुचि नही व्यक्त की। इसका कारण बताते हुए **टी० एन० सिक्वेरा** ने लिखा है —"भारत की मुस्लिम विजय इस्लामी शिक्षा के उस अन्धकारपूर्ण युग की समकालीन थी, जब विद्यालया ने सस्कृति के अपने विस्तृत आदर्शो को खो दिया था।"[1] फलत अकबर के अतिरिक्त और किसी भी मुस्लिम शासक का—उसके शिक्षा-प्रयासो के लिए यश-गान नही किया जा सकता है। मुहम्मद गोरी के समय से भारत के अन्तिम मुस्लिम शासक के राज्यकाल तक शिक्षा के क्षेत्र मे जो कार्य किए गये उनका सक्षिप्त विवरण नीचे की पक्तियो मे दिया जा रहा है —

१ **मुहम्मद गोरी**—*सन् ११९२ ई० म मुहम्मद गोरी ने अन्तिम हिन्दू*-राजा पृथ्वीराज चौहान को पराजित करके भारत मे मुस्लिम राज्य की नीव डाली। उसने अजमेर को विजय किया और वहाँ के मन्दिरो को तुडवा कर मस्जिदें, और पाठशालाओ को तुडवा कर मकतबा तथा मदरसो का निर्माण करवाया।

२ **दास वश के शासक**—गोरी की मृत्यु के बाद उसके दास कुतुबुद्दीन ने सन् १२०६ ई० मे शासन-सूत्र सम्हाला। उसके सेनापति बख्तियार ने नालन्द और विक्रमशील के बौद्ध विश्वविद्यालयो को धराशायी किया, जिससे हिन्दू-शिक्षा को महान् क्षति पहुँची। पर कुतुबुद्दीन ने मस्जिदें बनवा कर जो धर्म और शिक्षा की केन्द्र थी, मुस्लिम-शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। उसके उत्तराधिकारी अल्तमश ने दिल्ली म *"मदरस-ए-मुअज्जी' की स्थापना की। नासिरुद्दीन के प्रधान मन्त्री के रूप के बलबन* ने एक मदरसे का निर्माण कराया और अपने स्वामी के नाम पर उसका नाम "नासिरया रखा। *साराश मे, सभी दास शासका—कुतुबुद्दीन, अल्तमश, रजिया*, नासिरुद्दीन और बलबन ने मकतबा और मदरसा का निर्माण कराकर मुस्लिम शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

३ ***खिलजी वश के शासक**—गुलाम सुल्ताना के समान खिलजी सुल्तानो ने* शिक्षा के प्रति कोई रुचि व्यक्त नही की। अलाउद्दीन न अपने पूर्ववर्ती जलालुद्दीन द्वारा शिक्षा के कार्य के लिए दिए "इनामो' और 'वक्फो'[2] को जब्त कर लिया। इतने पर भी उसे "हौजे खास' से सम्बद्ध एक मदरसा बनवाने का यश प्राप्त है।

---

1 "The Muslim conquest of India coincided with a dark age in Islamic education when the schools had lost their wider ideals of culture"—T. N. Siqueira : *Modern Indian Education*, p 14

2 Gifts and religious endowments

उसके परवर्ती शासक—मुबारक शाह ने शिक्षा के लिए दिए गए "इनामो" और "वक्फो" को वापस कर दिया, पर दुर्भाग्य से वह थोड़े ही समय राज्य कर सका।

४. तुग़लक वंश के शासक—सन् १३२५ ई० मे अपने समय का सबसे बड़ा विद्वान् मुहम्मद तुगलक सिंहासन पर आरूढ हुआ। ऐसे विद्वान् के शासन-काल मे शिक्षा का तीव्र विकास होना अनिवार्य था, पर सन् १३२७ ई० मे उसने दिल्ली से दौलताबाद को अपनी राजधानी का परिवर्तन करके अति महान् मूर्खता की। इससे दिल्ली मे विद्वानो का पूर्ण अभाव हो गया और शिक्षा के केन्द्र के रूप मे उसका नाम कुछ समय के लिए मिट गया। सम्भवत शिक्षा की इस क्षति को पूर्ण करने के लिए ही मुहम्मद तुगलक ने सन् १३४६ ई० मे दिल्ली मे एक मदरसा बनवाया। उसके परवर्ती फिरोज तुगलक के समय मे मुसलमानो की उच्च शिक्षा ने श्लाघनीय उन्नति की। वह स्वयं शिक्षित था और शिक्षित व्यक्तियो को संरक्षण देता था। इतिहासकार फरिश्ता (Ferishta) के अनुसार, उसने ३० मदरसो की आधार-शिला रखी। इनमे "हौजे-ख़ास' के पास "मदरसये-फिरोजशाही" भी था। वास्तव मे, यह सावास विश्वविद्यालय था, जिसमे शिक्षक और छात्र शाही खर्च पर रहते थे। अपने समय का विद्वान् मौलाना जलालुद्दीन रूमी इसका प्रधानाचार्य था। फिरोज के समय मे केवल दिल्ली मे ३,००० मकतब और मदरसे थे। डा० यूसुफ हुसेन (Yusuf Husain) के अनुसार, फिरोज ने व्यावसायिक शिक्षा की भी व्यवस्था की। एन० एन० लॉ (N. N. Law) ने लिखा है कि फिरोज तुगलक ने शिक्षा पर ३६ टंके (अर्थात् ३६ लाख रुपए) व्यय किए। फिरोज की मृत्यु के बाद शिक्षा की उपेक्षा की जाने लगी। सन् १३९८ ई० मे तैमूर ने अपने आक्रमण के समय अपने मार्ग मे स्थित सभी शिक्षा और धार्मिक संस्थाओ को धूल-धूसरित कर दिया।

५. सैयद और लोदी वंश के शासक—सैयद और लोदी बादशाहो ने सन् १४१४ ई० से सन् १५२६ ई० तक शासन किया। पर सिकन्दर लोदी के सिवा किसी और ने शिक्षा के लिए कुछ नही किया। स्वयं कवि और साहित्यकार होने के कारण सिकन्दर लोदी ने अपने राज्य के सब भागो मे मदरसो की स्थापना की, और उनमे अध्यापन का कार्य करने के लिए दूर-दूर के स्थानो से योग्य शिक्षको को आमंत्रित किया। उसके द्वारा मथुरा और नरवर मे स्थापित किए गए मदरसो मे जाति और धर्म का भेद-भाव किए बिना सभी वर्गों के छात्र विद्या का अर्जन कर सकते थे। इस प्रकार हिन्दुओ मे फारसी के अध्ययन की रुचि उत्पन्न करने का श्रेय सिकन्दर लोदी को है।

६. मुग़लों द्वारा भारत की विजय—सन् १५२६ ई० मे मुग़लो ने भारत को विजय करके मुग़ल-साम्राज्य की नीव डाली। उस समय देश के विभिन्न भागो मे अनेक मकतब और मदरसे थे। यहाँ इस बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि उस समय तक मुसलमान शासको ने किसी निश्चित शिक्षा-नीति

का अनुसरण नही किया था। सम्भवत यही कारण था कि बाबर को यह शिकायत करने का अवसर मिला कि भारत मे अच्छी शिक्षा सस्थाएँ नही थी। बात जो कुछ भी हो, शिक्षा को मुगल सम्राटो से अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। हम विभिन्न मुगल सम्राटो की शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियो पर नीचे प्रकाश डाल रहे है —

(i) बाबर—बाबर प्रथम मुगल सम्राट था। वह अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओ का विद्वान् था और उसे कविता से प्रेम था। उसके एक मन्त्री सैयद मकबर अली की 'तवारीख के अनुसार 'शोहरते आम विभाग'[1] का एक कर्त्तव्य यह था कि वह मकतबो और मदरसो के भवनो का निर्माण करवाये। दुर्भाग्य से, ४८ वर्ष की अल्प आयु मे ही उसकी मृत्यु हो गई और उसकी शिक्षा सम्बन्धी सभी योजनाएँ अपूर्ण रह गई।

(ii) हुमायूँ—बाबर के पुत्र हुमायूँ को अध्ययन से इतनी अधिक रुचि थी कि उसके साथ सदैव कुछ चुनी हुई पुस्तको का सग्रह रहता था। उसके द्वारा दिल्ली मे बनवाए गए मदरसे मे गणित, भूगोल और नक्षत्र विद्या के शिक्षण का विशेष प्रबन्ध था। उसने दिल्ली मे एक पुस्तकालय भी बनवाया था, जिसके छज्जे से गिरने पर उसकी मृत्यु हुई थी। इतिहासकार जाफर (Jaffar) के अनुसार, हुमायूँ के मकबरे से सम्बद्ध एक मदरसा था। भारत से हुमायूँ के निर्वासन के समय शेरशाह ने उसके सिंहासन पर आरूढ होकर नारनौल मे एक मदरसा स्थापित किया।

(iii) अकबर—अकबर के शासन-काल मे मकतबो और मदरसो मे दी जाने वाली शिक्षा ने नव-युग मे प्रवेश किया। उसने आगरा, फतेहपुर-सीकरी, गुजरात और अन्य स्थानो मे मदरसे बनवाये। ये मदरसे सावास थे और इनका व्यय भार राज्य के द्वारा वहन किया जाता था। 'उसके आदेश के अनुसार पाठ्यक्रम म कुछ महत्त्व पूर्ण विषय सम्मिलित किए गये, जैसे—तर्कशास्त्र, गणित, भूमिति रेखागणित, नक्षत्र विद्या लेखाशास्त्र, सार्वजनिक प्रशासन और कृषि। इस योजना ने देश की समस्त शिक्षा-व्यवस्था को लौकिक रूप दे दिया।'[2] उच्च शिक्षा के स्तर पर नीतिशास्त्र (Ethics), गणित (Arithmetic), लेखाशास्त्र (Accountancy), कृषि, रेखागणित नक्षत्र विद्या, अर्थशास्त्र, पदार्थ शास्त्र (Physics), तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञान (Natural Philosophy) और इतिहास के शिक्षण की व्यवस्था थी। मुसलमान

1 Public Works Department

2 "At his suggestion, certain important subjects such as Logic, Arithmetic, Mensuration, Geometry, Astronomy, Accountancy, Public Administration and Agriculture were included in the course of studies This scheme gave a secular bias to the entire educational system of the country —Yusuf Husain *Glimpses of Medieval Indian Culture*, p 79

विद्यार्थियो को कुरान और हिन्दू छात्रो को व्याकरण, वेदान्त और योग पर पातंजलि की व्याख्या की शिक्षा दी जाती थी। राज्य द्वारा सचालित शिक्षा-संस्थाओ के अतिरिक्त अनेक व्यक्तिगत शिक्षालय भी थे, जिनमे स्नातकोत्तर स्तर पर संगीत, चित्रकारी, दर्शन और गणित की शिक्षा दी जाती थी।

अपनी धार्मिक सहिष्णुता की नीति से प्रेरित होकर अकबर ने अपने शासन के अन्तिम वर्षों मे मक्तवो और मदरसा मे हिन्दू छात्रो के अध्ययन की व्यवस्था कर दी। हिन्दू बालक मुसलमान लडको के साथ अध्ययन करने लगे और दोनो ने समान पाठ्यक्रम का अनुसरण किया। क्योंकि अकबर को स्वय यन्त्रो मे रुचि थी, इसलिए उसने "कारखानो" की स्थापना की, जहां प्राविधिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था।

(iv) **जहांगीर**—अकबर ने जिस निश्चित शिक्षा-नीति की स्थापना की थी, उसका अनुसरण उसके पुत्र जहांगीर ने नही किया। फिर भी वह अपने राज्य मे शिक्षा की प्रगति को बनाये रहा। उसने यह नियम बना दिया था कि यदि किसी धनी मनुष्य या यात्री की मृत्यु हो जाय और उसका कोई उत्तराधिकारी न हो, तो उसकी सम्पत्ति राज्य के अन्तर्गत आ जाय और उसका उपयोग मदरसो की स्थापना तथा संरक्षण के लिए किया जाय। "तारीखे जहां" (Tarikh-Jahan) के अनुसार राज-सिंहासन पर बैठते ही उसने उन मदरसो की मरम्मत करवाई, जिनमे ३० वर्ष से पक्षियो एवं पशुओं का निवास था और उनको छात्रो तथा शिक्षको से भर दिया।

(v) **शाहजहां**—निस्सन्देह शाहजहां को सुन्दर इमारतो से प्रेम था, पर उसने शिक्षा की उपेक्षा नही की। उसने विद्वानो और कवियो को पुरस्कार तथा वृत्तियां देकर शिक्षा को प्रोत्साहित किया। सन् १६५० ई० मे उसने दिल्ली की जामा मस्जिद के पास एक मदरसा स्थापित किया। उसने 'दारुलवक़ा' नामक मदरसे को, जो खण्डहर हो गया था, मरम्मत करवाई। उसकी पुत्री जहांनारा बेगम ने आगरा की जामा-मस्जिद से सम्बद्ध एक मदरसा बनवाया।

(vi) **औरङ्गजेब**—यद्यपि औरंगजेब स्वयं बहुत शिक्षित था, पर वह अपने पूर्ववर्तियो के समान हिन्दुओ के प्रति सहिष्णु नही था। अत वह उनकी शिक्षा से वैमनस्य रखने लगा। सर यदुनाथ सरकार के अनुसार, उसने सन् १६६९ ई० मे हिन्दू मन्दिरो और विद्यालयो को नष्ट करने की आज्ञा दे दी। पर इसके साथ-साथ उसने मुस्लिम शिक्षा को प्रत्येक प्रकार की सहायता दी। "उसने मुसलमानो के लिए अनेक मकतवो और मदरसो की स्थापना की।"[1] उसने निर्धन किन्तु योग्य छात्रो को छात्रवृत्तियां दी। उसने गुजरात की पिछडी हुई बोहरा जाति को शिक्षित करने के लिए आर्थिक सहायता दी।

---

1 "He founded numberless colleges and schools for Muslims"—**H. G. Keene.** : *The Fall of the Mughal Empire*, p. 23

७. उत्तरकालीन मुगल सम्राट—औरंगजेब के बाद आने वाले मुगल सम्राटों के शिक्षा सम्बन्धी कार्य प्रायः नगण्य थे। "औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का वैभव शीघ्रता से समाप्त होने लगा और सम्राटों या गैर-सरकारी व्यक्तियों द्वारा शिक्षा-संस्थाओं को निर्मित करने और उन्हें धन-सम्पन्न करने के प्रयास बहुत ही कम हो गये।"[1]

८. नादिरशाह का आक्रमण—सन् १७३० ई० में भारत पर किये जाने वाले नादिरशाह के आक्रमण ने इस देश की *शिक्षा पर अति प्रबल कुठाराघात* किया। अन्य वस्तुओं के साथ जिन्हें नादिरशाह अपने साथ फारस को ले गया, वह शाही *पुस्तकालय भी था, जिसे अनेक मुगल सम्राटों ने अति रुचि और परिश्रम से* विभिन्न विषयों की पुस्तकों से संगृहीत और अलंकृत किया था।

शिक्षा के उद्देश्य

भारत के प्रायः सभी मुस्लिम शासक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थे। सभी की अपनी आकांक्षाएँ, परिस्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ थीं, और इन्हीं के अनुरूप उनके शासन-काल में शिक्षा के उद्देश्य रहे। इसके अतिरिक्त, मुस्लिम शासकों में कुछ उदार तथा कुछ अनुदार थे। बख्तियार, अलाउद्दीन, फिरोज एवं औरंगजेब जैसे अनुदार शासकों का एकमात्र उद्देश्य—हिन्दू संस्कृति तथा शिक्षा को नष्ट करके उनके स्थान पर इस्लामी शिक्षा एवं सिद्धान्तों का प्रसार करना था। इनके विपरीत, अल्तमश, मुहम्मद तुगलक, अकबर तथा शाहजहाँ जैसे शिक्षा-प्रेमी शासकों का उद्देश्य —शिक्षा का प्रसार करना और उसे प्रोत्साहन देना था। उद्देश्यों की इस विभिन्नता के बावजूद भी प्रायः सभी मुस्लिम शासक इस्लाम का प्रचार करना—अपना प्रमुख कर्त्तव्य तथा दायित्व समझते थे। साराश में, मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्यों को अधोलिखित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है; यथा :—

१. ज्ञान के प्रकाश का विस्तार—मुस्लिम शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य—इस्लाम के बन्दों में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करना था। पैगम्बरों के अनुसार ज्ञान का अर्जन अनिवार्य है। हजरत मुहम्मद ने ज्ञान को अमृत बताया और प्रत्येक मुसलमान बच्चे से ज्ञानार्जन की आशा व्यक्त की। उन्होंने धर्म तथा अधर्म और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य में अन्तर जानने के लिए अपने धर्म के अनुयायियों को ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

२. इस्लाम धर्म का प्रचार—मुस्लिम शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य—इस्लाम

1. "After the death of Aurangzeb the glory of the Mughal Empire began rapidly to wane and the efforts made by Empersors or private individuals to erect and endow educational institutions became much more rare."—F. E. Keay : *Indian Education in Ancient and Later Times*, p. 135.

का प्रचार करना था। इस्लाम का प्रचार करना मुसलमानों का एक प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है। वे अपने धर्म के प्रचार को 'सवाब' (पुण्य) मानते है और उनका विश्वास है कि धर्म का प्रचार करने वाला ही गाजी होता है। भारत के मुस्लिम-शासको ने धर्म-प्रचार की अनेक विधियो मे शिक्षा को भी स्थान दिया, और इसके द्वारा भारत मे इस्लाम का पर्याप्त प्रचार किया। मकतबो मे अध्ययन-काल के प्रारंभ से ही कुरान की शिक्षा दी जाती थी और इस प्रकार छात्रो को इस्लाम के आधारभूत सिद्धान्तो से परिचित कराया जाता था। मदरसो मे धर्म, दर्शन, साहित्य तथा इतिहास के रूप मे इस्लाम का प्रचार प्रचुर मात्रा मे किया गया।

३. **विशिष्ट नैतिकता का प्रचार**—मुस्लिम शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—इस्लाम के अनुसार व्यक्तियो मे विशिष्ट नैतिकता का प्रचार करना था। मुसलमानो की नैतिकता हिन्दुओ की नैतिकता से पूर्णत भिन्न थी। वे अपने साथ जिन नैतिक भावनाओ को लाये थे, उन्ही को शिक्षा के द्वारा भारतीय मुस्लिमो मे जाग्रत करना चाहते थे।

४. **मुस्लिम सिद्धान्तो, कानूनो तथा सामाजिक प्रथाओ का प्रसार**—मुस्लिम शिक्षा का चौथा उद्देश्य—मुस्लिम सिद्धान्तो, कानूनो तथा सामाजिक प्रथाओ का प्रसार करना था, जिससे अधिक से अधिक भारतीय इस्लाम से प्रभावित होकर उसके समक्ष आत्म-समर्पण कर दें।

५. **मुसलमानों मे धर्मपरायणता की अभिवृद्धि**—मुस्लिम शिक्षा का पाँचवाँ उद्देश्य—मुसलमानो मे धर्मपरायणता की अभिवृद्धि करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मकतब तथा मदरसे, मस्जिदो के एक भाग मे होते थे। इन मस्जिदो मे सामूहिक रूप से नमाज पढी जाती थी, जिससे व्यक्तियो मे धर्म-परायणता की भावना का समावेश सरलता से किया जा सके।

६. **सासारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति**—मुस्लिम शिक्षा का छठा उद्देश्य—सासारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति थी। इस्लाम का आधार मानव की दो मूल प्रवृत्तियो—अर्थ एवं यौन पर आधारित रहा है। अत इन दोनो की अथवा लौकिक वैभव की प्राप्ति, मुस्लिम शिक्षा का एक प्रधान लक्ष्य रहा। जो व्यक्ति शिक्षित होते थे उन्हे मुसलमान शासक सिपहसालार, काजी अथवा वजीर इत्यादि के पद पर नियुक्त कर देते थे। इस लोभ के वशीभूत होकर मुसलमानो के अतिरिक्त हिन्दुओ ने भी मुस्लिम शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया।

७. **मुस्लिम शासन की सुदृढ़ता**—मुस्लिम शिक्षा का सातवाँ उद्देश्य—हिन्दुओ को मुस्लिम सभ्यता, संस्कृति तथा आदर्शो से रँगकर भारत मे मुस्लिम शासन को सुदृढता प्रदान करना था। मुसलमान शासक इस बात से पूर्णतया परिचित थे कि इस देश की विशाल हिन्दू जनता के दृष्टिकोण को शिक्षा के द्वारा परिवर्तित करके ही मुस्लिम—सभ्यता तथा संस्कृति का उपासक बनाया जा सकता है।

और इस प्रकार उन्हे मुस्लिम शासन के दृढ स्तम्भ बनाया जा सकता है। सम्राट् अकबर के शैक्षिक प्रयास इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थे।

उपरिलिखित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए भारत के मुस्लिम शासको ने एक विशिष्ट शिक्षा-व्यवस्था का नियोजन किया। यद्यपि विभिन्न मुस्लिम शासको की व्यक्तिगत रुचियो तथा प्रवृत्तियो के कारण समय-समय पर शिक्षा के उद्देश्यो मे थोडा बहुत अन्तर अवश्य होता रहा, पर शिक्षा का रूप प्राय अपरिवर्तित ही रहा। इस शिक्षा-व्यवस्था का सामान्य रूप क्या था, इसी पर हम अब दृष्टिपात करेंगे।

शिक्षा की व्यवस्था

मुस्लिम युग मे शिक्षा की व्यवस्था मकतबो और मदरसो म की गई थी। मकतब 'प्राथमिक शिक्षा' और मदरसे 'उच्च शिक्षा' के केन्द्र थे। ये मकतब तथा मदरसे साधारणत किसी मस्जिद से सम्बद्ध होते थे। इनकी स्थापना मुस्लिम शासको एव धनी विद्या-प्रेमियो—दोनो के द्वारा की गई थी। जो मकतब अथवा मदरसा किसी विशेष व्यक्ति के द्वारा स्थापित किया जाता था, वह उसकी मृत्यु के उपरान्त समाप्त हो जाता था। जो मकतब तथा मदरसे राज्य के सरक्षण मे थे, उन्हे राज्य की ओर से व्यय करने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था। उनके द्वारा जो शिक्षा दी जाती थी, वह जन साधारण के लिए न होकर केवल उसी वर्ग-विशेष के लिए होती थी, जो उससे लाभ उठाना चाहते थे। दूसरे शब्दो मे, उनसे मुसलमान छात्र ही लाभान्वित होते थे। यदि हिन्दू छात्र उनमे प्रवेश पा लेते थे, तो भी पूर्ण स्वाधीनता के अभाव एव व्यापक धार्मिक कट्टरता के वातावरण के कारण वे शिक्षा के लाभ से वचित रह जाते थे। इन मकतबो तथा मदरसो का निर्माण वही होता था जहाँ किसी अमीर-उमराव का निवास होता था और मुसलमानो की सख्या अधिक होती थी, और इनसे सबसे अधिक लाभान्वित होने वाले उच्च वर्ग के मुसलमानो के ही बालक होते थे। फलत जन-साधारण के बालको के लिए शिक्षा प्राप्त करने का कोई सुलभ साधन नही था। अब हम शिक्षा के इन केन्द्रो मे दी जाने वाली प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की सविस्तार चर्चा करेंगे, यथा —

(अ) प्राथमिक शिक्षा

ऊपर सकेत किया जा चुका है कि प्राथमिक शिक्षा मकतबो मे दी जाती थी। 'मकतब' शब्द अरबी भाषा के 'कुतुब' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है—'उसने लिखा।' इस प्रकार 'मकतब' वह स्थान है, जहाँ लिखना सिखाया जाता है। मकतब साधारणत किसी-न-किसी मस्जिद से सम्बद्ध होते थे। समस्त मुस्लिम बालको स मकतबो मे शिक्षा प्राप्त करने की आशा की जाती थी, जिससे वे दैनिक धार्मिक कृत्यो म प्रयोग किये जाने वाले कुरान के विशिष्ट भागो से अवगत हो जायें। पर इन मकतबो की सख्या इतनी अल्प थी कि समस्त मुस्लिम बालको के लिए ज्ञान का अर्जन करना कठिन था।

(१) मकतब में प्रवेश—जिस प्रकार वैदिककालीन शिक्षा के अन्तर्गत बालक 'उपनयन' संस्कार के पश्चात् विद्यारम्भ करता था, उसी प्रकार मुस्लिम शिक्षा मे 'बिस्मिल्लाह्' रस्म सम्पादित की जाती थी। इसके उपरान्त ही बालक मकतब मे प्रवेश कर सकता था। यह रस्म उस समय सम्पन्न की जाती थी, जब बालक ४ वर्ष, ४ माह और ४ दिन का होता था। इस अवसर पर बालक को नवीन वस्त्र धारण कराये जाते थे और उसके समस्त सम्बन्धी एकत्र होते थे। तत्पश्चात बालक के समक्ष लिपि, कुरान की भूमिका एवं उसका ५५वाँ तथा ८७वाँ अध्याय रखा जाता था। मौलाना साहब कुरान की आयतो को पढते थे और बालक से उनको दोहरवाते थे। यदि वह पूरा पाठ दोहराने मे असमर्थ होता था, तो उसका 'बिस्मिल्लाह्' कह देना ही पर्याप्त समझा जाता था। इस प्रकार बालक की शिक्षा प्रारम्भ होती थी।

(२) शिक्षा का पाठ्य-क्रम—मकतबो मे दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्य-क्रम विभिन्न स्थानो मे विभिन्न प्रकार का था। साधारणत बालको को लिखना, पढना तथा प्रारम्भिक गणित का ज्ञान कराया जाता था। सुन्दर लेख पर विशेष बल दिया जाता था। बालकों को कुरान की कुछ आयतें कण्ठस्थ करनी पडती थी, किन्तु उन आयतो का समझना आवश्यक नही था। जब छात्रो को लिपि का ज्ञान हो जाता था, तब उनको फ़ारसी भाषा और फ़ारसी व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। बालकों को नैतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए 'गुलिस्ताँ' एवं 'बोस्ताँ' पढाये जाते थे। इसके अतिरिक्त, पैगबरो की कथाएँ, मुस्लिम फ़कीरो की कहानियाँ तथा फारसी कवियो की कतिपय कविताओ का ज्ञान भी कराया जाता था।[1] इस प्रकार की पुस्तको मे 'यूसुफ़-जुलैखा', 'लैला-मजनू' तथा 'सिकन्दरनामा' का विशेष स्थान था। व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत बातचीत के ढङ्ग, पत्र-लेखन अथवा अर्जीनवीसी पर बल दिया जाता था।

२०वी शताब्दी के प्रारम्भ मे मकतबो का रूप बहुत-कुछ परिवर्तित हो गया था। बालको को प्रारम्भ मे अरबी के अक्षरो का ज्ञान करना पडता था, और जैसे ही उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हो जाता था, वैसे ही उन्हे कुरान के सूरो अथवा अध्यायो का प्रपठन करना पडता था। लिखने तथा गणित की शिक्षा नही दी जाती थी। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालको को पढना सिखाना तथा उन्हे कतिपय बातें कण्ठस्थ कराना था। कभी-कभी उनको पढी हुई बात समझाने का भी प्रयास किया जाता था।[2]

---

1. F. E. Keay : *Indian Education in Ancient and Later Times*, p. 137.

2. "The scholars commence by studying the Arabic alphabet, and as soon as they can read are made to recite *suras*, or chapters of the Koran. Neither writing nor arithmetic is taught. Instruction is usually confined to reading and memorizing, but sometimes an attempt is also made to explain the meaning of what is read."—De la Fosse writes in *Quinquennial Review of Education in India*, 1907-1912, p. 272.

(३) **शिक्षण-विधि**—शिक्षण-विधि मौखिक थी। बालकों को 'कलमा' रटना पड़ता था और कुरान की आयतें कण्ठस्थ करनी पड़ती थी। एक कक्षा के समस्त छात्र उच्च स्वर से एक साथ बोलकर पहाड़े याद करते थे। लिखने के लिए तख्तियों का प्रयोग किया जाता था, जिन पर बालक मोटे सरकण्डे की कलम से लिखते थे। फिर उन्हे पतले कलम से कागज पर लिखने का अभ्यास कराया जाता था।

(४) **अन्य विशेषताएँ**—मकतबो मे प्रात काल तथा अपराह्न के समय शिक्षा का कार्यक्रम चलता था। मध्याह्न के समय बालको को भोजन के लिए अवकाश दिया जाता था। शिक्षा नि शुल्क थी। शिक्षक का भरण-पोषण राज्य अथवा स्थानीय धन-सम्पन्न पुरुषो के द्वारा किया जाता था। मकतबो मे कबड्डी आदि खेल खेले जाते थे। जब छात्र मकतब मे अपना विद्याध्ययन समाप्त करते थे, तब उन्हे पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध हो जाता था।

(ब) उच्च शिक्षा

मकतब की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्र मदरसे मे प्रविष्ट होता था। 'मदरसा' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के 'दरस' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है—'भाषण देना'। इस प्रकार 'मदरसा' वह स्थान है, जहाँ पर भाषण दिए जाते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मदरसो की शिक्षण-पद्धति व्याख्यानो पर आधारित थी। इन मदरसो मे भिन्न-भिन्न विषयो के शिक्षक होते थे। व्यक्तिगत मदरसो के शिक्षको की नियुक्ति प्रबन्ध-समिति के सदस्यो द्वारा तथा राजकीय मदरसो के अध्यापको की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती थी।

(१) **शिक्षा का पाठ्यक्रम**—मदरसो म दी जाने वाली उच्च शिक्षा का अध्ययन काल १२ वर्ष का था। शिक्षा का पाठ्य-क्रम अति विस्तृत था और निम्नांकित दो भागो मे विभक्त था —

(i) **लौकिक शिक्षा**—लौकिक अथवा सासारिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को अरबी साहित्य, व्याकरण तथा गद्य, गणित, इतिहास, भूगोल, दर्शन-शास्त्र, नीति-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, अर्थशास्त्र, यूनानी चिकित्सा, ज्योतिष, कानून एव कृषि आदि विषयो का ज्ञान कराया जाता था।

(ii) **धार्मिक शिक्षा**—धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रो को कुरान, मुहम्मद साहब की परम्परा, इस्लामी कानून तथा इस्लामी इतिहास का अध्ययन कराया जाता था। उन्हे कुरान का अति गहन तथा आलोचनात्मक अध्ययन करना पडता था और उसकी आदतो को कण्ठस्थ करना होता था।

मदरसो की शिक्षा के पाठ्य-क्रम का प्ररणा-स्रोत इस्लाम था। अकबर के समय तक पाठ्यक्रम म धार्मिक शिक्षा की प्रधानता रही। धार्मिक सहिष्णुता की नीति का प्रतिपादक होने के कारण, अकबर ने धार्मिक प्रवृत्तियो से ओत-प्रोत मुस्लिम शिक्षा को अपने राज्य के लिए अहितकर समझकर पाठ्य-क्रम मे कुछ जीवनोपयोगी

विपयो को स्थान दिया और हिन्दू धर्म, दर्शन तथा साहित्य के अध्यापन की व्यवस्था की ।

(२) शिक्षण-विधि—मकतबो के समान मदरसा म भी शिक्षण-पद्धति मौखिक थी । जैसा कि हम ऊपर सकेत कर चुके है, मदरसा के शिक्षक-गण अध्यापन कार्य के लिए भाषण-प्रणाली को अपनाते थे । साथ ही, अध्यापक छात्रा म स्वाध्याय की आदत को प्रात्साहित करते थे । प्रत्येक छात्र को अपने विषय से सम्बन्धित पाठ दे दिया जाता था और शिक्षका द्वारा उसकी कठिनाइयो को हल करके उसकी प्रगति मे योग दिया जाता था । इससे एक विशेष लाभ यह होता था कि मूढ वालको के कारण कुशाग्र-बुद्धि वालको की प्रगति मे बाधा नही पडती थी । चिकित्सा, हस्तकला, शिल्प-कला एव सगीत आदि विषयो की प्रायोगिक शिक्षा प्रदान की जाती थी । धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र के अध्यापन के लिए तर्क-विधि का अनुसरण किया जाता था । शिक्षा के और शिक्षण-विधि के सम्बन्ध मे मिरडेल ने लिखा है — "शिक्षा के उच्च स्तर पर शिक्षा का माध्यम, फारसी था । उच्च शिक्षा की संस्थाआ मे मौखिक शिक्षण-विधियो की अपेक्षा पढने और लिखने को प्राथमिकता दी जाती थी ।"[1]

जिस 'बालचर-प्रणाली' (Monitorial System) का प्रयाग भारत मे अति प्राचीन काल से हो रहा था, उसका प्रचलन मदरसो मे भी था । इस प्रणाली के अनुसार उच्च कक्षाओ के योग्य छात्र निम्न कक्षाओ के विद्यार्थियो को पढाने का कार्य करते थे । इससे अध्यापक का कार्य-भार हलका हो जाता था और उसकी अनुपस्थिति मे शिक्षण-कार्य सुचारु रूप से चलता रहता था ।

(३) अन्य विशेषताएँ—मकतबो के समान मदरसा मे दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्य-क्रम विभिन्न स्थानो मे विभिन्न प्रकार का था । कुछ मदरसे ऐसे थे जिनम केवल एक या दो विषयो की ही उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी । उदाहरणार्थ—शाह वलीउल्ला के 'दिल्ली मदरसा' म 'हदीस' तथा 'तफसीर' (Traditions & Exegesis) और स्यालकोट के मदरसे मे व्याकरण की विशेषोपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था थी । कक्षा-उन्नति के लिए परीक्षाएँ नही होती थी, अपितु शिक्षका के मतानुसार छात्र को एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे स्थान दे दिया जाता था । ऐसा करते समय छात्र के सम्पूर्ण वर्ष के कार्य पर दृष्टिपात किया जाता था । जो विद्यार्थी अपने विषय म अद्वितीय प्रतिभा तथा गहन अध्ययन का प्रमाण देते थे, उन्हे उपाधियो से अलकृत किया जाता था । उदाहरणार्थ—तर्कशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के छात्र को 'फाज़िल' की उपाधि, धर्मशास्त्र के विद्यार्थी को 'आलिम' की उपाधि तथा साहित्य के विद्यार्थी को 'काबिल'

---

1 "At the higher level the Persian language was the medium of instruction Reading and writing took precedence over oral methods of instruction in institutions of higher education "—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, p 1631

की उपाधि दी जाती थी। छात्रों को ये उपाधियाँ प्रदान करते समय एक विशेष समारोह का आयोजन किया जाता था।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ[1]

हमारे प्राचीन मनीषियों ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—"सा विद्या या विमुक्तये"—अर्थात् विद्या वह है जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्त करती है, उसे अन्धकार से निकालकर प्रकाश दिखाती है। प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप उपर्युक्त आदर्श को लेकर ही निश्चित किया जाता था। इसी आदर्श की प्राप्ति के लिए शिक्षा के आधारभूत तत्त्वों का निर्माण किया गया था और उस शिक्षा की अपनी कुछ विशेषताएँ थी। पर शिक्षा के ये आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ अधिक स्थिर न रह सकी। मुसलमानों के आगमन से प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को पर्याप्त क्षति पहुँची। मुसलमानों ने उसका ध्वंस करने में कोई कसर न उठा रखी और उसके स्थान पर एक नवीन शिक्षा तथा शिक्षा-प्रणाली का प्रतिपादन किया। इसके सामान्य रूप पर ऊपर विचार किया जा चुका है। यहाँ हम उसके आधारभूत तत्त्वो तथा विशेषताओं का अवलोकन करेंगे, *यथा*—

(१) **शिक्षा को प्रोत्साहन**—*मुस्लिम युग मे शिक्षा को राज्य द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।* भारत के मुस्लिम शासको ने साधारणत. शिक्षा मे विशेष रुचि व्यक्त की। उनमे से अनेक ने अपने राज्य के विभिन्न भागो मे मकतबो, मदरसो तथा पुस्तकालयो की स्थापना की। शासको के उदाहरणो का देश के धनी-मानी व्यक्तियो ने अनुसरण किया। शासको तथा अमीर-उमरावो द्वारा विद्वानो, कवियो तथा अन्य साहित्यिक पुरुषो को संरक्षण प्रदान किया गया। छात्रों को प्रायः छात्रवृत्तियाँ तथा शिष्य-वृत्तियाँ प्रदान की जाती थी। इन सब सुविधाओ के फलस्वरूप शिक्षा का प्रशंसनीय प्रसार हुआ।

(२) **शिक्षा की व्यापकता का अभाव**—मुस्लिम-युग मे शिक्षा का प्रसार अवश्य हुआ, पर *उसमे व्यापकता का अभाव था।* मकतबो तथा मदरसो मे प्रदान की जाने वाली *शिक्षा पर व्यापक धार्मिक कट्टरता की छाप लगी थी।* अतः हिन्दू जनता उनसे लाभान्वित न हो सकी। शिक्षा की जो भी व्यवस्था थी, वह केवल नगरो मे उच्च तथा मध्य वर्गों के बालको के लिए ही थी। फलत. जन-साधारण के बालको के लिए ज्ञानार्जन करने का कोई साधन नही था।

(३) **प्रान्तीय भाषाओ की उपेक्षा**—मुस्लिम शिक्षा-केन्द्रो मे शिक्षा का माध्यम 'अरबी' अथवा 'फारसी' था। फलस्वरूप, प्रान्तीय भाषाओं की प्रगति पूर्णत अवरुद्ध हो गई। राज-पदो के लिए लालायित हिन्दुओ ने भी अपनी मातृभाषा की उपेक्षा करके अरबी तथा फारसी का अध्ययन किया। अकबर की उदार नीति के कारण *हिन्दी को प्रोत्साहन तो अवश्य प्राप्त हुआ,* परन्तु उसकी कोई विशेष प्रगति

---

1. **Basic Principles and Main Features.**

परिलक्षित न हुई। औरंगजेब ने उर्दू भाषा को प्रोत्साहित किया। इन दोनों मुगल शासकों के समय मे जो परिवर्तन हुए, उनका अरबी तथा फारसी पर कोई प्रभाव न पड़ा और इन दोनों भाषाओं की प्रधानता यथावत् बनी रही।

(४) **शिक्षा का लौकिक दृष्टिकोण**—मुस्लिम शिक्षा में धार्मिकता का विशेष स्थान था, परन्तु इस्लाम धर्म मे इस लोक की वास्तविकता पर विशेष बल दिये जाने के फलस्वरूप लौकिक जीवन ने मुसलमानों को अत्यधिक आकृष्ट किया। फलत शिक्षा क्षेत्र पर लौकिकता का व्यापक प्रभुत्व रहा। प्राचीन भारतीय आध्यात्मिकता का मुस्लिम शिक्षा में सर्वथा अभाव रहा। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—लौकिक यश, सुख तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति माना गया। अत हम कह सकते हैं कि मुस्लिम शिक्षा का एक आधारभूत तत्त्व 'बौद्धिक विकास' की अवहेलना करके काल विशेष की आवश्यक माँगो की पूर्ति करना अभीष्ट था।

(५) **गुरु-शिष्य सम्बन्ध**—मुस्लिम युग मे शिक्षा के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप गुरु भक्ति के उस महान् आदर्श का ह्रास होने लगा, जो वैदिक काल में था। औरंगजेब ने अपने गुरु मुल्ला शाह सालेह को अज्ञातवास की आज्ञा देकर जो कठोर व्यवहार किया, वह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। फिर भी साधारणत समाज में गुरुओं का सम्मान होता था।[1] विद्यार्थी उनके प्रति विनम्र तथा भक्तिपूर्ण होते थे। गुरु की सेवा करना और उसकी आज्ञा का पालन करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। जिन मदरसों मे छात्रावासों की व्यवस्था थी, वहाँ शिक्षक तथा विद्यार्थी एक साथ रहते थे। इस प्रकार उनका एक-दूसरे से निकट सम्पर्क हो जाता था और उनमें आत्मीयता की वृद्धि होती थी। व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों का अपने गुरुओं से और भी निकट सम्पर्क रहता था, क्योंकि अपने शिल्प मे दक्षता प्राप्त करने के लिए शिल्प शिक्षार्थी का शिल्पकार के साथ निरन्तर रहना आवश्यक था।

(६) **अनुशासन तथा दण्ड-विधान**—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, शिक्षकगण छात्रों के पूज्य तथा श्रद्धा के पात्र थे। अत अध्यापक के समक्ष अनुशासन की समस्या उपस्थित नहीं होती थी। फिर भी कुछ उच्छृंखल छात्र होते थे, जिनकी विकृत मनोवृत्तियों का दमन करने के लिए दण्ड का प्रयोग किया जाता था। राज्य की ओर से कोई दण्ड विधान निर्धारित न होने के कारण शिक्षक विद्यार्थियों को कोई भी दण्ड देने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। सामान्यत दण्ड अति कठोर एवं निर्दय थे। छात्रों को बेंत, कोड़े और घूँसे से शारीरिक दण्ड दिया जाता था। यदि कोई छात्र महान् अपराध करता था तो उसे मुर्गा बनाकर उसकी पीठ या गरदन पर ईंट या भारी लकड़ी रख दी जाती थी, जिसे वह निश्चित समय तक गिरा नहीं सकता था।

---

1 "They occupied a high position in society, and though their emoluments were small, they commanded universal respect and confidence"—Jaffar - *Education in Muslim India*, p 4

विशिष्ट शिक्षा

मुस्लिम युग मे भारत के मुसलमान शासको ने शिक्षा की जो व्यवस्था की थी, उसके सामान्य रूप का चित्र प्रस्तुत करने का गत पृष्ठो मे प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध मे यह कहना युक्तिसगत प्रतीत होता है कि सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त यवनो ने विशिष्ट शिक्षा का भी आयोजन किया। यहाँ इसका विवेचन अनिवार्य हो जाता है, क्योकि इसके अभाव मे मुस्लिम-शिक्षा का यथार्थ चित्र अधूरा रह जाता है। इसी उद्देश्य से हम विशिष्ट शिक्षा का स्वरूपांकन निम्नांकित शीर्षको के अन्तर्गत कर रहे हैं —

(१) **स्त्री-शिक्षा**—मुस्लिम युग मे स्त्रियो की शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नही थी। मुसलमानो मे पर्दा-प्रथा का प्रचलन होने के कारण अधिकाश बालिकाएँ शिक्षा से वंचित रहती थी। स्त्री-शिक्षा की जो व्यवस्था थी, वह केवल शाही घरानो और कुलीन वर्गो की कन्याओ तथा कुछ मध्यवर्ग की मुसलमान बालिकाओ के लिए थी। जन-साधारण की बालिकाएँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे मकतबो मे बालको के साथ केवल थोडा-सा अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर सकती थी। इसके अतिरिक्त, स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था केवल नगरो मे ही थी।

तुर्क-अफगान शासन-काल मे शहजादियो को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दिये जाने का प्रबन्ध था। सुल्तान अल्तमश की पुत्री रजिया, जो उसकी मृत्यु के उपरान्त सिंहासन पर आरूढ हुई, विदुषी महिला थी। उसने अश्वारोहण तथा युद्ध-कला की भी शिक्षा प्राप्त की थी।

मालवा के शासक महमूद खिलजी के पुत्र गयासुद्दीन खिलजी ने सारंगपुर मे एक मदरसा स्थापित किया था, जिसमे स्त्रियो को कलाओ तथा शिल्पो की शिक्षा दी जाती थी। फरिश्ता (*Ferishta*) के अनुसार उसमे स्त्रियो के लिए नृत्य, संगीत, सीना, बुनना, मलमल बनाना, बढई के कार्य, सुनार के कार्य, लुहार के कार्य, तरकश बनाना, जूते बनाना, कुश्ती लडना और युद्ध-कला की शिक्षा की व्यवस्था थी।

मुगल-काल मे राजघरानो और कुलीन वर्गों की बालिकाओ की शिक्षा के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया गया। हुमायूँ की बहिन गुलबदन बेगम ने "हुमायूँनामा" लिखा, जिसे आज भी एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक ग्रन्थ माना जाता है। सलीमा सुल्ताना, माहम अङ्गा, नूरजहाँ, चाँद सुल्ताना तथा मुमताजमहल—सभी विदुषी स्त्रियाँ थी। शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा बेगम अपने समय की प्रसिद्ध कवयत्री थी। औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा भी कविताएँ लिखने मे कुशल थी।

राजघरानो और कुलीन वर्गों की बालिकाओ के अतिरिक्त मध्यवर्ग की मुस्लिम बालिकाओं मे भी शिक्षा का पर्याप्त प्रचलन था। इनकी शिक्षा का प्रबन्ध विभिन्न गृहो मे चलने वाले मकतबो मे था, जहाँ उनको स्त्रियो द्वारा 'गुलिस्ताँ' 'बोस्ताँ' तथा नैतिकता की शिक्षा दी जाती थी। कुछ विधवा मुसलमान स्त्रियाँ अपने

पास-पड़ोस की बालिकाओ के लिए अपने गृहो मे व्यक्तिगत रूप से विद्यालयो की व्यवस्था कर लेती थी।

(२) सैनिक शिक्षा—भारत के सभी मुस्लिम शासको की आकाक्षा अपने राज्य को सुदृढ तथा शक्तिशाली बनाना था। विदेशी, विधर्मी तथा आक्रामक होने के कारण यहाँ के निवासियो से सदैव सशंकित रहते थे। जिस शत्रुतापूर्ण वातावरण मे वे निवास करते थे, उसने यह अनिवार्य बना दिया था कि उत्तम सैनिको की सेनाएं सुसंगठित की जायें। स्वाभाविकतया सैनिक शिक्षा पर बल दिया जाना आवश्यक था। यद्यपि हिन्दुओ की सैनिक शिक्षा अति उच्च कोटि की थी, पर मुसलमानो की सैनिक शिक्षा की प्रणाली भिन्न थी। मुस्लिम राजकुमारो तथा अन्य सैनिको के लिए अश्वारोहण, भाला, तीर तथा तलवार चलाना, दुर्ग का घेरा डालना आदि विषय सैनिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित थे।

(३) ललित-कलाओ की शिक्षा—भारत मे मुस्लिम राज्य की जडे जम जाने के बाद युद्ध का वातावरण समाप्त हो गया और देश मे सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई। यह बात मुगल-काल मे विशेष रूप से अवलोकित होती है। प्राय. सभी मुसलमान शासक, विलास तथा ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते थे और अपने राज-प्रासादो एवं राज-दरबारो की शोभा मे अभिवृद्धि करने के लिए मुक्त-हस्त से धन व्यय करते थे। ऐसी परिस्थिति मे ललित-कलाओ की उन्नति होना स्वाभाविक था। इन कलाओ के अन्तर्गत संगीत, नृत्य-कला, चित्र-कला तथा वास्तुकला को विशेष स्थान प्राप्त हुआ और व्यक्तिगत ढङ्ग पर इनके शिक्षण की व्यवस्था थी।

(४) व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत हस्तकलाओ को स्थान दिया गया। इन कलाओ मे—आभूषणो का निर्माण, हाथीदाँत का काम, रेशम तथा जरी का काम, जलयान, रथ एवं युद्ध-सामग्री का निर्माण इत्यादि सम्मिलित थे। इन शिल्पो की शिक्षा परम्परागत रूप मे दी जाती थी। साथ ही देश मे सहस्रो कारखाने थे, जहाँ इन शिल्पो की शिक्षा—कला तथा जीविका—दोनो के लिए दी जाती थी।[1]

उपसंहार

मुस्लिमयुगीन भारत की शिक्षा पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने से यह बात निर्विवाद रूप से सत्य प्रतीत होती है कि उस युग की शिक्षा-प्रणाली मे लचीलेपन

---

1. "Technical training or vocational knowledge was diffused by the system of apparenticeship. There were thousands of *Karkhanas* or workshops wherein boys were often apprenticed with the artisan to the trade for receiving instructions in particular arts and crafts." —S. M. Jaffar *op. cit*, pp. 12-13.

का अभाव था। फलत वह अत्यधिक अनम्य तथा अनिर्माणकारी हो गई थी।[1] समय-समय पर उसमे परिवर्तन अवश्य किये गये, पर वह अपने को समय की माँगा के अनुकूल बनाने मे समर्थ न हुई। शिक्षा का प्रमुख कर्त्तव्य है—व्यक्ति का बौद्धिक विकास करना, जिससे वह सामाजिक तथा प्राकृतिक घटनाओ के सम्बन्ध को समझ सके और तदनुसार अपने को समय तथा स्थान के अनुकूल बना सके। यह मानसिक प्रगति का लक्षण है, और इसके अभाव मे कोई भी मानव-समुदाय उन्नति नही कर सकता है। मध्यकालीन शिक्षा-प्रणाली का मुख्य दोष यह था कि उसमे छात्रो को परिशुद्ध निरीक्षण तथा व्यावहारिक निणय प्रदान करने की क्षमता नही थी। यह अत्यधिक अनम्य, निष्प्राण तथा पुस्तकीय थी।[2] किसी भी शिक्षा-प्रणाली की सर्वोत्तम कसौटी यह है—क्या वह व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए उसकी शक्तियो का पूर्ण विकास करती है अथवा नही ? इस दृष्टिकोण से यह कथन एक ऐतिहासिक सत्य है कि मध्यकालीन शिक्षा-प्रणाली व्यक्ति के नेतृत्व के गुणो का विकास करने म असफल रही, और इस प्रकार वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे असाधारण व्यक्तियो की पूर्ति न कर सकी।[3] यदि मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली म प्रखर व्यक्तित्व का निर्माण करने की क्षमता होती, तो सम्भवत भारत का मानचित्र लाल रग से न रगा गया होता।

साराश

भारत म लगभग साढे पाँच-सौ वर्ष मुसलमानो का शासन रहा। इस काल म शिक्षा की एक नवीन प्रणाली प्रस्फुटित हुई, जिसे 'मुस्लिम शिक्षा' की सज्ञा दी जाती है।

मुस्लिम शासको के समय मे शिक्षा—मुहम्मद साहब के अनुसार दान मे सोना देने की अपेक्षा बच्चे को शिक्षा देना श्रेष्ठ है। मुहम्मद गोरी ने पाठशालाओ को तुडवा कर मकतबो और मदरसो का निर्माण करवाया। कुतुबुद्दीन ने मस्जिदें

---

1 "Critically speaking, the system of education in vogue in medieval India lacked resilience and had become much too rigid and non creative"—Yusuf Husain *op cit*, p 97

2 "The chief failing of the medieval system of education was that it was not found adequate to enable its adherents to form habits of accurate observation and practical judgment It was much too *rigid, sterile and bookish*"—*Yusuf Husain : op cit*, p 97

3 "*It would be historically true to assert that the medieval system of education failed to impart the qualities of leadership and thus ensure the supply of outstanding personalities in the different walks of life*"—*Ibid*, p 97

बनवा कर मुस्लिम शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। अल्तमश ने दिल्ली में "मदरस-ए-मुअज्जी" और बलबन ने "नासिरया" की स्थापना की। अलाउद्दीन ने "हौजेखास" से सम्बद्ध एक मदरसा बनवाया। मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली में एक मदरसा निर्मित करवाया। फिरोज तुगलक द्वारा स्थापित किया गया "मदरसे-फिरोजशाही" एक सावास विश्वविद्यालय था। सिकन्दर लोदी ने अपने राज्य के सब भागों में मदरसों की स्थापना की। बाबर ने मकतबों और मदरसों के निर्माण की व्यवस्था की। हुमायूँ द्वारा दिल्ली में बनवाये गये मदरसे में गणित, भूगोल व नक्षत्र-विद्या के शिक्षण का विशेष प्रबन्ध था। अकबर ने आगरा, फतेहपुर-सीकरी, गुजरात आदि में सावास मदरसे बनवाये। जहाँगीर ने पुराने मदरसों की मरम्मत करवाकर शिक्षकों से भर दिया। शाहजहाँ ने दिल्ली की जामा-मस्जिद के पास एक मदरसा स्थापित किया। औरङ्गजेब ने अनेक मकतबों और मदरसों की स्थापना की।

शिक्षा के उद्देश्य—मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य थे—(१) ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करना, (२) इस्लाम धर्म का प्रचार, (३) एक विशिष्ट नैतिकता का प्रचार, (४) मुस्लिम सिद्धान्तों, कानूनों तथा सामाजिक प्रथाओं का प्रसार, (५) सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति, (६) मुस्लिम शासन को सुदृढ़ बनाना, तथा (७) मुसलमानों को धर्म-परायण बनाना।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था मकतबों में थी। मकतब-प्रवेश के समय 'बिस्मिल्लाह' रस्म सम्पादित की जाती थी। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लिखना, पढ़ना तथा प्रारम्भिक गणित का ज्ञान कराया जाता था। नैतिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। शिक्षण-विधि मौखिक थी।

उच्च शिक्षा—उच्च शिक्षा की व्यवस्था मदरसों में थी। पाठ्य-क्रम दो भागों में विभाजित था—लौकिक शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा। अध्यापन के लिए शिक्षक भाषण-प्रणाली का प्रयोग करते थे। स्वाध्याय की आदत को प्रोत्साहित किया जाता था। बालचर-प्रणाली का प्रचलन था। विद्याध्ययन समाप्त करने पर छात्रों को उपाधियाँ दी जाती थीं।

शिक्षा के आधारभूत तत्त्व एवं विशेषताएँ—शिक्षा के आधारभूत तत्त्व तथा विशेषताएँ अग्रलिखित थीं—(१) शिक्षा को प्रोत्साहन, (२) शिक्षा की व्यापकता का अभाव, (३) प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा, (४) शिक्षा का लौकिक दृष्टिकोण, (५) गुरु-शिष्य सम्बन्ध, (६) अनुशासन तथा दण्ड-विधान।

विशिष्ट शिक्षा—इस शिक्षा के अन्तर्गत—स्त्री-शिक्षा, सैनिक शिक्षा, ललित कलाओं की शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था थी।

TEST QUESTIONS

1. Give a short account of the organization of Education in medieval India.
   मध्यकालीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2 What were the aims of Muslim education ? How far were they formulated keeping in view the interests of Muslim rulers of India ?

मुस्लिम शिक्षा के क्या उद्देश्य थे ? उनका निर्माण भारत के मुस्लिम शासको के हितो को ध्यान मे रखकर कहाँ तक किया गया ?

3 Describe briefly the forms of primary and higher education during the Muslim rule, making a special mention of institutions where each type of education was imparted

मुस्लिम शासन काल मे प्राथमिक और उच्च शिक्षा के रूपो का संक्षेप मे वणन कीजिए और उन सस्थाओ का विशेष रूप से उल्लेख कीजिए, जहाँ दोनो प्रकार की शिक्षा दी जाती थी ।

4 Give a critical estimate of Muslim education and compare it with that of ancient India

मुस्लिम-शिक्षा का मूल्याकन कीजिए और उसकी तुलना प्राचीन भारत की शिक्षा से कीजिए ।

5. What were the essential features of Muslim education ? *Which of these would you like to revive in modern times* and why ?

मुस्लिम शिक्षा की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ क्या थी ? आधुनिक समय मे आप इनमे से किन को पुन प्रचलित करना चाहेगे, और क्यो ?

6 What changes in the prevalent system of education were introduced by the Muslim ruler of India ?

भारत के मुस्लिम शासको द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली मे क्या परिवर्तन किये गये ?

४

भारतीय शिक्षा का रूप

(१६वीं शताब्दी के आरम्भ मे)

प्रस्तावना

१८वी शताब्दी म भारतीय शिक्षा का क्या रूप था ? इसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधन उपलब्ध नही हैं। १६वी शताब्दी के प्रारम्भ मे अग्रेजो द्वारा प्रचलित देशी शिक्षा-व्यवस्था की जाँच की गई। केवल मद्रास, बगाल और बम्बई प्रान्तो मे जाँच किए जाने के कारण, इसका सम्बन्ध भारत के अल्पाश से है, तथापि शिक्षा के इतिहास के विद्यार्थी के लिए इसका महत्व कम नही है। अत हम इस पर नीचे प्रकाश डाल रहे है —

प्राथमिक शिक्षा

(अ) मद्रास

देशी शिक्षा-सम्बन्धी सर्वप्रथम जाँच मद्रास के गवर्नर, सर टामस मुनरो (Sir Thomas Munro) द्वारा सन् १८२२ मे करवाई गई। इस जाँच का विवरण स्वय मुनरो ने दिया है[1], जिसे हम संक्षेप मे नीचे दे रहे है —

१. विद्यालयो एव छात्रो की सख्या—इतिहासकार मिल के अनुसार मद्रास के प्रत्येक गाँव मे एक प्राइमरी स्कूल था।[2] परन्तु इन स्कूलो मे छात्रो की संख्या बहुत कम थी। विल्लारी और कनाडा जिलो के स्कूलो मे छात्रो की औसत संख्या १२ थी।

---

1. *Selections from the Records of the Government of Madras*, No II, Appendix (E)

2. Mill : *History of British India*, Vol. I, p 562

विद्यार्थियो की संख्या कम होने का कारण यह था कि अनेक बच्चे घर पर पढते थे। केवल मद्रास नगर मे उनकी संख्या २६,९०३ थी, जो विद्यालयों मे शिक्षा प्राप्त करने वालो की अपेक्षा पांच गुने से भी अधिक थी।

२ **विद्यालयो के प्रकार**—सभी विद्यालयो का पाठ्य-क्रम समान नही था। कुछ विद्यालय तेलुगू, कन्नड, मराठी, अरबी, फारसी आदि की शिक्षा देते थे। २३ विद्यालय ऐसे थे जिनमे संस्कृत की, और १ ऐसा था जिसमे अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी।

३ **पाठ्य-विषय**—प्राथमिक विद्यालयो के मुख्य पाठ्य-विषयो मे किसी प्रकार का अन्तर नही था। इन विषयो मे रोचक कविताओ और उपदेशात्मक कहानियों को स्मरण करना, पाडुलिपियो को पढना, दस्तावेज तैयार करना और गणित के साधारण प्रश्नो का हल करना था।

४. **विद्यालय-प्रवेश एवं शिक्षा-काल**—बालक ४ वर्ष की आयु मे विद्यालय मे प्रवेश करता था और १४ या १५ वर्ष की आयु मे उसे छोडता था। वहाँ जाने से पूर्व उसके घर पर गणेशजी की पूजा की जाती थी और एक समारोह का आयोजन किया जाता था। जब बालक विद्यालय मे प्रथम बार पहुंचता था, तब उसके हाथ पर विद्या की देवी 'सरस्वती' का नाम लिखा जाता था। उसके बाद वह पढना प्रारम्भ करता था।

५ **विद्यालयो का कार्यक्रम एवं दण्ड-विधान**—विद्यालयो का कार्य-क्रम ६ बजे प्रात प्रारम्भ होता था। सब बालका के आ जाने पर सरस्वती-वन्दना होती थी। इसके बाद विद्यार्थी अध्ययन-कार्य मे जुट जाते थे। विद्यालयो का दण्ड-विधान बहुत कठोर था। अपराधी बालको के लिए दण्ड निश्चित थे। इनमे कोडे लगाना, बेंत मारना, छत से लटकाना तथा बैठक कराना था। देर से आने वाले विद्यार्थी को स्वास्थ्यवर्द्धक दण्ड मिलता था।

६ **शिक्षण-विधि**—शिक्षण-विधि का प्रमुख आधार "बालचर-प्रणाली" (Monitorial System) थी। विद्यालय के समस्त विद्यार्थियो को उनकी योग्यतानुसार वर्गो मे बाँट दिया जाता था। कम योग्य बच्चो को अधिक योग्य बच्चे पढाते थे। बालक सर्वप्रथम लिखना सीखता था। वह पहले बालू पर अक्षरो को उंगली से लिखने का अभ्यास करता था। उसके बाद वह उन्हे पत्तो पर, और फिर तख्ती पर लिखने का अभ्यास करता था। अक्षरा का बोध हो जाने के बाद वह मात्राएँ, सयुक्त अक्षर, स्वर और व्यंजन का ज्ञान प्राप्त करता था तथा पशुओ, स्थानो, व्यक्तियो आदि के नाम लिखने का अभ्यास करता था। लिखने और पढने का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद वह गणित सीखता था। पहाडे, पौवे, अद्धे और सवैये आदि की विद्यार्थी एक साथ बाल-बोलकर याद करते थे।

७. **शिक्षको की दशा**—शिक्षक निर्धन, अयोग्य और अदीक्षित थे। परिणामस्वरूप, शिक्षा का स्तर निम्न था। योग्य व्यक्ति शिक्षक नही बनना चाहते थे, क्योंकि

उन्हे साधारणत ६ या ७ रुपये मासिक वेतन मिलता था। यह वेतन इतना कम था कि इससे उन्हे जीवन-निर्वाह करना कठिन हो जाता था।

(ब) बम्बई

बम्बई के गवर्नर, एल्फिस्टन (Elphinstone) ने १० मार्च, १८२४ को प्रान्त के समस्त जिलाधीशो को आदेश दिया कि वे देशी शिक्षा की जाँच करके अपनी रिपोर्ट भेजें। ये रिपोर्टें १८२४-२५ मे प्राप्त हुई, पर उनसे प्रान्त की शिक्षा का पूर्ण ज्ञान न हो सका। अत १८२९ मे जिला न्यायाधीशो से दूसरी रिपोर्ट माँगी गई। इन रिपोर्टों के आधार पर बम्बई प्रान्त की प्राथमिक शिक्षा का विवरण नीचे दिया जा रहा है[1] —

१ विद्यालयो एव छात्रो की सख्या—विद्यालयो एव छात्रो की सख्या बहुत ही कम थी। पूरे प्रान्त की ४६,८१,७३५ जनसख्या के लिए केवल १,७०५ विद्यालय थे, जिनम ३५,१५३ विद्यार्थी पढते थे। प्रत्येक विद्यालय मे छात्रो की औसत सख्या १५ थी, और न्यूनतम २, तथा उच्चतम १५० थी। इन आँकडो मे उस समय घर-घर प्रचलित व्यक्तिगत शिक्षा के आँकडे सम्मिलित नही थे।

गवर्नर की कौसिल के एक सदस्य, प्रेण्डरगस्ट (Prendergast) के मतानुसार ऐसा कोई भी छोटा या बडा गाँव नही था, जहाँ कम-से-कम एक स्कूल नही था। बडे गाँवो म उससे अधिक तथा नगरो म और भी अधिक स्कूल थे जिनमे लिखने, पढने और गणित की सस्ती शिक्षा दी जाती थी।[2]

२ विद्यालयो के भवन—विद्यालयों के लिए प्राय पृथक भवन नही थे। शिक्षण-कार्य—मन्दिरो, शिक्षको के गृहो या सम्मानित पुरुषो के निवास स्थानो पर किया जाता था।

३ शिक्षको की दशा—अधिकाश शिक्षक ब्राह्मण थे। वे अध्यापन-कार्य परम्परागत सम्मान के कारण, न कि आर्थिक लाभ के लिए करते थे। उनका मासिक वेतन ३ रुपये से ५ रुपये तक था। इस कम वेतन की पूर्ति कुछ सीमा तक अन्य प्रकार से हो जाती थी, जैसे—अपनी जाति के सहभोजो म उन्हे आमन्त्रित किया जाता था। त्योहारो पर उन्हे उपहार और अपने विद्यार्थियो के वैवाहिक अवसरो पर दक्षिणा मिल जाती थी। शिक्षक साधारणत अयोग्य थे।

४ विद्यालयो के विद्यार्थी एव शिक्षा-काल—हरिजनो के अतिरिक्त सभी जातियो

---

1 For a detailed study of the Reports, please refer to R V Parulekar · *A Source Book of History of Education in the Bombay Province*, Part I, Survey of Indigenous Education (1820-30)

2 G L Prendergast s Evidence of 1832

के विद्यार्थी विद्यालय मे पढ सकते थे। विद्यालयो म ब्राह्मण छात्रो की सख्या लगभग ३० प्रतिशत थी। शिक्षा का काल बालको की ६ वर्ष की आयु स लेकर १४ वर्ष की आयु तक होता था।

५ पाठ्य विषय एव दण्ड-विधान—पाठ्य-विषयो म लिखना, पढना और साधारण गणित सम्मिलित थे। विद्यार्थियो को पहाडे, अद्धे आदि रटने पडते थे जिससे वे गणित के प्रश्नो को मौखिक रूप से कर सकें। दण्ड-विधान कठोर था। छात्रो को अनुशासन मे रखने के लिए प्राय कठोर दण्ड दिया जाता था।

६ शिक्षण विधि एव शिक्षण सामग्री—पुस्तको का सर्वथा अभाव था। अत शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। मद्रास के समान बम्बई मे भी बालचर प्रणाली प्रचलित थी। विद्यालयो की आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण शिक्षण-सामग्री का अभाव था। फलस्वरूप, शिक्षण-कार्य सफलतापूर्वक नही हो पाता था और शिक्षण का स्तर निम्न होना स्वाभाविक था।

(स) बगाल

बगाल प्रान्त मे शिक्षा-सम्बन्धी जाच राज्य-कर्मचारियो द्वारा न की जाकर, विलियम ऐडम (William Adam) नामक एक मिशनरी द्वारा की गई थी। इस विदेशी धर्म प्रचारक को सस्कृत और बगला का अध्ययन करने तथा राजा राममोहन राय के सम्पर्क म आने से भारतीय शिक्षा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। लार्ड विलियम बैंन्टिक (William Bentinck) से उसने इस देश की शिक्षा-व्यवस्था की जाँच करने की आज्ञा प्राप्त की, और १८३५ से १८३८ तक उसने तीन रिपोर्टें सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। इन रिपोर्टो का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है —

१ ऐडम की प्रथम रिपोर्ट—ऐडम की प्रथम रिपोर्ट सक्षिप्त है और उसमे शिक्षा-सम्बन्धी समस्त उपलब्ध आँकडे दिये गये हैं। इस रिपोर्ट के आधार पर बसु ने लिखा है —'प्राथमिक शिक्षा जन-साधारण के लिए थी। यह एक ऐसा विशाल आयोजन था, जिसम असख्य प्रचलित पाठशालाएँ देश भर मे फैली हुई थी। प्राय प्रत्येक ग्राम मे अपना स्कूल या पाठशाला थी। कहा जाता है कि १८३५ के आस पास, केवल बगाल म इस प्रकार की एक लाख पाठशालाएँ था।"[1]

ऐडम की रिपोर्ट म दिए हुए आकडो के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद हैं। सर फिलिप हरटॉग (Sir Philip Hartog) ने इनको केवल कल्पना माना है। इसके

---

1 "The elementary system was intended for the masses It was a widespread system consisting of numerous primary schools scattered all over the countryside Practically every village had its primary school, its pathshala In Bengal alone, it is said, there were about the year 1835 a hundred thousand such path shalas"—A N Basu *Education in Modern India*, p 5

विपरीत, वार्ड (Ward), पराजपे (Paranjpe) और पारूलेकर (Parulekar) के मतानुसार ये आंकडे पूर्ण रूप से सत्य है।

२ **ऐडम की द्वितीय रिपोर्ट**—ऐडम की द्वितीय रिपोर्ट अधिक विस्तृत है। इसमे राजशाही जिले मे थाना नटौर की शिक्षा-सम्बन्धी जाँच का वर्णन है। इस थाने की जनसख्या १,६५,२६६ और ग्रामो की संख्या ४५८ थी। इतनी विशाल जनसंख्या के लिए केवल २७ प्राइमरी स्कूल थे, जिनमे २६२ विद्यार्थी पढते थे। इन स्कूलो मे बगला के १०, फारसी के ४, अरबी के ११, और बगला तथा फारसी के २ स्कूल थे। पाठशालाओ की शिक्षा की अपेक्षा व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने का प्रचार कही अधिक था, क्योंकि २३८ ग्रामो मे १,५८८ परिवार ऐसे थे जो बच्चो को घर पर ही शिक्षा देते थे। बालक साधारणत ८ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक पाठशालाओ मे पढते थे। अध्यापको का औसत मासिक वेतन ५ रु० ८ आना था। स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था।

३ **ऐडम की तृतीय रिपोर्ट**—ऐडम की तृतीय रिपोर्ट, प्रथम दो रिपोर्टों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमे मुर्शिदाबाद, बीरभूम, बर्दवान, दक्षिणी बिहार और तिरहुत जिलो के शिक्षा-सम्बन्धी आंकडे दिये गये है। इन जिलो मे २,५६७ विद्यालय थे जिनमे बगला, हिन्दी, सस्कृत, फारसी और अरबी की शिक्षा दी जाती थी। इसमे ८ विद्यालय अग्रेजी की और ६ बालिकाओ की शिक्षा के लिए थे, जिनमे क्रमश २४२ लडके और २१४ लडकियाँ पढ रही थी।

विद्यालयो के पास आय के निश्चित साधन नही थे। जो कुछ धन इन्हे जमीदारो, ताल्लुकेदारो आदि से मिल जाता था, उसी से ये चलते थे। कुछ धनी व्यक्ति अपने घरो पर ही पाठशालाएँ खुलवा देते थे। हिन्दू विद्यार्थी प्राय बगला, हिन्दी और सस्कृत का, तथा मुसलमान फारसी और अरबी का अध्ययन करते थे। स्त्री शिक्षा का प्रचार केवल कुछ उदार विचार वाले और धनी हिन्दू परिवारो मे था। मुसलमानो मे स्त्री-शिक्षा को अशुभ समझा जाता था।

उच्च शिक्षा

(अ) बगाल

एडम की तृतीय रिपोर्ट मे बगाल मे उच्च शिक्षा का उल्लेख किया गया है। वर्दवान जिले म सस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए १६० विद्यालय थे, जिनम १,३५८ विद्यार्थी पढते थे। इन विद्यालयो म से २ को वर्दवान के राजा का सरक्षण प्राप्त था। शेष विद्यालय ग्रामो के सम्मानित व्यक्तियो स चन्दा प्राप्त करके या स्वय शिक्षको द्वारा अपने निवास-स्थानो पर चलाये जाते थे।

इन विद्यालयो म व्याकरण, शब्द-कोश-रचना, अलङ्कार-शास्त्र, औषध-शास्त्र, तर्क शास्त्र, साहित्य, कानून, वदान्त, पुराण और ज्योतिष की शिक्षा दी जाती

एक विद्यालय मे एक ही शिक्षक होता था। शिक्षक ब्राह्मण तथा अन्य जातियो के भी थे। उनकी आर्थिक दशा शोचनीय थी, क्योंकि उनका वार्षिक वेतन लगभग ६३ रु०, ४ आ० और ५ पा० था।

संस्कृत विद्यालयो के समान फारसी और अरबी की उच्च शिक्षा के लिए भी विद्यालय थे। ऐडम के अनुसार दक्षिणी विहार जिले मे इस प्रकार के २९१ विद्यालय थे, जिनमे १,४८६ विद्यार्थी (८६७ हिन्दू और शेष मुसलमान) पढते थे। इन विद्यालयो मे से २७९ मे फारसी और १२ मे अरबी की शिक्षा दी जाती थी। केवल २ फारसी और २ अरबी के विद्यालयो के लिए भवन थे। शेष सम्मानित व्यक्तियो या शिक्षको के मकानो की चौपालो या बरामदो मे लगा करते थे।

जितनी संख्या विद्यालयो की थी, उतनी ही अध्यापको की थी। एक हिन्दू अध्यापक के अतिरिक्त शेष सब मुसलमान थे। दो शिक्षक अवैतनिक रूप से कार्य करते थे और दो अपने विद्यार्थियो के लिए भोजन का भी प्रबन्ध करते थे। शेष शिक्षक, विद्यार्थियो से शुल्क एवं अन्य व्यक्तियो से भोजन तथा उपहार प्राप्त करके अपने जीवन का निर्वाह करते थे। शिक्षको की औसत मासिक आय ५ रु० ८ आ० थी। ये सभी अध्यापक योग्य थे और इनमे से कुछ लेखक भी थे।

(ब) मद्रास

मद्रास के उच्च शिक्षा के विद्यालयो की रूपरेखा भिन्न थी। इनमे एक निश्चित स्तर तक शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थियो को ही प्रवेश मिलता था। इन विद्यालयो के शिक्षक सेवा-भावना से प्रेरित होकर, न कि आर्थिक लाभ के लिए, अध्यापन-कार्य करते थे। कुछ विद्यालय जमीदारो और ताल्लुकेदारो के संरक्षण मे चलते थे। वे अध्यापको को उनके जीवन-निर्वाह के लिए दानस्वरूप कुछ भूमि दे देते थे।

पाठ्य-विषयो ने साहित्य, अलकार-शास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शन-शास्त्र और ज्योतिष के अध्ययन को प्रधानता दी जाती थी। उच्च शिक्षा के अधिकारी ब्राह्मण और व्यावसायिक व्यक्ति ही समझे जाते थे। ब्राह्मणो और उच्च जातियो मे स्त्री-शिक्षा का प्रचार नही था।

(स) बम्बई

शिक्षा-सम्बन्धी जाँच की रिपोर्टों के अनुसार बम्बई प्रान्त मे उच्च शिक्षा का समुचित प्रबन्ध था। हिन्दुओ को उच्च शिक्षा देने के लिए अहमदनगर म १६ और पूना नगर मे १६४ विद्यालय थे। अन्य स्थानो मे भी इस प्रकार के विद्यालय थे।

मुसलमाना की उच्च शिक्षा के लिए सूरत मे एक प्रसिद्ध विद्यालय था। इसको चलाने मे ३२,००० रुपया वार्षिक व्यय होता था, जो दानस्वरूप प्राप्त होता था। इसकी स्थापना बोहरा जाति के लडको को अरबी की शिक्षा देने के लिए की गई थी। जाँच के समय इसमे १२५ बोहरा छात्र तथा भारत के विभिन्न भागा से

आने वाले अन्य जातियो के विद्यार्थी भी पढ रहे थे। "इस विद्यालय पर न केवल वोहरा लोग, अपितु पश्चिमी भारत के समस्त व्यक्ति अभिमान करते थे।"[1]

देशी शिक्षा-व्यवस्था : टिप्पणी

देशी शिक्षा-व्यवस्था के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत मे १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे प्राथमिक और उच्च शिक्षा का उचित प्रबन्ध था और वह इस देश की प्राचीन परम्पराओ पर आधारित थी। प्राथमिक शिक्षा के विद्यालय अति विशाल सख्या में सम्पूर्ण देश मे फैले हुए थे। वे किसी वर्ग-विशेष के लिए न होकर, जन-साधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति कर रहे थे। यही बात उच्च शिक्षा के विद्यालयो के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। यद्यपि उनकी सख्या प्राथमिक विद्यालयों के अनुपात मे कम थी, तथापि वे विभिन्न विषयो की उच्च शिक्षा सफलतापूर्वक प्रदान कर रहे थे। दोनो प्रकार के विद्यालयो मे कुछ बातें समान थीं, जैसे—(१) उनकी और उनके शिक्षको की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नही थी, (२) उनके पास अपने भवन नही थे, (३) उनमे शिक्षण-सामग्री का अभाव था, (४) उनमे से अधिकाश की शिक्षा का स्तर निम्न था, और (५) उनकी उत्तरोत्तर अवनति हो रही थी।

देशी शिक्षा की अवनति के कारण

१९वी शताब्दी के प्रारम्भ मे देशी शिक्षा की उत्तरोत्तर अवनति के निम्न-लिखित कारण थे —

(१) सन् १८२३ तक भारत के अधिकाश भाग पर अग्रेजो की सत्ता स्थापित हो चुकी थी और उन्हे अपने राज्य का सचालन करने के लिए अग्रेजी जानने वाले व्यक्तियो की आवश्यकता पडने लगी थी। अत उन्होने देशी शिक्षा के प्रति ध्यान न देकर, अग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अथक प्रयास किया। देशी शिक्षा के प्रति शासको की उदासीनता का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि देशी शिक्षा पतन की ओर अग्रसर हो गई।

(२) भारत की निर्धन जनता ने अग्रेजी के अध्ययन मे अपना प्रत्यक्ष हित देखा। इसका अध्ययन करके राजपद प्राप्त हो सकता था और जीविकोपार्जन की समस्या को भी हल किया जा सकता था। अत. लोगो ने अग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

(३) अग्रेजी शिक्षा-प्रसार के प्रारम्भिक वर्षों मे ऐसे अनेक विद्यालय थे, जहाँ नि शुल्क शिक्षा के साथ-साथ, पाठ्य-पुस्तका आदि की भी सुविधा दी जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि निर्धन भारतवासी अग्रेजी शिक्षा के प्रति आकर्षित होने लगे।

---

1. R. V. Parulekar ; *op. cit.*, p. 24.

(४) उद्योग-धन्धो के नष्ट हो जाने मे असंख्य कारीगर बेकार हो गये थे। अपनी आर्थिक दुर्दशा मे उन्होने अंग्रेजी की नि शुल्क शिक्षा से लाभ उठाया, जिससे उनके बच्चे धनोपार्जन करके जीवन-निर्वाह कर सकें।

(५) अनेक देशी राज्यो के समाप्त होने से देशी शिक्षा-सस्थाओं को आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गई। फलस्वरूप, उनका पतन अवश्यम्भावी हो गया।

(६) न्यून वेतन के कारण योग्य व्यक्ति देशी शिक्षा-संस्थाओं मे शिक्षक का कार्य नही करते थे। परिणामस्वरूप, शिक्षा का स्तर निम्न हो गया और जनता की ऐसी शिक्षा के प्रति कोई रुचि न रह गई।

(७) अदीक्षित होने के कारण देशी शिक्षा-संस्थाओ म अध्यापक शिक्षण-कार्य को कुशलतापूर्वक नही कर पाते थे। इसके विपरीत, अंग्रेजो ने प्रशिक्षण-विद्यालय खोले और छात्रवृत्तियाँ देकर योग्य व्यक्तियो को उनमे अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया।

(८) उच्च वर्ग के व्यक्तियो ने कई कारणो से अपने बच्चो को अंग्रेजी की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। जनसाधारण ने उनका अनुकरण किया। फलस्वरूप, देशी शिक्षा-संस्थाओ मे विद्यार्थियो की संख्या कम होने लगी।

(९) औद्योगिक क्रान्ति के कारण जनता, विज्ञान के नवीन विषयो की ओर आकर्षित होने लगी थी। अंग्रेजी शिक्षा-संस्थाओ ने अपने पाठ्यक्रमो मे इन विषयो को स्थान दिया, पर देशी शिक्षा-संस्थाओ ने अपनी रूढिवादिता के कारण ऐसा नही किया। परिणामस्वरूप, जनता देशी शिक्षा-संस्थाओ से असंतुष्ट हो गई।

ब्रिटिश शिक्षा-नीति की समीक्षा

उपर्युक्त कारणो को ध्यान मे रखते हुए, हम सरलतापूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि देशी शिक्षा का पतन ब्रिटिश शिक्षा-नीति के परिणामस्वरूप हुआ। अंग्रेजो की स्वार्थ-परायणता, धन-लोलुपता एवं व्यापारिक एकाधिकार और राजनीतिक स्वामित्व को चिरस्थायी बनाये रखने की अभिलाषा ने आर्थिक संकटो से आवृत्त देशी शिक्षा का गला घोट दिया। यदि तत्कालीन देशी शिक्षा को राज्य का संरक्षण मिल जाता, तो निस्सदेह उसमे नव-जीवन का संचार हो जाता। सुलभ और सस्ती होने के कारण, वह पहले की ही तरह जनसाधारण की आवश्यकताओ की पूर्ति करती रहती। इतना ही नही, अपितु उसके अवशेषो पर राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के भवन का निर्माण करना भी सम्भव हो जाता।

बसु के मतानुसार, "देशी शिक्षा-संस्थाएँ अपने दीर्घकालीन अस्तित्व के कारण व्यक्तियो के सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन की अङ्ग बन गई थी।"[1] ऐडम ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा था कि देशी शिक्षा-संस्थाएँ ही भारतवासियो के चारित्रिक

1. A. N. Basu : *op. cit*, p 2.

उत्थान के लिए सबसे अधिक उपयुक्त साधन है। उसने इस बात की सिफारिश की थी कि भारत मे शिक्षा की उन्नति के समस्त प्रयास तत्कालीन देशी शिक्षा सस्थाओ की उन्नति पर आधारित होने चाहिए। मुनरो, एल्फिस्टन, टामसन (Thomason) और लेटनर (Leitner) ने देशी शिक्षा-सस्थाओ के पुनरुत्थान के लिए अनेक योजनाएँ तैयार की, पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरो और ब्रिटिश पार्लियामेट ने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। 'यदि किसी देश को दास बनाए रखना है तो उसके साहित्य और सस्कृति का विनाश कर देना चाहिए।' अपनी शिक्षा-नीति के निर्माण मे भारत के अग्रज शासको ने इस सिद्धान्त का अक्षरश पालन किया। देश के लिए इसके परिणाम कितने विनाशकारी सिद्ध हुए, यह सर्वविदित है।

साराश

१९वी शताब्दी क प्रारम्भ म अग्रजो द्वारा प्रचलित देशी शिक्षा-व्यवस्था की जांच तीन प्रान्तो—मद्रास, बगाल और बम्बई म की गई।

प्राथमिक शिक्षा—मिल के अनुसार मद्रास के प्रत्येक ग्राम मे एक प्राइमरी स्कूल था। मुनरो के आकडो से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के विद्यालयो मे छात्र-सख्या बहुत कम थी। बालक पांच वर्ष की आयु मे विद्यालय मे प्रवेश करता था। दण्ड विधान कठोर था। बालक पहले बालू और फिर लकडी की पट्टी पर लिखना सीखते थे। पाठय-विषयो मे कविताएँ कहानियां, साधारण गणित आदि थे। कुछ विद्यालयो मे तमिल, तेलुगू, सस्कृत, मराठी, ज्योतिष, अर्थ-शास्त्र तर्क-शास्त्र और दर्शन शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। शिक्षक अयोग्य और अदीक्षित थे। उनका वेतन ६ या ७ रु० मासिक था।

बम्बई मे विद्यालयो और छात्रो की सख्या बहुत कम थी। विद्यालयो के प्राय पृथक भवन नही थे। अधिकाश शिक्षक ब्राह्मण थे और उनका मासिक वेतन ३ रु० स ५ रु० तक था। शिक्षक साधारणत अयोग्य थे। पाठ्य विषयो मे लिखना, पढ़ना और गणित सम्मिलित थे। दण्ड विधान कठोर था। शिक्षण-सामग्री का अभाव था।

ऐडम की प्रथम रिपोर्ट के अनुसार बगाल म प्रत्येक १०० व्यक्तियो के लिए एक ग्रामीण पाठशाला थी। ऐडम की द्वितीय रिपोर्ट मे थाना नटौर की शिक्षा का वर्णन है। वहाँ २७ प्राथमिक पाठशालाएँ थी। कुछ परिवार अपने घरो पर ही बच्चो को शिक्षा देते थे। अध्यापको का औसत मासिक वेतन ५ रु० ८ आ० था। ऐडम की तृतीय रिपोर्ट म मुर्शिदाबाद, बीरभूम, बर्दवान, दक्षिणी बिहार और तिरहुत के शिक्षा-सम्बन्धी आंकड दिए गये हैं। इन पाचो स्थानो मे २,५६७ विद्यालय थे, जिनम बगला, हिन्दी, सस्कृत, फारसी, अरबी और अग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी।

उच्च शिक्षा—बगाल मे हिन्दुओ को उच्च शिक्षा के लिए बर्दवान म १९० विद्यालय थे, जिनमे १,३५८ विद्यार्थी पढते थे। अध्यापको का वार्षिक वेतन लगभग ६३ रु० ४ आ० ५ पा० था। अधिकाश विद्यालय सम्मानित व्यक्तियो स

चन्दे से चलते थे। मुसलमानो की उच्च शिक्षा के लिए दक्षिणी विहार जिले मे २९१ विद्यालय थे। अधिकांश शिक्षक अपना जीवन-निर्वाह विद्यार्थियो से शुल्क और अन्य व्यक्तियो से भोजन तथा उपहार प्राप्त करते थे। अध्यापको की औसत मासिक आय ५ रु० ८ आ० थी।

मद्रास मे हिन्दुओ को उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयो की संख्या पर्याप्त थी। मुसलमानो की उच्च शिक्षा संस्थाओ का कोई उल्लेख उपलब्ध नही है।

बम्बई मे हिन्दुओ को उच्च शिक्षा देने के लिए अहमदनगर मे १६ और पूना नगर मे १६४ विद्यालय थे। बोहरा जाति के मुसलमान बालको को शिक्षा देने के लिए सूरत मे एक विद्यालय था।

देशी शिक्षा की अवनति के कारण—(१) अंग्रेजो की देशी शिक्षा के प्रति उदासीनता, (२) शासको द्वारा अंग्रेजी को प्रोत्साहन, (३) जनसाधारण का निर्धनता और वेकारी के कारण, अंग्रेजी की नि.शुल्क शिक्षा की ओर आकर्षण, (४) देशी नरेशो के संरक्षण की समाप्ति, (५) अंग्रेजी स्कूलो की अपेक्षा देशी शिक्षा-संस्थाओ मे शिक्षा का निम्न स्तर, (६) देशी विद्यालयो के अदीक्षित शिक्षको की अपेक्षा अंग्रेजी स्कूलो के शिक्षको की अधिक योग्यता, (७) अध्यापको की दयनीय आर्थिक स्थिति, (८) देश के नेताओ का अंग्रेजी शिक्षा की ओर झुकाव, (९) औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ।

ब्रिटिश शिक्षा-नीति—देशी शिक्षा-व्यवस्था का पतन ब्रिटिश शिक्षा-नीति के कारण हुआ। अंग्रेजो ने अपनी भाषा की शिक्षा को प्रोत्साहित किया और देशी शिक्षा को संरक्षण नही दिया, जिससे वह अपनी मौत मरने के लिए वाध्य हो गई। देशी शिक्षा-व्यवस्था मे राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का स्थान ग्रहण करने की क्षमता थी। ऐडम, मुनरो, एल्फिंस्टन, टॉमसन और लेटनर के देशी शिक्षा के पुनरुत्थान के प्रस्तावो पर ध्यान नही दिया गया। भारत की देशी शिक्षा और इसके फलस्वरूप उसके साहित्य और सस्कृति का विनाश करके ही अंग्रेज इस देश पर अपनी राजनीतिक सत्ता को चिरस्थायी रख सकते थे। अतः उन्होने ऐसा ही किया।

TEST QUESTIONS

1. Give a brief account of the character and extent of the indigenous system of education in India at the beginning of the ninteenth century.

   उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे भारत मे देशी शिक्षा-व्यवस्था के रूप और विस्तार का संक्षेप मे वर्णन कीजिए।

2. "It is a comman belief among Western scholars that the indigenous system of education in India had hardly anything of value in it, and that the British officers were fully justified in allowing it to die." Discuss.

"पाश्चात्य विद्वानों का यह सामान्य विश्वास है कि भारत की देशी शिक्षा-व्यवस्था में कोई भी महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी और ब्रिटिश अधिकारियों ने उसको समाप्त होने देने में पूर्ण रूप से उचित कार्य किया।" समीक्षा कीजिए।

3. What were the causes of the decay of the indigenous system of education in India ? How far was the British educational policy responsible for it ?

भारत में देशी शिक्षा-व्यवस्था के पतन के क्या कारण थे ? इसके लिए ब्रिटिश शिक्षा-नीति कहाँ तक उत्तरदायी थी ?

५

आधुनिक शिक्षा का बीजारोपण

प्रस्तावना

भारतीय कला की कृतियाँ अनादि काल से पश्चिमी देशो की मंडियो मे सुविख्यात थी। ये कृतियाँ प्राचीन स्थलीय व्यापार-मार्गो से यूरोप पहुँचती थी, पर तुर्कों की दक्षिण-पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्वी-यूरोप-विजय के फलस्वरूप व्यापारिक यातायात के ये प्राचीन मार्ग बन्द हो गये। इसका यूरोप की मंडियो पर बुरा प्रभाव पडा। अत भारत तक पहुँचने वाले जल-मार्ग की खोज आवश्यक हो गई। इस कार्य मे पुर्तगाली लोगो ने अगुवाई की और मई १४९८ मे वास्को-ड-गामा (Vasco-da Gama) ने भारत पहुँचकर कालीकट के समुद्र-तट पर लंगर डाला।

भारत में विदेशी व्यापारिक कम्पनियाँ

पुर्तगालियो ने भारत के साथ व्यापार करने के एकाधिकार का निर्विघ्न उपभोग लगभग १०० वर्ष तक किया। उनके व्यापारिक लाभ ने यूरोप के अन्य देशवासियो के हृदय मे उसमे साझीदार बनने की अभिलाषा को जन्म दिया। फलस्वरूप, भारत से व्यापार करने के लिए १७वी शताब्दी मे अनेक कम्पनियो का निर्माण हुआ। इनमे 'इङ्गलिश ईस्ट-इण्डिया कम्पनी, डच ईस्ट-इण्डिया कम्पनी और फ्रेंच ईस्ट-इण्डिया कम्पनी' प्रमुख थी। डेन भी व्यापार के विचार से भारत आये।

इन सब कम्पनियो का उद्देश्य समान होने के कारण, इनमे संघर्ष होना स्वाभाविक था। यह संघर्ष त्रिमुखी था—(१) पुर्तगालियो तथा डचो के बीच, (२) पुर्तगालियो तथा अंग्रेजो के बीच, और (३) डचो तथा अंग्रेजो के बीच। इस संघर्ष से हमारा कोई सरोकार नही है। केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि अन्त में कूटनीति विशारद अंग्रेज विजयी हुए।

आधुनिक शिक्षा का आरम्भ

यूरोप के व्यापारियों के कुछ समय पश्चात् यहाँ के ईसाई मिशनरियो ने इस देश मे प्रवेश किया। इन मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य—यहाँ के निवासियो मे अपने धार्मिक सिद्धान्तो का प्रचार करना था, न कि शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करना। फिर उन्होंने ऐसा क्यो किया ? ऐलेन (Allen) के अनुसार इसके दो कारण थे। प्रथम, यहाँ के निवासियो को शिक्षित करके मिशनरी उन्हे धार्मिक सिद्धान्तो से पूर्ण रूप से परिचित करा सकते थे। द्वितीय, शिक्षा-संस्थाएं उन्हे भारतवासियो से सम्पर्क स्थापित करने और धर्म का प्रचार करने का अवसर देती थी। अत. मिशनरियो ने शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित की और उनमे यूरोपीय ढंग पर शिक्षा की व्यवस्था की।

मिशनरियों के शिक्षा-प्रयास

१. पुर्तगाली

पुर्तगाली मिशनरियो मे सन्त फ्रान्सिस जेवियर (St. Francis Zavier) और रॉबर्ट-डो-नोबिली (Robert-de-Nobili) के नाम उल्लेखनीय है। जेवियर १५४२ मे और नोबिली उसके कुछ समय बाद आया। जेवियर ने पूर्ण तन्मयता से ईसाई-धर्म-प्रचार-कार्य किया। उसने गाँव-गाँव मे ईसाई-धर्म की पुस्तकें रखवा दी। वह घंटी बजाता हुआ पैदल घूमता था और भारतवासियो को ईसा का अनुयायी बनने के लिए आमंत्रित करता था। उसने शिक्षा-प्रसार की दिशा मे भी सराहनीय कार्य किया। आज भी उसका नाम इस देश की कुछ शिक्षा-संस्थाओ से सम्बन्धित है। नोबिली का कार्य भी कुछ कम प्रशंसनीय नही था। वह अपने को पश्चिम का ब्राह्मण बताता था और कहता था कि वह खोये हुए वेदो को भारत वापिस लाया है। उसकी वेश-भूषा हिन्दू संन्यासियो की सी होती थी। वह अपने मस्तक पर तिलक लगाता था केवल ब्राह्मणो को अपना सेवक रखता था और शुद्ध तथा सात्विक भोजन उसका आहार था।[1]

पुर्तगाली मिशनरियो ने गोआ, डामन, ड्यू, कोचीन, लंका, हुगली और चटगाँव मे प्राथमिक विद्यालय खोले। इनमे पुर्तगाली भाषा, कुछ स्थानीय भाषाओ, थोडी-सी कारीगरी और कृषि, गणित तथा रोमन कैथोलिक धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयो मे उन बच्चो की निशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध था, जिनके अभिभावक ईसाई-धर्म का आलिंगन कर चुके थे। निर्धन बच्चो को भोजन, पुस्तको और वस्त्रो की भी सुविधा दी जाती थी।

इन मिशनरियो ने उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १५७५ मे चॉल मे प्रथम जेसुईट (Jesuit) कॉलेज खोला गया, जिसमे ३०० से अधिक विद्यार्थी पढते

1. K S. Vakil : *Education in India*, p. 2.

थे। सेन्ट ऐन (St. Anne) नामक एक दूसरा कॉलेज बन्दोरा मे स्थापित किया गया। गोआ, वेसीन और कुछ अन्य स्थानो मे भी कॉलेज खोले गये। इन कॉलेजो मे लेटिन, ईसाई-धर्म, तर्कशास्त्र, व्याकरण और सगीत की शिक्षा दी जाती थी।[1] बर्नियर (Bernier) ने आगरा मे भी एक जेसुइट कॉलेज का उल्लेख किया है।

पुर्तगालियो के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य प्राय. उनकी बस्तियो तक ही सीमित रहे और उनका व्यापक प्रभाव नही पडा। परन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारत मे आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था के बीजारोपण का श्रेय उन्ही को प्राप्त है। १५६५ मे पुर्तगाली शक्ति के ह्रास के साथ-साथ, पुर्तगाली शिक्षा-संस्थाओ का भी ह्रास प्रारम्भ हो गया और कालान्तर मे वे केवल गोआ, डामन और ड्यू तक ही सीमित रह गई।

२. फ़ासीसी

फ़ासीसियो ने अपनी बस्तियो—पाडिचेरी, माही, यनाम, कारीकल और चन्द्रनगर—मे प्राथमिक विद्यालय खोले। इनके द्वार सब भारतीय बच्चो के लिए खुले हुए थे। इनमे भारतीय शिक्षको द्वारा स्थानीय भाषाओ मे शिक्षा दी जाती थी। ईसाई-धर्म की शिक्षा अनिवार्य थी। इस कार्य के लिए प्रत्येक विद्यालय मे एक धर्म-प्रचारक रहता था। निर्धन भारतीय बच्चो को भोजन, वस्त्रो, पुस्तको आदि का प्रलोभन देकर पढने के लिए आकर्षित किया जाता था। पाडिचेरी मे एक माध्यमिक विद्यालय भी था, जिसमे फ़ासीसियो और कम्पनी के भारतीय कर्मचारियो के बच्चो को फ़ासीसी भाषा की शिक्षा दी जाती थी।

भारत मे फ़ासीसी—अंग्रेजो के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी थे। इस देश पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए इन दोनो जातियो ने दीर्घकाल तक प्राणपण से चेष्टा की। कर्नाटक के युद्धो (१७४६-६३) के पश्चात् फ़ासीसी वास्तव मे सब कुछ खो बैठे। कुछ बस्तियो को छोडकर सभी पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया और फलस्वरूप यहाँ के विद्यालयो पर भी। अंग्रेजो ने उनकी शिक्षा-व्यवस्था मे परिवर्तन करके उन्हें नए साँचे मे ढालना प्रारम्भ कर दिया।

३. डच

डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य लंका, मद्रास-तट पर नागापट्टम और बगाल मे चिनसुरा प्रदेश पर था। अंग्रेजो के प्रबल विरोध के कारण डचो की स्थिति कभी महत्वपूर्ण नहीं रही। १७५६ मे बेदरा नामक स्थान पर अंग्रेजो से परास्त होकर, उनका सौभाग्य-सूर्य सदैव के लिए निस्तेज हो गया।

व्यापार करने के साथ-साथ, डचो ने कुछ विद्यालय भी स्थापित किये। इनमें कम्पनी के कर्मचारियो एवं अन्य भारतीयो के बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध था।

---

1. Bhagwan Dayal : *The Development of Modern Indian Education*, p. 30.

पुर्तगालियों के समान डचों के सिर पर धर्म-प्रचार का भूत सवार नहीं था। अतः उन्होंने अपने विद्यालयों को धर्म-प्रचार का केन्द्र एवं साधन नहीं बनाया। डा० प्रिडे (Prideaux) के अनुसार डचों ने उच्च शिक्षा के लिए लंका में एक कॉलेज खोला था।

४ डेन

डेनों के कारखाने ट्रानक्यूबर और सीरामपुर में थे। इन लोगों ने भारत पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। १८४५ में इन्होंने अपनी बस्तियाँ अंग्रेजों को बेचकर इस देश से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

अन्य देशों के मिशनरियों के समान डेन मिशनरियों ने भी धर्म-प्रचार का कार्य किया। परन्तु डेनमार्क से समय पर धन प्राप्त न होने के कारण उनका कार्य अविराम गति से नहीं चल पाता था। उन्हें इंगलैंड की 'धर्म-प्रचारक समिति' (Society for Promoting Christian Knowledge) से आर्थिक सहायता लेनी पड़ती थी, पर यह धन उनके लिए पर्याप्त नहीं होता था। इन कठिनाइयों के होते हुए भी उन्होंने ५०,००० भारतवासियों को ईसाई बनाया।

डेन मिशनरियों में सर्वप्रथम जीगेनबल्ग (Ziegenbalg) और प्ल्यूशो (Plutschu) १७०६ में ट्रानक्यूबर पहुँचे। अपने धर्म-प्रचार-कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने तामिल भाषा का अध्ययन किया। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण जीगेनबल्ग को यह समझने में देर न लगी कि ईसाई-धर्म का व्यापक प्रचार करने के लिए तामिल भाषा ही सर्वोत्तम होगी। अतः उसने बाइबिल का तामिल भाषा में अनुवाद किया। उसने तामिल भाषा की एक व्याकरण लिखी और एक तामिल शब्द-कोश भी तैयार किया। १७१९ में जीगेनबल्ग के असामयिक निधन के कारण डेन मिशनरियों के कार्य को भारी धक्का लगा, पर ग्रण्डलर (Grundler), कायरेण्डर (Kierander) तथा श्वार्ज़ (Schwartz) उसके कार्य को चलाते रहे।

डेन मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का पथ-प्रदर्शक माना जाता है। उन्होंने स्थानीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया। मुसलमानों से अपने धर्म-प्रचार-कार्य में सहयोग पाने के लिए उन्होंने उनके बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता दी और अनेक प्राथमिक विद्यालय खोले। जीगेनबल्ग के जीवन-काल में ही १७१६ में ट्रानक्यूबर में अध्यापकों की दीक्षा के लिए एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोल दिया गया था। वहाँ के प्रशिक्षित अध्यापकों को प्राथमिक स्कूलों में नियुक्त किया जाता था। ग्रण्डलर ने मद्रास में दो विद्यालय स्थापित किये। कायरेण्डर ने फोर्ट सेण्ट डेविस में और उसके आस-पास तथा श्वार्ज़ ने त्रिचनापली और तजौर में स्कूल खोले। इन विद्यालयों की विशेषता यह थी कि इनमें अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी और ईसाई-धर्म की प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा नहीं दी जाती थी।[1]

---

1. N. N. Law : *Promotion of Learning by Early European Settlers*, p. 68.

५. अग्रेज

अग्रेज मिशनरियो के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों का विवरण इंगलिश ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के शिक्षा-प्रयासो के साथ देना ही अधिक उपयुक्त होगा। अत अगले अध्याय मे इनका वर्णन किया जायगा।

मिशनरियो के शिक्षा-कार्य की समीक्षा

ऊपर जिन पाश्चात्य मिशनरियो का वर्णन किया गया है, उनमे से अधिकाश का स्थान भारतीय शिक्षा के इतिहास मे अति गौरवपूर्ण है। यह केवल इसलिए नही कि उन्होने शिक्षा के क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया, अपितु इसलिये भी कि उन्होने आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था का सूत्रपात किया और भारत के भावी भाग्य-विधाताओ के समक्ष शिक्षा का भार वहन करने का आदर्श उपस्थित किया। इन कार्यों से कही अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था—जन-साधारण म ज्ञान का प्रसार करना। यवनो के आतङ्को से हिन्दू शिक्षा-व्यवस्था की नीव डगमगा चुकी थी। अनुकूल एव प्रतिकूल परिस्थितियो के बीच पली मुस्लिम शिक्षा-पद्धति सामान्य जनता के ज्ञान-मार्ग को प्रशस्त नही कर सकी थी। इस दिशा मे इन विदेशी मिशनरियो ने नि शुल्क शिक्षा की योजना बनाकर और भारी संख्या मे व्यक्तियो को ज्ञान का रसास्वादन कराकर पथ प्रदर्शक का कार्य किया।

साराश

भारत तक पहुचने के जल-मार्ग की खोज वास्को-ड गामा ने की। उसके कुछ समय उपरान्त से ही पुर्तगाली भारत से व्यापार करने लग। १७वी शताब्दी के प्रारम्भ से अग्रेजो, फ्रासीसियो और डेनो ने भी व्यापार करने के उद्देश्य से भारत से सम्बन्ध स्थापित किये। समान उद्दश्य होन के कारण उनमे सघर्ष प्रारम्भ हो गया, जिसमे अन्त मे अग्रज विजयी हुए।

यूरोप के व्यापारियो के कुछ समय पश्चात् वहाँ के मिशनरी भी भारत आए। उनका उद्देश्य—भारतवासियो को ईसाई बनाना था। इस कार्य को सुगमता-पूर्वक करने के लिए उन्होने भारतवासियो को शिक्षा देने के लिए विद्यालय स्थापित किये।

पुर्तगाली मिशनरिया मे जेवियर और रॉबर्ट डी-नोबिली ने शिक्षा के क्षेत्र म सराहनीय कार्य किए। पुर्तगाली वस्तियो मे प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए गये। चॉल और बन्दोरा आदि स्थाना म उच्च शिक्षा के लिए कॉलिज खोले गये। इन विद्यालयो मे अन्य विषया की शिक्षा के साथ माथ ईसाई-धर्म की भी शिक्षा दी जाती थी।

फ्रासीसी विद्यालया म भी धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। विद्यार्थियो का

उनमे पढने के लिए भोजन, वस्त्र तथा पुस्तक आदि की सुविधा का प्रलोभन दिया जाता था।

डचो ने प्राथमिक विद्यालयो के अतिरिक्त लका मे उच्च शिक्षा के लिये एक कॉलेज खोला। इन लोगो ने अपनी शिक्षा-सस्थाओ को ईसाई धर्म-प्रचार का केन्द्र एव साधन नही बनाया।

डेन धर्म प्रचारको ने शिक्षा-क्षेत्र मे अति महत्त्वपूर्ण कार्य किया। जीगेनवल्ग ने बाइबिल का तामिल भाषा मे अनुवाद किया। उसके जीवन-काल मे ट्रानक्यूबर मे अध्यापको के प्रशिक्षण के लिए एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला गया। ग्रण्डलर ने मद्रास मे विद्यालय खोले, श्वार्ज ने त्रिचनापली और तजौर मे स्कूल खोले।

पाश्चात्य मिशनरियो का स्थान भारतीय शिक्षा के इतिहास मे अति महत्त्वपूर्ण है। उन्होने भारत मे आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था का सूत्रपात किया, जन-साधारण मे ज्ञान का प्रसार किया, और नि शुल्क शिक्षा की योजना बनाई।

TEST QUESTIONS

1 "The beginnings of the present system of education in India can be traced to the efforts of the Christian missionaries" Discuss

"भारत मे आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात ईसाई मिशनरियो के प्रयासो के कारण हुआ।" विवेचना कीजिये।

2 Write a short essay on the educational activities of the early European settlers

प्रारम्भिक यूरोपीय निवासियो के शैक्षिक कार्यों पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

६

ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-प्रयास

(१६००-१८१३)

प्रस्तावना

१५९९ मे लन्दन के व्यापारियो ने इगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का निर्माण किया और उनकी प्राथना पर महारानी ऐलिजाबेथ (Elizabeth) प्रथम ने ३१ दिसम्बर १६०० को इस कम्पनी को पूर्वी देशो के साथ व्यापार करने के लिए एक आज्ञा-पत्र (Charter) प्रदान किया।

कम्पनी की प्रारभिक नीति (१६००-१७६५)

कम्पनी के व्यापारिया ने १६११ म मछलीपट्टम म प्रथम, और १६१३ मे सूरत मे द्वितीय कारखाना स्थापित किया। भारत म अपने प्रतिद्वन्द्वी पाश्चात्य व्यापारिया का अनुकरण करके उन्होने भी अपने प्रोटैस्टेण्ट मिशनरियो को इस देश मे बुलाया। एसा करने म उनके तीन उद्देश्य थे—(१) जिन स्थाना म अग्रज आकर बसे थे वहाँ से पुतगाल के रोमन कथोलिक मिशनरिया का प्रभाव समाप्त करना (२) धार्मिक शिक्षा द्वारा अपनी कम्पनी के कमचारिया की आध्यात्मिक उन्नति करना और (३) भारतवासिया म अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई धम का प्रचार करना।

प्रारम्भ म कम्पना का ध्यान व्यापार एव धम प्रचार-काय पर केन्द्रित था। धम प्रचार-काय म सफलता प्राप्त करने के लिए १६१४ स ही कम्पनी न भारत वासिया को अपने दश म प्रोटैस्टण्ट धम का प्रचार करने के लिये प्रशिक्षित करना प्रारम्भ किया। कुछ भारतीय ईसाइया का धार्मिक दीक्षा प्राप्त करने क लिए इगलड भी भजा गया। १६३६ म आक्सफोड विश्वविद्यालय म आर्चबिशप लाड (Arch

bishop Laud) ने अरबी शिक्षा का विभाग स्थापित किया, जिसमे भारत आने वाले मिशनरियो को अरबी भाषा की शिक्षा दी जाती थी।

१६५९ के आदेश-पत्र (Despatch) मे कम्पनी के संचालको ने भारतवासियो को ईसाई-धर्म मे दीक्षित करने की, और इस उद्देश्य से प्रत्येक जहाज पर मिशनरियो को भेजने की इच्छा व्यक्त की। इस समय तक कम्पनी के कर्मचारी भारतवासियो की धार्मिक भावनाओ से कुछ परिचित हो चुके थे। अतः उन्होने संचालको की इच्छा की ओर ध्यान न देकर धार्मिक तटस्थता की नीति को अपनाना ही उत्तम समझा।

जब १६९८ मे कम्पनी का आज्ञा-पत्र दोहराया गया, तब उसकी एक धारा के अनुसार कम्पनी को अपने किलो, नगर-रक्षक सेनाओ तथा बड़े कारखानो मे विद्यालय स्थापित करने का आदेश दिया गया। यही से भारत मे अंग्रेजी की शिक्षा का सूत्रपात होता है। उसका प्रारम्भ अंग्रेजी बस्तियो मे हुआ और अंग्रेजी राज्य-प्रसार के साथ-साथ उसका रूप परिवर्तित होता चला गया।

दान-आश्रित विद्यालय

१६९८ के आज्ञा-पत्र के आदेशानुसार मद्रास और बम्बई मे कुछ दान-आश्रित विद्यालय (Charity Schools) खोले गये। उनका व्यय-भार कम्पनी, उसके कर्मचारियो तथा चन्दे के द्वारा वहन किया जाता था। इन विद्यालयो का उद्देश्य अंग्रेजो, एंग्लो-इण्डियनो, ईसाइयो, कम्पनी के कर्मचारियो तथा जनसाधारण के बच्चो को निःशुल्क शिक्षा देना था। इनमे प्रवेश की प्राथमिकता प्रोटैस्टेण्ट धर्म के अनुयायियो को मिलती थी। इनमे लिखना-पढना, गणित और ईसाई-धर्म की शिक्षा दी जाती थी।

मद्रास

यहाँ १६७३ मे प्रथम माध्यमिक विद्यालय खोला जा चुका था। इसमे अंग्रेजो, पुर्तगालियो, एंग्लो-इण्डियनो तथा कम्पनी के कुछ भारतीय कर्मचारियो के बच्चे पढते थे। इसमे शिक्षा का माध्यम 'पुर्तगाली' भाषा थी। शिक्षक का कार्य प्रिंगल (Pringle) नामक पादरी करता था, जिसे कम्पनी ५० पौंड वार्षिक वेतन देती थी। १७१५ मे कम्पनी की अध्यक्षता मे स्टीवेन्सन (Rev. W. Stevenson) ने मद्रास नगर मे 'सेण्ट मेरीज चेरिटी स्कूल' नामक प्रथम दान-आश्रित विद्यालय स्थापित किया। इसमे कम्पनी के प्रोटैस्टेण्ट यूरोपियनो के बच्चो को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। १७१७ में भारतीय बच्चो के लिये इसी प्रकार का एक एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल कडलौर मे खोला गया। १८१२ मे नगर-सेना के पादरी ने भारतीय सैनिको तथा नगर-वासियो के बच्चो को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए एक 'सण्डे स्कूल' खोला।

बम्बई

मद्रास के प्रथम दान-आश्रित विद्यालय के सिद्धान्तो के आधार पर रिचार्ड



कॉब (Rev. Richard Cobbe) ने निर्धन प्रोटेस्टेण्ट यूरोपियन बच्चो के लिए बम्बई मे १७१६ मे एक स्कूल खोला। १८०७ तक यह विद्यालय चन्दे से प्राप्त धन से चलता रहा, पर उस वर्ष कम्पनी ने इसे अपने संरक्षण मे ले लिया। इसके अतिरिक्त, बम्बई मे केवल एक विद्यालय और था, जिसे पुर्तगालियो ने १७६० मे स्थापित किया था।[1]

कम्पनी की शिक्षा-नीति (१७६५–१८१३)

उत्तर-पूर्व मे अग्रेज व्यापारियो ने १६३३ मे प्रवेश किया और हरिहरपुरा तथा बालासोर मे अपने कारखाने स्थापित किये। इस प्रदेश मे अनेक वर्षों तक कम्पनी का व्यापार अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियो मे से होकर गुजरता रहा। धीरे-धीरे किस प्रकार यह कम्पनी भारत पर अपनी राजनैतिक सत्ता स्थापित करने मे सफल हुई, इसका शिक्षा के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। अतः हम इसे यहाँ केवल यह लिखकर छोडते हैं कि १७५७ मे प्लासी के युद्ध मे विजय के उपरान्त या अधिक निश्चित रूप से १७६५ मे सम्राट् शाह आलम से बंगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी प्राप्त करके कम्पनी का सौभाग्य-सूर्य उदय हुआ और उसने राज्य-प्रसार के पथ पर अपना अभियान प्रारम्भ किया।

१७६५ के पश्चात् जब कम्पनी को भारत मे राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो गई, तब उसकी शिक्षा-नीति मे परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। वह अनुभव करने लगी कि उसे भारतवासियो के लिए कुछ करना है। उसे हिन्दू एवं मुसलमान शासको के राज्य उत्तराधिकार मे प्राप्त हुये थे। इन शासको ने अनेक प्रकार से शिक्षा को प्रोत्साहित किया था, जैसे—पाठशालाएँ और मदरसे स्थापित किये थे, विद्वान् पंडितो और मौलवियो को उपाधियो से विभूषित किया था और उनको आजीविका चलाने के लिए जागीरें दी थी। कम्पनी ने विचार किया कि इन परम्पराओ को जारी रखकर ही भारतवासियो की सद्भावना प्राप्त की जा सकती थी। यहीं से कम्पनी की नवीन शिक्षा-नीति का श्रीगणेश होता है।

इस नीति को निर्धारित करने मे दो अन्य तत्वो ने भी योग दिया। प्रथम, १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के अनुसार कलकत्ता मे एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया। १७८१ से 'संशोधित कानून' (Supplementary Act) के अनुसार यह निश्चय किया गया कि भारतवासियो के मुकदमो का निर्णय उनके धर्म, रीति-रिवाजो और रहन-सहन के आधार पर किया जाय। क्योकि अंग्रेज न्यायाधीश इन बातो से अनभिज्ञ थे, अत: उनकी सहायता के लिए भारतवासियो को शिक्षित करना आवश्यक हो गया। द्वितीय, कम्पनी प्रभावशाली भारतवासियो के पुत्रो

1. J. M. Sen : *A History of Elementary Education in India*, p. 61.

को सरकारी पदों पर कार्य करने के लिए भी शिक्षित करना चाहती थी, और इस प्रकार उच्च वर्गों का विश्वास तथा सहयोग प्राप्त करके भारत मे अपने नव-स्थापित राज्य को सुदृढ बनाना चाहती थी। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर कम्पनी ने हिन्दुओं और मुसलमानो के लिए उच्च शिक्षा के कुछ केन्द्र स्थापित किये। इनमे 'कलकत्ता मदरसा' और 'बनारस सस्कृत कॉलेज' सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे।

कलकत्ता मदरसा

'कलकत्ता मदरसा' को स्थापित करने वाला बगाल का गवर्नर, वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) था। १७८० म नगर के कुछ लब्धप्रतिष्ठ मुसलमानो ने उससे प्रार्थना की कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए कलकत्ता मे एक मदरसा स्थापित किया जाय, और मुइगिद उद्दीन नामक एक विदेशी विद्वान् की सेवाओ से लाभ उठाया जाय।[1] उसने तत्काल मुइगिद उद्दीन को बुलवाया, उसे मदरसे का प्रधानाचार्य नियुक्त किया और अक्टूबर १७८० मे, 'कलकत्ता मदरसा' शिक्षण-कार्य मे लग गया। कम्पनी के संचालको से मदरसे के व्यय के लिए धन प्राप्ति मे विलम्ब होने की आशंका से हेस्टिंग्ज ने उसके व्यय का भार अपने ऊपर ले लिया।

प्रारम्भ मे इस मदरसे म ४० छात्रो के लिये नि शुल्क शिक्षा, भोजन, छात्रावास एव पुस्तको की व्यवस्था की गई थी। परन्तु मुइगिद उद्दीन की ख्याति के कारण जनवरी, १७८१ मे ही काश्मीर, गुजरात एव कर्नाटक से छात्र आने लगे। अत छात्रों की सख्या को ४० से बढाकर १०० करना पडा। व्यय अधिक हो जाने के कारण हेस्टिंग्ज ने कम्पनी के सचालको से मदरसे को अपने सरक्षण मे लेने की प्रार्थना की। उन्होने न केवल इसकी स्वीकृति दी, अपितु हेस्टिंग्ज द्वारा व्यय किया हुआ धन भी उसे लौटा दिया। प्राचीन प्रथा के अनुसार १७८५ मे संचालको ने २९,००० रुपये की वार्षिक राजस्व की भूमि मदरसे के पोषण के लिए दी। उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण इस भूमि को १८१९ मे वापिस ले लिया गया और ३०,००० रुपया वार्षिक, राजकोष से दिया जाने लगा। मदरसे के प्रबन्ध का भार एक अंग्रेज सेक्रेटरी को सौप दिया गया।

मदरसे के पाठ्य-विषयो म पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र, कुरान के धर्म-सिद्धान्त, कानून, ज्योतिष, ज्यामिति, गणित, तर्कशास्त्र, अलंकार-शास्त्र एवं व्याकरण मुख्य थे। शिक्षा-काल ७ वर्ष और शिक्षा का माध्यम 'अरबी' था। शिक्षको के अतिरिक्त कुरान पढाने के लिए एक हाफिज और नमाज पढाने के लिए एक मुअज्जिन था। मुस्लिम-प्रथा के अनुसार प्रार्थना एव पूजा-पाठ के लिए शुक्रवार को अवकाश रहता था।

---

1. W. H. Sharp : *Selections from Educational Records*, Vol. I, pp. 7-8.

बनारस संस्कृत कॉलेज

'कलकत्ता मदरसा' के समान 'बनारस संस्कृत कॉलेज' की स्थापना का कारण भी राजनैतिक था। इस कॉलेज का शिलान्यास १७९१ मे बनारस राज्य के रेज़ीडेन्ट, जोनेथन डंकन (Jonathan Duncan) ने किया था। जिस प्रकार कलकत्ता मदरसा मे मुस्लिम धार्मिक सिद्धान्तो और कानूनो की शिक्षा देकर मुसलमान नवयुवको को अंग्रेज न्यायाधीशो को सहायता देने के लिए तैयार किया था, उसी प्रकार बनारस संस्कृत कॉलेज मे हिन्दू नवयुवको को हिन्दू-धर्म-शास्त्रो एवं कानून की व्याख्या करने के लिए दीक्षित किया जाता था। प्रथम वर्ष इस कॉलेज को १४,००० रुपया अनुदान के रूप मे दिया गया, पर १७९२ मे इस धनराशि को बढाकर २०,००० रुपया वार्षिक कर दिया गया।[1] प्रारम्भ मे इस कॉलेज का प्रबन्ध पंडितो ने किया, पर उनकी असफलता को देखकर कुछ समय बाद एक अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त कर दिया गया।

कॉलेज के पाठ्य-विषयो मे हिन्दू धार्मिक सिद्धान्त, तर्क-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र, सङ्गीत, इतिहास, कविता और कानून सम्मिलित थे। कॉलेज का समस्त प्रबन्ध धर्म-शास्त्रो के नियमो पर, और शिक्षा 'मानव-धर्म' (Institutes of Manu) पर आधारित थी।[2]

फोर्ट विलियम कॉलेज

इस कॉलेज की स्थापना १८०० मे लार्ड वेलेजली (Wellesley) ने कलकत्ता मे की थी। इसका प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के तरुण कर्मचारियो को हिन्दू और मुस्लिम कानूनो, भारतीय इतिहास, अरबी, फारसी, संस्कृत और भारतीय भाषाओ की शिक्षा देना था। इसने बंगला साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओ के विकास मे अति सराहनीय योग दिया और उनसे सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित की। इस कॉलेज मे डा० गिलक्राइस्ट (Gilchrist), डा० केरे (Carey), कोलब्रुक (Colebrook) और पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ऐसे विद्वान् शिक्षक थे। एक विशेष उद्देश्य के लिए स्थापित किए जाने के कारण भारतीय शिक्षा के इतिहास मे इस कॉलेज का स्थान अधिक महत्वपूर्ण नही है। (१८१९ मे कम्पनी ने मद्रास में 'फोर्ट सेन्ट जार्ज' नामक कॉलेज, अंग्रेज कर्मचारियो को भारतीय भाषाएँ सिखाने के लिए खोला।)

व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य

राजकीय प्रयत्नो के अतिरिक्त, विद्यालयो की स्थापना के लिए कुछ व्यक्तिगत प्रयास भी किए गए। १७८७ मे श्रीमती कैम्पबेल (Campbell) ने मद्रास मे एक

---

1. **B. D. Basu** *History of Education in India*, p. 33.
2. **T. N. Siqueira** : *The Education of India*, p. 25.

महिला-आश्रम (Female Orphan Asylum) खोला। उसी वर्ष डा० ऐन्ड्रयू बेल (Andrew Bell) ने एक ऐसा ही आश्रम बालको के लिए ऐग्मोर मे स्थापित किया। यह संस्था शिक्षा के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगी, क्योकि डा० वेल ने यही प्रथम बार बालचर-प्रणाली (Monitorial System) का परीक्षण किया था। इन दोनो विद्यालयो को समय-समय पर कम्पनी से कुछ आर्थिक सहायता मिल जाती थी। इनमे केवल यूरोपियन कर्मचारियो की वैध सन्तानें और अनाथ बच्चे ही पढ सकते थे।

१७६५ के बाद अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियो की बढती हुई माँग के कारण कलकत्ता नगर मे बहुत से विद्यालय स्थापित हुए। सर्वप्रथम ब्राउन (Brown) ने हिन्दू बालको के लिये एक अंग्रेजी स्कूल खोला। इसके बाद ऐराटून (Aratoon), पीटर्स (Peters), शेरबोर्न (Sherbourne), कृष्णमोहन बोस एवं शिवदत्त ने भी इस प्रकार के विद्यालयो का निर्माण किया। श्रीमती पिट (Pitt), श्रीमती लॉसन (Lawson), श्रीमती कौपलैण्ड (Copeland) एवं कुछ अन्य महिलाओ ने बालिकाओं के लिए ६ से अधिक विद्यालयों का प्रबन्ध किया। बालको और बालिकाओं की इन शिक्षा-संस्थाओ मे शिक्षा का माध्यम 'अंग्रेज़ी' था। इन्होंने अंग्रेज़ी भाषा को लोकप्रिय बनाने मे प्रशंसनीय कार्य किया।

मिशनरियों के शिक्षा एवं धर्म-प्रचार के कार्य

मद्रास और बम्बई के समान बंगाल मे भी कुछ दान-आश्रित विद्यालयो की स्थापना हुई। इन विद्यालयो का मुख्य उद्देश्य—यूरोपियनो के अनाथ एवं परित्यक्त बच्चों को शिक्षा देना था। इस प्रकार के दो विद्यालय कलकत्ता मे थे. 'कलकत्ता-चेरिटेबिल स्कूल', जिसकी स्थापना ऐंग्लिकन ((Anglican) मिशनरियो ने १७२६ मे की थी, और जो थोड़े से अशिष्ट बच्चो पर अत्यधिक धन व्यय करके ज्यो-त्यो १७८७ तक चलता रहा। उस वर्ष इस विद्यालय का कार्य-भार एक बोर्ड को सौप दिया गया। दूसरा विद्यालय 'फ्री स्कूल' था, जिसकी स्थापना १७८६ मे 'फ्री स्कूल सोसाइटी' ने की थी। इन दो विद्यालयों के अतिरिक्त, कलकत्ता से १३ मील दूर डेनो के उपनिवेश सीरामपुर मे 'बेनीवोलेन्ट-इन्स्टीट्यूशन' (Benevolent Institution) नामक एक दान आश्रित शिक्षा-संस्था और थी। इसकी स्थापना अंग्रेज् बेप्टिस्ट मिशनरियो ने भारतीय एवं एंग्लो-इण्डियन बच्चो को शिक्षा देने के लिए की थी।

सीरामपुर के बेप्टिस्ट मिशनरियो के तीन नेता थे—केरे (Carey), वार्ड (Ward), और मार्शमैन (Marshman)। उन्हे 'सीरामपुर त्रिमूर्ति' (Serampore Trio) कहा जाता था। उनके प्रयास के फलस्वरूप सीरामपुर, कलकत्ता और अन्य स्थानो मे बालको तथा बालिकाओ के लिए १८१७ तक ११५ विद्यालय खोले गए।

'सीरामपुर त्रिमूर्ति' का धर्म-प्रचार का कार्य कही अधिक उत्साहपूर्ण था। उन्होंने १८०० मे एक मुद्रणालय खोला, बाइबिल को अनेक देशी भाषाओ मे

अनुवादित करके मुद्रित किया और नि संकोच भाव से अपनी धार्मिक पुस्तकें जनता मे बाँटी । कुछ ही वर्षो मे उनका धार्मिक उत्साह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच कर सीमा का उल्लंघन कर गया । १८०८ मे उन्होने "हिन्दुओ और मुसलमानो के नाम संदेश" (Addresses to Hindus and Muslims) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की । इसमे मुहम्मद साहव को झूठा पैगम्बर बताया गया और हिन्दू-धर्म की निन्दा की गई । इससे हिन्दुओ और मुसलमानो मे इतनी उत्तेजना फैली कि उसे शान्त करने के लिए लार्ड मिन्टो (Minto) ने मिशनरियो का प्रेस जब्त कर लिया और उनको वन्दी करवा के कलकत्ता बुला लिया ।

मिशनरियो को कम्पनी की दमन-नीति से बहुत असन्तोष हुआ । भारत मे इसका विरोध करने मे अपने को असमर्थ पाकर, उन्होने अपने समर्थकों के द्वारा इंगलैण्ड मे आन्दोलन प्रारम्भ किया । इस आन्दोलन का नेता चार्ल्स ग्राट (Charles Grant) था ।

चार्ल्स ग्रांट

चार्ल्स ग्राट कम्पनी के कर्मचारी और व्यवसायी के रूप मे भारत मे २३ वर्ष रह चुकने के कारण यहाँ की परिस्थितियो से पूर्णतया परिचित था । इंगलैण्ड लौटने पर उसने "ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा की सामाजिक दशा पर विचार"[1] नामक एक पुस्तिका लिखकर भारतवासियो की स्थिति पर प्रकाश डाला । एक स्थान पर ग्राट ने लिखा :—"यूरोप के सबसे खराब भागो मे नि सन्देह अनेक मनुष्य हैं जो सच्चे, ईमानदार और शुद्ध हृदय वाले हैं । बंगाल मे तो सच्चा और ईमानदार मनुष्य अलभ्य है, मुझे भय है कि जीवन मे सब प्रकार से पवित्र आचरण वाला मनुष्य अप्राप्य है । हिन्दुस्तान के निवासी को दी गई शक्ति सदैव अत्याचारपूर्ण रीति से प्रयोग की जाती है या अन्याय के कार्य मे लगाई जाती है । सभी स्थितियो मे सभी प्रकार के पदो का प्रयोग धनोपार्जन के लिए किया जाता है । न्याय सामान्य रूप से व्यापार की वस्तु बन गया है ।"[2]

भारतवासियो की नैतिकता का यह चित्र अतिरंजित है । एल्फिस्टन, मुनरो और मेटकॉफ ने उनके निकट सम्पर्क मे रहकर भी इस प्रकार के विचार कभी व्यक्त नहीं किये थे । परन्तु ग्राट क्षम्य है, क्योकि उसका एकमात्र उद्देश्य शिक्षा-प्रसार द्वारा भारतवासियो के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना और उनका पुनरुत्थान करना था । यह सत्य है कि उन दिनो भारतीय समाज पतनोन्मुख हो रहा था । उसमे अनैतिकता, भ्रष्टाचार और अज्ञान की वृद्धि हो रह

---

1. "Observatio ... tate o ... g the Asiatic Subjects of Great Brit...
2. Quoted by ... Mod... Indian Education, p. viii.

ग्रान्ट का विश्वास था कि पाश्चात्य शिक्षा और ईसाई-धर्म द्वारा भारत-वासियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है और उनकी अज्ञानता को दूर किया जा सकता है। ग्रांट ने अपने विश्वास को लेखबद्ध करते हुए लिखा —"अज्ञानता को दूर करने का वास्तविक उपचार ज्ञान का प्रसार है। हिन्दू इसलिए गलती करते हैं, क्योंकि वे अज्ञानी हैं और उनकी गलतियों को उचित प्रकार से कभी भी उनके समक्ष नहीं रखा गया है। उनको हमारे प्रकाश और ज्ञान का दिया जाना ही उनके लिए सर्वोत्तम उपचार सिद्ध होंगे।"[1]

भारतवासियों में ज्ञान का प्रसार करने के लिए ग्रांट ने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का उपयुक्त माध्यम बताया। उसका कहना था कि योग्य शिक्षकों से अंग्रेजी साहित्य, विज्ञान, दर्शन और धर्म की शिक्षा पाकर भारतवासियों की विचारधारा परिवर्तित हो जायगी। ग्रांट की प्राय: सभी बातों को भविष्य में मान लिया गया। वस्तुत: अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति की अग्रिम रूपरेखा का निर्माण उसी ने किया। इसीलिए उसको 'भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता' (Father of Modern Education in India) कहा जाता है।

१७९३ का आज्ञा-पत्र

ग्रांट के विचारों से ब्रिटिश लोक-सभा का सदस्य विल्बरफोर्स (Wilberforce) अत्यधिक प्रभावित हुआ। जब १७९३ में कम्पनी का आज्ञा-पत्र पुनर्शोधन के लिए संसद में आया, तब विल्बरफोर्स ने उसमें शिक्षा-सम्बन्धी एक धारा जोड़ने के विचार से अग्रलिखित प्रस्ताव किया —"ब्रिटिश व्यवस्थापिका का यह विशेष तथा अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह समस्त उचित एवं विवेकपूर्ण साधनों द्वारा भारत में ब्रिटिश राज्य के हित एवं समृद्धि के लिए कार्य करे, और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे साधनों को अपनाए जिनसे भारतीयों के ज्ञान, धर्म और नैतिकता का स्तर ऊँचा उठे।"[2]

कम्पनी के सचालकों ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—"हिन्दुओं की अपने धर्म और नैतिकता की उतनी ही उत्तम प्रणाली है, जितनी कि अधिकांश व्यक्तियों की है, और उनके धर्म-परिवर्तन का प्रयास करना या उनको अधिक ज्ञान देना पागलपन होगा।"[3] लोकसभा के सदस्य रेण्डल जेक्सन (Randle Jackson) का मत था—"हमने अमेरिका के उपनिवेशों को अपनी भाषा का प्रसार करने के कारण खो दिया। अत: हमें भारत में ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए।" फलस्वरूप, पार्लियामेन्ट ने विल्बरफोर्स का प्रस्ताव रद्द कर दिया।

---

1. Quoted by M. R. Paranjpe : *op. cit.*, p. viii.
2. J. A. Richter : *A History of Missions in India*, p. 149
3. W. H. Sharp : *op. cit.*, Vol. I, p. 17.

भारतीय शिक्षा में प्राच्यवादी नीति

जिस समय इंगलैण्ड मे यह आन्दोलन चल रहा था कि भारतवासियो की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो और उनमे ईसाई-धर्म का प्रचार किया जाय, उस समय भारत मे कम्पनी के कुछ पदाधिकारी इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि भारतवासियो को भारतीय पद्धति द्वारा शिक्षा दी जाए और उनके धार्मिक मामलो मे हस्तक्षेप न किया जाय। 'कलकत्ता मदरसा' और 'बनारस संस्कृत कॉलेज' का निर्माण करके वे शिक्षा मे प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त कर चुके थे। वे इस बात पर वल दे रहे थे कि इस प्रकार की अन्य शिक्षा-संस्थाओ का प्रवन्ध करके प्राच्य शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाय। इस प्रकार दोनो देशो मे दो विरोधी विचारधाराएँ कार्य कर रही थी।

भारत मे कम्पनी का सर्वोच्च अधिकारी लार्ड मिन्टो, भारतीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रशंसक तथा प्राच्यवादी नीति का समर्थक था। उसने ६ मार्च, १८११ के अपने विवरण-पत्र (*Minute*) मे भारतीय शिक्षा की दयनीय दशा का चित्र अंकित करके कम्पनी के संचालको को प्रेषित किया। मिन्टो ने लिखा :—"भारत के निवासियो मे विज्ञान और साहित्य का उत्तरोत्तर पतन हो रहा है। विद्वानो की संख्या न केवल कम हो गई है, अपितु उनके ज्ञान की परिधि भी संकीर्ण होती जा रही है। इस स्थिति का तात्कालिक परिणाम है—अनेक अमूल्य ग्रन्थो का प्रयोग न किया जाना और उनका विनाश। इस बात का भय है कि यदि सरकार ने शीघ्र ही सहायता प्रदान न की तो ग्रन्थो और उनकी व्याख्या करने वाले व्यक्तियो के अभाव मे शिक्षा का पुनरुद्धार असम्भव हो जायगा।"[1]

१८१३ का आज्ञा-पत्र

इन दोनो नीतियो के प्रतिपादको ने भारतीय शिक्षा के प्रश्न को विवादास्पद बना दिया। परिणामतः जब १८१३ मे कम्पनी का आज्ञा-पत्र पुनर्शोधन के लिये पार्लियामेन्ट मे आया, तब गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात् उसमे दो नवीन धाराएँ जोडकर दोनो दलो को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया गया। प्रथम धारा के अनुसार मिशनरियो को भारत मे धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता दे दी गई। दूसरी धारा मे शिक्षा को कम्पनी का कर्तव्य वताया गया और कहा गया कि प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रुपया भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान एवं विज्ञानो के प्रसार मे व्यय किया जाय। इस धारा ने भारत मे 'राज्य-शिक्षा-प्रणाली' का सूत्रपात किया। शिक्षा के क्षेत्र मे मिशनरियो के प्रयासो को देखकर कुछ भारतवासियो के हृदय मे प्रतिस्पर्धा की भावना जाग्रत हुई और उन्होने भी शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित की। इस प्रकार राजकीय प्रयत्नो के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप मे भी विद्यालयो का निर्माण प्रारम्भ हुआ और देश मे अर्वाचीन भारतीय शिक्षा का शिलान्यास हुआ।

---

1. **W. H. Sharp** : *op cit*, **Vol. I, p. 19.**

सारांश

कम्पनी की प्रारम्भिक नीति—प्रारम्भ मे कम्पनी का उद्देश्य—व्यापार और धर्म-प्रचार करना था। धर्म-प्रचार-कार्य के लिए १६१४ से भारतवासियो को प्रशिक्षित करना प्रारम्भ किया गया। १६५६ के प्रेषित-पत्र मे कम्पनी के संचालको ने भारतवासियो को ईसाई-धर्म मे दीक्षित करने की इच्छा व्यक्त की। १६६८ के आज्ञा-पत्र में किलो, नगर-रक्षक सेनाओ और बडे कारखानो मे विद्यालय खोलने का आदेश दिया गया।

दान-आश्रित विद्यालय—१६६८ के आज्ञा-पत्र के अनुसार मद्रास और बम्बई मे दान-आश्रित विद्यालय खोले गये। मद्रास मे १६७३ मे प्रथम माध्यमिक विद्यालय खोला जा चुका था। १७१५ मे 'सेन्ट मेरीज चेरिटी स्कूल' यूरोपियन बच्चो की शिक्षा के लिए स्थापित किया गया। १७१७ मे भारतीय बच्चो के लिए कडलौर मे 'एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल' का निर्माण हुआ। 'सण्डे-स्कूल' १८१२ मे प्रारम्भ हुआ। बम्बई में प्रथम दान-आश्रित विद्यालय १७१६ मे स्थापित हुआ।

कम्पनी की शिक्षा-नीति (१७६५-१८१३)—१७६५ के बाद जब कम्पनी को राजनैतिक शक्ति प्राप्त हुई, तब उसकी शिक्षा-नीति मे परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। १७८० मे 'कलकत्ता मदरसा' और १७९१ मे 'बनारस-संस्कृत कॉलेज' का निर्माण करके कम्पनी ने मुसलमानो और हिन्दुओ को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। कम्पनी के तरुण कर्मचारियो को शिक्षा देने के लिए १८०० मे 'फोर्ट विलियम कॉलेज' का शिलान्यास हुआ।

व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य—१७८७ मे श्रीमती कैम्पबेल ने मद्रास मे 'महिला-आश्रम' और एन्ड्रयू बेल ने ऐसा ही आश्रम बालको के लिए एगमोर मे स्थापित किया, अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के लिए कलकत्ता मे बालको और बालिकाओं के लिए स्कूल खोले गये।

मिशनरियों के कार्य—सीरामपुर के बेप्टिस्ट मिशनरियों ने सीरामपुर, कलकत्ता आदि मे १८१७ तक ११५ विद्यालयों का प्रबन्ध किया। केरे, वार्ड और मार्शमैन ने बडे उत्साह से धर्म-प्रचार का कार्य किया। उसकी पुस्तिका 'हिन्दुओ और मुसलमानो के नाम सन्देश' ने भारतवासियो मे उत्तेजना फैला दी। अतः कम्पनी ने मिशनरियो के विरुद्ध दमन-नीति अपनायी। इङ्गलैण्ड मे इस नीति की कटु आलोचना हुई।

चार्ल्स ग्रांट—ग्राट ने अपने 'आब्जरवेशन्स' मे भारतवासियो की अनैतिकता का वर्णन किया। उसने अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देकर और धर्म-प्रचार के द्वारा उनके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने का सुझाव रखा।

भारतीय शिक्षा मे प्राच्यवादी नीति—भारत मे कम्पनी के कुछ पदाधिकारी भारतीय शिक्षा मे प्राच्यवादी नीति के समर्थक थे। लार्ड मिन्टो ने इस देश के साहित्य एवं विज्ञान के पुनरुद्धार के लिये कम्पनी के संचालको से प्रार्थना की।

भारतीय शिक्षा मे प्राच्यवादी नीति

जिस समय इ गलैण्ड म यह
शिक्षा का माध्यम अग्र जी हो और
भारत मे कम्पनी के कुछ पदाधिका
वासियो को भारतीय पद्धति द्वारा
हस्तक्षप न किया जाय। कलकत्ता
करके वे शिक्षा मे प्राच्यवादी नी
पर वल दे रहे थे कि इस प्रकार
शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहित वि
विचारधाराए काय कर रही थी।

भारत म कम्पनी का सव
विज्ञान का प्रशसक तथा प्राच्यवा
अपने विवरण पत्र (Minute) म
करके कम्पनी क सचालका को प्र
म विज्ञान और साहित्य का उत्त
कम हो गई है अपितु उनके ज्ञा
स्थिति का तात्कालिक परिणाम
और उनका विनाश। इस वात
प्रदान न की तो ग्रन्थो और उनव
का पुनरुद्धार असम्भव हो जायग

१८

इन दोना नीतिया क प्रति
दना दिया। परिणामत जव १८
पार्लियामन्ट म आया, तव गम्भीर
जोडकर दाना दला का सन्तुष्ट करन
मिशनरिया को भारत म धम प्रचार
का कम्पनी का कत्तव्य वताया गया
लाख रुपया भारतीय साहित्य क पुनरु
जाय। इस धारा न भारत म राज्य शि
क्षत्र म मिशनरिया क प्रयासा को दखकर कुछ
की भावना जाग्रत हुई और उन्होन भी शिक्षा-
राजकाय प्रयत्ना क साथ-साथ व्यक्तिगत रूप म भा
हुआ और दश म अर्वाचीन भारतीय शिक्षा का शिलान्यास।

1 W. H. Sharp *op cit*, Vol I, p 19



शिक्षा की अनिश्चित नीति
(१८१३-१८३३)

प्रस्तावना

१८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा का भार कम्पनी पर आ गया था और भारतीय साहित्य एवं विज्ञानों के प्रसार के लिए एक लाख रुपये की धन-राशि निश्चित कर दी गई थी। परन्तु आज्ञा-पत्र में इस धन को व्यय करने की विधि का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था; परिणामतः शिक्षा के प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ।

विवाद के विषय

विवाद मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर था :—

१. उद्देश्य (Aim)— जन-साधारण के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय अथवा थोड़े से व्यक्तियों के लिए उच्च शिक्षा की।

२. लक्ष्य (Object)— प्राच्य ज्ञान का संरक्षण और विकास किया जाय अथवा पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों को प्रारम्भ करके उनकी उन्नति की जाय।

३. साधन (Agency)— शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार पर रखा जाय अथवा उसे व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ दिया जाय।

४. माध्यम (Medium)—'शिक्षा' संस्कृत, अरबी और फारसी भाषाओं द्वारा दी जाय अथवा देशी भाषाओं द्वारा या अंग्रेजी द्वारा।

१८१३ का आज्ञा-पत्र—१८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता दे दी गई, और भारतीय साहित्य एवं विज्ञानों के पुनरुत्थान के लिए प्रति वर्ष एक लाख रुपया व्यय किये जाने का निश्चय हुआ। इसी धारा ने अर्वाचीन भारतीय शिक्षा का शिलान्यास किया।

TEST QUESTIONS

1. Give a brief account of the proselytizing and educational activities of the East India Company from 1600 to 1765.
   १६०० से १७६५ तक ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के शिक्षा एवं धर्म-प्रचार के कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. *Discuss briefly the educational policy of the East India* Company between 1765 and 1813.
   १७६५ से १८१३ तक ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की शिक्षा-नीति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. "Charles Grant is described as the father of modern education in India." How far do you agree with this statement ?
   "चार्ल्स ग्रांट को भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?
4. "The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education." Discuss.
   "१८१३ का आज्ञा-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में परिवर्तन-बिन्दु माना जाता है।" विवेचना कीजिए।



शिक्षा की अनिश्चित नीति
(१८१३-१८३३)

प्रस्तावना

१८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा का भार कम्पनी पर आ गया था और भारतीय साहित्य एवं विज्ञानो के प्रसार के लिए एक लाख रुपये की धन-राशि निश्चित कर दी गई थी। परन्तु आज्ञा-पत्र मे इस धन को व्यय करने की विधि का स्पष्टीकरण नही किया गया था, परिणामतः शिक्षा के प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ।

विवाद के विषय

विवाद मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर था :—

१. उद्देश्य (Aim)— जन-साधारण के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय अथवा थोड़े से व्यक्तियो के लिए उच्च शिक्षा की।

२. लक्ष्य (Object)— प्राच्य ज्ञान का संरक्षण और विकास किया जाय अथवा पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानो को प्रारम्भ करके उनकी उन्नति की जाय।

३. साधन (Agency)— शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार पर रखा जाय अथवा उसे व्यक्तिगत प्रयासो पर छोड़ दिया जाय।

४. माध्यम (Medium)—'शिक्षा' संस्कृत, अरबी और फारसी भाषाओ द्वारा दी जाय अथवा देशी भाषाओ द्वारा या अंग्रेजी द्वारा।

इन प्रश्नो को लेकर देश में तीन दल बन गये :—

१. एक दल का कहना था कि संस्कृत, फारसी और अरबी को शिक्षा का माध्यम बनाकर पाश्चात्य विद्वानो और विचारो का भारत में प्रसार किया जाय। इसके समर्थको मे हेस्टिग्ज और मिन्टो की शिक्षा-नीति के अनुगामी थे। इनका जोर मुख्य रूप से बंगाल मे था।

२. कुछ लोगो का मत था कि देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। इनमे मद्रास का गवर्नर, मुनरो ओर वम्वई का गवर्नर, एल्फिस्टन प्रमुख थे।

३ कम्पनी के नवयुवक अधिकारी एवं मिशनरी इस विचार के थे कि अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाकर पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार किया जाय।

यहाँ यह लिख देना अनुपयुक्त न होगा कि इन दलो में केवल कम्पनी के ही कर्मचारी थे। भारतवासियो के मत का उस समय कोई मूल्य नही था।

संचालकों का शिक्षा-आदेश

उपर्युक्त विवाद का अन्त करने के अभिप्राय से कम्पनी के संचालको ने ३ जून, १८१४ को अपना प्रथम शिक्षा-आदेश जारी किया। १८१३ के आज्ञा-पत्र की शिक्षा-सम्बन्धी धारा का उल्लेख करते हुए संचालको ने लिखा—"यह धारा दो विभिन्न समस्यायें विचारार्थ उपस्थित करती है . प्रथम—भारतीय विद्वानो को प्रोत्साहन एवं साहित्य का पुनरुत्थान तथा प्रगति, द्वितीय—भारतीयो मे विज्ञानो का प्रचार तथा उन्नति।"[1] परन्तु इन दोनो उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए संचालको ने अंग्रेजी ढंग के विद्यालयो की स्थापना का विरोध किया तथा प्राच्य शिक्षा-प्रणाली पर बल दिया। संचालको ने लिखा .—"हम समझते हैं कि हम जिस विधि से विद्वान् हिन्दुओ को इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अपने समान विचारो का बना सकते हैं, वह यह है कि उन्हें अपनी चिरकालीन परम्परा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने दिया जाय और अपनी योग्यताओं को विकसित करने के लिए उन्हें प्रोत्साहन दिया जाय तथा इस प्रकार के प्रोत्साहन के लिए उन्हें सम्मान-सूचक उपाधियाँ और समय-समय पर आर्थिक सहायता दी जाय।"[2]

भारतीय शिक्षा-प्रणाली और साहित्य की सराहना करते हुए संचालकों ने लिखा :—"हमें विदित हुआ है कि संस्कृत भाषा मे आचार-शास्त्र एवं कानून के अनेक उत्तम ग्रन्थ हैं, जिनका अध्ययन उन भारतवासियो के लिए लाभप्रद हो सकता है; जिन्हें सरकारी न्याय-विभाग मे कार्य करने का अवसर प्राप्त होगा। ज्योतिष तथा

---

1. **Sharp** : *op. cit.*, pp. 23-34.
2. *Ibid.*

गणित के भी उत्तम ग्रन्थ है, जिनमे ज्यामिति और बीजगणित सम्मिलित है। इनसे यूरोपीय विज्ञानो की भले ही वृद्धि न हो, पर ये भारतवासियो एवं हमारे उन कर्मचारियो मे सम्पर्क स्थापित करेगे जो हमारी वेधशाला तथा इंजीनियरी-विभाग मे कार्य करते है। हमारा निश्चय है कि उन कर्मचारियो को—जो संस्कृत भाषा का अध्ययन करना चाहते हैं, उचित प्रोत्साहन दिया जाय।"[1]

सारांश मे, अपने शिक्षा-आदेश मे कम्पनी के संचालको ने केवल हिन्दू शिक्षा-व्यवस्था को प्रोत्साहित करने का विचार व्यक्त किया। उन्होने अंग्रेजी और मुस्लिम शिक्षा का कहीं उल्लेख भी नही किया। वस्तुत इस आदेश-पत्र को लिखते समय उन्होने अपने राजनैतिक हितो का ही ध्यान रखा। वे भारतीय विद्वानो को सम्मान-सूचक उपाधियाँ, थोडी-सी आर्थिक सहायता और भारतीयो से घनिष्ठता बढाने के लिए अपने कर्मचारियो को संस्कृत के अध्ययन के लिए प्रोत्साहन देने से अधिक कुछ नही करना चाहते थे। उनकी इस नीति से भारतीय शिक्षा मे प्रगति की आशा करना व्यर्थ था। "इस आदेश-पत्र से अधिक निराशाजनक लेख की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।"[2]

कम्पनी के उच्च अधिकारियो का मत

भाग्यवश कम्पनी के उच्च अधिकारी, संचालको के विचारो से सहमत नही हुए। उनका दृढ विश्वास था कि भारतीयो को शिक्षित करना इंगलैंड का कर्त्तव्य है। उदाहरणार्थ—भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज (Marquess of Hastings) ने २ अक्तूबर, १८१५ के अपने विवरण-पत्र मे प्रस्ताव किया कि एक लाख रुपए की धन-राशि को विद्यालयो के पुनरुद्धार एवं नवनिर्माण मे व्यय करके शिक्षा को जन-साधारण के लिए सुलभ बनाया जाय। हेस्टिंग्ज ने लिखा :—"अंग्रेजों के लिए यह श्रेय की बात होगी कि यह लाभदायक क्रान्ति उनके शासन-काल में हो। भारत की विशाल जनसंख्या के लिए शिक्षा के वरदानों का साधन होना एक ऊँची महत्त्वाकांक्षा है, जो हमारे देश को शोभा देती है।"[3] लार्ड हेस्टिंग्ज का दृढ विश्वास था कि भारतीय जनता को शिक्षित करके ही कम्पनी के शासन को सबल बनाया जा सकता है। शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिए उसने प्रस्ताव किया कि प्रत्येक जिले में दो स्कूल होने चाहिए—एक हिन्दुओं, और एक मुसलमानों के लिए।

सर चार्ल्स मेटकाफ (Sir Charles Metcalfe) के भारतीय शिक्षा-सम्बन्धी विचार और भी अधिक उदार थे। ५ सितम्बर, १८२२ को अपनी दिल्ली प्रदेश की

---

1. Sharp : *op. cit., pp. 23-24*

2. "A more disappointing document than this can be imagined."—*Nurullah and Naik : A History of Education in India*, p. 88.

3. Sharp : *op. cit., pp. 28-29.*

'राजस्व विज्ञप्ति' मे मेटकॉफ न लिखा —"भारतवासियो को शिक्षा देने के विरुद्ध तर्क दिये गये है, पर ऐसे तर्को पर ध्यान देना एक उदार सरकार के लिए महान् अयोग्यता की बात होगी। यदि हम अपने इस कर्तव्य को करेंगे, तो भविष्य म चाहे जो भी परिवतन हो, हम समस्त युगो म भारतवासियो की कृतज्ञता प्राप्त होगी। परन्तु यदि हम अपने स्वार्थ एव भावी सकटो के भय से अपनी प्रजा को अच्छी वातो से वचित रखेग, तो हम अपना राज्य बनाये रखने का कोई अधिकार नही होगा।"[1]

तत्कालीन इङ्गलैण्ड की सामाजिक दशा का प्रभाव

१६वी शताब्दी के प्रारम्भ म इङ्गलैण्ड की सामाजिक दशा म क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे, जैसे—दण्ड विधान म सुधार, दास-व्यापार का अन्त, प्रौढ शिक्षा को प्रोत्साहन और लन्दन विश्वविद्यालय का शिलान्यास। इस सुधारवादी भावना से भारत भी अछूता न वचा। कम्पनी के कर्मचारी एव सचालक अपने शिक्षा कर्तव्य के प्रति जागरूक हो गए, और १८२३ के उपरान्त विभिन्न प्रान्तो म राजकीय शिक्षा प्रयास दृष्टिगोचर होने लगे।

राजकीय शिक्षा-प्रयास (१८१३-१८३३)

बगाल

गवनर जनरल के १७ जुलाई, १८२३ के प्रस्तावानुसार—'जनता को अधिक उत्तम शिक्षा देने, उसमे लाभप्रद ज्ञान का प्रसार करने एव उसकी नैतिकता का उत्थान करने के लिए'[2] एक 'लोक शिक्षा-समिति (General Committee of Public Instruction) का निर्माण हुआ। एक लाख रुपये की धन राशि को व्यय करन का अधिकार भी इस समिति को दे दिया गया। समिति मे १० सदस्य थे। इनमे से अधिकाश प्राच्य-साहित्य के महान् प्रशसक थे। इनम एच० एच० विल्सन (H. H Wilson) और एच० टी० प्रिन्सेप (H T Prinsep) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८३३ तक इस समिति ने निम्नलिखित शिक्षा-काय किये —

१ कलकत्ता मदरसा एव बनारस सस्कृत कॉलिज का पुनगठन किया।

२ १८२४ मे प्राच्य शिक्षा के लिये कलकत्ता, आगरा और दिल्ली म कॉलेज स्थापित किये।

३ इसी वर्ष कलकत्ता शिक्षा प्रेस' का निर्माण किया।

४ सस्कृत, अरवी तथा फारसी के ग्रन्थ प्रकाशित किये।

५ यूरोप की विज्ञान सम्बन्धी अनेक पुस्तको का प्राच्य भाषाओ मे अनुवाद करा कर प्रकाशित किया।

---

1 Adam's *Reports*, p 406

2 Vakil . *op. cit*, p 55

६. इन पुस्तकों को पाठ्य-क्रम मे स्थान दिया।

७. प्राच्य भाषाओं के विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ दी।

समिति की प्राच्यवादी नीति का भारतवासियो ने स्वागत नही किया। उनमे राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हो चुका था। अपनी कूपमंडूकता का अन्त करने के लिये वे पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता समझ चुके थे। बंगाल मे राजा राममोहन राय अंग्रेजी-शिक्षा-प्रसार के लिये आन्दोलन कर रहे थे। ११ दिसम्बर, १८२३ को उन्होंने गवर्नर जनरल, लार्ड एम्हर्स्ट (Amherst) को एक प्रार्थना-पत्र भेजा। इसमे उन्होंने कलकत्ता मे प्रस्तावित संस्कृत कॉलेज की स्थापना का विरोध किया, और लिखा कि सरकार एक अधिक उदार एवं बुद्धिमत्तापूर्ण शिक्षा-पद्धति को प्रोत्साहित करे, जिसमे गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन शास्त्र, विज्ञान एवं अन्य लाभदायक विषय सम्मिलित हो। राजा राममोहन राय की प्रार्थना पर कोई ध्यान न देकर संस्कृत कॉलेज की योजना पूर्ण कर दी गई।

कम्पनी के सचालको से भी समिति की प्राच्यवादी नीति को समर्थन नही मिला। १८ फरवरी, १८२४ के अपने आदेश-पत्र मे उन्होंने लिखा कि समिति हिन्दू या मुस्लिम साहित्य की शिक्षा देने के लिये संस्थाएँ स्थापित करके, उस साहित्य की शिक्षा देना चाहती है, जिनका अधिकांश भाग निरर्थक है। उन्होंने समिति के कार्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया और आदेश दिया कि प्राच्य ज्ञान के स्थान पर पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान का प्रसार किया जाय। परिणामस्वरूप, समिति ने कलकत्ता मदरसा, कलकत्ता संस्कृत कॉलेज, बनारस संस्कृत कॉलेज एवं आगरा कॉलेज मे अंग्रेजी कक्षाओं का प्रबन्ध कर दिया और दिल्ली तथा बनारस मे जिला अंग्रेजी स्कूलो का निर्माण कराया, किन्तु इससे जनता की मांग पूर्ण न हुई।

बम्बई

१८१८ मे अन्तिम पेशवा की पराजय के उपरान्त बम्बई प्रेसीडैन्सी बनी, और १८१९ मे एल्फिन्स्टन वहां का गवर्नर नियुक्त हुआ। उसने पेशवा के ५ लाख रुपये के वार्षिक दक्षिणा फण्ड से १८२१ मे पूना संस्कृत कॉलेज का निर्माण किया। दक्षिण के प्रभावशाली ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिये यह एक चतुर राजनैतिक युक्ति थी। १८२३ तक शिक्षा की दिशा मे अन्य कोई कार्य नही किया गया। उस वर्ष 'बम्बई-भारतीय-शिक्षा-समिति' (Bombay Native Education Society) ने सरकार से शिक्षा-अनुदान की प्रार्थना की। फलतः १३ दिसम्बर, १८२३ को एल्फिन्स्टन ने अपना प्रसिद्ध शिक्षा-पत्र[1] लिखा, जिसमे उसने शिक्षा-प्रसार के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. "भारतीय विद्यालयो मे शिक्षण-विधि का सुधार एवं विद्यालयो की संख्या मे वृद्धि करना;

---

1. **Elphinstone's *Minute on Education*, Para 7.**

२. विद्यालयो के लिये पाठ्य-पुस्तकों का प्रबन्ध करना;
३. निम्न वर्ग के भारतीयो को शिक्षा से लाभ उठाने के लिये प्रोत्साहित करना,
४. यूरोपीय विज्ञानों एवं उच्च शिक्षा की शाखाओं की उन्नति करने के लिये विद्यालय स्थापित करना,
५ भारतीय भाषाओं मे नैतिक तथा भौतिक विज्ञान की पुस्तकें लिखवाने तथा प्रकाशित करवाने का प्रबन्ध करना,
६ ऐसे लोगों को अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने के लिये विद्यालय स्थापित करना, जो उसके उच्च अध्ययन एवं यूरोपीय अनुसन्धानों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसे साधन बनाने के इच्छुक हैं; एवं
७ ज्ञान की अन्तिम शाखाओं का अध्ययन करने के लिये भारतीयों को प्रोत्साहित करना।"

इस प्रकार एल्फिस्टन जनसाधारण की शिक्षा के पक्ष मे था। परन्तु उसने इस कार्य के लिये राजकीय एवं व्यक्तिगत प्रयासों मे सहयोग की आवश्यकता बताई, क्योकि केवल सरकार इस महान् उत्तरदायित्व का निर्वाह करने मे असमर्थ थी। जन-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये उसने दो सुझाव दिये—(१) सरकार द्वारा विद्यालयो का निर्माण, एवं (२) शिक्षा-समितियों को अनुदान। फलतः 'शिक्षा-अनुदान प्रणाली' (Grant-in-aid System) प्रारम्भ हुई और शिक्षा पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

एल्फिस्टन के विवरण-पत्र का उसकी कौंसिल के सदस्य, वार्डन (Warden) ने घोर विरोध किया। २३ दिसम्बर, १८२३ के अपने विवरण-पत्र मे उसने लिखा कि जन-साधारण को भारतीय भाषाओं द्वारा शिक्षा देने की अपेक्षा उच्च वर्ग के कुछ व्यक्तियों को अंग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षित करना अधिक उत्तम होगा। वार्डन के इस विरोध के फलस्वरूप कुछ समय बाद 'ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर विवाद' (Anglo-Vernacular Controversy) प्रारम्भ हो गया। कम्पनी के संचालको ने भी एल्फिस्टन के सब प्रस्तावो को मान्यता नही दी। केवल 'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति' को ६०० रुपये मासिक का अनुदान दिया गया, और उसे बम्बई प्रान्त मे शिक्षा का संगठन करने के लिये सरकारी संस्था मान लिया गया। इस कूटनीति को अपना कर कम्पनी ने शिक्षा का भार अपने ऊपर न आने दिया और १८३३ तक स्वयं शिक्षा के लिए कुछ न किया।

मद्रास

मुनरो द्वारा मद्रास प्रान्त मे शिक्षा की जांच का वर्णन अध्याय ४ मे किया जा चुका है। इस जाँच से उसने यह निष्कर्ष निकाला था कि शिक्षा की अवनति के

कारण थे—शिक्षकों की अयोग्यता, व्यक्तियों की निर्धनता एवं सरकार की अवहेलना। इन कारणों को दूर करने के लिए उसने १० मई, १८२६ के अपने विवरण-पत्र में प्रस्ताव किया कि प्रान्त के २० जिलों में उच्च कोटि के दो-दो स्कूल—एक हिन्दुओं और एक मुसलमानों के लिए—अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए, ३०० तहसीलों में एक-एक वर्नाक्यूलर स्कूल एवं शिक्षकों की शिक्षा के लिए एक प्रशिक्षण-स्कूल खोला जाय। उसने शिक्षकों को अधिक वेतन देने एवं पाठ्य-पुस्तकें छापे जाने की सिफारिश की। अपनी इस शिक्षा-योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसने कम्पनी के संचालकों से ४८ हजार रुपये की वार्षिक सहायता माँगी। १८२८ में संचालकों ने अपनी स्वीकृति दे दी, पर मद्रास का दुर्भाग्य था कि १८२७ में मुनरो की मृत्यु हो चुकी थी।

इस योजना को पूर्ण करने का भार 'लोक-शिक्षा-समिति' पर पड़ा, जिसका निर्माण १८२६ में हो चुका था। इसके सदस्यों में मुनरो की कल्पना एवं सद्भावना का अभाव था। फलत: योजना की प्रगति निराशाजनक रही। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए मद्रास में एक नार्मल स्कूल तो खुल गया, पर १८३० तक केवल ६१ तहसीली स्कूल एवं ६ जिला स्कूल स्थापित हुए।[1] इन्हें भी शिक्षकों के अल्प वेतन तथा उचित निरीक्षण न होने के कारण पर्याप्त सफलता न मिली।

मुनरो की शिक्षा-योजना को कुछ पाश्चात्य लेखकों ने दोषपूर्ण बताया है। हैम्पटन के अनुसार मुनरो जन-शिक्षा को संगठित करने के कार्य की विशालता को नहीं समझ सका एवं जो धन उसने संचालकों से माँगा, वह पूर्णतया अपर्याप्त था।[2] आरबथनॉट का मत था कि मुनरो की "योजना का उद्देश्य—सार रूप में दोषपूर्ण था और असफलता अवश्यम्भावी थी।"[3] यदि इन दोषों को स्वीकार कर लिया जाय, तो भी यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मुनरो की योजना में प्रतिपादित विचार उस युग के न होकर बहुत आगे के थे। जिस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने इस योजना की रूपरेखा बनाई थी, वह अति महान् था और आज भी वह मुनरो को गौरवान्वित कर रहा है। "हमें भारत पर अपना शासन अल्प-काल के लिए न समझ कर उस समय तक के लिए स्थायी समझना चाहिये, जब तक कि *भारतवासी भविष्य में अपने अन्धविश्वासों एवं पूर्व द्वेषों का परित्याग न कर दें,* तथा अपने लिए व्यवस्थित सरकार के संगठन, संचालन तथा संरक्षण के लिए पर्याप्त रूप से शिक्षित न हो जायें। जब कभी ऐसा समय आए, तब दोनों देशों के लिये

---

1. **J. M. Sen** . *op cit.*, p. 99.

2. **H. V. Hampton** : *Biographical Studies in Modern Indian Education*, p. 142.

3. **Alexander Arbuthnot** : *Major General Sir Thomas Munro—A Memoir*, p. 154.

सबसे अधिक हितकर यही होगा कि भारत पर से ब्रिटिश सत्ता को धीरे-धीरे हटा लिया जाय।"[1]

धन एवं राजसत्ता के मद से उन्मत्त व्यापारियों का ऐसी शिक्षा से क्या प्रयोजन हो सकता था, जिससे भारत की सोने की चिड़िया उनके हाथ से निकल जाय। शिक्षा तो वे केवल इसलिये देना चाहते थे, जिसमे कि एक ऐसा वर्ग तैयार हो जाय, जो उनके शोषण-कार्य मे उन्हे सहायता दे सके। इसके लिये उच्च वर्ग ही उपयुक्त था। बंगाल मे उन्ही की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। वैसा ही मद्रास मे होना आवश्यक था। परिणामतः अभी मुनरो की योजना पूर्ण रूप से कार्यान्वित भी न हो पाई थी कि संचालको ने २९ सितम्बर, १८३० के अपने आदेश-पत्र मे लिख भेजा कि मद्रास मे प्राथमिक शिक्षा का कार्य पर्याप्त हो गया है, जबकि उच्च शिक्षा के लिये किसी प्रकार का प्रयत्न नही किया गया है। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मद्रास की सरकार अपनी शिक्षा-नीति मे परिवर्तन करे। इस आदेश-पत्र ने मद्रास मे जन-शिक्षा की प्रगति पर रोक लगा दी।

कम्पनी की शिक्षा-नीति की समीक्षा

१८१३ के आज्ञा-पत्र के फलस्वरूप विवादो के उठ खड़े होने से इस काल मे भारतीयो को शिक्षित करने के लिये किसी निश्चित नीति का अनुसरण नही किया गया। एल्फिस्टन और मुनरो, भारतीय भाषाओ की उन्नति, हेस्टिंग्ज और मिन्टो के समर्थक तथा बंगाल की 'लोक-शिक्षा-समिति' अरबी, फारसी और संस्कृत के प्रोत्साहन, एवं वार्डन—अंग्रेज़ी भाषा द्वारा उच्च वर्गों की शिक्षा के पक्ष मे था। कम्पनी के संचालको की शिक्षा-नीति मे भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। १८१४ मे उन्होने प्राच्य शिक्षा-प्रणाली एवं संस्कृत के अध्ययन पर बल दिया; १८२४ मे पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान के प्रसार का प्रस्ताव किया; १८२८ मे मुनरो की भारतीय भाषाओ द्वारा जन-शिक्षा की योजना स्वीकार की, और १८३० मे इस कार्य पर अंकुश लगा दिया। यदि वे अपनी शिक्षा-नीति का स्पष्टीकरण कर देते, तो कम्पनी के अधिकारियो का मतभेद समाप्त हो जाता और शिक्षा की प्रगति के लिये ठोस कदम उठाना सम्भव हो जाता। परन्तु इसका दोषारोपण संचालको पर करना उचित न होगा। वस्तुत. अपने कर्मचारियो की प्रत्येक शिक्षा-नीति का समर्थन एवं खंडन करके, वे 'प्रयत्न एवं भूल' (Trial & Error) की साधारण विधि का प्रयोग कर रहे थे, जिससे कि वे अन्त मे एक उचित शिक्षा-नीति का प्रतिपादन कर सकें।

मिशनरी शिक्षा-प्रयास (१८१३-३३)

१८१३ के आज्ञा-पत्र ने मिशनरियो को भारत मे धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता

---

1. G. R. Gleig : *Life of Sir Thomas Munro*, p. 316.

दे दी थी। फलतः थोड़े ही समय में प्रायः सम्पूर्ण देश में मिशनरियों का जाल बिछ गया। उनका प्रमुख उद्देश्य—अपने धर्म का प्रचार करना एवं भारतवासियों को अपने धर्म में दीक्षित करना था। शिक्षा को साधन बनाकर वे भारतीयों से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। उन्हें अपने धर्म-प्रचार-कार्य के लिये शिक्षित भारतीयों की आवश्यकता भी थी। अतः मिशनरियों के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया। प्रारम्भ में उन्होंने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया और इन भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकों, शब्द-कोशों, व्याकरणों आदि की रचना की। उनके इस कार्य ने भारत में शिक्षा-प्रसार में महान् योग दिया। उनके द्वारा विभिन्न प्रान्तों में किये गये शिक्षा-कार्य पर नीचे प्रकाश डाला जा रहा है :—

बंगाल

हम अध्याय ६ में सीरामपुर में बेप्टिस्ट मिशनरियों के कार्य का वर्णन कर चुके हैं। इन मिशनरियों ने १८१७ में 'सीरामपुर कॉलेज' का शिलान्यास किया। इनका प्रत्यक्ष उद्देश्य—भारतीयों को पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा देना था, पर वास्तव में इसमें भारतीय तथा एँग्लो-इण्डियन युवकों को धर्म-प्रचार की दीक्षा दी जाती थी। १८१८ में 'समाचार-दर्पण' नामक बँगला भाषा का प्रथम समाचार-पत्र प्रकाशित किया गया।

बंगाल में 'लन्दन मिशनरी सोसायटी' एवं 'चर्च मिशनरी सोसायटी' भी कार्य कर रही थी। प्रथम ने १८१४ से १८१८ तक चिन्सुरा और उसके समीपवर्ती प्रदेश में ३६ स्कूल खोले, जिनमें ३,००० बच्चे पढ़ते थे। द्वितीय ने वर्दवान और उसके आस-पास १० वर्नाक्यूलर स्कूल खोले, जिनमें १,००० बच्चे पढ़ते थे। बरहम-पुर और भवानीपुर में स्कूलों का निर्माण हुआ। इन दोनों सोसायटियों ने बालिकाओं की शिक्षा के लिए भी १८२४ तक २७ स्कूल खोले, जिनमें लगभग ५०० लड़कियाँ पढ़ती थीं। १८२० में शिवपुर में 'बिशप-कालेज' (Bishop's College) का निर्माण हुआ।

१८३० में अलेक्जेण्डर डफ (Alexander Duff) नामक स्कॉटलैण्ड के एक २४ वर्षीय तरुण मिशनरी के बंगाल आने से वहाँ के धर्म-प्रचारकों के कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। वह कहता था कि भारतवासियों को केवल 'पश्चिम और विशेष रूप से बाइबिल' की कृपा से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। उसने १८३९ में कलकत्ता में 'स्काटिश चर्च कॉलेज' स्थापित किया, जिसमें अंग्रेजी के माध्यम द्वारा पाश्चात्य शिक्षा दी जाती थी तथा बाइबिल का पढ़ना अनिवार्य था।

बम्बई

बंगाल की अपेक्षा बम्बई में मिशनरियों का शिक्षा-कार्य कम व्यापक था। अमेरिकन मिशन ने १८१५ में बम्बई में लड़कों के लिये एक स्कूल एवं १८२

से १८२६ तक लडकिया के लिये ९ स्कूल, तथा १८३१ मे अहमदनगर मे लडकिया के लिये २ स्कूल खोले।[1] डा० विल्सन (Wilson) ने १८२९ मे बम्बई मे लडकिया के लिये ६ स्कूल एवं १८३२ मे लडका के लिये एक स्कूल स्थापित किया। 'आयरिश प्रेस्विटेरियन मिशनरी सोसायटी' ने काठियावाड मे अंग्रेज़ी एवं वर्नाक्यूलर स्कूला का निर्माण किया। 'चर्च मिशनरी सोसायटी' ने बम्बई, थाना, वेसीन एवं नासिक मे लडको एवं लडकियो के लिये स्कूल खोले।

मद्रास

१८१७ मे हो (Hough) ने इङ्गलैण्ड की 'धर्म-प्रचारक-समिति' की सहायता से मद्रास मे ९ स्कूल खोले। 'वेसलियन मिशन' ने १८१९ एवं १८२३ मे मद्रास तथा नागापट्टम मे दो-दो स्कूला की स्थापना की। 'चर्च मिशनरी-सोसाइटी' ने मद्रास प्रान्त मे १०७ स्कूलो का प्रबन्ध किया, जिनम २,८८२ विद्यार्थी पढ़ते थे। इसके अतिरिक्त, मिशनरियो ने तिनावेली, कुम्भकोणम्, चित्तूर, सलम, कोयम्बटूर, विशाखापट्टम, कडपा एव बिल्लारी मे भी स्कूल खोले।

अन्य स्थान

मिशनरी सोसायटियो ने १८२३ तक अजमेर मे ४ स्कूल 'लकास्ट्रियन प्रणाली' (Lancastrian System) पर खोले। इसी प्रकार मिशनरियो ने आगरा, मेरठ, बनारस, आजमगढ, जौनपुर, बर्दवान, मथुरा, लुधियाना आदि स्थानो मे भी स्कूला का निर्माण किया।

मिशनरियों का शिक्षा-कार्य : एक टिप्पणी

१८१३ से १८३३ तक मिशनरियो ने अनेक शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित की जिनमे अधिकाश सख्या प्रायमिक स्कूलो की थी। इन स्कूलो की विशेषताएँ निम्न-लिखित थी —

१ शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषाएँ थी।
२ बाइबिल की शिक्षा अनिवार्य थी।
३. पाठ्य क्रम विस्तृत था एवं उसम व्याकरण, इतिहास तथा भूगोल सम्मिलित थे। पाठ्य-पुस्तकें छपी हुई थी।
४ स्कूल नियमित रूप से चलते थे, शिक्षा के घटे नियत थे, एव रविवार को साप्ताहिक अवकाश रहता था।
५ अधिकाश स्कूला मे विभिन्न कक्षाओ के विद्यार्थियो को आधुनिक ढग पर विभिन्न शिक्षको द्वारा शिक्षा दी जाती थी।

---

1 J A. Richey : *Selections from Educational Records*, Vol II, p 50.

इस प्रकार मिशनरियों ने शिक्षा के संगठन को एक नवीन रूप प्रदान किया। इस देश की शिक्षा-पद्धति पर उसका प्रभाव पड़ा एवं मिशन स्कूलों के समान आधुनिक ढंग के विद्यालयों की स्थापना प्रारम्भ हो गई।

गैर-मिशनरी शिक्षा-प्रयास (१८१३–३३)

बंगाल

शिक्षा के प्रति मिशनरियों के उत्साह का प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ा। इनमें राजा राममोहन राय, डेविड हेयर (David Hare) एवं सर एडवर्ड ईस्ट (Sir Edward East) उल्लेखनीय हैं।

राजा राममोहन राय अपने युग के प्राच्य भाषाओं के सबसे बड़े ज्ञाताओं में से एक थे, पर उनका विश्वास था कि भारत की प्रगति केवल उदार शिक्षा के द्वारा होगी, जिसमें पाश्चात्य विद्या तथा ज्ञान की सभी शाखाओं के शिक्षण की व्यवस्था हो। वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने भारत में अंग्रेजी भाषा तथा पश्चिमी विज्ञानों के अध्ययन का समर्थन और आरम्भ किया। नन्दलाल चटर्जी के अनुसार, "राजा राममोहन राय अविनष्ट भूतकाल तथा उदित हुए भविष्य, स्थिर अनुदारता तथा क्रान्तिकारी सुधार, अन्ध-परम्परागत पृथक्ता तथा प्रगतिशील एकता के मध्य मानव-सम्बन्ध स्थापित करने वाले थे।" संक्षेप में, वे प्रतिक्रिया तथा प्रगति के मध्य-बिन्दु और प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति में सामंजस्य तथा समन्वय स्थापित करने वाले थे। पाश्चात्य शिक्षा, ज्ञान तथा विज्ञानों को प्रोत्साहित करके भारत में नव-जागरण प्रारम्भ करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है।

राजा राममोहन राय का मित्र डेविड हेयर कलकत्ता का एक धनी घड़ीसाज था। उसका विश्वास था कि हिन्दू-समाज के पुनरुत्थान के लिये अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान आवश्यक है। इन दोनों मित्रों को अपने स्वप्न को साकार बनाने में बंगाल के मुख्य न्यायाधीश हाइड ईस्ट से बहुत सहयोग मिला। १४ मार्च, १८१६ को हाइड ईस्ट के निवास-स्थान पर एक सार्वजनिक सभा की गई। इसमें "सम्मानित हिन्दुओं के पुत्रों को अंग्रेजी की उत्तम शिक्षा देने के लिये" एक हिन्दू-कालेज की स्थापना पर विचार-विमर्श हुआ और तत्काल ही लगभग ५० हजार रुपया एकत्र हो गया।

२० जनवरी, १८१७ को इस कॉलेज का शिलान्यास हुआ। पाश्चात्य पद्धति पर उच्च शिक्षा देने के लिये यह प्रथम कालेज था, जिसका किसी धर्म-विशेष से सम्बन्ध नहीं था। इसमें अंग्रेजी, नीतिशास्त्र, व्याकरण, बंगला, इतिहास, भूगोल, गणित और ज्योतिष की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा फारसी को स्थान न देने से विद्यार्थियों में अपनी संस्कृति के प्रति स्वाभाविक घृणा उत्पन्न हो गई तथा प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के सम्मिश्रण का अवसर भी नष्ट हो गया।

शिक्षा-प्रसार के लिए अन्य कार्य भी हुए। १८१७ मे भारतीयो मे प्राथमिक ज्ञान का प्रसार करने के लिए 'कलकत्ता स्कूल-पुस्तक-समिति' की स्थापना हुई। इस समिति ने १८२१ तक किशोर-साहित्य एवं पाठ्य-पुस्तको की १,२६,४४६ प्रतियाँ बिना मूल्य या नाममात्र के मूल्य पर वितरित की। १८१९ मे 'कलकत्ता स्कूल-समिति' की स्थापना—कलकत्ता एव उसके समीपवर्ती स्थानो मे स्कूलो का निर्माण करने के लिए हुई। १८२१ तक इस समिति ने ११५ प्राइमरी स्कूल स्थापित किये एव विद्यार्थियो के लिए पुस्तको का प्रवन्ध किया।

बम्बई

बम्बई मे भी शिक्षा-प्रसार की दिशा मे व्यक्तिगत प्रयास किये गये। १८१५ मे 'चर्च ऑफ इंगलैंड' के सदस्यो ने 'बम्बई शिक्षा-समिति' की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य—ऐंग्लो-इण्डियन एव यूरोपियन बच्चो को शिक्षा देना था। इस समिति द्वारा स्थापित किये गये स्कूलो मे भारतीय बच्चो के वर्जित न होने एवं धार्मिक शिक्षा के वैकल्पिक होने के कारण अनेक हिन्दू, मुसलमान तथा पारसी छात्र उनमे पढने लगे। समिति ने भारतीय बच्चो के लिए भी १८२० तक ४ स्कूल खोले, जिनमे से २ बम्बई मे, १ गिरगाँव मे, और १ मजगाँव मे था। १८२० मे एल्फिस्टन के सभापतित्व मे इस समिति ने 'भारतीय शिक्षालय एवं पाठ्य-पुस्तक समिति' का निर्माण किया। १८२२ मे इस नवनिर्मित समिति का पृथक् अस्तित्व हो गया, और १८२७ मे यह 'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति' के नाम से कार्य करने लगी। यह समिति प्रान्तीय देशी शिक्षा-व्यवस्था की जाँच करके इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उसमे पुस्तको, उचित शिक्षण-विधियो, शिक्षको तथा धन का अभाव था। अत इस समिति ने 'बम्बई-शिक्षा-समिति' से सिफारिश की कि पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की जायँ तथा ६ बुद्धिमान भारतीयो को मराठी, गुजराती, कन्नड एवं उर्दू भाषाओ मे दीक्षित करके स्कूलो के निरीक्षण के लिये नियुक्त किया जाय।

योजना को पूर्ण करने के लिये 'बम्बई शिक्षा-समिति' ने सरकार से आर्थिक सहायता माँगी। इस पर एल्फिस्टन ने अपना शिक्षा-विवरण-पत्र प्रस्तुत किया। फलस्वरूप 'बम्बई शिक्षा-समिति' को ६०० रुपये मासिक अनुदान दिया गया और पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन का भार सरकार ने अपने ऊपर ले लिया। सहायता पाकर समिति के शिक्षा-प्रसार-कार्य की गति तीव्र हो गई। १८२६ मे उसने कोकण एवं गुजरात के राजकीय प्राइमरी स्कूल के लिये २४ दीक्षित अध्यापक दिये, चिकित्सा तथा इंजीनियरी की कक्षाएँ खोली; अनेक प्राइमरी स्कूल तथा ४ अंग्रेजी स्कूल—बम्बई, थाना, पनवल एवं पूना मे स्थापित किय, तथा १८३२ तक २ लाख रुपये व्यय करके लगभग ५० हजार पुस्तकें प्रकाशित की।[1]

1. **Bhagwan Dayal :** *op. cit.*, **p. 60.**

मद्रास

इस प्रान्त में शिक्षा के लिये व्यक्तिगत प्रयास बहुत ही कम हुआ। बंगलौर के अंग्रेजी स्कूल को मैसूर के राजा से ३५० रुपये की वार्षिक सहायता मिलती थी। 'मद्रास-शिक्षालय समिति' को सरकार ६ हज़ार रुपये वार्षिक अनुदान देती थी। पच्यप्पा मुदालियर (Pachayappa Mudaliar) नामक एक धनी हिन्दू ने अपनी मृत्यु के पश्चात् ४ लाख रुपये की सम्पत्ति दान के लिये छोड़ी। इसका उपयोग निर्धन विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी, विज्ञान, तामिल और तैलगू की नि शुल्क शिक्षा देने के लिये मद्रास में १८४२ में एक स्कूल खोलकर किया गया।[1]

उत्तर-प्रदेश एवं दिल्ली

उत्तर-प्रदेश एवं दिल्ली के कुछ दानवीर अपने शिक्षा-कार्य के लिए चिर-स्मरणीय रहेंगे। १८१८ में बनारस के एक धनी बंगाली, जयनारायण घोषाल से प्राप्त २२ हज़ार रुपये से 'जयनारायण स्कूल' खोला गया। इसमें हिन्दू और मुसलमान विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी, फारसी, हिन्दुस्तानी एवं बंगला की शिक्षा दी जाती थी। निर्धन विद्यार्थियों के लिये नि शुल्क शिक्षा, छात्रवृत्तियाँ, भोजन तथा वस्त्रों का प्रबन्ध था। १८२५ में जयनारायण घोषाल के पुत्र ने इस स्कूल को ९९ हज़ार रुपये दान-स्वरूप और दिये। १८२४ में पंडित गङ्गाधर शास्त्री द्वारा दान दी गई डेढ लाख रुपये की सम्पत्ति से आगरा के संस्कृत कॉलेज का 'आगरा कॉलेज' के नाम से पुनर्संगठन किया गया। दिल्ली में 'भूमि-कर बोर्ड' के सदस्य डब्ल्यू० फ्रेज़र (W. Fraser) ने ज़मीदारों एवं कृषकों के बच्चों के लिये ४ स्कूल खोले। १८९९ में नवाब इस्लाम-उद-दौला ने दिल्ली कॉलेज को १ लाख ७० हज़ार रुपये दान दिये।

१८३३ का आज्ञा-पत्र

१८३३ में कम्पनी के आज्ञा-पत्र का पुन. शोधन हुआ। इसमें भारतीयों के सुख-समृद्धि को बढाने के लिये एक भी परोपकारी धारा नहीं जोड़ी गई। परन्तु १ लाख रुपये की धन-राशि को बढ़ाकर दस गुना कर दिया गया, क्योंकि उस समय भारत के मानचित्र में एक विस्तृत भू-भाग लाल रंग से रंगा जा चुका था। इस आज्ञा-पत्र की मुख्य बातें निम्नलिखित थी —

१. भारत के सिंहद्वार समस्त देशों के मिशनरियों के लिए खुले रहेंगे।

२. बङ्गाल की सरकार का प्रभुत्व अन्य प्रान्तों की सरकारों पर होगा। बङ्गाल का गवर्नर-जनरल अन्य प्रान्तीय सरकारों से अपनी नीतियों का पालन करा सकेगा।

३. धर्म, वंश एवं वर्ण के आधार पर कोई भारतीय कम्पनी की नौकरी के लिये अयोग्य न ठहराया जायगा।

---

1. B. D. Basu : *op. cit.*, pp. 51-52.
2 S. N. Mukerji, *History of Education in India*, p. 61.

४. गवर्नर-जनरल की कौंसिल मे एक कानून सदस्य की वृद्धि होगी। (इस पद को सर्वप्रथम लार्ड मैकाले (Macaulay) ने ग्रहण किया, जिसने भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया।)

सारांश

शिक्षा-सम्बन्धी विवाद—१८१३ के आज्ञा-पत्र मे १ लाख रुपय की धनराशि को व्यय करने की विधि का स्पष्टीकरण न होने के कारण विवाद उठ खडा हुआ। विवाद के विषय थे—(१) जनसाधारण को प्राथमिक शिक्षा दी जाय या उच्च वर्गो को उच्च-शिक्षा, (२) प्राच्य ज्ञान की अथवा पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान की उन्नति की जाय, (३) शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार पर हो या अन्य व्यक्तियों पर, (४) शिक्षा का माध्यम—सस्कृत, अरबी एवं फारसी अथवा देशी भाषाएँ या अंग्रेजी हो।

इन प्रश्नो को लेकर तीन दल बने पहला—संस्कृत, फारसी तथा अरबी को, दूसरा—देशी भाषाओ को, और तीसरा—अग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष मे था। कम्पनी के संचालक भारतीय साहित्य एवं शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहन देना चाहते थे। सचालक, कम्पनी के कर्मचारियो की शिक्षा-नीतियो का समय-समय पर समर्थन तथा खण्डन करते रहे। इन सब कारणो मे शिक्षा के लिये राजकीय प्रयास बहुत ही कम हुए।

राजकीय शिक्षा-प्रयास—बङ्गाल म 'लोक-शिक्षा-समिति' ने प्राच्य-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये कलकत्ता, आगरा एवं दिल्ली मे कॉलेज खोले। इसके उप-रान्त सचालको के आदेशानुसार इनमे अंग्रेजी की कक्षाएँ खोल दी गई। पूना मे सस्कृत कॉलेज का निर्माण हुआ। मद्रास मे १ नार्मल स्कूल, ६१ तहसीली स्कूल और ६ जिला स्कूल खुले।

मिशनरी शिक्षा-प्रयास—बङ्गाल मे 'वेप्टिस्ट मिशनरियो' ने 'सीरामपुर 'कॉलेज', 'लन्दन मिशनरी सोसायटी' एवं 'चर्च मिशनरी सोसायटी' ने बालको एवं बालिकाओ के लिये स्कूल खोले और 'डफ' ने 'स्कॉटिश चर्च कॉलेज' खोला। बम्बई मे 'अमेरिकन मिशन', 'आयरिश प्रस्बिटेरियन मिशनरी सोसाइटी', 'चर्च मिशनरी-सोसाइटी' एवं विल्सन ने लडको और लडकियो के लिये स्कूलो का प्रबन्ध किया। मद्रास म हो, 'वेसलियन मिशन' तथा 'चर्च मिशनरी सोसायटी' ने स्कूलो का निर्माण किया।

गैर-मिशनरी शिक्षा-प्रयास—बङ्गाल मे राजा राममोहन राय, डेविड हेयर और हाइड ईस्ट के प्रयास से 'हिन्दू कॉलेज' का शिलान्यास हुआ। 'कलकत्ता-स्कूल-पुस्तक समिति' एव 'कलकत्ता-स्कूल-समिति' ने शिक्षा को लोकप्रिय बनाया। बम्बई मे 'बम्बई शिक्षा-समिति' के प्रयत्नो के फलस्वरूप अध्यापक-प्रशिक्षण एव पुस्तक-प्रकाशन का कार्य हुआ। समिति ने प्राइमरी स्कूल तथा चिकित्सा एवं इजीनियरी की कक्षाएँ खोली। मद्रास म मैसूर का राजा बगलौर के स्कूल का आर्थिक सहायता

दता था। उत्तर भारत एवं हिन्दी ने दान ने आन्त धन से स्कूल तथा कालेजों का निर्माण हुआ।

१८३३ का आज्ञा-पत्र—इस आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा के लिये १० लाख रुपये की धनराशि निश्चित की गई। गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक कानून सदस्य बढ़ा दिया गया। इस पद को लार्ड मैकाले ने ग्रहण किया जिसने शिक्षा के इतिहास में नवीन अध्याय प्रारम्भ किया।

TEST QUESTIONS

1 Give a brief account of the main issues round which controversies arose from 1813 to 1833
१८१३ से १८३३ तक जिन प्रमुख विषयों पर विवाद हुए—उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2 How far was the vagueness of the Charter Act of 1813 responsible for the controversies that arose between 1813 and 1833?
१८१३ से १८३३ तक जो विवाद हुए—उनके लिये १८१३ के आज्ञा-पत्र की अस्पष्टता कहाँ तक उत्तरदायी थी?

3 Discuss briefly the official educational enterprise in India between 1813 and 1833
१८१३ से १८३३ तक राजकीय शिक्षा प्रयास का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

८

प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद
और
निस्यन्दन सिद्धान्त
(१८३३–१८५३)

प्रस्तावना

हम अध्याय ७ मे इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि भारतीयो की शिक्षा के सम्बन्ध मे कम्पनी के अधिकारियो मे मतभेद था। इस प्रश्न को लेकर दो प्रमुख दल उत्पन्न हो गये थे—प्राच्यवादी (Orientalists) एवं पाश्चात्यवादी (Occidentalists or Anglicists)।

१. प्राच्यवादी . *Orientalists*

इस दल मे कम्पनी के पुराने अधिकारी थे। सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्ज् ने 'कलकत्ता मदरसा' स्थापित करके प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त किया था। इसी नीति के अनुसार डंकन ने 'बनारस संस्कृत कॉलेज' का निर्माण किया था। मिन्टो ने भी इसी नीति का समर्थन किया था। बंगाल की 'लोक-शिक्षा-समिति' मे प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का बहुमत था। इनमे बंगाल के शिक्षा-सचिव एवं प्राच्यवादी दल के नेता एच० टी० प्रिन्सेप तथा समिति के मन्त्री एच० एच० विल्सन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार १ लाख रुपये की धनराशि को व्यय करने का अधिकार इसी समिति को प्राप्त था। समिति मे प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का बहुमत होने के कारण प्राच्य-शिक्षा एवं साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिये कॉलेजो का निर्माण किया गया था, विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ दी गई थी, एवं प्राच्य भाषाओं के ग्रन्थ प्रकाशित किये गये थे। वस्तुत कूटनीति-परायण प्राच्यवादी—संस्कृत, अरबी एवं फारसी साहित्य पर आधारित

शिक्षा देकर भारतीयो को जातियो एवं धर्मों मे विभक्त रखना चाहते थे—जिससे कि नवनिर्मित ब्रिटिश राज्य को क्षति न पहुँचे। प्रिन्सेप का मत था कि भारतीय अग्रेजी भाषा पर अधिकार नही प्राप्त कर सकते है। विल्सन नही चाहता था कि भारतीय अग्रेजी पढकर उसके देशवासियो के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर एक धरातल पर खडे हो सकें।[1] कुछ प्राच्यवादियो का मत था कि पाश्चात्य ज्ञान एव विचारो के सम्पर्क म आने से प्राचीन भारतीय सस्कृति नष्ट हो जायगी। उनका यह भी कहना था कि भारतीय साहित्य म ज्ञान की ऐसी अपार निधि है कि उसका अध्ययन यूरोप-निवासियो के लिये भी आवश्यक है। इस प्रकार के तर्क देकर प्राच्यवादियो ने प्राचीन संस्कृति, साहित्य एवं शिक्षा को सुरक्षित रखना भारतीयो के लिये हितकर बताया।

२. पाश्चात्यवादी Occidentalists

इस दल मे कम्पनी के नवयुवक अधिकारी एव मिशनरी सम्मिलित थे। उनका कथन था कि प्राच्य शिक्षा-पद्धति मरणासन्न है और उसको पुनर्जीवित करना असभव है। उनका मत था कि—अरबी और फारसी एव सस्कृत-साहित्य मे रूढिवादी एव सकुचित विचारो के अतिरिक्त किसी भी लाभप्रद ज्ञान की खोज करना व्यर्थ है। यूरोप मे विज्ञान के अध्ययन के कारण औद्योगिक क्राति हो रही थी और नवीन आविष्कार किये जा रहे थे। अत प्राच्यवादी भारत की प्रगति के लिए अग्रेजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य विचारो के प्रसार के पक्ष मे थे। इसमे भी एक राजनैतिक चाल थी। अग्रेजो को अपने व्यापारिक तथा प्रशासकीय कार्यों के लिये 'बाबू-वर्ग' की आवश्यकता थी। इस निम्न वर्ग के लिए व्यक्तियो को इङ्गलैण्ड से न लाकर, भारतीयो को शिक्षित करके तैयार कर लेना ही अधिक विवेकपूर्ण कार्य था।

मैकॉले का विवरण-पत्र

जिस समय प्राच्य-पाश्चात्य विवाद (Oriental Occidental Controversy) उग्र रूप धारण कर रहा था, उस समय लार्ड मैकॉले (Macaulay) १० जून, १८३४ को गवर्नर-जनरल की कौंसिल के कानून-सदस्य के रूप मे भारत आया। वह अग्रेजी का प्रकाण्ड विद्वान् था और अपने लेखो तथा व्याख्यानो मे लोगो मे जीवन का सचार कर देता था। वह उस युग की उपज था, जब अग्रेज अपने साहित्य एव सस्कृति को सर्वश्रेष्ठ समझ कर विश्व-विजय के लिए अपना अभियान प्रारम्भ कर चुके थे। इन्ही विचारो से ओत-प्रोत मैकॉले ने भारत मे पदार्पण किया। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेंटिक (William Bentinck) ने उसे बगाल की 'लोक-शिक्षा-समिति' का प्रधान नियुक्त किया, और उससे १८१३ के आज्ञा-पत्र की शिक्षा-सम्बन्धी धारा की व्याख्या करने के लिये तथा १ लाख की धनराशि को व्यय करने के विषय म

---

1. B. D. Basu : *op. cit*, p. 58.

कानूनी सलाह मांगी। २ फरवरी, १८३५ को मैकॉले ने अपना विवरण-पत्र (Minute) गवर्नर-जनरल की कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया।

इस विवरण-पत्र में मैकॉले ने प्राच्य-साहित्य एवं शिक्षा का खण्डन तथा अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों की शिक्षा का समर्थन किया। हम इस विवरण-पत्र के अन्तर्गत तर्कों का नीचे अध्ययन करेंगे :—

मैकॉले ने सर्वप्रथम 'साहित्य' शब्द को लिया और कहा कि इसका अर्थ 'अंग्रेजी-साहित्य' से है, न कि संस्कृत, अरबी एवं फारसी के साहित्य से। इसी प्रकार 'भारतीय विद्वान्' से ऐसे विद्वान् का तात्पर्य है—जो लॉक (Locke) के दर्शन एवं मिल्टन (Milton) की कविता से परिचित हो।" फिर उसने प्राच्यवादियों के प्राच्य शिक्षा-संस्थाओं को प्रचलित रखने के विचार को लिया और लिखा :—"प्राच्य-शिक्षा-प्रणाली के प्रशंसकों का तर्क यदि हम मान लें कि वह ठीक है, तो वह परिवर्तनों के विरुद्ध निर्णायक होगा।"[1]

इसके पश्चात् मैकॉले ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को लिया। उसने देशी भाषाओं के विषय में लिखा :—"भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान-कोष का अभाव है, तथा वे इतनी अविकसित और गँवारू है कि जब तक उन्हें वाह्य-भंडार से सम्पन्न नहीं किया जायगा, तब तक उनमें सुगमता से किसी भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार मैकॉले ने देशी भाषाओं के माध्यम का प्रश्न, वाद-विवाद से अलग कर दिया। तत्पश्चात् उसने संस्कृत, अरबी आदि भाषाओं की अंग्रेजी से तुलना करते हुए निस्संकोच भाव से घोषित किया—"एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।"[2] इस विचार को व्यक्त करके मैकॉले ने केवल अपनी अज्ञानता का परिचय दिया। उसने संस्कृत एवं अरबी भाषाओं के अपार साहित्य का कभी अध्ययन नहीं किया था, फिर भी उसने अपना निर्णय दे दिया। उसने संस्कृत-साहित्य का परिहास करते हुए लिखा कि उसमें ऐसे 'चिकित्सा-सिद्धान्त' पढ़ाये जाते है, जिन पर 'अंग्रेज पशु-चिकित्सकों को लज्जा' आयेगी, ज्योतिष ऐसा है जिस पर 'स्कूलों की अंग्रेज बालिकाएँ हँस पड़ेंगी', इतिहास ऐसा है जिसमें '३० फीट लम्बे राजाओं का वर्णन' है, एवं भूगोल ऐसा है जिसमें 'शहद तथा मक्खन के समुद्रों का वर्णन' है।

---

1 "The admirers of the oriental system of Education have used another argument, which if we admit to be valid, is decisive against all change "—Macaulay's *Minute*

2. "A single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia."—*Ibid*

मैकॉले का प्रस्ताव था कि संस्कृत, अरबी तथा फारसी मे लिखे हुए कानूनो की अंग्रेजी मे संहिता (Code) बनवा दी जाय। उसका कथन था कि केवल कानूनों की जानकारी के लिये संस्कृत, अरबी तथा फारसी के शिक्षालयों पर धन व्यय करना मूर्खता है। अत उसने प्रस्ताव किया कि उनको बिल्कुल बन्द कर दिया जाय। अंग्रेजी भाषा की प्रशंसा मे आकाश-पाताल एक करते हुए मैकॉले ने लिखा —"यह भाषा पाश्चात्य भाषाओ मे भी सर्वोपरि है। जो इस भाषा को जानता है, वह सुगमता से उस विशाल ज्ञान-भंडार को प्राप्त कर सकता है, जिसे विश्व की सबसे बुद्धिमान जातियो ने रचा है।"[1]

अंग्रेजी के पक्ष मे मैकॉले ने निम्नलिखित तर्क दिये —

१ अंग्रेजी, शासकों की भाषा है एवं उच्च वर्ग के भारतीय इसे बोलते है।
२ सम्भव है कि अंग्रेजी पूर्वी समुद्रो मे व्यापार की भाषा बन जाय।
३ आस्ट्रेलिया एव अफ्रीका मे उन्नतिशील यूरोपियनो की भाषा—अंग्रेजी है और उनका सम्बन्ध भारत से बढ रहा है।
४. प्राच्य शिक्षा-संस्थाओ मे पढने वाले विद्यार्थियो को आर्थिक सहायता देनी पडती है, पर अंग्रेजी स्कूलो मे पढने के लिए विद्यार्थी स्वय फीस देने को तैयार है।
५. जिस प्रकार यूनानी एव लेटिन भाषाओं से इङ्गलैड मे पुनरुत्थान हुआ, उसी प्रकार अंग्रेजी से भारत मे होगा।
६. भारतवासी अंग्रेजी पढने के इच्छुक है—न कि अरबी, फारसी तथा संस्कृत।
७. भारतवासियो को अंग्रेजी का विद्वान् बनाया जा सकता है, और इसके लिये प्रयास करना सरकार का कर्तव्य है।

इस प्रकार मैकॉले ने अपने विवरण-पत्र मे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानो की शिक्षा पर बल दिया।

बैंटिक की स्वीकृति

मैकॉले के विवरण-पत्र पर प्राच्यवादी दल के नेता प्रिन्सेप का मत माँगा गया। १५ फरवरी, १८३५ के अपने परिपत्र मे प्रिन्सेप ने मैकॉले द्वारा प्रतिपादित सभी विचारो के अकाट्य उत्तर दिये तथा प्राच्य-साहित्य एवं शिक्षा के जीर्णोद्धार के लिये भी उच्च कोटि के तर्क उपस्थित किये। परन्तु प्रिन्सेप का परिपत्र (Prinsep's

1. "It stands pre-eminent even among the languages of the West. Whoever knows that language, has ready access to all the vast intellectual wealth which all the wisest nations of the earth have created."—Macaulay's *Minute*

Note) प्रगतिशील सुधारक एव अग्रेजी भाषा के समर्थक लार्ड विलियम बैंटिक को प्रभावित करने म असफल रहा। परिणामत बैंटिक ने मैकॉले के प्रस्तावो को स्वीकृति प्रदान करके, १८१३ म प्रारम्भ होने वाले शिक्षा-विवाद का अन्त कर दिया।

७ मार्च, १८३५ के आज्ञा-पत्र म बैंटिक ने शिक्षा-नीति की घोषणा की, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार थी —

१ ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य –भारतवासियो म यूरोपीय साहित्य एव विज्ञान का प्रचार करना है। अत केवल इसी कार्य क लिए शिक्षा-सम्बन्धी समस्त धनराशि व्यय की जायगी।

२ प्राच्य शिक्षालयो का बहिष्कार तथा उन्मूलन नही किया जायगा। उनके अध्यापको तथा छात्रो को पूर्ववत वेतन एव छात्रवृत्तिया दी जायेगी।

३ भविष्य मे प्राच्य विद्या सम्बन्धी पुस्तको का मुद्रण तथा प्रकाशन नही होगा, क्योकि इनम अत्यधिक धन व्यय किया जा चुका है।

४ इन सुधारो स बचा हुआ समस्त धन भारतीयो म अग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा अग्रजी साहित्य एव विज्ञान का प्रसार करने म व्यय किया जायगा।

भारत-सरकार की यह प्रथम घोषणा थी, जिसम अग्रेजी की शिक्षा-नीति का स्पष्टीकरण एव भारतीय शिक्षा के उद्देश्य, साधन तथा माध्यम को स्थायी रूप प्रदान किया गया था। वस्तुत बैंटिक अग्रेजी शिक्षा का पक्षपाती था। इस देश की सामाजिक कुरीतियो को दूर करन म उसे राजा राममोहन राय तथा अन्य अग्रजी शिक्षित व्यक्तियो से पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ था। अत उस दृढ विश्वास हो गया था कि अग्रेजी शिक्षा द्वारा अग्रेजी विचारो मे ही भारतीयो मे नव-जागरण प्रारम्भ होगा। भाग्यवश मैकाले के प्रस्तावो ने उसे एक साधन प्रदान किया और उसने अग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित करके अपना निर्णय दे दिया। सस्कृत, अरबी एव फारसी मे पुस्तको का मुद्रण तथा प्रकाशन स्थगित करके, उसने प्राच्य साहित्य की उपेक्षा की। परन्तु साथ ही उसने प्राच्य शिक्षालयो को पूर्ववत् चलने दिया एव अध्यापको के वेतन तथा विद्यार्थियो की छात्रवृत्तियो को जारी रखा। उसके इस कार्य मे उदारता की अपेक्षा कूटनीति-परायणता की प्रधानता स्पष्ट रूप स झलकती है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास मे मैकॉले का स्थान

मैकॉले के विवरण पत्र के फलस्वरूप शिक्षा-क्षेत्र म विवादग्रस्त विषयो का निर्णय हो गया और कम्पनी की ढिल मिल शिक्षा-नीति म स्थिरता आ गई। फिर भी

1 Prinsep's *Note*, pp 130 131

मैकॉले की अति कटु आलोचना की गई है। अतः उसके कार्य के सम्बन्ध में साधारण पर्यवलोकन द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचना एवं शिक्षा के इतिहास मे उसके स्थान का मूल्यांकन करना युक्तिसंगत होगा।

मैकॉले (Macaulay) के सम्बन्ध मे प्रमुख धारणाएँ निम्नलिखित है :—

१—कुछ व्यक्तियो द्वारा मैकॉले भारतीय शिक्षा का पथ-प्रदर्शक[1] माना जाता है। यह कथन एक प्रकार से असत्य ही है, क्योकि वह प्रथम व्यक्ति नही था, जिसने भारत मे अंग्रेजी शिक्षा की ओर पहला कदम उठाया था। इसके अतिरिक्त, उसने इस दिशा में भारतीयो की जिज्ञासा को. जाग्रत भी नही किया था। उसके आगमन के पूर्व ही मिशनरी एवं राजा राममोहन राय के प्रयासों के कारण भारत में इस जिज्ञासा का जागरण प्रारम्भ हो गया था। उसको पाश्चात्यवादी दल का जन्मदाता भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसका आविर्भाव उसके आने से पहले ही हो चुका था। उसने तो केवल इस क्षेत्र मे अंग्रेजी के पक्ष में अपना निर्णय देकर वाद-विवाद को सुलझाने में सहायता दी थी। अतः हम कह सकते हैं कि मैकॉले ने शिक्षा की आधुनिक संरचना का शिलान्यास अवश्य किया, पर वह भारतीय शिक्षा का पथ-प्रदर्शक नही था।

२—कुछ लोग मैकाले पर भारतीय भाषाओ के अपमान एवं अवहेलना का दोपारोपण करते है। यह सत्य है कि उसने भारतीय भाषाओं को 'अविकसित, असमर्थ, अपर्याप्त एवं गँवारू' कहकर उनकी घोर निन्दा की, परन्तु उस पर उनकी अवहेलना करने का आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है। इसके विपरीत, उसने भारतीय भाषाओ के महत्त्व एवं विकास पर विशेष बल दिया। 'लोक-शिक्षा-समिति' के प्रधान के रूप में मैकॉले ने १८३६ की अपनी रिपोर्ट के अन्तर्गत कहा :—"हमे देशी भाषाओ के प्रोत्साहन एवं विकास मे अत्यधिक रुचि है। हम समझते है कि देशी भाषाओं के साहित्य का विकास—हमारा अन्तिम उद्देश्य है और हमारे सब प्रयास इस दिशा में लग जाने चाहिए।"[2]

३—कुछ व्यक्ति मैकॉले को राजनैतिक अशान्ति का कारण मानते हैं। यह ऐसा आरोप है, जिस पर सम्पूर्ण इङ्गलैंड गर्व कर सकता है। परन्तु इसका समस्त उत्तरदायित्व मैकॉले द्वारा प्रतिपादित अंग्रेजी शिक्षा की नीति पर नही रखा जा सकता है। इस नीति की अनुपस्थिति में भी राजनैतिक अशान्ति हो सकती थी। इसका कारण यह है कि भारतीय पर्याप्त संख्या मे मिशन स्कूलों मे अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उक्त अशान्ति में उन पदाक्रान्त शासकों का भी हाथ था, जिन्हे अंग्रेजो के भारत मे आने से महान् क्षति उठानी पडी थी।

---

1. Torch-bearer in the path of progress.
2. C. E. Trevelyan : *On the Education of the People of India*, pp. 22-23.

४—मैकाले पर अन्तिम दोषारोपण यह है कि वह अग्रेजी शिक्षा द्वारा एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना चाहता था, जो रक्त और वर्ण मे भारतीय हो, परन्तु पसन्द विचार आचरण एव विद्वता मे अग्रेज हो। [1] इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति के उपासक-वर्ग का निर्माण करके वह भारतीयो मे फूट का बीजारोपण करना चाहता था जिसमे कि अग्रेज इस देश का सदैव शोषण कर सकें। परन्तु उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नही हुई।

उपर्युक्त धारणाओ की इस विवेचना के आधार पर हम निस्सकोच कह सकते है कि मैकाले के सिर पर सारा दोष मढना युक्तिसगत न होगा। वस्तुत भारत उसका सदैव ऋणी रहेगा। उसने अग्रेजी शिक्षा के प्रचार एव प्रसार का बलपूर्वक समर्थन करके भारतीयो मे राजनैतिक जागरण, वैधानिक चेतना एव आर्थिक विचारधारायें प्रस्फुटित की। अग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीय पाश्चात्य देशो के समानता स्वतन्त्रता एव बन्धुत्व के सिद्धान्तो से परिचित हुए और उन्होने राजनैतिक सघर्ष प्रारम्भ करके भारत माता को दासता की बेडियो से मुक्त किया। साराश मे अपने विवरण पत्र मे अग्रेजी शिक्षा का समर्थन करके उसने अनजाने ही भारत की भलाई की। वह नही जानता था कि उसका विवरण पत्र ऐतिहासिक एव युग-प्रवर्तक सिद्ध होगा। निस्सदेह भारतीय शिक्षा के इतिहास मे मैकाले का स्थान अति महत्वपूर्ण है।

ऑकलैंड का विवरण-पत्र एव प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त

जैसे ही लार्ड विलियम बटिक ने १८३५ मे त्याग-पत्र देकर स्वदेश के लिये प्रस्थान किया प्राच्यवादियो ने सरकार के निर्णय के विरुद्ध आवाज उठाई। वे मैकाले के विवरण पत्र और बटिक के आज्ञा पत्र से असतुष्ट थे और उन्होने देशी भाषा के माध्यम तथा कुछ अन्य बातो पर विवाद आरम्भ कर दिया। जब लार्ड आकलैण्ड (Auckland) गवर्नर जनरल नियुक्त होकर भारत पहुँचा तब उसने स्थिति को पर्याप्त गम्भीर पाया। लगभग ४ वर्ष तक विभिन्न मतो का सतर्कता से अध्ययन करके वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वाद विवाद का आधारभूत कारण आर्थिक सहायता थी।[2] उसने विचार किया कि यदि प्राच्यवादियो को शिक्षा-सम्बन्धी व्यय के लिये कुछ अधिक धन दे दिया जाय तो वे शोरगुल मचाना बन्द कर देगे। इस बात को दृष्टिकोण मे रखते हुए उसने २४ नवम्बर १८३९ के विवरण-पत्र मे अपने विचारो को इस प्रकार व्यक्त किया —

---

1 A class of persons Indian in blood and colour but English in opinions in morals and in intellect

2 The insufficiency of funds assigned by the State for the purpose of public instruction has been amongst the main causes of the violent disputes —Sharp *op cit*, pp 148 149

१. प्राच्य-शिक्षालयों को पूर्ववत् चलने दिया जाय और उनको उतनी ही आर्थिक सहायता दी जाय, जितनी कि बैंटिक के आज्ञा-पत्र से पूर्व दी जाती थी।

२. प्राच्य-शिक्षालय प्राच्य-विषयों के शिक्षण-कार्य की उचित पूर्ति करने के पश्चात् अंग्रेज़ी की कक्षायें खोल सकते हैं।

३ प्राच्य-शिक्षालयों में पढने वाले समस्त विद्यार्थियों में से $\frac{1}{4}$ को छात्र-वृत्तियाँ दी जायें।

४ निश्चित धन-राशि में से लाभप्रद प्राच्य-पुस्तकों का मुद्रण एवं प्रकाशन किया जा सकता है।

५ योग्य अध्यापकों को पर्याप्त वेतन दिया जाय।

इस योजना को पूर्ण करने में यद्यपि ३१ हजार रुपया वार्षिक व्यय बढ गया, परन्तु इससे प्राच्य-शिक्षा-समर्थक शान्त हो गये। वस्तुत उस समय भूमि-कर में पर्याप्त वृद्धि हो गई थी और उसी अनुपात में शिक्षा के व्यय में भी वृद्धि होनी चाहिये थी। परन्तु ऑकलैण्ड ने अल्प धन-राशि लेकर ही प्राच्यवादी दल को शान्त कर दिया। दूसरी ओर उसने अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा यूरोपीय साहित्य, दर्शन एवं विज्ञानों के प्रचार के लिये १ लाख से भी अधिक रुपया देकर पाश्चात्य-शिक्षा-समर्थकों को प्रसन्न कर दिया।

ऑकलैण्ड का विवरण-पत्र उसके चातुर्य एवं दूरदर्शिता का परिचायक है। उसने प्राच्यवादियों को ऐसा मीठा जहर पिलाया कि वे उसकी मीठी बेहोशी में ऑकलैण्ड की नीतिपटुता को न समझ सके। वस्तुत, उसका झुकाव अंग्रेज़ी शिक्षा की ओर था और उसने ढाका, पटना, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, बरेली तथा दिल्ली में अंग्रेजी कॉलेजों का निर्माण करके इसकी अभिव्यक्ति की। इन कॉलेजों की स्थापना से अंग्रेज़ी शिक्षा को निरन्तर प्रोत्साहन प्राप्त होता गया और वह क्रमश भारतीय भाषाओं, साहित्य एवं संस्कृति पर गहरे काले बादल के समान फैल गई।

ऐडम-योजना की अस्वीकृति

हम अध्याय ४ में इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि लार्ड बैण्टिक ने ऐडम को बंगाल में देशी शिक्षा की व्यवस्था की जाँच करने के लिये नियुक्त किया था और इस सम्बन्ध में ऐडम ने तीन 'प्रतिवेदन' (Reports) प्रस्तुत किये थे। ऐडम—बेप्टिस्ट मिशन का मान्य सदस्य तथा सच्चा जन-सेवक था। भारतीयों के नैतिक एवं सामाजिक पतन को देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया था। वह अन्त करण से शिक्षा-प्रसार द्वारा उनका मानसिक विकास एवं चारित्रिक उत्थान चाहता था। अत. उसने शिक्षा-प्रसार एवं शिक्षा-सुधार के साधनों तथा उपायों के सम्बन्ध में अग्रलिखित सुझाव दिये —

१ देशी भाषाओं में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के सहयोग से पाठ्य पुस्तकों की क्रम-बद्ध (Graded) माला का मुद्रण प्रकाशन एवं वितरण किया जाय।

२ शिक्षालयों के अध्यापकों के कार्य के निरीक्षण एवं निर्देशन के लिए प्रत्येक जिले मे निरीक्षक नियुक्त किये जायं।

३ शिक्षकों की दीक्षा के लिए नामल स्कूलों का निर्माण किया जाय।

४ परीक्षाएं नियमित रूप से एक निर्दिष्ट अवधि के अन्तर्गत ली जायें।

५ प्रत्येक ग्रामीण विद्यालय को अपना व्यय चलाने के लिए भूमि दान दिया जाय।

६ कृषि शिक्षा के लिए विभिन्न स्थानों पर प्रयोगात्मक (Experimental) फार्म बनाये जायं।

७ इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए कुछ जिलों को चुन लिया जाय।

ऐडम को विश्वास था कि उसकी इस योजना को राष्ट्रीय व्यवस्था की आधारभूत योजना बनाया जा सकता था। उसकी इच्छा थी कि सरकार इस योजना पर क्रियात्मक पग उठाए। परन्तु मैकाले ने उसकी सब आशाओं पर पानी फेर दिया। उसने इस योजना के विरुद्ध अति दूषित रिपोर्ट भेजी। परिणामत जब यह आकलैण्ड के समक्ष रखी गई तो उसने इसे अस्वीकृत कर दिया।

निस्यन्दन-सिद्धान्त

अर्थ— निस्यन्दन सिद्धान्त (Downward Filtration Theory) का अभिप्राय यह था कि शिक्षा—समाज के उच्च वर्ग को दी जाय और इस वर्ग से छन छन कर शिक्षा का प्रभाव जन साधारण तक पहुंचे। जन समूह में शिक्षा ऊपर से छन छनकर पहुंचनी थी। बूंद-बूंद करके भारतीय जीवन के हिमालय से लाभदायक शिक्षा नीचे को बहे जिससे कि वह कुछ समय में एक चौड़ी एवं विशाल धारा में परिवर्तित होकर शुष्क मैदानों का सिंचन करे।[1]

समर्थक—भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों का इस सिद्धान्त में विश्वास था। वे समझते थे कि यदि इस देश के सवर्ण हिन्दुओं को ईसाई धर्म में दीक्षित कर दिया जायगा तो निम्न वर्गों को इस धर्म को स्वीकार करने में संकोच नहीं होगा क्योंकि

---

1 Education was to permeate the masses from above Drop by drop from the Himalayas of the Indian life useful information was to *trickle downwards* forming in time a broad and stately stream to irrigate the thirsty plains

— Arthur Mayhew *The Education of India* p 17

इन वर्गों के व्यक्ति उच्च वर्ग के आदर्शों का अनुकरण करते थे। कम्पनी के कर्मचारियो मे बम्बई के गवर्नर की कौसिल के सदस्य, वार्डन (Warden) ने २३ दिसम्बर, १८२३ को अपने विवरण-पत्र मे यह लिखकर इस सिद्धान्त की ओर संकेत किया था —"जन-साधारण को थोडी-सी शिक्षा देने की अपेक्षा उच्च वर्ग के कुछ व्यक्तियो को अधिक शिक्षा देना उपयुक्त होगा।" कम्पनी के सचालको ने २९ सितम्बर, १८३० के अपने आदेश-पत्र मे मद्रास की सरकार को लिखा था —"शिक्षा की प्रगति उसी समय हो सकती है, जब उच्च वर्गों के उन व्यक्तियो को शिक्षा दी जाय, जिनके पास अवकाश है और जिनका अपने देशवासियो पर प्रभाव है।" मैकॉले ने इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए अपने विवरण-पत्र मे लिखा था —"हमारी इस शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग की सृष्टि होगी जो रक्त एव वर्ण मे भारतीय होगा, परन्तु पसन्द, विचार, आचरण एव विद्वत्ता मे अग्रेज होगा। इन्ही लोगो का यह कार्य होगा कि वे भारतीय भाषाओ को परिष्कृत तथा सम्पन्न करके उन्हे जनता तक ज्ञान पहुँचने के योग्य बनायें।" मैकॉले के इस विचार का बगाल की 'लोक-शिक्षा-समिति' ने १८३९ मे समर्थन किया था। लॉर्ड ऑकलैण्ड ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया और इसे सरकारी नीति के रूप मे घोषित करते हुए लिखा —"सरकार को समाज के उच्च वर्ग को शिक्षा देनी चाहिए, जिससे सभ्यता छन-छन कर जनता मे पहुँचे।" उस समय से लेकर १८७० तक इस सिद्धान्त का प्रभाव भारतीय शिक्षा के क्षेत्र मे बना रहा।

आधारभूत कारण इस सिद्धान्त को सरकारी नीति का रूप प्रदान करने के अनेक आधारभूत कारण थे। **प्रथम**, ब्रिटिश सरकार को प्रारम्भ मे ऐसे व्यक्तियो की आवश्यकता थी, जिनको शिक्षित करके एव उच्च पद प्रदान करके राज्य को सुदृढ़ बनाया जाय। इसके लिए उच्च वर्ग की शिक्षा ही उपयोगी हो सकती थी, लोक-शिक्षा नही। **द्वितीय**, सरकार के पास इतना धन नही था कि वह लोक शिक्षा का भार अपने ऊपर ले सकती। **तृतीय**, अग्रेजी माध्यम द्वारा उच्च वर्ग को शिक्षित करके और उसके रहन-सहन तथा आचार-विचार को परिवर्तित करके निम्न वर्गों को सरलतापूर्वक प्रभावित किया जा सकता था। **चतुर्थ**, कुछ व्यक्तियो को शिक्षित करके जन-साधारण की शिक्षा का भार उनके ऊपर छोडा जा सकता था।

परिणाम—इस सिद्धान्त ने भारतीय शिक्षा का रूप निश्चित कर दिया। सरकारी नीति के रूप मे इसे अधिकारियो का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ और उच्च शिक्षा की तीव्र प्रगति होने लगी। १८४४ मे लार्ड हार्डिञ्ज (Hardinge) की घोषणानुसार अग्रेजी स्कूलो मे शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो को सरकारी नौकरियो मे प्राथमिकता दी जाने लगी। फलस्वरूप अग्रेजी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—सरकारी नौकरी प्राप्त करना हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्च शिक्षा की प्रगति और भी अधिक तेज हो गई। अग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके भारतीय इस क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे। परन्तु सरकार ने जिस विचार से इस सिद्धान्त को अपनाया था,

उसमे सफलता नही प्राप्त हुई। उच्च वर्ग को शिक्षित करके जन-साधारण तक ज्ञान को नही पहुंचाया जा सका, क्योंकि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर आसीन हो जाते थे, उनका जनता से कोई सम्बन्ध नही रह जाता था। इसके अतिरिक्त, वे केवल अपने ही हित का ध्यान रखते थे एवं जन-कल्याण की चिन्ता नही करते थे। इस प्रकार, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो गया, जो अशिक्षित निर्धन व्यक्तियो से अपने को श्रेष्ठ समझता था और उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखता था। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि इस वर्ग के अनेक व्यक्ति ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ के रूप मे अपने देशवासियो के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रवल विरोध करते रहे। इसके विपरीत, कुछ अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियो ने देश-प्रेम की ख्याति प्रज्ज्वलित की एवं अपने देशवासियो मे स्वतन्त्रता की भावना कूट-कूटकर भरने का प्रयास किया। इसी के फलस्वरूप राष्ट्रीय जागरण प्रारम्भ हुआ और अन्त मे भारत विदेशियो के चंगुल से मुक्त हुआ।

सारांश

प्राच्यवादी—इस दल मे कम्पनी के पुराने अधिकारी थे। यह दल प्राच्य-शिक्षा एवं साहित्य को प्रोत्साहित करना चाहता था।

पाश्चात्यवादी—इस दल मे कम्पनी के नवयुवक अधिकारी थे। यह दल अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य विचारो के प्रसार के पक्ष मे था।

मैकॉले का विवरण-पत्र—जिस समय प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद चल रहा था, उसी समय (१८३४ मे) मैकॉले भारत आया, और 'लोक-शिक्षा-समिति' का प्रधान नियुक्त किया गया। १८३५ मे अपने विवरण-पत्र मे उसने प्राच्य-साहित्य की निन्दा की और अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा का समर्थन किया। अंग्रेजी के पक्ष मे उसने अनेक तर्क दिये।

बैंटिक की स्वीकृति—बैंटिक ने मैकॉले के सभी प्रस्तावो को स्वीकार कर लिया और ७ मार्च, १८३५ के आज्ञा-पत्र मे शिक्षा-नीति की घोषणा की। इसके अनुसार ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य—भारतीयो मे अंग्रेजी माध्यम द्वारा यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रचार करना था। प्राच्य-विद्यालय बन्द नही किये गये, परन्तु प्राच्य-शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तको का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। इस प्रकार बैंटिक की घोषणा ने अंग्रेजा की शिक्षा-नीति को स्पष्ट कर दिया।

भारतीय शिक्षा के इतिहास मे मैकॉले का स्थान—मैकॉले की अति कटु आलोचना की गई है। उसने प्राच्य-शिक्षा एवं साहित्य की प्रगति पर अंकुश लगा दिया और एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहा—जो पसन्द, विचार, आचरण एवं विद्वता मे अंग्रेज हो। परन्तु उसने अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का समर्थन करके भारतीयो मे राजनैतिक जागरण की भावना प्रस्फुटित कर दी। इसके लिए भारत

उसका सदैव ऋणी रहेगा। इसीलिए भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉले का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त—बैंटिक की घोषणा के बाद भी प्राच्य-पाश्चात्य विवाद चलता रहा। उसका अन्त ऑकलैंड ने १८३९ में किया। उसने ऐडम की प्राच्य-शिक्षा-प्रसार की योजना को अस्वीकृत कर दिया।

निस्यन्दन-सिद्धान्त—इसका अभिप्राय यह था कि शिक्षा उच्च वर्ग से छन-छन कर निम्न वर्गों तक पहुंचे। इस सिद्धान्त के समर्थकों में वार्डन, कम्पनी के संचालक, मैकॉले और लोक-शिक्षा समिति थी। ऑकलैण्ड ने इसे स्वीकार किया और सरकारी नीति के रूप में घोषित किया। इस सिद्धान्त को अपना कर सरकार ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहती थी, जो उच्च पदों पर कार्य कर सकें और राजभक्त होकर ब्रिटिश साम्राज्य के स्तम्भ बनें। इस सिद्धान्त के अनुकरण से उच्च-शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई। भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा स्वतन्त्रता के विचार उत्पन्न हुए और उन्होंने अपने देश को दासता से मुक्त करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया।

TEST QUESTIONS

1. Write, what you know about the Oriental-Occidental Controversy.
   प्राच्य-पाश्चात्य विवाद के बारे में आप जो जानते है, लिखिए।
2. Give a critical appraisal of Lord Macaulay's contribution to Indian education. Place yourself in his position and offer a defence of his policy.
   भारतीय शिक्षा को लार्ड मैकॉले की देन का मूल्यांकन कीजिए। अपने को उसके स्थान में रखकर उसकी नीति का समर्थन कीजिए।
3. "Macaulay is a torch-bearer in the path of progress." Do you agree ? Give arguments in favour of the view you hold.
   "मैकॉले भारतीय शिक्षा का पथ-प्रदर्शक है।" क्या आप इससे सहमत हैं ? अपने विचार के पक्ष में तर्क दीजिए।
4. Write a short essay on the "Downward Filtration Theory."
   'निस्यन्दन सिद्धान्त' पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उसम सफलता नही प्राप्त हुई। उच्च वग को शिक्षित करके जन साधारण तक को नहीं पहुँचाया जा सका क्योकि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदा आसीन हो जाते थे उनका जनता से कोई सम्बध नही रह जाता था। अतिरिक्त वे केवल अपने ही हित का ध्यान रखते थे एव जन-कल्याण की चित करते थे। इस प्रकार अग्रजी शिक्षा प्राप्त करके एक ऐसे वग का निर्माण हा जो अशिक्षित निधन व्यक्तियो से अपने को श्रेष्ठ समझता था और उनसे किसा का सम्बन्ध नही रखता था। यह कहना अतिशयोक्तिपूण न होगा कि इस अनेक व्यक्ति ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ के रूप मे अपने देशवासियो के राष्टीय का प्रबल विरोध करते रहे। इसके विपरीत कुछ अग्रजी शिक्षित व्यक्ति प्रेम की ख्याति प्रज्ज्वलित की एव अपने देशवासियो मे स्वतन्त्रता की भ कूटकर भरने का प्रयास किया। इसी के फलस्वरूप राष्टीय जागरण और अन्त मे भारत विदेशियो के चगुल से मुक्त हुआ।

साराश

प्राच्यवादी—इस दल म कम्पनी के पुरान अधिकारी थे। शिक्षा एव साहित्य को प्रोत्साहित करना चाहता था।

पाश्चात्यवादी—इस दल मे कम्पनी क नवयुवक अधिका अग्रजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य विचारो के प्रसार के पक्ष म था।

मैकाले का विवरण पत्र—जिस समय प्राच्य पाश्चात्य शि था उसी समय (१८३४ म) मैकाल भारत आया और लोक प्रधान नियुक्त किया गया। १८३५ म अपने विवरण-पत्र मे उ निन्दा की और अग्रजी के माध्यम द्वारा शिक्षा का समथन कि उसन अनक तक दिय।

बटिक की स्वीकृति—बटिक न मैकॉले क सभी प्र लिया और ७ माच १८३५ क आज्ञा-पत्र म शिक्षा-नीति अनुसार ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्दश्य—भारतीया म पाय साहित्य एव विज्ञान का प्रचार करना था। प्राच्य शि परन्तु प्राच्य शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तको का प्रकाशन बन्द क बटिक की घोषणा न अग्रजी की शिक्षा-नीति का स्पष्ट

भारतीय शिक्षा क इतिहास म मकॉले क आलोचना की गई है। उसने प्राच्य शिक्षा एव भा निन्दा और एक ऐसे वग का निर्माण करना चाहा विद्वान न अग्रज हो। परन्तु उसन अग्रजी भारतीयो म राजनैतिक जागरण की भावना प्र

करने के लिये १८४४ मे १०१ प्राथमिक विद्यालयो का निर्माण करवाया। इनमे लिखना, पढना, गणित, भूगोल, इतिहास तथा बंगला की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयो मे प्रति विद्यार्थी से एक आना मासिक शुल्क लिया जाता था। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा के अभाव मे ये विद्यालय लोकप्रिय न बन सके एव उनकी संख्या निरन्तर कम होती चली गई। १८५२ मे उनमे से केवल २६ रह गये।[1] १८४७ मे लार्ड हार्डिञ्ज ने अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये कलकत्ता मे एक नार्मल-स्कूल भी खुलवाया।

डलहौजी के शिक्षा-कार्य—लार्ड डलहौजी (Dalhousie) विद्या-प्रेमी था। उसने प्राथमिक, उच्च, व्यावसायिक तथा नारी-शिक्षा मे अपनी रुचि प्रदर्शित की। उसने अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ करके प्राथमिक विद्यालयो को प्रोत्साहित किया तथा १८५४ मे ३३ प्राथमिक विद्यालय खुलवाये, जिनमे १,४०० विद्यार्थी पढते थे। १८४४ मे कलकत्ता हिन्दू कॉलिज मे इंजीनियरिंग की कक्षा आरम्भ की गई।

शिक्षा-परिषद्—१८४२ मे 'लोक-शिक्षा-समिति' को भंग करके उसके स्थान पर 'शिक्षा-परिषद्' (Council of Education) की स्थापना की गई।[2] इस परिषद् ने शिक्षा-प्रसार की दिशा मे सराहनीय कार्य किया। नार्मल स्कूल की स्थापना हो जाने के कारण विद्यालयो के लिये प्रशिक्षित अध्यापको का अभाव बहुत-कुछ दूर हो गया था। परिषद् ने १८४३ मे शिक्षा का पाठ्यक्रम निश्चित करके पाठ्य-पुस्तको मे सुधार किया। उसने १८४४ मे विद्यालय-निरीक्षको की नियुक्ति करके विद्यालयों की शिक्षा का भार उन्हे सौंप दिया। उसने १८४५ मे कलकत्ता मे एक विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव किया, पर कम्पनी के संचालको ने उसे 'असामयिक' कहकर अस्वीकार कर दिया। 'शिक्षा-परिषद्' ने प्राथमिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १८५४ तक परिषद् के अन्तर्गत १५१ शिक्षा-संस्थाएँ थी, जिनमे १३,१६३ विद्यार्थी पढते थे और जिनका वार्षिक व्यय ५,६४,४२८ रुपया था।[3] इनमे ४७ अंग्रेजी स्कूल, ५ अंग्रेजी कॉलिज, १ मेडिकल कॉलिज तथा ३ प्राच्य कॉलेज थे।

व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य—बंगाल मे शिक्षा को व्यक्तिगत प्रयासों के कारण भी प्रोत्साहन मिला। हाजी मुहम्मद मुहसिन के दानस्वरूप प्राप्त धन से हुगली के जिला-स्कूल को कॉलेज का रूप प्रदान किया गया। १८४९ मे 'शिक्षा-परिषद्' के प्रधान जे० ई० डी० बैथ्यून (J. E. D. Bethune) ने लडकियो के लिये एक स्कूल खोला और उसका समस्त व्यय-भार स्वय वहन किया। इस कार्य से प्रेरित होकर जयकृष्ण मुकर्जी एव बारासेत के कुछ निवासियो ने भी स्त्री-शिक्षा का प्रबन्ध किया।

मिशनरियो के शिक्षा-कार्य—मिशनरियो ने भी शिक्षा के क्षेत्र मे प्रशंसनीय

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 110.
2. Nurullah & Naik : *op. cit.*, p. 95.
3. *Ibid*, p. 96.

६
शिक्षा की प्रगति
(१८३३-१८५३)

प्रस्तावना

हम पहले इस बात का उल्लेख कर चुके है कि शिक्षा के क्षेत्र मे प्राच्यवादी एवं पाश्चात्यवादी दलो मे संघर्ष प्रारम्भ हो गया था, जिसका अन्त लार्ड ऑकलैण्ड ने १८३९ मे किया। उस समय से शिक्षा का मार्ग निश्चित हो गया तथा अंग्रेजी को प्रबल प्रेरणा मिली। फलस्वरूप, विभिन्न प्रान्तो मे शिक्षा-प्रसार के जो कार्य किय गये, उन पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

बंगाल

बैंटिक एवं ऑकलैण्ड के शिक्षा-कार्य—लार्ड बैंटिक ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित करके बंगाल मे अंग्रेजी का पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर दिया। फलत अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिये विद्यालयो का तीव्र गति से निर्माण हुआ। १८३५ मे 'लोक-शिक्षा-समिति' २० विद्यालयों को चला रही थी। १८३७ मे इनकी संख्या बढ़कर ४८ हो गई, जिनमे ५,१९६ छात्र पढते थे। लार्ड ऑकलैण्ड ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने बंगाल प्रान्त को ९ भागो मे विभक्त किया और प्राय प्रत्येक ज़िले मे एक 'जिला विद्यालय' स्थापित किया। १८४० मे इस प्रकार के विद्यालयों की संख्या ४० थी।

हार्डिञ्ज के शिक्षा-कार्य—१८४४ मे लार्ड हार्डिञ्ज (Hardinge) ने घोषणा की कि अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियो को सरकारी नौकरियो मे प्राथमिकता दी जायगी। फलतः अंग्रेजी के प्रचार एवं प्रसार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। उस समय प्राथमिक शिक्षा का पतन प्रारम्भ हो गया था। अत. लार्ड हार्डिञ्ज ने उसे प्रोत्साहित

करने के लिये १८४४ मे १०१ प्राथमिक विद्यालयो का निर्माण करवाया। इनमे लिखना, पढना, गणित, भूगोल, इतिहास तथा बंगला की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयो मे प्रति विद्यार्थी से एक आना मासिक शुल्क लिया जाता था। परन्तु अग्रेजी शिक्षा के अभाव मे ये विद्यालय लोकप्रिय न बन सके एव उनकी सख्या निरन्तर कम होती चली गई। १८५२ मे उनमे से केवल २६ रह गये।[1] १८४७ मे लार्ड हार्डिञ्ज ने अध्यापको के प्रशिक्षण के लिये कलकत्ता म एक नार्मल-स्कूल भी खुलवाया।

डलहौजी के शिक्षा-कार्य—लार्ड डलहौजी (Dalhousie) विद्या-प्रेमी था। उसने प्राथमिक, उच्च, व्यावसायिक तथा नारी-शिक्षा मे अपनी रुचि प्रदर्शित की। उसने अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ करके प्राथमिक विद्यालयो को प्रोत्साहित किया तथा १८५४ मे ३३ प्राथमिक विद्यालय खुलवाये, जिनमे १,४०० विद्यार्थी पढते थे। १८६४ मे कलकत्ता हिन्दू कॉलिज मे इंजीनियरिंग की कक्षा आरम्भ की गई।

शिक्षा-परिषद्—१८४२ मे 'लोक-शिक्षा-समिति' को भग करके उसके स्थान पर 'शिक्षा-परिषद्' (Council of Education) की स्थापना की गई।[2] इस परिषद् ने शिक्षा-प्रसार की दिशा म सराहनीय कार्य किया। नार्मल स्कूल की स्थापना हो जाने के कारण विद्यालयो के लिये प्रशिक्षित अध्यापको का अभाव बहुत-कुछ दूर हो गया था। परिषद् ने १८४३ म शिक्षा का पाठ्यक्रम निश्चित करके पाठ्य-पुस्तको मे सुधार किया। उसने १८४४ मे विद्यालय-निरीक्षको की नियुक्ति करके विद्यालयो की शिक्षा का भार उन्हे सौप दिया। उसने १८४५ मे कलकत्ता म एक विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव किया, पर कम्पनी के सचालको ने उसे 'असामयिक' कहकर अस्वीकार कर दिया। 'शिक्षा-परिषद्' ने प्राथमिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १८५४ तक परिषद् के अन्तर्गत १५१ शिक्षा-संस्थाएं थी, जिनमे १३,१६३ विद्यार्थी पढते थे ओर जिनका वार्षिक व्यय ५,९४,४२८ रुपया था।[3] इनम ४७ अग्रेजी स्कूल, ५ अग्रेजी कॉलिज, १ मेडिकल कॉलिज तथा ३ प्राच्य कॉलेज थे।

व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य—बगाल मे शिक्षा को व्यक्तिगत प्रयासो के कारण भी प्रोत्साहन मिला। हाजी मुहम्मद मुहसिन के दानस्वरूप प्राप्त धन से हुगली के जिला-स्कूल को कालेज का रूप प्रदान किया गया। १८४९ मे 'शिक्षा-परिषद्' के प्रधान जॉ० ई० डी० बैथ्यून (J E. D. Bethune) ने लडकियो के लिये एक स्कूल खोला और उसका समस्त व्यय-भार स्वय वहन किया। इस कार्य से प्रेरित होकर जयकृष्ण मुकर्जी एव बारासेत के कुछ निवासियो ने भी स्त्री-शिक्षा का प्रबन्ध किया।

मिशनरियो के शिक्षा-कार्य—मिशनरियो ने भी शिक्षा के क्षेत्र म प्रशंसनीय

---

1. S. N Mukerji : *op. cit*, p. 110
2. Nurullah & Naik : *op. cit*, p. 95.
3. *Ibid*, p. 96.

कार्य किया। उन्होंने १८५३ तक सम्पूर्ण बंगाल में २२ स्कूलों का निर्माण किया। इन स्कूलों को सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी।

शिक्षा का माध्यम—इस काल में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न अति विवादास्पद रहा। भारत सरकार अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित कर चुकी थी। के० एम० बनर्जी (K N Benerji) एवं डा० बैलंटाइन (Ballantyne) ऐसे विद्वानों ने देशी भाषाओं का पक्ष लिया परन्तु सरकारी नीति के सामने उनकी कुछ न चली और अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखा गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १८३३ से १८५३ तक बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का बोलबाला रहा। भारतीयों की अंग्रेजी की ज्ञान पिपासा इतनी अधिक हो गई थी कि अंग्रेजी विद्यालयों में फीस देने वाले विद्यार्थियों को भी प्रवेश पाना कठिन था जबकि प्राच्य विद्यालयों में छात्रवृत्तियाँ भी विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये प्रलोभित नहीं कर पाती थीं।

बम्बई

बम्बई भारतीय शिक्षा समिति[1]—इस समिति का निर्माण १८२३ में हुआ था। उसी समय से यह समिति शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य रही थी। १८४ तक इसने सम्पूर्ण प्रान्त में ११५ जिला प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में लिखना-पढ़ना अंकगणित बीजगणित रेखागणित त्रिकोणमिति एवं दर्शनशास्त्र की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम द्वारा दी जाती थी। वस्तुतः यह पाठ्यक्रम वर्तमान समय के माध्यमिक विद्यालयों के समान था। समिति ने ४ अंग्रेजी स्कूलों का भी निर्माण बम्बई थाना पनवेल तथा पूना में किया था। इन स्कूलों का उद्देश्य—पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा देना था।

राजकीय प्रयास—बम्बई सरकार ने शिक्षा की ओर यथोचित ध्यान दिया। १८३७ में ४ लाख रुपया व्यय करके बम्बई प्रान्त के गवर्नर एल्फिन्स्टन के नाम पर एल्फिन्स्टन इंस्टीट्यूशन की स्थापना की गई। उसी वर्ष पूना संस्कृत कालेज में सभी जातियों के विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दे दी गई और मराठी कक्षाएँ भी प्रारम्भ कर दी गईं। सरकार—पूना जिले के पुरन्दर तालुक्का में देशी विद्यालयों के आधार पर ६३ प्राइमरी स्कूलों का निर्माण कर चुकी थी। इनमें लिखना-पढ़ना एवं गणित की शिक्षा दी जाती थी।

शिक्षा-बोर्ड—१८४० में बम्बई भारतीय शिक्षा-समिति का भंग करके उसके स्थान पर शिक्षा-बोर्ड (Board of Education) की स्थापना की गई। इस बोर्ड में ७ सदस्य होते थे जिनमें से ४ को सरकार मनोनीत करती थी एवं शेष बम्बई भारतीय शिक्षा-समिति के प्रतिनिधि होते थे। इस बोर्ड ने शिक्षा-कार्य में अत्यन्त दक्षता का परिचय दिया। इसने १८४२ में प्रान्त के समस्त विद्यालयों की गणना करवाई तथा एडम की योजना को कार्यान्वित करने का प्रयास किया। परन्तु

1 The Bombay Native Education Society

प्रान्त के निवासियों मे पाश्चात्य ज्ञान पिपासा की उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण बोर्ड को सफलता न मिली। फलत बोर्ड ने देशी विद्यालयो की ओर कोई ध्यान नही दिया जिससे कुछ समय पश्चात् उनका अन्त हो गया।

प्रान्तीय शिक्षा को सुचारु रूप से चलाने के लिये बोर्ड ने १८४२ मे बम्बई को तीन भागो मे विभक्त किया और शिक्षा की देख-रेख के लिये प्रत्येक भाग मे एक यूरोपियन निरीक्षक एव एक भारतीय उप-निरीक्षक की नियुक्ति की। १ जून, १८४३ को बोर्ड ने विद्यालयो के सम्बन्ध म कुछ नियम बनाकर उसम समानता स्थापित करने का प्रयास किया।

शिक्षा का माध्यम—जिस समय बगाल मे प्राच्य तथा पाश्चात्य भाषाओ का विवाद चल रहा था, उस समय बम्बई ने देशी भाषाओ की शिक्षा का माध्यम रखकर अपने साहस का परिचय दिया था। परन्तु अग्रेजी, फारसी तथा सस्कृत की अवहेलना भी नही की गई थी, क्योकि उनको पाठय-क्रम मे उचित स्थान दिया गया था। इस प्रकार देशी भाषाओ को अपने विकास के लिय सुन्दर अवसर प्राप्त हो सका था।

दुर्भाग्यवश, १८४३ मे सर ऐरिस्कन पैरी (Sir Erskine Perry) शिक्षा-बोर्ड का सभापति नियुक्त हुआ। उसी समय से देशी भाषाओ के बुरे दिन आ गये। मैकॉले एव ऑकलैण्ड के समान पैरी भी पाश्चात्य ज्ञान तथा अग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा का समर्थक था। उसने प्रस्ताव किया कि अग्रेजी ग्रन्थो को देशी भाषाओ म अनुवादित कराना व्यर्थ का व्यय है। जनता अग्रजी शिक्षा की माग कर रही है। अत शिक्षा का माध्यम अग्रजी ही होना चाहिए। इस पक्षपातपूर्ण प्रस्ताव पर 'शिक्षा-बोर्ड' मे दो दल बन गय। एक दल मे पैरी एव २ अग्रज थे, जो अग्रेजी के पक्ष म थे। दूसरे दल मे बम्बई इजीनियरिंग कालेज का प्रिंसिपल, कर्नल जर्विस (Jervis) एव ३ भारतीय थे, जो देशी भाषाओ को शिक्षा का माध्यम रखना चाहते थे। जर्विस का मत था—

"साधारण शिक्षा उस भाषा के अतिरिक्त, अन्य किसी भाषा के माध्यम से नही दी जा सकती है, जिससे मनुष्य का मस्तिष्क परिचित नही है। मैं समझता हूँ कि देशी भाषाओ को प्रोत्साहित करना—हमारा सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है। यदि जनता के साहित्य की रक्षा करनी है, तो यह उसका स्वय का साहित्य होना चाहिये। साहित्य का अधिकाश भाग भले ही पाश्चात्य हो, परन्तु उसका देशी भाषाओ से तादात्म्य हो जाना चाहिये एव उसका स्वरूप एशियाई होना चाहिये।"[1]

---

1 'General instruction cannot be afforded, except through the medium of a language with which the mind is familiar I conceive it a paramount duty, on our part, to foster the Vernacular dialects If the people are to have a literature, it must be their own The stuff may be, in a great degree, European, but it must be freely interwoven with homespun materials and the fashion must be Asiatic"—J. A. Richey *op cit*, pp 11-13

१८३८ तक संघर्ष का रूप इतना उग्र हो गया कि सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। सौभाग्यवश, ५ अप्रैल, १८४८ को सरकार ने यह निर्णय किया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये देशी भाषाओं का, तथा उच्च शिक्षा के लिये अंग्रेजी का माध्यम होगा। इस निर्णय से कोई भी दल सन्तुष्ट नहीं हुआ, पर कुछ समय उपरान्त ही बंगाल की केन्द्रीय सरकार ने बम्बई सरकार को परामर्श दिया कि वह अपना ध्यान अंग्रेजी की शिक्षा पर केन्द्रित करे। परिणामत, अंग्रेजी के प्रभाव में वृद्धि होने लगी।

शिक्षा की प्रगति—ऐसी स्थिति में अंग्रेजी स्कूलों का नवनिर्माण स्वाभाविक था। सूरत, रत्नगिरी, अहमदाबाद, धारावार, कोल्हापुर, सतारा, राजकोट आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना हुई। अहमदाबाद में एक महिला-विद्यालय के लिये आर्थिक सहायता का प्रबन्ध किया गया। १८५१ में 'पूना संस्कृत कॉलेज' तथा 'पूना अंग्रेजी स्कूल' को एक में मिला दिया गया। इस नवीन शिक्षा-संस्था का नाम 'पूना कॉलेज' रखा गया। इस कॉलेज में शिक्षकों की दीक्षा के लिये एक 'नार्मल विभाग' भी खोल दिया गया। इसी प्रकार का एक विभाग सूरत के अंग्रेजी स्कूल में भी प्रारम्भ किया गया। १८५३ में देशी विद्यालयों को थोड़ा-सा राजकीय अनुदान दिया गया। १८५४ के 'आदेश पत्र' के अनुसार सरकार ने ग्रामों के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन का आधा व्यय वहन करने का वचन दिया।

इस प्रकार, १८३३ से १८५३ तक बम्बई में शिक्षा-प्रसार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया। १८५४ तक देशी विद्यालयों की संख्या २१६ हो गई थी, जिनमें १२ हजार से अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे। उनके साथ-साथ, अंग्रेजी विद्यालयों का भी निर्माण हुआ, जिससे अंग्रेजी शिक्षा का भी सर्वाङ्गीण विकास हुआ।

मद्रास

राजकीय प्रयास—हम पहले इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि १८३० में कम्पनी के संचालकों ने मुनरो की जन शिक्षा-योजना पर रोक लगा दी थी और लिखा था कि प्राथमिक शिक्षा के स्थान पर उच्च शिक्षा के लिये प्रयत्न किया जाय। संचालकों के इस आदेश ने देशी शिक्षा-व्यवस्था पर साघातिक प्रहार किया। देशी-विद्यालयों को प्रोत्साहन देना समाप्त कर दिया गया। जो तहसीली स्कूल स्थापित हो चुके थे, उन्हें १८३६ में बन्द करके अंग्रेजी स्कूल खोल दिये गये। कारण यह था कि इस प्रान्त के अधिकारी मैकॉले के विवरण-पत्र से प्रभावित होकर अंग्रेजी को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिये कटिबद्ध हो गये थे। ऐसी दशा में देशी विद्यालयों का जीवित रहना असम्भव था। उनका स्थान अंग्रेजी विद्यालय लेने लगे।

१८४१ में मद्रास नगर में एक हाईस्कूल स्थापित किया गया। जनता निरन्तर अंग्रेजी की उच्च शिक्षा की माँग कर रही थी। अत- जनता को सान्त्वना देने के लिये १८५२ में कॉलेज विभाग खोला गया। मद्रास में एक विश्वविद्यालय की स्थापना का

भी प्रस्ताव हुआ, परन्तु उसको अनावश्यक समझ कर उस पर विचार नही किया गया। एल्फिस्टन ने जिस 'विश्वविद्यालय बोर्ड' (University Board) का निर्माण किया था, उसका नाम १८४७ मे बदल कर 'शिक्षा-बोर्ड' कर दिया गया। इस बोर्ड को शिक्षा-सम्बन्धी व्यय के लिए १ लाख रुपये की धन-राशि प्रदान की गई, जिससे दो अंग्रेज़ी स्कूल स्थापित किय गये—एक, १८५३ मे कडलौर मे, और दूसरा, १८५५ मे राजमहेन्द्री मे।

मिशनरी एवं व्यक्तिगत प्रयास—मिशनरियो ने प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र मे प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होने बहुत से अंग्रेज़ी स्कूल भी खोले। सम्पूर्ण प्रान्त मे १८५२ मे १,१८५ मिशन स्कूल थे, जिनमे ३८,००५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। इस प्रकार, सरकार की अपेक्षा मिशनरियो के शिक्षा-प्रयास कही अधिक सन्तोषजनक थे।

व्यक्तिगत प्रयासों मे पच्चय्पा (Pachaiyappa) का नाम स्मरणीय है। इस दानवीर से प्राप्त धन से १८४२ मे एक स्कूल स्थापित किया गया।

पश्चिमोत्तर प्रान्त

प्रशासन की सुविधा के लिये १८४२ मे उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त को बंगाल से पृथक् कर दिया गया। इस नवनिर्मित प्रदेश का नाम १९०२ मे 'संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध' पडा जो अब 'उत्तर प्रदेश' कहा जाता है। १८४२ तक इस विभक्त प्रदेश मे आगरा, दिल्ली तथा बनारस मे कॉलेज स्थापित किये जा चुके थे, जो सुचारु रूप से कार्य कर रहे थे। १८४३ मे जेम्स टामसन (James Thomason) इस प्रान्त का गवर्नर नियुक्त हुआ।

टामसन का निर्णय—१८४५ मे टामसन ने अपने प्रान्त के समस्त जिलाधीशो को आदेश दिया कि वे अपने ज़िलो मे प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की जांच करके अपनी रिपोर्ट भेजें। इस जांच से उसे ज्ञात हुआ कि अंग्रेज़ी एवं मिशन-स्कूलो को छोडकर सम्पूर्ण प्रान्त मे प्रत्येक प्रकार के कुल ७,९६६ स्कूल थे, जिनमे ७०,८२६ लडके पढते थे।[1] इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुचा कि प्रान्त मे केवल ३·७ प्रतिशत लडके शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। टामसन को शिक्षा मे अभिरुचि थी। अत उसने जन-साधारण की शिक्षा को प्रोत्साहित एवं देशी विद्यालयो का जीर्णोद्धार करने का निश्चय किया। अपने कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये, उसने एडम की शिक्षा-योजना को सर्वोपयुक्त एवं देशी भाषा का संरक्षण उचित समझा। उसी के प्रयासो के फलस्वरूप भारत-सरकार ने देशी विद्यालयो को संगठित एवं विकसित करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। टामसन को आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है, और इस रूप मे भारतीय शिक्षा के इतिहास मे उसका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

टामसन की योजनाएँ—१८४६ मे टामसन ने वर्नाक्यूलर शिक्षा को संगठित

---

1. S. N. Chaturvedi : *History of Rural Education*, p. 73.

करने के लिये केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक विस्तृत योजना प्रस्तुत की। इस योजना मे उसने प्रस्ताव किया कि २०० घरो वाले प्रत्येक ग्राम मे एक स्कूल स्थापित किया जाय एव शिक्षको के वेतन के लिये जागीरें दी जायें। कम्पनी के सचालको ने जन-साधारण की शिक्षा की आवश्यकता को तो स्वीकार किया, परन्तु जागीरो के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और टामसन से दूसरी योजना प्रस्तुत करने के लिये कहा। १८४८ मे टामसन ने अपनी द्वितीय योजना तैयार की, जिसे सचालको ने स्वीकार कर लिया। इस योजना के अनुसार देशी विद्यालयो का जीर्णोद्धार तथा प्रत्येक तहसील मे आदर्श स्कूल का निर्माण हुआ।

तहसीली स्कूल—प्रत्येक तहसीली स्कूल मे एक प्रधान अध्यापक होता था, जिसे १०) रु० से २०) रु० मासिक वेतन मिलता था। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लिखना, पढना गणित, ज्यामिति, इतिहास एव भूगोल थे। प्रत्येक जिले के स्कूलो के निरीक्षण के लिये एक विजिटर (Visitor) होता था, जिसे १०० रु० से २०० रु० तक मासिक वेतन मिलता था। उसकी सहायता के लिये परगना विजिटर होते थे। इन विजिटरो के कार्य की देख-भाल के लिए एक विजिटर-जनरल (Visitor General) होता था, जिसका मासिक वेतन १,०००) रुपये था। सर्वप्रथम विजिटर-जनरल, मैनपुरी का जिलाधीश, एच० एस० रीड (H S Reid) था। तहसीली स्कूलो की इस योजना का प्रारम्भ ८ जिलो मे हुआ—बरेली, शाहजहाँपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, आगरा, मथुरा, अलीगढ तथा इटावा। कम्पनी के सचालको ने इन स्कूलो के व्यय के लिये १८४९ मे ५० हजार रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया। १८५० मे इस योजना का श्रीगणेश हुआ। १८५१ मे रीड ने आठो जिलो की जाँच कराई। इन जिलो मे ५० कस्बे एव १४,५७२ ग्राम थे। स्कूलो की सख्या ३,१२७ थी और उनमे २७,८५३ विद्यार्थी पढ रहे थे। इनमे से २० स्कूलो मे अग्रेजी की भी शिक्षा दी जाती थी।

हल्काबन्दी स्कूल—देशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये तहसीली स्कूलो की योजना के अतिरिक्त टामसन ने यह आवश्यक समझा कि प्राथमिक शिक्षा जन-साधारण के लिये सुलभ कर दी जाय। उसे अपने कार्य मे मथुरा के जिलाधीश, अलैक्जैण्डर (Alexander) से बहुत सहायता मिली, जिसने 'हल्काबन्दी स्कूल प्रणाली (Circle School System) के नाम से एक विस्तृत योजना १८५१ मे बनाई थी। इस योजना के अनुसार कुछ ग्रामो को मिलाकर एक 'हल्का' या 'क्षेत्र' बना दिया गया और उसमे एक प्राथमिक विद्यालय खोल दिया गया। यह विद्यालय ऐसे स्थान पर होता था, जहाँ से कोई भी ग्राम २ मील से अधिक दूर नही था। इन स्कूलो के व्यय के लिये जमीदार अपनी मालगुजारी का १ प्रतिशत देते थे। शीघ्र ही यह योजना आगरा, एटा, इटावा, बरेली मैनपुरी तथा शाहजहापुर मे फैल गई। १८५४ मे इस प्रकार के ७५८ विद्यालय थे, जिनमे १७ हजार छात्र पढते थे।[1]

---

[1] J. A. Richey : op. cit., p. 231.

पजाब

पजाब प्रान्त का निर्माण १८४९ मे हुआ था। उस समय तक वहाँ शिक्षा की दिशा मे विशेष प्रगति नही हुई थी। वहाँ बहुत समय से तीन प्रकार के स्कूल शिक्षा-कार्य में सलग्न थे—हिन्दू सिक्ख एव मुसलमान। हिन्दू विद्यार्थियो की एक बहुत बडी सख्या मुसलमानो के स्कूलो मे पाई जाती थी। लडकियो की शिक्षा का भी प्रबन्ध था। पजाब मे उर्दू भाषा प्रचलित होने के कारण अधिकाश हिन्दू एव सिक्ख बालक इस भाषा का अध्ययन करते थे। अमृतसर के निवासियो ने अग्रेजी सीखने के लिये उत्कट इच्छा व्यक्त की। परिणामस्वरूप, १८४९ मे वहा के स्कूल मे अग्रेजी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया। इसी प्रकार का एक स्कूल लाहौर मे भी खोला गया। इन स्कूलो मे अग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, सस्कृत, अरबी एव फारसी की भी शिक्षा दी जाती थी।

मई, १८०५ मे पश्चिमोत्तर प्रान्त की शिक्षा योजना को पजाब मे भी चालू करने के लिये केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्ताव मे ४ नामल स्कूल, ६० तहसीली स्कूल एव लाहौर मे एक कॉलिज स्थापित करने, तथा ५० परगना विजिटर, १२ जिला विजिटर और एक विजिटर-जनरल को नियुक्त करने की प्रार्थना की गई। जून, १८५४ में लार्ड डलहौजी ने कुछ सशोधन के साथ इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

उच्च शिक्षा

पश्चिमोत्तर प्रान्त—उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त की सरकार ने उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १८५२ मे आगरा मे एक नार्मल स्कूल का शिलान्यास हुआ और उसी वष सेन्ट जॉन्स कालेज, आगरा' की स्थापना हुई। १८५० मे बरेली हाई स्कूल एव १८५३ मे बनारस के 'जमनारायण घोपाल स्कूल' को कॉलिज बना दिया गया। १८५४ मे इस प्रान्त म स्कूलो की सख्या ३,१२० थी, जिनमे ५३ हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। उस वष आगरा, दिल्ली एव बनारस के राजकीय कॉलिजो म छात्रो की सख्या ९७६ हो गई थी। १८५४ मे सरकार, शिक्षा पर २ लाख २५ हजार रुपया व्यय कर रही थी, जिसम से कॉलिजो तथा स्कूलो पर १ लाख ८० हजार रुपया व्यय होता था।

अन्य प्रान्त—अन्य प्रान्तो मे मिशन कॉलेजो के अतिरिक्त, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है, कुछ राजकीय कॉलेजो का भी निर्माण किया गया। उदाहरणत बगाल मे ढाका कालेज (१८४१), कृष्णनगर कॉलिज (१८४५), एव बहरामपुर कालेज (१८५३)। बम्बई एव मद्रास मे भी कुछ कॉलेज स्थापित किय गये, पर उनकी सख्या अधिक नही थी। १८५७ म भारत म कॉलेजो की कुल सख्या २३ थी, जिनम मिशन-कॉलेज तथा व्यावसायिक शिक्षा (Professional & Vocational Education) देने वाले कॉलेज भी सम्मिलित थ।

व्यावसायिक शिक्षा

१८३३ तक भारत मे ब्रिटिश राज्य की जड़ें जम चुकी थी और सरकार को विभिन्न व्यवसायो के विशेषज्ञो की आवश्यकता पड़ने लगी थी। अतः सरकार ने भारतवासियो को चिकित्सको, इन्जीनियरो, वकीलो आदि के रूप मे शिक्षित करने की ओर ध्यान दिया और उनके लिए कॉलेज स्थापित किये। हम इनकी ओर नीचे संकेत कर रहे हैं —

१. चिकित्सा-शिक्षा

बंगाल—प्रारम्भ मे अंग्रेजो ने प्राच्य-शिक्षा को प्रोत्साहित करने की नीति अपनायी थी और प्राच्य-विद्यालयो तथा कॉलिजो का निर्माण किया था। इस योजना के अन्तर्गत १८२२ मे कलकत्ता मे भारतीयो के लिए एक चिकित्सा-विद्यालय स्थापित किया गया था, और १८२६ मे 'कलकत्ता संस्कृत कॉलेज' तथा 'कलकत्ता मदरसा' मे चिकित्सा-विभाग खोले गये थे। इनमे हिन्दू एव मुस्लिम ढंग पर चिकित्सा की शिक्षा प्रदान की जाती थी। जो भारतीय यहाँ से चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करके निकलते थे, वे अंग्रेजो की आवश्यकताओ को पूर्ण नही कर पाते थे, क्योकि वे शल्य-चिकित्सा से अनभिज्ञ होते थे। फलस्वरूप, 'लोक-शिक्षा-समिति' ने सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा कि भारतीयो को पाश्चात्य ढङ्ग पर चिकित्सा की शिक्षा प्रदान की जाय। सरकार ने समिति का यह प्रस्ताव जनवरी, १८३५ मे स्वीकार कर लिया। परिणामतः भारतीय ढङ्ग पर चलने वाला चिकित्सा-विद्यालय एवं चिकित्सा-कक्षाएँ बन्द कर दी गई और १८३५ मे 'कलकत्ता मेडिकल कॉलिज' की नीव पड़ी। इसमे पाश्चात्य ढग पर चिकित्सा की शिक्षा दी जाती थी। १८४४ मे इस कॉलेज के ४ भारतीय विद्यार्थियो को चिकित्सा मे विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए इङ्गलैंड भेजा गया।

मद्रास—यहाँ १८३५ मे यूरोपियन एवं भारतीय विद्यार्थियो के लिए एक मेडिकल स्कूल का निर्माण हुआ। इसमे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। १८५१ म इस स्कूल को कॉलिज मे परिवर्तित कर दिया गया।

बम्बई—१८३७ मे बम्बई के तत्कालीन गवर्नर, सर रॉबर्ट ग्राण्ट (Sir Robert Grant) ने एक मेडिकल कॉलेज स्थापित करने का विचार किया। किन्तु दुर्भाग्यवश उसके निधन के कारण योजना पूर्ण न हो सकी। बम्बई के निवासियो ने सर रॉबर्ट की स्मृति को चिरस्थायी रखने के विचार से धन एकत्र करके १८४५ मे 'ग्रान्ट मेडिकल कॉलेज' का शिलान्यास किया।

पाश्चात्य चिकित्सा-शिक्षा को प्रारम्भिक कठिनाई—हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि प्रारम्भ मे कम्पनी ने प्राच्य-शिक्षा को प्रोत्साहित करने की नीति को अपनाया था। इसी नीति के अन्तर्गत चिकित्सा की आयुर्वेद तथा यूनानी प्रणालियो को सुरक्षित रखने का विचार किया गया था। किन्तु मेकॉले एवं बैंटिक

की पाश्चात्य शिक्षा की नीति ने चिकित्सा-शिक्षा को भी प्रभावित किया और बंगाल की सरकार ने पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस नीति के फलस्वरूप भारतीय चिकित्सा-शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई, जिससे उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई। इस नीति को अपनाने मे अंग्रेजो ने केवल अपने ही हितो की पूर्ति का ध्यान रखा और भारतीयो के हितो की उपेक्षा की।

पाश्चात्य चिकित्सा-शिक्षा को प्रारम्भ करने मे एक महान् कठिनाई का अनुभव किया गया। भारतीय मृत-शरीर को स्पर्श करना पाप समझते थे और शल्य-चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मृत-शरीर की चीर-फाड आवश्यक थी। इस कठिनाई पर प्रथम भारतीय विद्यार्थी मधुसूदन गुप्त की सहायता से विजय प्राप्त की गई। डा० गुडेव (Goodeve) के साथ उसने एक मृत-शरीर की चीर-फाड की। इस दृश्य को देखकर भारतीय विद्यार्थियो के हृदय मे मनोवैज्ञानिक तथा क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ हुआ और वे पाश्चात्य ढग पर चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अग्रसर हुए। फलतः प्रति वर्ष मेडिकल कॉलेजो मे भारतीय छात्रो की संख्या में वृद्धि होने लगी।

२. इंजीनियरिंग की शिक्षा

बंगाल—१८५४ मे 'शिक्षा-परिषद्' ने प्रेसीडेन्सी कॉलेज, कलकत्ता में एक इंजीनियरिंग स्कूल खोलने का प्रस्ताव सरकार के समक्ष रखा। इसी अवसर पर बंगाल के प्रधान इंजीनियर ने "सार्वजनिक निर्माण-विभाग में सामान्य सुधार करने के लिए" एक इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित करने की माँग की। कम्पनी के संचालकों ने इन दोनो प्रस्तावो पर विचार करके एक इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की स्वीकृति प्रदान की। फलस्वरूप, १८५६ में कलकत्ता में इंजीनियरिंग कॉलेज का शिलान्यास हुआ।

ऑफ रेवेन्यू' (Board of Revenue) के संरक्षण में 'पैमाइश करने का एक स्कूल' (A Survey School) चल रहा था।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—१८४५ तक इस प्रान्त मे इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिये कोई प्रबन्ध नही था। उस वर्ष सरकार की सिंचाई-योजना के लिये योग्य व्यक्तियो को प्राप्त करने के उद्देश्य से सहारनपुर मे एक इन्जीनियरिंग कक्षा प्रारम्भ की गई। इस प्रान्त के गवर्नर, टामसन के प्रयास के फलस्वरूप १८४७ मे इस कक्षा को हटाकर रुडकी ले जाया गया और इसे कॉलेज का रूप दिया गया। टामसन के देहावसान के पश्चात्, १८५४ से उसके नाम को इस कॉलेज से सम्बद्ध कर दिया गया और यह 'टामसन इंजीनियरिंग कॉलेज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

३. कानून की शिक्षा

भारत के अंग्रेज शासक अपने शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षो मे ही हिन्दू एवं मुस्लिम कानून के विशेषज्ञो की आवश्यकता का अनुभव कर चुके थे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'कलकत्ता मदरसा' तथा 'बनारस संस्कृत कॉलेज' का निर्माण किया गया था। साम्राज्य-विस्तार के कारण अधिक विशेषज्ञो की आवश्यकता पडी। अत १८४२ मे 'कलकत्ता हिन्दू विद्यालय' मे कानून की शिक्षा की व्यवस्था एवं कानून के एक प्रोफेसर की नियुक्ति की गई। कानून की शिक्षा का यह प्रयास 'सागर मे एक बूँद' के समान था और यह भारतीयो की कानून पढने की जिज्ञासा को तृप्त न कर सका।

४. अन्य शिक्षा-संस्थाएँ

उपर्युक्त व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओ के अतिरिक्त भारत में कुछ अन्य शिक्षा-संस्थाएँ अधोलिखित स्थानो पर थी :—

१—१८४० मे मेजर मेटलैण्ड (Major Maitland) ने मद्रास मे अस्त्र-सम्बन्धी (Ordnance) शिक्षा के लिये एक 'औद्योगिक स्कूल' (*Industrial School*) स्थापित किया।

२—१८५० मे डा० हन्टर (Hunter) ने मद्रास मे एक 'औद्योगिक कला-स्कूल' (*School of Industrial Arts*) *का शिलान्यास किया।* १८५१ मे उसने एक 'औद्योगिक स्कूल' का निर्माण किया। इस स्कूल का उद्देश्य—लाभप्रद कारीगरी की शिक्षा देना तथा दैनिक प्रयोग की विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन को उन्नत बनाना था। १८५५ मे इन दोनो स्कूलो को मिलाकर एक कर दिया गया और इसका प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया।

३—१८५३ मे सर जमशेदजी जीजीभाई (Sir Jamsedjee Jeejeebhoy) ने बम्बई मे 'कला एवं उद्योग के स्कूल' की स्थापना के लिये १ लाख रुपया दान दिया। इस धन का उपयोग १८५६ मे 'जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट' का निर्माण करके किया गया।

उपसंहार

१८३३ से १८५३ तक ईस्ट-इण्डिया कम्पनी—व्यवसाय, विजय एव राज्य-संगठन के कार्यो मे व्यस्त रही। अत इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है कि उसके संचालको तथा अधिकारियो को शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देने एवं उस पर पर्याप्त धन व्यय करने का अवसर प्राप्त नही हुआ। शिक्षा प्रसार की दिशा मे जो राजकीय प्रयत्न किये गये, वे इस देश की जनसख्या की विशालता तथा निवासियो की निरक्षरता को देखते हुए 'सागर मे कुछ बूँदो' के समान थे। १८५५ मे जिन शिक्षा-सस्थाओ का प्रबन्ध कम्पनी कर रही थी, उनकी संख्या केवल १,४७४ थी और उनमे ६७,५६६ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तथा शिक्षा पर किया जाने वाला कुल व्यय सम्पूर्ण आय का १ प्रतिशत भी नही था। इस प्रकार, इस काल म शिक्षा की प्रगति संतोष-जनक नही हुई।

इस काल की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी है। प्रथम, लार्ड हार्डिञ्ज की घोषणा के फलस्वरूप शिक्षा एवं नौकरी के मध्य एकात्मिकता की स्थापना हुई। उसी समय से शिक्षा का चरम लक्ष्य 'नौकरी' माना जाने लगा। परन्तु तात्कालिक स्थिति पर इसका कोई विशेष प्रभाव नही पडा, क्योकि १८४४ से १८५३ तक की ९ वर्ष की अवधि मे केवल १० व्यक्तियो को इस प्रकार नौकरी मिली। द्वितीय, प्राथमिक शिक्षा का भार विभिन्न समितियो पर होने के कारण शिक्षण-पद्धति मे एकरूपता की स्थापना न हो सकी। अध्यापको को इतना कम वेतन मिलता था कि उनमे शिक्षण-योग्यता की आशा करना व्यर्थ था। कम्पनी ने 'नवीन प्राथमिक शिक्षा' के प्रसार एवं संरक्षण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया, किन्तु फिर भी उसकी गति तीव्र न हुई। अप्रत्यक्ष रूप मे देशी एवं नवीन प्राथमिक विद्यालयो म प्रतिद्वन्द्विता की भावना प्रारम्भ हो गई। फलस्वरूप, प्राच्य-शिक्षा का क्रमिक ह्रास होने लगा। तृतीय, अंग्रेजी के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही थी। परन्तु कोरे पुस्तकीय ज्ञान पर बल देकर शिक्षा के क्षेत्र मे अवाछनीय बीज बोया जा रहा था।

साराश

बंगाल—बैंटिक ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित किया। फलतः अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिये विद्यालयो का निर्माण होने लगा। ऑकलैण्ड ने प्रत्येक जिले मे एक 'जिला विद्यालय' स्थापित किया। हार्डिञ्ज ने अंग्रेजी स्कूलो एवं प्राथमिक विद्यालयो को प्रोत्साहन दिया। डलहौजी ने अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ करके प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया। 'शिक्षा-परिषद्' ने पाठ्य-पुस्तको मे सुधार किया, विद्यालय-निरीक्षक नियुक्त किये एवं प्राथमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया। हाजी मुहम्मद मुहसिन से प्राप्त धन से हुगली कॉलेज का निर्माण हुआ। बेथ्यून ने लडकियो के लिए एक स्कूल का प्रबन्ध किया। मिशनरियो ने १८५३ तक २२ स्कूल निर्मित किये। बनर्जी तथा बैलेन्टाइन के प्रयास करने पर भी देशी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम न बन सकी।

बम्बई—'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति' ने १८४० तक ११५ जिला प्राथमिक विद्यालय खोले। सरकार ने 'एल्फिस्टन इंस्टीट्यूशन' स्थापित किया और पुरन्दर ताल्लुक्का मे ६३ प्राइमरी स्कूल खोले। 'शिक्षा-बोर्ड' ने ऐडम की योजना कार्यान्वित करने का प्रयास किया, परन्तु सफलता न मिली। माध्यम के प्रश्न पर 'शिक्षा-बोर्ड' के सदस्यो के दो दल बन गये। १८४८ मे सरकार ने निर्णय किया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये देशी भाषाओ तथा उच्च शिक्षा के लिये अंग्रेज़ी का माध्यम होगा। फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिला।

मद्रास—सरकार ने १८४१ मे मद्रास नगर मे एक हाई स्कूल खोला। १८५२ मे उसमे कॉलेज-विभाग खोला गया। 'शिक्षा-बोर्ड' ने २ अंग्रेजी स्कूल स्थापित किये। मिशनरियो ने १८५२ तक १,१८५ स्कूलो का निर्माण किया। पच्यप्पा से प्राप्त धन से १८४२ मे एक स्कूल खोला गया।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—टामसन के प्रयास के फलस्वरूप तहसीली स्कूल खोले गये एवं परगना विजिटर, ज़िला विजिटर तथा विजिटर-जनरल की नियुक्ति हुई। मथुरा के जिलाधीश, अलैक्जैण्डर ने 'हल्कावन्दी स्कूल' की योजना बनाई। १८५४ मे इस प्रकार के ७५८ स्कूल थे।

पजाब—१८४६ मे अमृतसर मे अंग्रेजी की शिक्षा के लिये सरकार ने एक स्कूल खोला। इसी प्रकार का एक स्कूल लाहौर मे भी खोला गया। १८५५ मे ४ नार्मल स्कूल एव ३० तहसीली स्कूल खोलने तथा ५० परगना विजिटर, १२ जिला-विजिटर एवं १ विजिटर-जनरल की नियुक्ति की योजना बनाई गई।

उच्चशिक्षा—१८५० मे 'बरेली हाई-स्कूल' एवं १८५३ मे बनारस के 'जयनारायण घोषाल स्कूल' को कॉलेज बना दिया गया।

चिकित्सा-शिक्षा—१८३५ मे 'कलकत्ता मेडिकल कॉलेज' की नीव पडी। १८५१ मे मद्रास के मेडिकल स्कूल को कॉलेज मे परिवर्तित कर दिया गया। १८५४ मे, बम्बई मे 'ग्रान्ट मेडिकल कॉलेज' स्थापित किया गया।

इजीनियरिंग की शिक्षा—१८५४ मे पूना मे एक इंजीनियरिंग कक्षा तथा एक यंत्रशास्त्र का विद्यालय स्थापित किया गया। १८५४ मे रुडकी मे 'टामसन इंजीनियरिंग कॉलेज' का निर्माण हुआ। १८५६ मे कलकत्ता मे एक इंजीनियरिंग कॉलेज का शिलान्यास हुआ।

क़ानून की शिक्षा—१८४२ मे 'कलकत्ता हिन्दू विद्यालय' मे कानून की शिक्षा की व्यवस्था की गई। मद्रास एवं बम्बई मे कानून की शिक्षा का प्रबन्ध १८५५ मे किया गया।

TEST QUESTIONS

1. Write a brief account of the progress of education from 1833 to 1853.
   १८३३ से १८५३ तक शिक्षा की प्रगति का संक्षेप मे वर्णन कीजिये।

2, Describe briefly Thomason's plan for the development of mass education in the North-Western Provinces.

पश्चिमोत्तर प्रान्त मे जन-शिक्षा के विकास के लिये टामसन की योजना का वर्णन कीजिये !

3. "James Thomason is regarded as the father of elementary education in India." Discuss.

"जेम्स टामसन को भारत मे प्राथमिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है।" विवेचना कीजिये ।

१०

वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र, १८५४

कम्पनी का नया आदेश-पत्र

१८३३ के बाद १८५३ मे कम्पनी के 'आज्ञा-पत्र' (Charter) के नवीनीकरण का अवसर आया। उस समय तक ब्रिटिश लोक-सभा यह अनुभव कर चुकी थी कि भारतीय शिक्षा की उपेक्षा करना उपयुक्त न होगा, और शिक्षा की एक स्थायी नीति ग्रहण करना आवश्यक था। इन विचारो से प्रेरित होकर लोक सभा ने एक 'ससदीय-समिति' (Select Committee of the House of Commons) नियुक्त की। समिति ने १८५३ तक की भारतीय शिक्षा का गहन अध्ययन किया और ट्रैवेलियन, पैरी, मार्शमैन, विल्सन, हैलीडे, डफ[1]—आदि भारतीय शिक्षा मर्मज्ञो के विचारो को सुना। अपनी इस जाँच के आधार पर समिति ने स्पष्ट रूप से बताया कि भारतीय शिक्षा के प्रश्न को टालना हितकर न होगा और उससे ब्रिटिश साम्राज्य को क्षति पहुँचने की कोई आशका नही थी। समिति के सुझावो के आधार पर १९ जुलाई, १८५४ को कम्पनी के सचालको ने अपनी भारतीय शिक्षा-नीति की घोषणा की। उस समय चार्ल्स वुड (Charles Wood) कम्पनी के 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' का प्रधान था। अत उसी के नाम पर कम्पनी का यह नया आदेश-पत्र, 'वुड का शिक्षा घोषणा-पत्र' (Wood's Education Despatch) कहा गया। यह घोषणा-पत्र १०० अनुच्छेदो का एक लम्ब अभिलेख था, जिसमे भारतीय शिक्षा के सुधार के लिए एक विशिष्ट योजना का निरूपण किया गया था। घोषणा पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक नवीन उप-काल का श्रीगणश किया। हम नीचे इस घोषणा-पत्र के शिक्षा-सिद्धान्तो पर प्रकाश डाल रहे हे —

घोषणा-पत्र मे विवाद-ग्रस्त विषयो का सिंहावलोकन

सर्वप्रथम 'वुड के घोषणा-पत्र' मे भारतीय शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी के

1. Trevelyan, Perry, Marshman, Wilson, Halliday, Duff

ऊपर बताया गया और शिक्षा को एक पुनीत कर्त्तव्य कहा गया। "अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में से, अन्य कोई भी विषय हमारा ध्यान इतना आकर्षित नही कर सकता है, जितना कि शिक्षा। यह हमारा एक पुनीत कर्त्तव्य है।"[1]

इसके उपरान्त 'घोषणा-पत्र' मे प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद की ओर संकेत किया गया। प्राच्य-साहित्य की निन्दा नही की गई, परन्तु मैकॉले के समान पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान को भारतवासियो के लिये उपयुक्त बताया गया।

आगे चलकर 'घोषणा-पत्र' मे शिक्षा के माध्यम-सम्बन्धी जटिल प्रश्न को हल किया गया। यह बात स्वीकार की गई कि अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने से देशी भाषाओ की प्रगति अवरुद्ध हो गई थी। परन्तु इस आरोप का खण्डन किया गया कि अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम इसलिये बनाया गया—ताकि देशी भाषाओ के विकास मे रुकावट डाली जा सके। अन्त मे, इस बात पर बल दिया गया कि अंग्रेजी एवं देशी भाषाओ को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

इस प्रकार विवाद-ग्रस्त विषयो का सिंहावलोकन करने के पश्चात् 'घोषणा-पत्र' मे कुछ शिक्षा-सम्बन्धी सिफ़ारिशें की गईं, जिनका उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं :—

'घोषणा-पत्र' की सिफ़ारिशें

(१) शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा के उद्देश्य को भारतवासियों तथा अंग्रेजी राज्य के हितो को ध्यान मे रखकर निर्धारित किया गया। 'घोषणा-पत्र' मे यह बात स्पष्ट कर दी गई कि शिक्षा द्वारा भारतीयो की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करने के साथ ही ऐसे व्यक्तियो को उत्पन्न करना था, जो राज्य को सुदृढ़ बना सकें और विश्वास के साथ राजपदो पर नियुक्त किये जा सकें।

(२) पाठ्य-क्रम—पाठ्यक्रम के लिये भारतीय भाषाओ के साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बताया गया। कानून की दृष्टि से भी इस साहित्य का महत्त्व स्वीकार किया गया। इस प्रकार, संस्कृत, अरबी एवं फारसी की उपयोगिता स्वीकार करके उन्हे पाठ्यक्रम मे स्थान दिया गया, परन्तु पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानो का अध्ययन ही भारतीयो के लिये उपयुक्त समझा गया। "हम बलपूर्वक घोषणा करते है कि जिस शिक्षा का प्रसार हम भारत मे करना चाहते है, उसका उद्देश्य—यूरोपीय उच्च कला, विज्ञान, दर्शन, एवं यूरोपीय साहित्य, अर्थात्, संक्षेप मे, यूरोपीय ज्ञान है।"[2]

---

1. "Among many subjects of importance, none can have a stronger claim to our attention than that of education. It is one of our most sacred duties."—Wood's *Despatch*.

2. "We must emphatically declare that the education which we desire to see extended in India is that which has for its object the diffusion of the improved Arts, Science, Philosophy and Literature of Europe, in short, of European knowledge."

—Wood's

(३) शिक्षा का माध्यम—'घोषणा-पत्र' में बताया गया कि देशी भाषाओं मे पुस्तकों का अभाव होने के कारण अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक है। परन्तु यह बात स्पष्ट कर दी गई कि अंग्रेजी का माध्यम केवल उन व्यक्तियो के लिए होगा, जो इस भाषा का समुचित ज्ञान रखते हो और जो इसके द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर सकें। अन्य व्यक्तियों के लिए शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ होगी। इस प्रकार अंग्रेजी तथा देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया। "यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिए हम अंग्रेजी भाषा तथा भारत की देशी भाषाओं की ओर शिक्षा के माध्यम के रूप में देखते है, और भारत के समस्त स्कूलो मे उनको साथ-साथ फलते-फूलते देखने की हमारी अभिलाषा है।"[1]

(४) जन-शिक्षा-विभाग की स्थापना—'घोषणा-पत्र' मे आदेश दिया गया कि भारत के प्रत्येक प्रान्त मे एक 'जन-शिक्षा-विभाग' (Department of Public Instruction) स्थापित किया जाय और उसका सर्वोच्च अधिकारी 'जन-शिक्षा-संचालक' (Director of Public Instruction) हो। उसकी सहायता के लिए उपशिक्षा-संचालक, निरीक्षक (Inspector) तथा सहायक निरीक्षक नियुक्त किये जाएँ। प्रान्त की शिक्षा की व्यवस्था एवं उसके संचालन का भार शिक्षा-संचालक पर होगा और वह प्रति वर्ष सरकार को शिक्षा-विषयक रिपोर्ट भेजेगा।

(५) विश्वविद्यालयों की स्थापना—'घोषणा-पत्र' मे कहा गया कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए कलकत्ता, बम्बई और यदि आवश्यकता हो, तो मद्रास तथा अन्य स्थानो मे विश्वविद्यालय स्थापित किये जायें। इन विश्वविद्यालयो का निर्माण लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मानकर किया जाय। प्रत्येक विश्वविद्यालय के लिए कुलपति (Chancellor), उपकुलपति (Vice-Chancellor) तथा अभिसदस्य (Fellows) होगे, जो सरकार के द्वारा मनोनीत किये जायेगे। इन सब को मिलाकर 'सीनेट' (Senate) बनाई जायगी, जो विश्वविद्यालय के लिए नियम बनायेगी और उसका प्रबन्ध करेगी। विश्वविद्यालय अपने से सम्बद्ध कालिजो के विद्यार्थियों की परीक्षा लेगा और उपाधियाँ प्रदान करेगा। विश्वविद्यालयो मे इंजीनियरिंग, कानून, देशी भाषाओ, संस्कृत, अरबी एवं फारसी की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिये विशेष रूप से उल्लेख किया गया। इस प्रकार 'घोषणा-पत्र' मे प्राच्य-भाषाओ के विकास की ओर समुचित ध्यान दिया गया, परन्तु अंग्रेजी शिक्षा की माँग होने के कारण उनकी अपेक्षित प्रगति न हो सकी।

(६) क्रमबद्ध विद्यालयों की स्थापना—'घोषणा-पत्र' मे सम्पूर्ण भारत मे

1. "We look to the English language and to the Vernacular languages of India together as the media for the diffusion of European knowledge, and it is our desire to see them cultivated together in all schools in India."—*Ibid.*

क्रमवद्ध विद्यालयो (Graded Schools) की योजना पर बल दिया गया। इस योजना का स्पष्टीकरण करते हुए 'घोषणा-पत्र' मे अंकित किया गया कि—शिक्षा का ढाचा इस प्रकार का हो, जिसके आधार मे प्राथमिक विद्यालय हो और फिर मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय हों। इस योजना की रूप-रेखा केवल इस अभिप्राय से तैयार की गई थी, जिससे ज्ञान के अभिलाषी व्यक्तियो को क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने मे किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

(७) जन-शिक्षा-प्रसार—'घोषणा-पत्र' मे निस्यन्दन-सिद्धान्त के अनुसरण किये जाने पर असंतोष प्रकट किया गया और यह स्वीकार किया गया कि जन-साधारण की शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई थी। अभी तक कम्पनी के अधिकारियो का ध्यान वर्ग-विशेष की शिक्षा की ओर था और उसी पर राज-कोष का अधिकाश भाग व्यय किया जाता था। अत 'घोषणा-पत्र' मे कहा गया कि जन-साधारण को व्यावहारिक एवं लाभदायक शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। 'घोषणा-पत्र' मे अंकित किया गया :—"अब हमारा ध्यान इस अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर जाना चाहिए, जिसकी अभी तक अवहेलना की गई है, अर्थात् जीवन के सभी अङ्गो के लिए लाभदायक एवं व्यावहारिक शिक्षा, उस विशाल जनसमूह को किस प्रकार दी जाय जो किसी सहायता के बिना स्वयं लाभदायक शिक्षा पाने मे पूर्णत- असमर्थ है।"

इस उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए हाई-स्कूलो, मिडिल स्कूलो एवं प्राथमिक स्कूलो की संख्या मे वृद्धि की जाय। 'घोषणा-पत्र' मे सिफारिश की गई कि निर्धन किन्तु योग्य विद्यार्थियो को शिक्षा के सभी स्तरो पर छात्रवृत्तियाँ दी जायँ, जिससे वे शिक्षा प्राप्त करने से वंचित न रह सकें। घोषणा-पत्र मे देशी विद्यालयो को प्रोत्साहित करने की उस नीति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया, जिसका अनुसरण टामसन द्वारा उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त मे किया गया था। लार्ड ऑकलैण्ड की नीति के प्रतिकूल, देशी प्राथमिक विद्यालयो को शिक्षा का आधार माना गया और उसी पर सम्पूर्ण शिक्षा-भवन का निर्माण करने का प्रस्ताव किया गया।

(८) सहायता-अनुदान-पद्धति—जन-शिक्षा-प्रसार की योजना तो उत्तम थी, परन्तु उसे कार्यान्वित करने के लिये कम्पनी को अत्यधिक धन व्यय करना पडता। अतः 'घोषणा-पत्र' मे सहायता-अनुदान (Grant-in-aid) का सुभाव दिया गया। इस पद्धति से चिर-परिचित होने के कारण भारतीयो को इसे स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नही थी। इससे शिक्षित एवं धनी वर्गों की उदारता एवं प्रयासों को प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता था, और शिक्षा को तीव्र प्रगति भी सम्भव थी। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार, सहायता-अनुदान सम्बन्धी कुछ नियम बनाये और सहायता-अनुदान उन्ही शिक्षा-संस्थाओ को दिया जाय, जो निम्नांकित शर्तों को स्वीकार करें :—

१. विद्यालय मे बिना किसी भेदभाव के अच्छी और धर्म-निरपेक्ष लौकिक शिक्षा देना।

२. विद्यालय का स्थानीय व्यक्तियो की प्रवन्धकारिणी समिति के द्वारा कुशलतापूर्वक संचालन किया जाना।

३. विद्यालय के विद्यार्थियो से शुल्क के रूप मे कुछ धन लेना।

४. विद्यालय के प्रबन्धको द्वारा सरकारी निरीक्षण तथा सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियमो का पालन किया जाना।

'घोषणा-पत्र' मे उल्लेख किया गया कि प्रान्तीय सरकारें, इङ्गलैंड की सहायता-अनुदान-प्रणाली का अनुसरण करें और शिक्षको के वेतन, छात्रवृत्तियो, पुस्तकालयो, वाचनालयो, प्रयोगशालाओ, विज्ञान एव कला-कक्षाओ तथा भवन-निर्माण आदि के लिए अलग-अलग अनुदान देने की व्यवस्था करें। अनुदान सब प्रकार के विद्यालयो को दिया जाय। इस अनुदान-प्रणाली को अपनाकर व्यक्तिगत विद्यालयो की वृद्धि होगी और कुछ समय पश्चात् उनकी संख्या इतनी हो जायगी कि सरकार स्कूलो को चलाने के व्यय-भार से मुक्त हो जायगी। इन सरकारी स्कूलो को या तो स्थानीय स्कूल-प्रबन्धको को हस्तान्तरित कर दिया जायगा या बन्द कर दिया जायगा। इस प्रकार, कम्पनी के संचालक थोडा-सा धन व्यय करके राजकीय विद्यालयो की स्थापना एवं उनके संचालन के उत्तरदायित्व से बचना चाहते थे।

'घोषणा-पत्र' मे सहायता-अनुदान-प्रणाली पर विशेष रूप से बल दिया गया। सम्भवत इसका उद्देश्य—मिशनरियो के शिक्षा-कार्य को प्रोत्साहित करना था, क्योकि उस समय व्यक्तिगत रूप में मिशन स्कूलो की ही बहुलता थी। शंका का समाधान इस बात से हो जाता है कि 'घोषणा-पत्र' के लेखबद्ध किये जाने मे डॉ० डफ ऐसे मिशनरियो का व्यापक प्रभाव पडा। अत. यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि नवीन सहायता-अनुदान-प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य—मिशनरियो के शिक्षा-कार्य को पहले से अधिक प्रोत्साहन देना था।

(९) **अध्यापको का प्रशिक्षण**—वुड के घोषणा-पत्र द्वारा कम्पनी के संचालकों ने यह इच्छा व्यक्त की कि इङ्गलैण्ड के ढंग पर भारत के प्रत्येक प्रान्त मे अति शीघ्र प्रशिक्षण-विद्यालय निर्मित किये जायँ। औषध-शास्त्र, इंजीनियरिंग तथा कानून आदि मे भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

संचालको ने यह भी आशा प्रकट की कि छात्राध्यापको को छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को अधिक वेतन देकर शिक्षा-विभाग को उतना ही आकर्षक बनाया जाय, जितने कि अन्य राजकीय विभाग थे।

(१०) **स्त्री-शिक्षा**—'घोषणा-पत्र' मे स्त्री-शिक्षा के लिये धन देने वाले व्यक्तियों की सराहना की गई और आदेश दिया गया कि उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करके उनको इस परम-पुनीत कार्य के लिये अधिक प्रेरणा दी जाय। यह भी कहा गया कि स्त्री-शिक्षा के विद्यालयों को सहायता-अनुदान दिया जाय। संचालक

गवर्नर-जनरल की इस घोषणा से सहमत थे कि भारत मे स्त्री-शिक्षा को सरकार की स्पष्ट एवं मैत्रीपूर्ण सहायता प्राप्त होनी चाहिये।

(११) व्यावसायिक शिक्षा—'घोषणा-पत्र' मे व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) की ओर सकेत करते हुए लिखा गया कि ऐसे कॉलेजो और स्कूलो का निर्माण किया जाय, जिनमे भारतीय, विभिन्न व्यवसायो की शिक्षा प्राप्त कर सकें। व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने मे सचालको के दो उद्देश्य थे—(१) इस शिक्षा को प्राप्त करके बेकार व्यक्ति कार्य मे लग जायेंगे और सरकार का आभार मानेंगे, (२) व्यावसायिक विद्यालयो की स्थापना से भारतीयो का हित भी सम्भव होगा और सरकार को स्वामीभक्त व्यक्ति भी मिल जायेंगे।

(१२) प्राच्य-साहित्य को प्रोत्साहन—'घोषणा-पत्र' मे प्राच्य-साहित्य को प्रोत्साहन देने की सिफारिश की गई। यह सुझाव दिया गया कि पाश्चात्य साहित्य एव विज्ञान की पुस्तको का भारतीय भाषाओ मे अनुवाद कराया जाय। इसके अतिरिक्त, देशी भाषाओ म पुस्तकें लिखवाई जाय और लेखको को सुन्दर पुरस्कार दिये जायें।

(१३) शिक्षा और रोजगार—'घोषणा-पत्र' मे शिक्षित व्यक्तियो को सरकारी नौकरियाँ देने का आदेश दिया गया। यह बात स्पष्ट कर दी गई कि नियुक्तियाँ करते समय व्यक्तियो की शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय और उन व्यक्तियो को प्राथमिकता दी जाय, जिनकी शिक्षा-योग्यता अन्य व्यक्तियो से अधिक है। इस नीति को अपनाने से न केवल शिक्षा का प्रसार होगा, अपितु शिक्षा प्राप्त करके जनता मे मानवीय गुणो का विकास होगा, जिसके फलस्वरूप उनका जीवन अधिक सफल होगा।

इस प्रकार वुड ने शिक्षा घोषणा-पत्र में यूरोपीय ज्ञान के प्रसार, अंग्रेजी एवं देशी भाषाओ को शिक्षा का माध्यम, जन शिक्षा विभाग, विश्वविद्यालयो और क्रम-बद्ध विद्यालयों की स्थापना, जन शिक्षा प्रसार, सहायता-अनुदान, अध्यापको के प्रशिक्षण, स्त्री एव व्यावसायिक शिक्षा, प्राच्य-साहित्य के प्रोत्साहन तथा शिक्षित व्यक्तियो को सरकारी नौकरियाँ देने की सिफारिश की गई।

'घोषणा-पत्र' का मूल्याकन

वुड का 'घोषणा पत्र' भारतीय शिक्षा के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा। इसने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के आवरण को चीर कर उसका नग्न रूप चित्रित किया और आधारभूत सिद्धान्तो की व्याख्या करके शिक्षा के भावी स्वरूप को निर्धारित किया। परन्तु इस 'घोषणा-पत्र' की उपादेयता के सम्बन्ध म गहरा मतभेद है। अत इसके गुण-दोषो का सूक्ष्म विवेचन आवश्यक हो जाता है —

गुण • Merits

१ 'आदेश-पत्र' ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन प्रकरण

किया। जेम्स (James) ने इसे—"भारत में अंग्रेजी शिक्षा का महाधिकार-पत्र" (Manga Charta of English Education in India) कहा है।

२. 'आदेश-पत्र' ने भारतीय शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण कर दिया, और इस प्रकार शिक्षा को एक निश्चित मार्ग की ओर अग्रसर किया।

३ 'आदेश-पत्र' से प्रभावित होकर ब्रिटिश लोक-सभा ने भारतीय शिक्षा की नीति निर्धारित कर दी और उसे वैधानिक रूप देने का प्रयास किया।

४ 'आदेश-पत्र' के द्वारा कम्पनी ने अधिकृत रूप मे स्वीकार किया कि जन-साधारण को शिक्षा देना—सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है।

५. 'आदेश-पत्र' ने प्रथम बार एक विशद् शिक्षा-योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की, जिसमे प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा को स्थान दिया गया।

६ 'आदेश-पत्र' ने क्रमबद्ध (Graded) विद्यालयो की स्थापना का सुझाव रखकर शिक्षा-प्रसार के कार्य को सफल बनाने का प्रयास किया।

७ 'आदेश-पत्र' ने 'निस्यन्दन सिद्धान्त' को ठुकरा कर जन-शिक्षा को प्रोत्साहित करने वाले सिद्धान्त को मान्यता दी।

८. 'आदेश-पत्र' के द्वारा भारतीय साहित्य के महत्त्व को स्वीकार किया गया और प्राच्य भाषाओ को पाठ्य क्रम मे स्थान दिया गया।

९ 'आदेश-पत्र' ने प्राच्य-साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिये भारतीय भाषाओ मे पुस्तकें लिखवाने की व्यवस्था की।

१० 'आदेश-पत्र' ने देशी प्राथमिक विद्यालयो को प्रोत्साहित करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया।

११. 'आदेश-पत्र के द्वारा अंग्रेजी के साथ-साथ, देशी भाषाओ को माध्यमिक शिक्षा के माध्यम के रूप मे ग्रहण करने पर बल दिया गया।

१२ 'आदेश-पत्र' ने प्रत्येक प्रान्त म जन शिक्षा-विभाग की स्थापना करके और उसमे शिक्षा सचालक, निरीक्षका आदि की नियुक्ति करके शिक्षा को राज्य क अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित तथा सुसगठित रूप प्रदान किया।

१३. 'आदेश-पत्र' के द्वारा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विद्यालयो की सख्या म पर्याप्त वृद्धि की गई और विश्वविद्यालयो की स्थापना करके उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

१४ 'आदेश-पत्र' ने व्यावसायिक शिक्षा-सस्थाओ का प्रबन्ध करके बेकारी की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया।

१५ 'आदेश-पत्र' द्वारा स्वीकार किया गया कि स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करना—सरकार का स्पष्ट कर्त्तव्य है।

१६. 'आदेश-पत्र' ने निर्धन किन्तु योग्य विद्यार्थियो के लिये छात्रवृत्तियो की व्यवस्था की, जिससे कि वे सरलतापूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सकें।

१७. 'आदेश-पत्र' ने शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये नार्मल स्कूलो तथा प्रशिक्षण-विद्यालयों की स्थापना की, और छात्रवृत्तियां देकर योग्य व्यक्तियो को उनमे अध्ययन करने के लिए आकर्षित किया।

१८. 'आदेश-पत्र' द्वारा शिक्षको को अधिक वेतन देने की सिफारिश की गई, और इस प्रकार शिक्षा-विभाग की नौकरियो को आकर्षक बनाया गया।

१६. 'आदेश-पत्र' ने सब प्रकार के विद्यालयो के लिए सहायता-अनुदान की प्रणाली प्रचलित की, जिससे शिक्षा के विस्तार की गति तीव्र हो गई।

२०. 'आदेश-पत्र' ने यह बात स्पष्ट कर दी कि सरकारी नौकरियो मे शिक्षित व्यक्तियो को प्राथमिकता दी जायगी। फलस्वरूप, जन-साधारण की शिक्षा मे अधिक अभिरुचि हो गई।

२१. लार्ड डलहौजी के मतानुसार 'आदेश-पत्र' मे सम्पूर्ण भारत की शिक्षा के लिए एक योजना थी। इस प्रकार की व्यापक एवं विस्तृत योजना की रूपरेखा प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा कदापि प्रस्तुत नही की जा सकती थी।[1]

२२. जेम्स के कथनानुसार—"१८५४ के 'घोषणा-पत्र' का भारतीय शिक्षा के इतिहास मे सर्वोत्कृष्ट स्थान है। जो कुछ इसके पूर्व हुआ, वह इसकी ओर संकेत करता है, और जो कुछ इसके बाद हुआ, वह इससे निकला है।"[2]

२३. बसु के अनुसार—"यह 'घोषणा-पत्र' भारतीय शिक्षा का शिलाधार है। भारत मे आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का शिलान्यास इसी ने किया।"[3]

---

1. Dalhousie was of the opinion that the Despatch contained "a scheme of education for all India, far wider and more comprehensive than the Local or the Supreme Government could have even ventured to suggest."—Dalhousie's *Minute* of 1854 in Richey : *op. cit.*, p. 394.

2 "The Despatch of 1854 is the climax in the history of Indian education . what goes before leads up to it, what follows flows from it "—H R. James : *Education & Statesmanship in India*, p. 42.

3. "This Despatch is said to be the corner-stone of Indian education It is said to have laid the foundation of our present system of education."—A. N. Basu : *op. cit.*, pp. 37-38.

२४. हेम्पटेन का कथन है—"१८५४ का 'घोषणा-पत्र' एक युग का—शिक्षा के महान् अग्रदूतों के युग का अन्त करता है।"[1]

दोष : Demerits

यद्यपि वुड के 'घोषणा-पत्र' ने शिक्षा के जीर्ण कलेवर में अमरता का संचार कर दिया, तथापि इसमें कतिपय दोष भी थे, जिनके कारण भारतीय शिक्षा का प्रवाह अक्षुण्ण न रह सका। हम इन दोषों का विश्लेषण नीचे कर रहे हैं :—

१. 'आदेश-पत्र' ने शिक्षा को पूर्णतः राज्य के अधीन कर दिया और उस पर नौकरशाही का आधिपत्य स्थापित कर दिया गया। फलस्वरूप, अति प्राचीन काल से प्रचलित स्वतन्त्र शिक्षण-कार्य का अन्त हो गया।
२. 'आदेश-पत्र' द्वारा माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बना दिया गया, जिससे प्राच्य भाषाओं का शिक्षण में वह स्थान न रह गया, जो पहले था।
३. 'आदेश-पत्र' ने प्राच्य साहित्य और देशी भाषाओं को संरक्षण तो दिया, पर अंग्रेज़ी को अधिक महत्त्व देकर उनकी प्रगति अवरुद्ध कर दी।
४. हिन्दू एवं मुस्लिम शिक्षा-पद्धतियों में धर्म का प्रमुख स्थान था। 'आदेश-पत्र' ने धर्म को शिक्षा से अलग करके भारतीय धर्म की जड़ हिला दी।
५. शिक्षा में भारतीय धर्म को स्थान न देकर 'आदेश-पत्र' ने शिक्षा को पूर्ण रूप से लौकिक बना दिया। फलस्वरूप भारतीयों ने अध्यात्मवाद को विस्मृत कर दिया।
६. 'आदेश-पत्र' द्वारा संस्कृत, अरबी और फारसी की उपादेयता तो स्वीकार की गई, परन्तु शिक्षा का उद्देश्य—पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार बताकर अप्रत्यक्ष रूप से उनके महत्त्व को कम करने का प्रयास किया।
७. 'आदेश-पत्र' द्वारा सरकारी नौकरियों में शिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाने लगी। फलस्वरूप, शिक्षा का व्यापक उद्देश्य नष्ट हो गया और वह केवल जीविकोपार्जन तक सीमित रह गई।
८. 'आदेश-पत्र' ने स्पष्ट कर दिया कि केवल अंग्रेज़ी शिक्षित व्यक्तियों को ही राजपदों पर नियुक्त किया जायगा। परिणामस्वरूप, देशी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या में क्रमिक ह्रास होता चला गया।
९. 'आदेश-पत्र' द्वारा शिक्षा का ढाँचा पूर्णतः विदेशी कर दिया गया और विदेशी शिक्षा प्राप्त करने के लिये भारतीयों को नाना प्रकार के प्रलोभन

---

1. "The Despatch of 1854 marks the end of an era—the age of the great educational pioneers."—Hampton : *op. cit.*, p. 115.

दिये जाने लगे। परिणामत:, भारतीयो को देशी शिक्षा-प्रणाली और देशी-शिक्षा मे किसी प्रकार की रुचि न रह गई।

१०. 'आदेश-पत्र' द्वारा शिक्षा-विभाग की स्थापना एवं शिक्षा-अधिकारियो की नियुक्ति की गई, जिससे शिक्षा की उन्मुक्त प्रगति को बड़ा आघात पहुँचा और इस देश की शिक्षा का लचीलापन नष्ट हो गया। शिक्षा-अधिकारी अन्यमनस्क रूप से कार्य करने लगे। शिक्षा-कार्य के प्रति उनमे कोई उत्साह नही था। वे अपना कर्त्तव्य—केवल राजाज्ञाओं का पालन करना समझने लगे।

११. 'आदेश-पत्र' मे विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिये लन्दन के विदेशी विश्वविद्यालय का आदर्श रखा गया। इस प्रकार, भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयो की आदर्श परम्पराओ की अवहेलना की गई और उनके पुनरस्थापन का प्रयास नही किया गया। इसके अतिरिक्त, सीनेट के सभी सदस्यो को सरकार मनोनीत करती थी। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ऐसे अनेक व्यक्ति सीनेट के सदस्य हो जाते थे जो शिक्षा से पूर्णतः अनभिज्ञ होते थे।

१२. 'आदेश-पत्र' द्वारा कुछ व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओ का निर्माण किया गया। परन्तु इनसे भारतीयो का कोई विशेष हित नही हुआ, क्योकि इनका प्रमुख उद्देश्य—भारतीयो को नौकरी देकर स्वामीभक्त बनाना था।

१३. 'आदेश-पत्र' द्वारा विद्यालयो मे धर्म-निरपेक्ष लौकिक शिक्षा देने पर बल दिया गया। परन्तु 'आदेश-पत्र' मिशन स्कूलो मे दी जाने वाली ईसाई धर्म की शिक्षा के प्रति निष्पक्ष नही रहा। 'आदेश-पत्र' मे कहा गया—"निरीक्षको को उन धार्मिक सिद्धान्तो की ओर तनिक भी ध्यान नही देना चाहिये जो किसी स्कूल मे पढाये जा रहे हो।"[1] यह भी लिखा गया—"यह ठीक है कि मिशन स्कूलो मे बाइबिल रखी जाती है और लोगो को उसे पढने की सुविधा है। साथ ही, यदि कोई छात्र कक्षा से बाहर शिक्षक से ईसाई धर्म के सम्बन्ध मे अपनी शंका का समाधान करना चाहे तो हमे कोई आपत्ति नही है।"[2]

---

1. "In their periodical inspections no notice whatsoever should be taken by them of the religious doctrines which may be taught in any school."—**Wood's** ***Despatch.***

2. "The Bible is placed in the libraries of colleges and schools and the pupils are able freely to consult it. This is as it should be, and, moreover, we have no desire to prevent, or discourage any explanations which the pupils may ask from the masters upon the subject of the Christian religion, provided that such information be given out of school hours."—*Ibid.*

१४. 'आदेश-पत्र' के आधार पर सरकारी नौकरियो के लिये व्यक्तियो को तैयार करने के विचार से अंग्रेज़ी विद्यालयो का निर्माण तीव्र गति से होने लगा। सरकार उन्ही पर शिक्षा-सम्बन्धी धन का अधिक भाग व्यय करने लगी। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के उद्देश्य की पूर्ति होने लगी, पर उसका कहना यही था कि पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानो का प्रसार करके सरकार जन-साधारण का कल्याण कर रही है।

१५. शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी हो जाने से भारतीय विद्यार्थियो को विभिन्न विषयो का समुचित ज्ञान प्राप्त करने मे कठिनाई का अनुभव होने लगा। अत विद्यार्थियो ने सरल उपाय खोज निकाले। वे बिना समझे हुए विषय-वस्तु को रटने लगे। साथ ही, उन्हे इस कार्य मे सहायता देने के लिए बाजार मे पुस्तको की टीकाओ तथा कुंजियो की बाढ आ गई।[1] इन सब का विद्यार्थियो की स्वतन्त्र विचार-शक्ति पर अति दूषित प्रभाव पडा।

१६. शिक्षा की नवीन प्रणाली में परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि हो गया। विद्यार्थियो का ध्येय—ज्ञान-प्राप्ति न रहकर, परीक्षा पास करना हो गया।

१७. 'आदेश-पत्र' के द्वारा सहायता-अनुदान केवल उन्ही विद्यालयो को मिल सकता था, जो अपना आधा व्यय स्वयं वहन करे। इस व्यय के लिये अंग्रेज़ी शिक्षा देने वाले विद्यालयो को तो चन्दा प्राप्त हो जाता था, पर देशी शिक्षा-सस्थाओ को नही मिलता था। फलत शिक्षा उसी प्रकार असन्तुलित रही, जैसी कि वह पहले थी।

१८. सर फिलिप हरटॉग के मतानुसार 'वुड का घोषणा-पत्र' भारत के कल्याण के लिए बुद्धिमत्ता का विकास करने वाली नीति का निर्धारक था।[2] परन्तु पराजपे ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है कि—"उनका उद्देश्य यह नही था कि शिक्षा नेतृत्व के लिए हो, शिक्षा भारत के

1. "Short-cuts were devised Unintelligent memory work and cramming became the order of day, and 'notes' flooded the educational bazar and intellectual market."—A. N Basu: *op. cit*, p 46

2. "As a result of Wood's *Despatch* an educational policy was evolved as a part of a general policy of Government of India in the interests of India to develop her intellectual resources to the utmost of her own benefit."—P. Hartog : *Some Aspects of Indian Education—Past & Present*, p. 23.

औद्योगिक विकास के लिए हो, शिक्षा मातृभूमि की रक्षा करने के लिये हो। संक्षेप मे, ऐसी शिक्षा हो जिसकी आवश्यकता एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिको को हो।"[1]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निःशंक होकर यह कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा के इतिहास मे 'वुड का घोषणा-पत्र' बेजोड है। इसने भारतीय शिक्षा की बहुरूपता का अन्त करके उसे एकरूपता प्रदान की। इस 'घोषणा-पत्र' के परिणाम-स्वरूप कलकत्ता, मद्रास और बम्बई मे विश्वविद्यालयो की नीव पडी, सहायता-अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ की गई, प्रत्येक प्रान्त मे जन-शिक्षा-विभाग स्थापित हुए; छात्रवृत्तियाँ दी जाने लगी और सरकार शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने लगी। परन्तु इन सब प्रशंसनीय कार्यों के विपरीत, 'घोषणा-पत्र' में सर्वव्यापक साक्षरता के आदर्श की कही चर्चा भी नही की गई। यह 'घोषणा-पत्र' आधुनिक प्रजातन्त्रवादी शिक्षा-मर्मज्ञों को विशेष रूप से कुत्सित प्रतीत होता है, क्योंकि इसने विभिन्न वर्गों की शिक्षा मे अन्तर करने वाले रूढ़ि परम्परागत 'विक्टोरियन आदर्श' (Victorian Ideal) का प्रतिपादन किया। अतः 'वुड के घोषणा-पत्र' को "भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र" कहना युक्तिसंगत नही जान पडता है।[2] जिस आदर्श को 'घोषणा-पत्र' ने प्रस्तुत किया है, उसका रूप इस समय तक इतना परिवर्तित हो चुका है कि भारत को उसके अनुकरण से रंचमात्र लाभ की भी आशा करना व्यर्थ है। १८५४ मे भले ही इस 'आदेश-पत्र' का महत्त्व रहा हो, पर इस समय इसको 'शिक्षा का घोषणा-पत्र' कहना हास्यास्पद प्रतीत होता है।[3]

सारांश

वुड का घोषणा-पत्र—१८५३ मे कम्पनी के आज्ञा-पत्र का नवीनीकरण हुआ।

---

1. "The authors did not aim at education for leadership, education for the industrial regeneration of India, education for the defence of the motherland; in short, education required by the people of a self-governing nation."—Paranjpe in *Progress of Education*, Poona, July 1941, pp. 51-52.

2. "We cannot find any justification for the superlative terms in which some historians have described the *Despatch*, and even called it, "The Magna Charta of Indian Education."
—Nurullah & Naik : *op. cit.*, pp 215-216.

3. "Whatever were its value in 1854, it would be ridiculous to describe the *Despatch*, as an Educational Charter in the year 1941."—Paranjpe in *Progress of Education*, Poona, July 1941., p. 52.

इस अवसर पर संसदीय समिति ने भारत की शिक्षा के सम्बन्ध मे कुछ सुझाव दिये, जिनके आधार पर 'वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र' जारी किया गया।

सिफारिशें—(१) शिक्षा का उद्देश्य—भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करना तथा राज्य के लिये शिक्षित व्यक्तियो को तैयार करना था। (२) पाठ्य-क्रम मे प्राच्य-साहित्य के साथ-साथ, पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानो को स्थान दिया जाय। (३) प्राथमिक स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ, और माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के लिये अंग्रेजी का माध्यम हो। (४) प्रत्येक प्रान्त मे जन-शिक्षा विभाग स्थापित किया जाय। (५) लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे विश्वविद्यालय खोले जायें। (६) क्रमबद्ध विद्यालयो का निर्माण किया जाय। (७) जन-शिक्षा-प्रसार के लिए हाईस्कूलो, मिडिल स्कूलो और प्राथमिक स्कूलो की संख्या मे वृद्धि की जाय। (८) सब प्रकार के विद्यालयो को आर्थिक सहायता देने के लिये सहायता-अनुदान-प्रणाली प्रचलित की जाय। (९) अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण विद्यालयों का प्रबन्ध किया जाय। (१०) स्त्री शिक्षा को सरकार द्वारा उदारतापूर्ण सहायता दी जाय। (११) व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय। (१२) देशी भाषाओ मे पुस्तकें लिखवाई जायें, तथा (१३) सरकारी नौकरियो मे शिक्षित व्यक्तियो को प्राथमिकता दी जाय।

गुण—(१) भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक नवीन प्रकरण का प्रारम्भ। (२) शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण। (३) शिक्षा को वैज्ञानिक रूप देना। (४) जन साधारण को शिक्षा देना—सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य। (५) प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा की व्यवस्था। (६) क्रमबद्ध विद्यालयो की स्थापना द्वारा शिक्षा-प्रसार-कार्य को सम्पन्न बनाना। (७) निस्यन्दन सिद्धान्त की अस्वीकृति। (८) भारतीय साहित्य का महत्त्व स्वीकार करना। (९) प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन। (१०) प्राथमिक विद्यालयों का पुनरुत्थान (११) अंग्रेजी के साथ-साथ देशी भाषाओ को शिक्षा का माध्यम बनाना। (१२) जन शिक्षा विभाग की स्थापना करके शिक्षा को सुसंगठित रूप देना। (१३) व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करके बेकारी की समस्या को हल करना। (१४) निर्धन किन्तु योग्य विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्तियाँ। (१५) अध्यापकों को अधिक वेतन देकर शिक्षा-विभाग की नौकरियो को आकर्षक बनाना। (१६) 'घोषणा-पत्र' भारतीय शिक्षा का शिलाधार।

दोष—(१) शिक्षा का पूर्णत: राज्य के अधीन होना। (२) माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से देशी भाषाओं की अवनति। (३) शिक्षा को धर्म से अलग करके भारतीय धर्म पर कुठाराघात करना। (४) अध्यात्मवाद का पतन। (५) शिक्षा का उद्देश्य—पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार होने से प्राच्य साहित्य का महत्त्व कम होना। (६) शिक्षा का व्यापक उद्देश्य नष्ट होकर शिक्षा का अभिप्राय केवल नौकरी प्राप्त करना। (७) नौकरी मे अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता देने से देशी विद्यालयों का ह्रास। (८) शिक्षा का ढाँचा पूर्णत: विदेशी होना। (९) शिक्षा-

विभाग की स्थापना से शिक्षा के लचीलेपन का नष्ट होना। (१०) विश्वविद्यालय की सीनेट मे शिक्षा से अनभिज्ञ व्यक्तियो का सदस्य होना। (११) व्यावसायिक शिक्षा सस्थाओ से भारतीयो का हित न होकर, अग्रेजी का हित होना। (१२) ईसाई धर्म की शिक्षा के प्रति निष्पक्ष न रहना। (१३) अग्रेजी विद्यालयो पर अधिकाश धन का व्यय। (१४) अग्रेज़ी माध्यम होने से विद्यार्थियो का बिना समझे विषय-वस्तु को रटना। (१५) परीक्षाओ का स्थान सर्वोपरि होना।

TEST QUESTIONS

1 What were the main recommendations of the Education Despatch of 1854 ?
१८५४ के शिक्षा के आदेश-पत्र की मुख्य सिफारिशें क्या थी ?

2 "Wood s *Despatch* is called the Magna Charta of Indian Education Discuss
वुड का घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा का महाधिकार पत्र कहलाता है।' विवेचना कीजिए।

3 'Whatever were the value of Wood s Despatch in 1854, it would be ridiculous to describe it as an Educational Charter, in the year 1971' How far do you agree with this statement ? Give reasons in support of your answer
'१८५४ मे वुड के आदेश-पत्र का महत्त्व चाहे कुछ हो, पर १९७१ मे उसे शिक्षा का महाधिकार पत्र कहना हास्यास्पद है। आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ? अपने उत्तर की पुष्टि मे कारण दीजिए।

११

शिक्षा की प्रगति

(१८५४–१८८२)

शासन-सत्ता का हस्तान्तरण

'वुड के घोषणा-पत्र' के आधार पर कम्पनी-सरकार ने भारतीय शिक्षा का कार्य आरम्भ किया ही था और उसकी सभी सिफारिशो को कार्यान्वित भी न कर पाई थी कि १८५७ की क्रान्ति फूट पडी। फलत भारतीय शिक्षा के मार्ग मे बडी बाधा पडी। प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम एक वर्ष से अधिक चला। उसकी समाप्ति पर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी की राजनैतिक सत्ता का अन्त करके भारतीय शासन की बागडोर अपने हाथ मे ले ली। १ नवम्बर, १८५८ को भारत के वाइसराय लार्ड कैनिंग (Canning) ने इलाहाबाद मे एक दरबार करके रानी विक्टोरिया (Victoria) को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। उस समय से भारतीय इतिहास मे 'विक्टोरिया का शान्ति-काल' प्रारम्भ हुआ। शान्ति के वातावरण मे भारतीय शिक्षा को फलने फूलने के लिए अनुकूल वातावरण मिला और उसकी *प्रगति मे प्रशसनीय अभिवृद्धि हुई।*

सुविधा की दृष्टि से हम १८५४ से १८८२ तक की शिक्षा की प्रगति का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत करेगे —

१ इस काल के मुख्य अभिलेख (Documents),
२ शिक्षा-प्रसार के साधन,
३ प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्चशिक्षा,
४ व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education),
५. विशिष्ट शिक्षा (Special Education)।

१—इस काल के मुख्य अभिलेख

१. ऐलेनबरा का आदेश-पत्र[1]

२८ अप्रैल, १८५८ को 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' के प्रधान, लार्ड ऐलेनबरा ने एक आदेश-पत्र जारी किया। ऐलेनबरा ने 'वुड के घोषणा-पत्र' द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-नीति को १८५७ के विद्रोह का कारण ठहराया। अत उसने एक त्रासपूर्ण आदेश-पत्र लेखबद्ध करके 'घोषणा-पत्र' की सभी सिफारिशो के विरुद्ध प्रस्ताव दिये। सौभाग्यवश, कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और ऐलेनबरा के प्रस्ताव कागज पर ही लिखे रह गये।

२. स्टैनले का आदेश-पत्र[2]

भारत की शासन-सत्ता ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के हाथो मे पहुँच जाने के पश्चात् 'भारत-मन्त्री' (Secretary of State for India) के नवीन पद का आविर्भाव हुआ और सर्वप्रथम लार्ड स्टैनले को इस पद पर नियुक्त किया गया। वह यह जानने का इच्छुक था कि १८५७ की क्रान्ति भारतीय का शिक्षा-नीति से क्या सम्बन्ध था। साथ ही, वह 'वुड के घोषणा-पत्र' की प्रतिक्रिया भी देखना चाहता था। अत उसने १८५९ मे भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में एक नया आज्ञा-पत्र जारी किया, जो 'स्टैनले का आदेश-पत्र' कहलाता है। इसमे वुड के प्राय सभी सिद्धान्तो का समर्थन किया गया। केवल प्राथमिक शिक्षा के विषय मे अधोलिखित परिवर्तन कर दिये गये :—

१ जन-साधारण मे शिक्षा का प्रसार करने के लिये प्राथमिक विद्यालयो का संगठन सरकार द्वारा किया जाय।

२. प्राथमिक विद्यालयो को चलाने का उत्तरदायित्व सरकार अपने ऊपर ले और उनका प्रबन्ध स्थानीय समितियो पर न छोडा जाय।

३ सहायता-अनुदान पद्धति को केवल उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा तक सीमित रखा जाय, क्योकि उससे प्राथमिक विद्यालयो को कोई लाभ नही हो सकता है।

४. आवश्यकता पडने पर सरकार प्राथमिक शिक्षा के लिए उसी प्रकार का स्थानीय कर लगा सकती है, जिस प्रकार के करो के लिये इङ्गलैण्ड में आन्दोलन हो रहा है।

५. अध्यापकों के प्रशिक्षण पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय।

इस आदेश-पत्र के द्वारा केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा के उत्तरदायित्व को आंशिक रूप मे प्रान्तीय सरकारो को हस्तान्तरित कर दिया। १८७१ मे लार्ड मेयो (Mayo) ने शिक्षा-विभागो को प्रान्तीय सरकारो के अधीन कर दिया, और उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी सभी प्रकार के व्यय करने का अधिकार दे दिया। १८८७ मे लार्ड

---

1. Lord Ellenborough's *Despatch* of 1858.
2. Lord Stanley's *Despatch* of 1859.

लिटन (Lytton) ने प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा के विषय में और भी अधिक व्यापक अधिकार प्रदान कर दिये। इनके अनुसार प्रान्तीय सरकारें कानून एवं आबकारी (Excise) विभागों की आय का कुछ भाग शिक्षा पर व्यय कर सकती थीं। इस प्रकार, प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा पर अधिकार प्राप्त हो गया, परन्तु सम्पूर्ण देश के लिये शिक्षा-नीति का निर्धारण करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार ने अपने ही हाथ में रखा। यह स्थिति १८८२ तक चलती रही।

२—शिक्षा-प्रसार के साधन

१. शिक्षा-विभागों का सगठन

१८५४ से पूर्व शिक्षा-विभाग जैसी कोई चीज नहीं थी। परन्तु जैसा कि हम अध्याय ६ में लिख चुके हैं—१८४० में बम्बई में 'शिक्षा-बोर्ड' का, और १८४२ में बगाल में 'शिक्षा-परिषद्' का निर्माण हो चुका था। उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में भी टामसन ने विजिटर-जनरल, जिला विजिटर और परगना विजिटरों की नियुक्तियाँ करके शिक्षा के निरीक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार, इन तीनों प्रान्तों में शिक्षा-विभागों का प्रादुर्भाव हो चुका था। उनको संगठित रूप प्रदान करने का एव अन्य प्रान्तों में शिक्षा-विभागों के निर्माण करने का श्रेय 'वुड के घोषणा-पत्र' को है। १८५६ के अन्त तक भारत के सब प्रान्तों में शिक्षा-विभागों की स्थापना का कार्य पूर्ण किया जा चुका था और वे शिक्षा-कार्य में व्यस्त हो गये थे। इन प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के कार्य निम्नलिखित थे —

१. प्रान्तीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी सब मामलों की सूचना देना और उन पर सुझाव देना।
२. सरकार के अधीन विद्यालयों का संचालन एवं प्रबन्ध करना।
३. प्रान्तीय एव केन्द्रीय सरकारों द्वारा शिक्षा पर व्यय करने के लिये दी गई धन-राशि का उचित प्रकार से प्रयोग करना।
४. सरकार से सहायता-अनुदान पाने वाले विद्यालयों का समय-समय पर निरीक्षण करना।
५. प्रान्तीय शिक्षा के सुधार एव प्रसार के लिये पूर्ण प्रयत्न करना।
६. प्रान्तीय शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में आवश्यक आँकड़ों सहित वार्षिक रिपोर्ट तैयार करके सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना।
७ विद्यालयों को शिक्षा-सम्बन्धी नवीन नियमों की सूचना देना और उनका विधिवत् पालन करवाना।
८. विद्यालयों के लिये पाठ्य-क्रम निश्चित करना और कुछ परीक्षाओं का प्रबन्ध करके उपाधियाँ प्रदान करना।

शिक्षा-विभागों की स्थापना के फलस्वरूप प्रान्तों में शिक्षा की प्रगति तो हुई, परन्तु शिक्षा की समुचित व्यवस्था न की जा सकी। इसका कारण यह था कि प्रान्तीय शिक्षा-विभाग अनेक दोषों से युक्त थे, जिनकी ओर हम आगे संकेत कर रहे हैं :—

१ शिक्षा विभाग के सभी उच्च पदो पर यूरोपियनो की नियुक्तियाँ हुई। विदेशी होने के कारण वे लोग भारतीय परिस्थितिया से पूणत परिचित नही थे। अत उन्होंने शिक्षा प्रसार की जिस नीति को अपनाया, उससे सर्वांगीण सफलता की आशा नही की जा सकती थी। जनता ने शिक्षा विभाग के भारतीयकरण की माँग की, परन्तु सरकार ने उसकी ओर अल्प मात्र भी ध्यान नही दिया।

२ यूरोपियन पदाधिकारियो को न तो सुन्दर वेतन ही दिया जाता था और न उनकी नौकरियो की शर्तें ही आकर्षक थी। अत इगलैण्ड के योग्य विद्वान् भारत आकर शिक्षा विभाग मे सेवा-काय करने का विचार ही नही करते थ। जो अग्रज शिक्षा का भार अपने ऊपर लेते थे, उनमे बौद्धिक योग्यता का प्राय अभाव होता था। फलस्वरूप, वे शिक्षा सचालन के काय को सुचारु रूप से सचालित करने म असफल होते थे।

३ अग्रजी की माँग बढने के कारण विद्यालयो और उनमे पढने वाले विद्यार्थियो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही थी, पर उनके निरीक्षण के लिए शिक्षा विभाग मे निरीक्षका की सख्या कम थी। सरकार अधिक धन व्यय करके उनकी सख्या की अभिवृद्धि करने के पक्ष मे नही थी।

४ निरीक्षको की सख्या कम होने से व्यक्तिगत विद्यालयो पर सरकार का अकुश ढीला रहा। फलस्वरूप, विद्यालय—सहायता अनुदान मे प्राप्त धन को बहुत कुछ स्वेच्छा से व्यय करते रहे और शिक्षा प्रदान करने के कार्य को सगठित करने के लिये पूर्ण रूप से क्रियाशील नही हुए।

५ निरीक्षको के अधीन इतने विद्यालय होते थे कि उनके लिये सब विद्यालयो मे जाकर निरीक्षण करना असम्भव था। अत वे एक निर्दिष्ट विद्यालय को अपना केन्द्र बनाकर समीपवर्ती विद्यालयो का निरीक्षण वही बैठे कर लेते थे। ऐसी दशा म उन्ह अपने अधीन सब विद्यालया की पूर्ण जानकारी नही हो पाती थी। साथ ही, उनके निरीक्षण से विद्यालयो को कोई लाभ नही हो पाता था। निरीक्षण के इस दोष के परिणामस्वरूप शिक्षा की यथोचित प्रगति असम्भव थी।

२. सहायता-अनुदान प्रणाली[1]

'वुड के घोषणा पत्र' के आदेशानुसार शिक्षा विभागा ने सहायता-अनुदान-सम्बन्धी नियम बनाये और ग़ैर-सरकारी स्कूलो को आर्थिक सहायता देनी प्रारम्भ की। फलस्वरूप, व्यक्तिगत विद्यालय आर्थिक चिन्ताओ से मुक्त हो गये, और वे एकाग्र चित्त होकर शिक्षा-काय म जुट गय। परन्तु यह प्रणाली—शिक्षा का सुन्दर क्रमिक विकास न कर सकी, क्योकि इसम अग्रलिखित दोष थे —

---

1 Grant in-aid System

१. सहायता-अनुदान की धन-राशि इतनी अल्प एवं अपर्याप्त होती थी कि उससे विद्यालयो की आवश्यकताएँ पूर्ण नही हो पाती थी।
२. स्वीकृत धन-राशि निश्चित समय पर नही दी जाती थी।
३. सहायता-अनुदान देने मे मिशन स्कूलो के प्रति अत्यधिक उदारता दिखाई जाती थी।
४. सहायता-अनुदान को अकारण कम या बन्द कर दिया जाता था।
५. सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियम इतने जटिल थे कि उनका विधिवत् पालन करना कठिन था।
६. उपर्युक्त नियमो का प्रकाशन न होने के कारण अधिकांश स्कूल-प्रबन्धको को उनकी पूर्ण जानकारी नही हो पाती थी।
७. इन नियमो के निर्धारण मे व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाओ के प्रबन्धको से किसी प्रकार का परामर्श नही लिया जाता था।
८. बजट मे शिक्षा के लिए स्वीकृत धन-राशि का अधिकांश भाग राजकीय विद्यालयो पर व्यय कर दिया जाता था। फलत: सहायता-अनुदान के लिये बहुत कम धन बचता था।
९. गैर-सरकारी स्कूलो को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और उनकी प्रगति मे बाधा डाली जाती थी।
१०. शिक्षा-नीतियो के निर्धारण मे गैर-सरकारी स्कूलो के प्रबन्धको का परामर्श नही लिया जाता था।
११. गैर-सरकारी स्कूलो के अध्यापको को साधारणतः परीक्षक नही नियुक्त किया जाता था।
१२. छात्रवृत्तियाँ देने मे राजकीय विद्यालयो के विद्यार्थियो को वरीयता (Preference) दी जाती थी।

१८८२ के 'भारतीय शिक्षा-आयोग' (Indian Education Commission) ने इन दोषो पर विचार करके इन्हे दूर करने के अथक् प्रयास किये।

३. शिक्षा-प्रसार के साधनो का भारतीयकरण

पिछले अध्यायो मे इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि कम्पनी के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी शिक्षा-प्रसार का कार्य किया जा रहा था। ऐसे अनेक अंग्रेज अधिकारी थे, जिन्होने वैयक्तिक रूप से विद्यालयो की स्थापना करके शिक्षा मे अपनी रुचि का प्रदर्शन किया था। १८५८ में सत्ता-हस्तान्तरण के उपरान्त अंग्रेज कर्मचारियो की स्थिति पूर्णत. परिवर्तित हो गई थी। सरकार ने अपने कर्मचारियो के लिये इतने कडे नियम बना दिये कि उन्हें वैयक्तिक रूप से शिक्षा-प्रसार का कार्य करने की स्वतन्त्रता न रह गई। फलस्वरूप, अंग्रेज अधिकारियो ने अपने को शिक्षा-कार्य करने मे असमर्थ पाया।

जहाँ तक मिशनरियों का प्रश्न था, १८५४ के 'घोषणा-पत्र' ने उनमे नवीन आशा का संचार कर दिया था। वे उस समय का स्वर्णिम स्वप्न देखने लगे थे, जब वुड द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-नीति के अनुसार सरकार अपने विद्यालयों को बन्द कर देगी और मिशन स्कूल सहायता-अनुदान प्रणाली के कारण परिपल्लवित होने लगेंगे। १८५७ की क्रान्ति ने अंग्रेज शासकों की आँखें खोल दीं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिये मिशनरियों के धर्म-प्रचार के कार्य पर अंकुश लगाना अनिवार्य है। यद्यपि मिशनरियों ने इस नीति के विरुद्ध आन्दोलन किया, तथापि ब्रिटिश संसद सचेत हो चुकी थी और १८५८ की घोषणा के अनुसार यह बात स्पष्ट कर दी गई कि सरकार 'धार्मिक तटस्थता' की नीति का पूर्ण रूप से पालन करेगी।

अंग्रेज अधिकारियों एवं मिशनरियों की चेष्टाओं पर प्रतिबन्ध लगने का परिणाम यह हुआ कि भारतीयों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा-प्रसार का कार्य करने के लिये विस्तृत क्षेत्र मिल गया। भारतीय उस समय तक शिक्षा के महत्त्व को समझ चुके थे और विदेशियों के शिक्षा-प्रयासों को देखकर उनमे प्रतिस्पर्द्धा की भावना जाग्रत हो चुकी थी। शिक्षा द्वारा अपने देशवासियों को अंधविश्वासों एवं अज्ञानता के गर्त से निकालने के कर्त्तव्य के प्रति वे जागरूक हो चुके थे। भारतीयों मे उस समय देश-प्रेम की भावनायें उमड़नी प्रारम्भ हो गई थीं। १८८० के लगभग प्राय सम्पूर्ण देश मे सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों मे क्रान्तिकारी परिवर्तनों की लहर फैल चुकी थी। भारतीयों मे निश्चित रूप से राष्ट्रीय चेतना आविर्भूत हो रही थी। देश के नेता अपने राष्ट्र का नवनिर्माण करने मे जुट चुके थे। परन्तु उन्होने अनुभव किया कि यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकेगा जब देश के नवयुवकों को राष्ट्रीय विद्यालयों मे राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कर दिया जायगा। परिणामस्वरूप, भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक शिक्षा का विस्तार करने के लिये स्कूलों और कॉलेजों का निर्माण तीव्रगति से किया जाने लगा। साराश मे, देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना ने शिक्षा के भारतीयकरण मे अद्वितीय योग दिया।

प्राथमिक शिक्षा

हम यह देख चुके हैं कि लार्ड ऑकलैण्ड ने 'निस्यन्दन सिद्धान्त' को स्वीकार करके जन-शिक्षा की ओर से मुँह मोड़ लिया था। इस नीति के फलस्वरूप, सरकार का ध्यान उच्च वर्गों की उच्चशिक्षा पर केन्द्रित रहा। अतः प्राथमिक शिक्षा के लिये कोई क्रियात्मक पग नहीं उठाया गया। १८५४ के 'घोषणा-पत्र' ने निस्यन्दन सिद्धान्त को अनुचित बताकर लोकशिक्षा को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया। परन्तु फिर भी प्राथमिक विद्यालयों के पुनरुत्थान के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। सरकार प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करती रही और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के धन व्यय करती रही। १८५४ 'घोषणा-पत्र' में प्राथमिक विद्यालयों को

अनुदान देने की व्यवस्था की गई थी, परन्तु अनुदान-सम्बन्धी नियम इस प्रकार के थे कि जिन्हे जनता निभा नही सकती थी। फलस्वरूप, प्राथमिक विद्यालय इस प्रणाली से लाभ न उठा सके।

स्टैनले के 'आदेश-पत्र' मे जन-साधारण मे शिक्षा-प्रसार के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया गया, परन्तु प्राथमिक विद्यालयो के सम्बन्ध मे नवीन सुझाव देकर एक विवाद खडा कर दिया गया। विवाद तीन प्रश्नो पर था—(१) देशी प्राथमिक विद्यालयो को सहायता-अनुदान दिया जाय अथवा नही ? (२) प्राथमिकशिक्षा के लिए स्थानीय कर लगाए जायें अथवा नही ? और (३) प्राथमिक विद्यालयो के प्रति सरकार की नीति क्या होनी चाहिये ? दुर्भाग्यवश इन प्रश्नो पर मतैक्यता न हो सकी और सभी प्रान्तो ने विभिन्न नीति का अनुसरण किया। ऐसी स्थिति मे शिक्षा की जो प्रगति हुई, वह नीचे दिए हुए आँकडा से ज्ञात हो जाती है —

प्राथमिक विद्यालयो की संख्या (१८८१-८२)[1]

प्रान्त	सरकारी	गैर-सरकारी (अनुदान प्राप्त)	गैर-सरकारी (अनुदान वचित)
मद्रास	१,२६३	१३,२२३	२,८२८
बम्बई	३,८११	७३	३,९५४
बगाल	२८	४७,४३७	३,२६५
पश्चिमोत्तर प्रान्त	५,५६१	२४३	६,७१२
पजाब	१,५४९	२७८	१३,१०९
मध्य-प्रदेश	८९४	३६८	×
आसाम	[illegible]	१,२५६	४९७
बरार	४६७	२०९	३६७
कुर्ग	५७	३	×

इस तालिका के स्पष्टीकरण के लिये हम विभिन्न प्रान्तो मे प्राथमिक शिक्षा की प्रगति पर नीचे दृष्टिपात कर रहे हैं :—

मद्रास—इस प्रान्त मे सरकारी स्कूलो की स्थापना के साथ-साथ, सहायता-अनुदान देकर प्राथमिक विद्यालयो को भी प्रोत्साहित किया गया। सहायता-अनुदान का आधार 'विद्यालय का परीक्षा-फल' रखा गया था।

बम्बई—बम्बई प्रान्त मे देशी विद्यालयो की विरोधी नीति का अनुसरण किया गया। फलस्वरूप, उनका पनपना असम्भव हो गया। १८७० मे वहाँ के शिक्षा-संचालक, पिले (Peile) ने देशी पाठशालाओ को आर्थिक सहायता देने के लिये कुछ नियम बनाये, पर वे निरर्थक सिद्ध हुए।

1. Nurullah & Naik : *op. cit.*, 331-334 & p. 358.

बंगाल—यहाँ की सरकार ने देशी-विद्यालयों के पुनरुत्थान के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। इस सम्बन्ध मे प्रान्त के गवर्नर, सर जार्ज कैम्पवेल (Sir George Campbell) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १८७२ में उसने जन-शिक्षा-प्रसार के लिये देशी पाठशालाओ को ४ लाख रुपये की धन-राशि दी। कैम्पवेल की योजना के अनुसार शिक्षको को प्रोत्साहन देने के लिये उनका वेतन २ रु० से ५ रु० तक बढा दिया गया। सहायता-प्राप्त विद्यालयो का निरीक्षण सरकारी निरीक्षको द्वारा किया जाता था। कैम्पवैल को आशा थी कि शिक्षको के भोजन, निवास स्थान आदि की व्यवस्था स्थानीय जनता करती रहेगी। परन्तु शीघ्र ही शिकायतें आने लगी कि शिक्षको की वेतन-वृद्धि के फलस्वरूप जनता ने शिक्षको को दी जाने वाली सहायता मे कमी कर दी है। फलस्वरूप, शिक्षको के वेतन-वृद्धि की योजना को स्थगित करके परीक्षाफल के आधार पर सरकारी सहायता दी जाने लगी। परन्तु इसके साथ ही सरकार ने ४ लाख रुपये की धन-राशि को बढाकर ५ लाख कर दिया। परिणामस्वरूप, देशी विद्यालयो की सख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। यहाँ यह कहना युक्ति-युक्त होगा कि बगाल मे 'हल्काबन्दी स्कूल' की प्रथा प्रचलित थी।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—बंगाल के समान पश्चिमोत्तर प्रान्त मे भी 'हल्कावन्दी-स्कूल' की प्रणाली जारी रखी गई। साथ ही गैर-सरकारी पाठशालाओ को भी सहायता-अनुदान दिया गया।

पजाब—पजाब ने पश्चिमोत्तर प्रान्त के आदर्श का अनुकरण किया। इस प्रान्त मे ऐसे गैर-सरकारी विद्यालयो की सख्या सबसे अधिक थी, जिन्हे सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नही मिलती थी।

मध्य प्रदेश—मध्य-प्रदेश ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये बंगाल को अपना आदर्श माना और देशी पाठशालाओ को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। परन्तु प्रान्त में देशी स्कूलो की पर्याप्त संख्या न होने के कारण सरकार को बहुत से प्राथमिक विद्यालयो का शिलारोपण करना पडा।

आसाम—आसाम १८७४ तक बंगाल का भाग रहा था। अत यहाँ की प्राथमिक शिक्षा की नीति का आधार बंगाल की नीति ही था। इसलिए यहाँ देशी पाठशालाओ को प्रोत्साहन नही दिया गया। इस प्रान्त मे सरकारी स्कूलो की संख्या सब प्रान्तो से कम थी।

बरार—इस प्रान्त ने वम्बई की शिक्षा-नीति का अनुकरण किया। यहाँ अधिकाश रूप में सरकारी विद्यालय ही थे, परन्तु देशी पाठशालाओ को भी प्रोत्साहन दिया गया।

कुर्ग—इस प्रान्त ने भी वम्बई का अनुकरण किया। शिक्षा-विभाग द्वारा प्राथमिक विद्यालयो की स्थापना तो की गई, पर देशी स्कूलो के प्रति उदासीनता व्यक्त की गई।

प्राथमिक शिक्षा पर व्यय

अधोलिखित आँकड़े विभिन्न प्रान्तो मे १८८१-८२ मे प्राथमिक शिक्षा पर किये गये व्यय को व्यक्त करते हैं[1] :—

(रुपयो की सब संख्यायें सहस्रो मे हैं)

प्रान्त	प्रान्तीय सरकार से	स्थानीय बोर्ड व नगरपालिका से	शुल्क	अन्य साधन	योग
मद्रास	१,६८	५,०२	३,६८	२,८७	१३,२५
बम्बई	३,४६	७,८७	१,५४	६३	१३,५०
बंगाल	५,९७	१३	१०,७७	४.४५	२१,१२
पश्चिमोत्तर-प्रात	२,१६	५,४४	५५	८४	८,९१
पंजाब	९७	३,४५	६२	८४	५, ८
मध्य-प्रदेश	१,००	१,४५	२२	३३	३,००
आसाम	२४	५७	१७	२०	१,१८
कुर्ग	४	७	१	....	१२
बरार	१,२५	८८	२६	१	२,४०
योग	१६,७७	२४,८८	१७,८२	१०,१७	६९,६४

प्राथमिक शिक्षा के लिए कर

स्टैनले के 'आदेश-पत्र' मे इस बात का उल्लेख किया गया था कि जन-शिक्षा का व्यय-भार वहन करने के लिये स्थानीय कर (Local Rates) लगाये जा सकते थे। इस आदेश के आधार पर केन्द्रीय सरकार ने न केवल शिक्षा के लिए, अपितु जन-कल्याण के अन्य कार्यों के लिये भी स्थानीय कर लगाने का निर्णय किया। स्थानीय करो के सिद्धान्त के प्रबल समर्थक और गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी समिति के सदस्य, लैङ्ग (Laing) ने १८६०-६१ मे 'बजट' (Budget) प्रस्तुत करते हुए कहा—"यदि इस विशाल साम्राज्य मे सड़को, स्कूलो, स्थानीय पुलिस एवं सभ्यता के अन्य उपकरणो का प्रबन्ध किया जाना है, जो एक प्रगतिशील देश मे होने चाहिए, तो अकेले सरकार द्वारा इन सब बातो के लिये धन का प्रबन्ध करना असम्भव है।"[2] लैङ्ग के दृष्टिकोण से सहमत होकर प्राय सभी प्रान्तीय सरकारो ने १८६१ से १८७१

1. *Report of the Indian Education Commission*, pp. 166 67

2 "If this great empire is ever to have the roads, the schools, the local police and other instruments of civilization which a flourishing country ought to possess, it is simply impossible that the Imperial Government alone can find either the money or the management."—Howell : *Note on Education in India*, 1866-67. Para 19.

तक स्थानीय व्यय के लिये कर लगाये। शिक्षा का व्यय भी इसमे सम्मिलित था, पर यह निश्चित करना कठिन था कि शिक्षा पर कितना धन व्यय किया जाय। बंगाल मे 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' (Permanent Land Revenue Settlement) होने के कारण कर न लगाया जा सका।

पश्चिमोत्तर प्रदेश मे टामसन पहले ही मालगुजारी पर १ प्रतिशत कर लगा चुका था। पंजाब मे १८५७ मे मालगुजारी पर स्थानीय कर लगा दिया गया था। १८६१ मे अवध मे मालगुजारी पर २½ प्रतिशत कर लिया जाता था। इसका १ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय होता था। १८६२ मे मध्य प्रान्त मे १ प्रतिशत कर लगाया गया। कुछ समय बाद इसे २ प्रतिशत कर दिया गया। १८६३ मे बम्बई मे ६¼ प्रतिशत स्थानीय कर लगाया गया। इसका ⅓ भाग शिक्षा पर व्यय होता था। इसी प्रकार, १८६५ मे सिंध मे, १८६६ मे मद्रास मे, और १८७९ मे आसाम मे स्थानीय कर लगा दिये गए। इनका कुछ भाग शिक्षा के लिये निश्चित कर दिया गया था।

नगरो मे मकानो पर स्थानीय कर लगाया गया और इसको वसूल करने का कार्य नगरपालिकाओ पर छोड़ दिया गया। परन्तु नगरपालिकाओ ने इस कार्य के सम्पादन मे अपने को असमर्थ पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि नगरो मे प्राथमिक शिक्षा का प्रवाह मन्द हो गया। ग्रामो से मालगुजारी के साथ इतना कर एकत्रित हो जाता था कि उसे ग्रामीण पाठशालाओ पर व्यय करना असम्भव था। अत शेष धन को नगरो मे उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा मे योग देने के लिये व्यय किया जाने लगा। कुछ प्रान्तो मे इसका उपयोग अन्य कार्यों के लिये भी किया गया। इस प्रथा को स्थगित करने के लिए १८७१ मे निश्चित आदेश प्रदान किये गये। फलस्वरूप, समस्त धन को प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जाने लगा, जिससे देशी पाठशालाओ की आशातीत अभिवृद्धि हुई। १८७१ मे १६,४७३ प्राथमिक विद्यालय थे, जिनमे ६½ लाख विद्यार्थी पढते थे। १८८२ मे इन विद्यालयो की संख्या ८२,९१६ और उनमे पढने वाले विद्यार्थियो की संख्या २१ लाख हो गई।

समीक्षा

१८५४ से १८८२ तक के परवशता के काल मे भारतीयो ने भले ही उपर्युक्त प्रलोभनकारी आँकडो के आधार पर प्राथमिक शिक्षा की समुन्नति अनुपम मान ली हो, परन्तु इस युग के समीक्षक की स्वस्थ चेतना तथा निष्पक्ष भावना उसका मोह मे पडना अस्वीकार करती है। आधारभूत तथ्य यह है कि भारत की जनसंख्या को देखते हुए १८८२ मे साक्षरता का प्रतिशत केवल १·२ था, जबकि उसी वर्ष इंगलैण्ड का प्रत्येक बच्चा स्कूल मे नि शुल्क शिक्षा प्राप्त कर रहा था।[1] भारत मे इस अल्प साक्षरता के कलंक का टीका उसके विदेशी शासको के मस्तक पर था। उनकी अनुदारता,

1. G. K. Gokhale : *Speeches*, pp. 593-8.

उदासीनता एवं असंतुलित गतिविधियो को ही इस अल्प साक्षरता के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा

१८४४ मे लार्ड हार्डिञ्ज द्वारा सरकारी नौकरियो के लिये अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो को वरीयता दी जाने की घोषणा के फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की गति तीव्र हो गई थी। १८५४ के 'घोषणा पत्र' के आदेशानुसार प्रान्तो मे शिक्षा-विभागो की स्थापना हुई, जिन्होने अंग्रेजी शिक्षा के संगठन मे अदम्य उत्साह दिखाया। १८५९ के 'आदेश-पत्र' ने सहायता-अनुदान को उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के लिये सीमित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक शिक्षा पर व्यय करने के लिये अधिक धन उपलब्ध होने लगा, जिससे इस स्तर पर शिक्षा की आशातीत उन्नति हुई। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे राजकीय प्रयत्नो के साथ-साथ, भारतीयो एव मिशनरियो ने भी सराहनीय कार्य किये। परिणामस्वरूप, १८८२ के अन्त तक माध्यमिक विद्यालय अबाध गति से बढे। हम इनका सक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं —

राजकीय विद्यालय—१८५४ मे राजकीय विद्यालयो की संख्या १६९ थी, जिनमे १८, ३४५ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। १८८२ मे इन विद्यालयो की सख्या १,३६३ और उनमे पढने वाले विद्यार्थियो की संख्या ४४,६०५ हो गई।

मिशन विद्यालय—१८५७ की क्रान्ति के बाद मिशनरियो के प्रति सरकार का रुख कडा हो गया था, फिर भी माध्यमिक विद्यालयो के विस्तार मे मिशनरियो का योग कम नही था। सम्पूर्ण भारत मे ६८० मिशन स्कूल थे, जिनमे से मद्रास मे ४१८, पंजाब मे ११८, पश्चिमोत्तर प्रान्त मे १०४ तथा बंगाल मे ४० थे।

भारतीयो द्वारा सचालित विद्यालय—१८५४ तक भारतीयो ने माध्यमिक शिक्षा की दिशा मे बहुत ही कम कार्य किया था। परन्तु १८८२ के अन्त तक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होकर भारतीयो ने अपने समस्त उपलब्ध साधनों को विद्यालयो के निर्माण मे जुटा दिया था। फलस्वरूप, १८८२ मे भारतीयो द्वारा संचालित १,३४१ माध्यमिक विद्यालय थे। इनमे से मद्रास मे ६६८, बंगाल मे ५८२ और शेष, देश के अन्य भागो मे थे।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

इस काल मे माध्यमिक शिक्षा की आश्चर्यजनक उन्नति अवश्य हुई, पर वह कुछ दोषो से युक्त थी। हम इन पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं :—

१. मातृभाषाओं की अवहेलना—'वुड के घोषणा-पत्र' मे अंग्रेजी तथा देशी भाषाओं को माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बनाने की सिफारिश की गई थी। परन्तु दुर्भाग्यवश, भारतीय प्रशासको ने इस ओर लेश-मात्र भी ध्यान नही दिया। पाश्चात्य

ज्ञान का प्रसार करके ब्रिटिश सत्ता को सुदृढ बनाने के विचार से उन्होने अंग्रेजी के माध्यम को वरीयता दी। साथ ही भारतीय, राजपद प्राप्त करने के लिए अंग्रेज़ी मे पारंगत होना चाहते थे। परिणामत, भारतवासियो का झुकाव भी अंग्रेजी के माध्यम की ओर हुआ। इस सम्बन्ध मे बंगाल ने अगुवाई की। १८६२ मे कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने 'मेट्रीकुलेशन' (Matriculation) के छात्रो के लिये सभी विषयो का उत्तर अंग्रेज़ी में लिखना अनिवार्य कर दिया। इस प्रकार, अब तक विद्यार्थियो को मातृभाषा के प्रयोग की जो स्वतन्त्रता प्राप्त थी, उसका अपहरण किया गया और मातृभाषा की उपेक्षा करके उसे अपमानित भी किया गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थियो को 'मेट्रीकुलेशन' कक्षाओ के लिये तैयार करने के विचार से बहुत से मिडिल स्कूलो ने भी अंग्रेज़ी के अध्ययन पर बल देना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप, भारत मे माध्यमिक स्तर पर प्रारम्भ से ही मातृभाषाओ की उपेक्षा की जाने लगी।

२. **दीक्षित शिक्षकों का अभाव**—यद्यपि १८५४ के 'घोषणा-पत्र' मे शिक्षको की दीक्षा की आवश्यकता बताई गई थी, परन्तु भारत-सरकार ने इसमे कोई रुचि न ली। १८८२ तक सम्पूर्ण देश मे केवल दो प्रशिक्षण-विद्यालय थे—एक लाहौर मे, और दूसरा मद्रास मे। इन विद्यालयो मे कुल ४१ छात्राध्यापक थे, जो दीक्षित शिक्षको की माँग को पूर्ण करने मे असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त इन विद्यालयो का प्रशिक्षण निम्न कोटि का था और इनके पास 'अभ्यास के लिये स्कूल' (Practising Schools) भी नही थे।

३. **पुस्तकीय ज्ञान पर बल**—माध्यमिक विद्यालयो का उद्देश्य—केवल अपने छात्रो को परीक्षाओ मे उत्तीर्ण कराना था। अत पुस्तकीय ज्ञान पर अत्यधिक बल दिया जाता था। विद्यार्थियो को विचार-स्वातन्त्र्य एवं व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा से सर्वथा वंचित रखा जाता था। परिणामस्वरूप, उन्हे सामाजिक जीवन से सामंजस्य स्थापित करने मे बडी कठिनाई होती थी।

४. **औद्योगिक शिक्षा का अभाव**—माध्यमिक विद्यालयो मे औद्योगिक शिक्षा को कोई स्थान नही दिया गया। सम्पूर्ण देश मे केवल बम्बई के कुछ हाई-स्कूल ऐसे थे, जिनसे कृषि के आदर्श फार्म (Model Farms) सम्बद्ध थे। उन स्कूलो मे पढने वाले कुछ कृषक बालको को ४ रु० मासिक छात्रवृत्ति देकर कृषि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। औद्योगिक शिक्षा के अभाव के कारण निम्नांकित थे :—

(१) उस समय शिक्षा का प्रसार मुख्यत. उच्च वर्गो मे था, जिनका मुख्य उद्देश्य—मेट्रीकुलेशन परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर राजपद प्राप्त करना या विश्वविद्यालय मे प्रवेश करना होता था। अत वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रो के लिये उपयोगी ज्ञान के प्रति उदासीन रहे।

(२) सरकार ने भी माध्यमिक स्कूलो में औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध नही किया। इसका एक कारण—धन का अभाव था। राजकीय विद्यालयो को आदर्श माना जाता था। अत व्यक्तिगत रूप मे भी औद्योगिक शिक्षा की ओर ध्यान न दिया जा सका।

(३) भारत के शासक होकर भी अंग्रेजो का ध्यान अपने व्यापार पर केन्द्रित रहा। इस देश मे औद्योगिक शिक्षा का विकास होने से इंगलैण्ड के उद्योग-धन्धो को धक्का लगना आवश्यक था। अत अंग्रेजो ने जान-बूझकर भारत मे औद्योगिक शिक्षा का अभाव रखा।

उच्च शिक्षा

१८५४ से १८८२ तक प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के समान उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया। इस अवधि मे माध्यमिक शिक्षालयो की संख्या मे इतनी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई कि उनमे अध्ययन करने वाले ज्ञान के जिज्ञासु विद्यार्थियो के लिये उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य हो गया। उच्च शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालयो एवं कॉलेजो का शिलारोपण करके किया गया।

विश्वविद्यालयो की स्थापना

भारत मे विश्वविद्यालयो की स्थापना का श्रेय—'वुड के घोषणा-पत्र' को प्राप्त है। इस देश के प्रशासको ने 'आदेश-पत्र' को शिरोधार्य करके उपयुक्त स्थानो पर विश्वविद्यालयो का निर्माण करने की योजना बनाई। इसमे कुछ समय लगना स्वाभाविक था, परन्तु १८५७ मे ही सरकार ने *'विश्वविद्यालय अधिनियम'* (University Acts) पारित करके कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे विश्वविद्यालयो का शिलान्यास किया। इन तीन विश्वविद्यालयो के अतिरिक्त, १८८१ तक कोई अन्य विश्वविद्यालय स्थापित नही किया गया। १८८२ मे पंजाब विश्वविद्यालय की आधार-शिला रखी गई। इसकी रूपरेखा अन्य तीनो विश्वविद्यालयो से भिन्न थी। इसकी विशेषताओ की ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं :—

१. *मातृ-भाषा के माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा देना।*
२. प्राच्य साहित्य की परीक्षाओ मे उर्दू के माध्यम से उत्तीर्ण होने वाले छात्रो को स्नातक आदि की उपाधियाँ देना।
३. अरबी, फारसी और संस्कृत की परीक्षाओ मे सफल होने वाले विद्यार्थियो को 'प्राच्य साहित्यिक उपाधियाँ' (Oriental Literary Titles) देना।
४. हिन्दू एवं मुस्लिम कानून तथा औषध-शास्त्र के विद्यार्थियो को भारतीय उपाधियाँ (*Native Titles*) देना।
५. देशी भाषाओं की परीक्षाओं की व्यवस्था करना।

इस प्रकार पजाब विश्वविद्यालय ने देशी भाषाओ एव प्राच्य-ज्ञान को प्रोत्साहित करने की नीति का अनुसरण किया। इस विश्वविद्यालय का दृष्टिकोण पूर्णत भारतीय था।

विश्वविद्यालयो का प्रबन्ध

यद्यपि सभी विश्वविद्यालयो की स्थापना विभिन्न अधिनियमो द्वारा की गई थी, तथापि उनके आधारभूत सिद्धान्त प्राय समान थे। विश्वविद्यालयो का प्रबन्ध सीनेट के द्वारा किया जाता था। सीनेट के सदस्य—कुलपति, उपकुलपति और अभिसदस्य होते थे। प्रान्त का गवर्नर कुलपति का स्थान ग्रहण करता था। वह दो वर्ष के लिये उपकुलपति एव अभिसदस्यो को मनोनीत करता था। अभिसदस्य दो प्रकार के होते थे—(१) पदेन (Ex officio), एव (२) साधारण (Ordinary)। प्रथम सरकार के अभिसदस्यो मे मुख्य न्यायाधीश, विशप (Bishop), गवर्नर की कार्यकारिणी सभा के सदस्य, प्रान्तीय शिक्षा-सचालक एव राजकीय कॉलेजो के प्रिंसिपल होते थे। साधारण सदस्यो म प्रतिष्ठित भारतीयो को स्थान दिया जाता था। सामान्यत विश्वविद्यालयो के प्रशासन-सम्बन्धी कार्यों का सचालन करने के लिये छोटी-सी कार्यकारिणी समिति बना दी जाती थी, जिसे 'सिन्डीकेट' (Syndicate) कहते थे।

विश्वविद्यालयों के कार्य

'वुड के घोषणा-पत्र' के अनुसार—विश्वविद्यालय, शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी कर सकते थे। परन्तु विश्वविद्यालय-अधिनियमो ने उनको केवल परीक्षा लेने तथा उपाधियाँ वितरण करने का अधिकार दिया। ये विश्वविद्यालय—कला, विज्ञान, कानून, चिकित्सा, इजीनियरिंग आदि की परीक्षाओ की व्यवस्था करते थे और उत्तीर्ण होने वाले छात्रो को प्रमाण-पत्र देते थे। विश्वविद्यालयो मे केवल वे ही छात्र प्रवेश पा सकते थे, जो 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा पास कर लेते थे। यह परीक्षा प्राय सभी विद्यालय स्वय लेते थे।

विश्वविद्यालयो का आलोचनात्मक अध्ययन

यहाँ पर भारतीय विश्वविद्यालयो के गुण-दोषो का विवेचन करना अनुपयुक्त न होगा। वस्तुत विदेशी सरकार द्वारा स्थापित किये गये इन विश्वविद्यालयो मे केवल दोष ही थे। हम इनका वर्णन नीचे कर रहे हैं —

१ विश्वविद्यालयो का प्रमुख कार्य—शिक्षा प्रदान करना होता है, परन्तु भारतीय विश्वविद्यालय इस महत्त्वपूर्ण कार्य से वचित रहे। वे केवल परीक्षा लेने का गौण कार्य कर सकते थे।

२ शिक्षा एव परीक्षा का माध्यम अग्रेजी रखा गया। इससे प्राच्य भाषाओ को ऐसा आघात पहुँचा कि उनका पतन अवश्यम्भावी हो गया। प्रारम्भ मे प्राच्य भाषाओं को पाठ्य क्रम मे स्थान भी नही दिया गया।

३ प्राच्य भाषाओ की अवहेलना करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीय छात्रो का उनसे सम्पर्क न रह गया। फलत वे अपनी सास्कृतिक विरासत से दूर होने लगे और उसको हेय दृष्टि से देखने लगे।

४. प्राचीन समय मे शिक्षा को किसी विशिष्ट प्रयोजन या उपयोगिता के लिये प्राप्त न करके, केवल ज्ञान के लिये ही अर्जित किया जाता था। परन्तु विश्वविद्यालयो ने शिक्षा ग्रहण करके धन प्राप्ति द्वारा भौतिक सुख-सुविधा का आदर्श उपस्थित किया। फलस्वरूप, स्नातको का चरम लक्ष्य 'सरकारी महकमो मे नौकरी' प्राप्त करना हो गया। इससे विश्वविद्यालयो के स्वार्थ की पूर्ति हुई क्योकि उनका उद्देश्य—भारतीयो को शिक्षित करके सरकारी मशीन के पुर्जे बनाना था।

५. विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रमो मे औद्योगिक शिक्षा को स्थान नहीं दिया गया। जिस समय औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के फलस्वरूप इङ्गलैण्ड मे औद्योगिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा था, उस समय इस देश मे इङ्गलैण्ड निवासियो द्वारा उसकी उपेक्षा की जा रही थी। विश्वविद्यालयो की शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित रही, जिसने भारतीय युवको को सफेदपोश और आलसी बनाकर देश का महान् अहित किया।

६. विश्वविद्यालय विदेशी शासन की खूँटी से बँधे होने के कारण अपना स्वाभाविक और उचित विकास न कर सके।

७. विश्वविद्यालयो के निरीक्षण मे नौकरशाही की धाक थी। विश्वविद्यालय इन्ही निरीक्षको की दया पर निर्भर रहते थे। अत. उनकी ओर विश्वविद्यालयो की टकटकी लगी रहती थी। इस परवशता ने विश्वविद्यालयो की प्रगति मे बहुत बाधा डाली।

८. विश्वविद्यालय-अधिनियमो ने सीनेट के सदस्यो की संख्या निश्चित नहीं की थी। सदस्यो का स्थान उनकी मृत्यु, त्याग-पत्र या भारत को सदैव के लिये छोडने पर ही रिक्त होता था। इस प्रकार बहुत काल तक सदस्यो मे परिवर्तन न होने के कारण विश्वविद्यालयो मे भी वांछित परिवर्तन नही हो पाता था।

९. अभिसदस्यो की नियुक्ति बिना उनकी शिक्षा-योग्यताओं पर विचार किये हुए की जाती थी। परिणामत, ऐसे अनेक अभिसदस्य होते थे, जो शिक्षा के विषय मे अल्प मात्र जानकारी भी नहीं रखते थे। ऐसे अभिसदस्यो से विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिये किसी उचित कार्य के किये जाने की आशा करना व्यर्थ था।

१०. सीनेट में शिक्षकों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं था। परिणामतः विश्वविद्यालयों को शिक्षा-विशेषज्ञों का सत्परामर्श नहीं प्राप्त हो पाता था।

कॉलेजों की स्थापना

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विश्वविद्यालयों का कार्य—केवल परीक्षा लेना था। उनमें शिक्षण-कार्य नहीं किया जाता था। यह कार्य विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त कॉलेजों में होता था। अतः इस अवधि में उच्च-शिक्षा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस काल के कॉलेजों का विवरण आवश्यक हो जाता है। कॉलेजों के प्रति सरकार ने उदारता का व्यवहार किया। फलतः कॉलेजों की संख्या में आशातीत अभिवृद्धि हुई। १८५४ में सम्पूर्ण भारत में २६ कॉलिज थे। इनमें से १४ कॉलेज सरकारी और ६ मिशनरियों के थे। १८८२ में कॉलिजों की संख्या बढ़कर ७२ हो गई। हम इनमें से कुछ प्रमुख कॉलेजों का वर्णन नीचे कर रहे हैं :—

सरकारी कॉलेज—१८५५ में 'कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कॉलेज' की स्थापना हुई। उसी का अनुकरण करके मद्रास हाई-स्कूल को 'मद्रास प्रेसीडेन्सी कॉलेज' में परिवर्तित किया गया। १८६६ में 'लाहौर यूनीवर्सिटी कॉलेज' का निर्माण हुआ। १८८२ में इसी कॉलेज ने 'पंजाब विश्वविद्यालय' का रूप धारण किया। १८७२ में पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर, सर विलियम म्योर (Sir William Muir) ने किराये के एक भवन में 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' खोला। इसका शिलान्यास १८७३ में लार्ड नार्थब्रुक (Northbrook) द्वारा किया गया।

गैर-सरकारी कॉलेज—१८५४ तक भारतीयों ने कॉलेजों की स्थापना की दिशा में कोई भी कार्य नहीं किया था। परन्तु उस वर्ष के पश्चात् उन्होंने उच्च-शिक्षा में सराहनीय योगदान दिया और कॉलेजों का प्रबन्ध किया। इनमें से कुछ उल्लेखनीय है—१८६४ में अवध के ताल्लुकेदारों ने लार्ड कैनिंग (Canning) की स्मृति में 'लखनऊ कैनिंग कॉलेज' स्थापित किया। इसमें अंग्रेजी के साथ-साथ प्राच्य-साहित्य की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। १८७५ में सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों में अंग्रेजी की उच्च-शिक्षा का प्रचार करने के लिये अलीगढ़ में 'मुस्लिम ऐंग्लो-ओरियन्टल कॉलेज' की स्थापना की। कुछ समय बाद यह 'मुस्लिम यूनीवर्सिटी' के रूप में विकसित हुआ। मद्रास में पच्यप्पा एवं विशाखापट्टम स्कूलों को कॉलेजों में परिवर्तित कर दिया गया और १८६१ में 'तिनावेली कॉलेज' का शिलान्यास हुआ। बंगाल में १८७८ में 'मेट्रोपॉलिटिन कॉलेज', १८७६ में 'सिटी कॉलेज' और १८८१ में 'अलबर्ट कॉलेज', स्कूलों के स्तर से ऊँचे उठकर कॉलेज बने।

इस अवधि में राजकुमारों को शिक्षा देने के लिये भी कुछ कॉलेजों का निर्माण हुआ—'राजकोट कॉलेज' (१८७०), अजमेर का 'मेयो कॉलेज' (१८७२) और इन्दौर का 'डेली कॉलेज' (१८७६)।

४. व्यावसायिक शिक्षा

१८५४ से पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध मे जो प्रयास सरकार द्वारा किये गये थे, वे केवल चिकित्सा इन्जीनियरिंग और कानून की शिक्षा तक ही सीमित रहे। इनकी शिक्षा की व्यवस्था भी कम्पनी ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये की थी। अंग्रेजो का प्रमुख ध्येय—भारतीयो को विभिन्न राजकीय विभागो के लिये तैयार करना था। १८५४ के बाद भी इसी उद्देश्य के फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा के लिए प्रयत्न किये गये। हम उस काल की व्यावसायिक शिक्षा का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :—

१—चिकित्सा शिक्षा (Medical Education)
२—कानून की शिक्षा (Legal Education)
३—इंजीनियरिंग की शिक्षा (Engineering Education)
४—कृषि की शिक्षा (Agricultural Education)
५—पशु-चिकित्सा-शिक्षा (Veterinary Education)
६—वन-विज्ञान की शिक्षा (Forestry Education)
७—कला की शिक्षा (Art Education)
८—प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा (Technical & Industrial Education)
९—अध्यापकों का प्रशिक्षण (Training of Teachers)

१ चिकित्सा शिक्षा—१८५४ से पूर्व कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में मेडिकल कॉलेज स्थापित किये जा चुके थे। हम इनका वर्णन पहले कर चुके हैं। १८६० मे लाहौर मे मेडिकल कॉलेज का निर्माण किया गया। इसका उद्देश्य—पंजाब के निवासियो को पाश्चात्य औषध-शास्त्र की शिक्षा देना था। इन कॉलेजों के अतिरिक्त, विभिन्न प्रान्तो मे बहुत-से मेडिकल स्कूल भी थे। इस अवधि मे भारतीयों की रूढ़िवादिता के कारण चिकित्सा-शिक्षा लोकप्रिय न हो सकी।

२. कानून की शिक्षा—१८५४ से पूर्व कानून की शिक्षा की व्यवस्था केवल हिन्दू-विद्यालय, कलकत्ता मे की गई थी। भारत के विभिन्न प्रान्तो मे न्यायालयों की स्थापना के कारण कानून की शिक्षा की माँग मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। अत. सरकार ने जनता को संतुष्ट करने के लिए १८५५ मे मद्रास एवं बम्बई मे कानून की शिक्षा का प्रबन्ध किया। विश्वविद्यालयों की स्थापना के बाद कानून की शिक्षा की प्रगति तीव्र हो गई। यह शिक्षा जन-साधारण मे लोकप्रिय थी।

३. इंजीनियरिंग की शिक्षा—कानून की शिक्षा के समान इंजीनियरिंग की शिक्षा की भी संतोषजनक प्रगति हुई। इसका कारण यह था कि सार्वजनिक निर्माण-विभागों, स्थानीय बोर्डों, नगरपालिकाओं, कारखानो आदि मे इंजीनियरों की माँग बढ़ रही थी। १८०० मे बंगाल मे शिवपुर नामक स्थान पर एक इंजीनियरिंग

कॉलिज का निर्माण किया गया। १८५४ मे पूना मे स्थापित किये गये 'यन्त्रशास्त्र के विद्यालय' को कॉलिज का रूप प्रदान किया गया। मद्रास के 'सर्वे स्कूल' को १८५८ और १८६२ के मध्य कॉलेज का रूप दिया गया।

४. कृषि की शिक्षा—भारत सदैव से कृषि-प्रधान देश रहा है। यहाँ की लगभग ८० प्रतिशत जनता अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर रहती है। ऐसी दशा मे भारतीयो को कृषि की शिक्षा दी जानी अति आवश्यक थी, परन्तु सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नही दिया। जब १८८० मे दुर्भिक्ष पडा और कृषि के चौपट हो जाने से सरकार को मालगुजारी न मिली, तब उसकी आँखे खुली। फिर भी कृषि की शिक्षा के लिए सतोषजनक प्रबन्ध नही किया गया। १८६४ मे सरकार ने मद्रास मे सैदपत नामक स्थान पर परीक्षण के लिए कृषि का एक फार्म खोला था। उसको कॉलिज का रूप प्रदान किया गया। १८७९ मे पूना कॉलिज मे कृषि-विभाग स्थापित किया गया। इन दोनो कॉलेजो मे तीन वर्ष तक कृषि की शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थी परीक्षा मे सम्मिलित हो सकते थे।

५ पशु-चिकित्सा-शिक्षा—भारत ऐसे खेतिहर देश मे स्वस्थ पशुओ का होना आवश्यक है। अत सरकार द्वारा पशु-चिकित्सा शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा न किया गया। नाम-मात्र के लिये कुछ स्थानो पर इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई थी।

६. वन-विज्ञान की शिक्षा—भारत म अनेक बडे-बडे वन है, जिनसे विविध प्रकार की लाभप्रद वस्तुयें प्राप्त होती है। इन वस्तुओ से प्रलोभित होकर भारत-सरकार ने १९वी शताब्दी के मध्य मे वन विभाग स्थापित किया। इस विभाग के लिए भारतीयो को शिक्षित करने के विचार से १८७८ मे देहरादून मे 'फॉरेस्ट स्कूल' खोला गया। पूना कॉलज म भी वन विज्ञान की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

७ कला की शिक्षा—मद्रास और बम्बई के कला-स्कूलो का वर्णन किया जा चुका है। १८७४ म लाहौर मे 'मेयो स्कूल ऑफ आर्ट' स्थापित किया गया। इसका उद्देश्य—पजाब मे प्रचलित घरेलू उद्योग-धन्धो से सम्बन्धित कला की शिक्षा प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त, कला की शिक्षा की दिशा मे कोई और कदम नही उठाया गया।

८ प्राविधिक एव औद्योगिक शिक्षा—इस शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान सवप्रथम १८७७ ७८ के 'दुर्भिक्ष आयोग' (Famine Commission) द्वारा आकर्षित किया गया। फिर भी सरकार ने इस शिक्षा की अवहेलना की। हाँ, मिशनरियो ने कुछ कार्य अवश्य किया। उन्होन थोडे-से 'औद्योगिक स्कूल' स्थापित किये, जिनम भारतीय ईसाई बालका को जीविकोपार्जन के लिए बढ़ई और लुहार के कार्यो की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु इन स्कूलो को 'औद्योगिक स्कूल' न कहकर 'दस्तकारी के स्कूल' (Craft Schools) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

६. अध्यापको का प्रशिक्षण—१८५९ के 'आदेश-पत्र' के अनुसार प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको के प्रशिक्षण के लिए सरकार ने अदम्य उत्साह से कार्य किया और १८८२ तक प्रत्येक प्रान्त मे अनेक प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित हो गये। १८८२ मे बम्बई मे ७ प्रशिक्षण विद्यालय पुरुषो के लिये, और २ स्त्रियो के लिये थे। इनमे अध्ययन करने वालो की कुल संख्या ५५३ थी। मध्य प्रदेश मे ४ प्रशिक्षण विद्यालय थे—३ पुरुषो के लिये, और १ स्त्रियो के लिये। इनमे पढने वालो की संख्या १८८ थी। १८६२ मे बंगाल मे 'नार्मल स्कूल-प्रणाली' (Normal School System) प्रारम्भ की गई। इसके अनुसार, देशी पाठशालाओ के शिक्षको या उनके सम्बन्धियो को नार्मल-स्कूलो मे भेजा जाता था। प्रत्येक शिक्षक को ५ रु० मासिक छात्रवृत्ति दी जाती थी। १ वर्ष के प्रशिक्षण के बाद अध्यापक को अपने विद्यालय को लौटना पडता था। छात्राध्यापको को शिक्षण-विधि, गणित, भूगोल, इतिहास आदि विषयो की शिक्षा दी जाती थी। धनाभाव के कारण 'नार्मल स्कूल-प्रणाली' को विस्तृत न किया जा सका। और १८७१ तक केवल २,४३० नार्मल स्कूलो की स्थापना हुई। १८७४ मे प्रान्त के गवर्नर, कैम्पबेल ने शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये एक नवीन योजना की रूप-रेखा तैयार की। इसके अनुसार, १ लाख ६४ हजार रुपये व्यय करके ४६ नार्मल स्कूलो का निर्माण किया गया। मद्रास मे ३२ प्रशिक्षण विद्यालय थे, जिनमे प्रशिक्षण प्राप्त करने वालो की संख्या ६२७ थी। इसी प्रकार, अन्य प्रान्तो मे प्राथमिक विद्यालयो के अध्यापको के प्रशिक्षण का प्रवन्ध किया गया था। १८८२ मे सम्पूर्ण भारत मे १०६ नार्मल स्कूल थे, जिनमे ३,८८६ पुरुषो एवं स्त्रियो को प्रशिक्षित किया जा रहा था। इन स्कूलो का वार्षिक व्यय लगभग ४ लाख रुपया था।[1]

माध्यमिक विद्यालयो के अध्यापको के प्रशिक्षण का वर्णन इसी अध्याय मे 'माध्यमिक शिक्षा' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

५ विशिष्ट शिक्षा

इस अवधि मे विशिष्ट शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया। इसका अध्ययन निम्नांकित शीर्षको के अन्तर्गत सुविधापूर्वक किया जा सकता है :—

१. स्त्रियो की शिक्षा (Education of Women)
२. मुसलमानो की शिक्षा (Education of Muslims)
३. पिछडी जातियो एवं हरिजनो की शिक्षा (Education of the Backward Classes & Harijans)
४. आदिवासियो एवं पहाडी जातियो की शिक्षा (Education of the Aboriginal & Hill Tribes)।

1. *Report of the Indian Education Commission*, p 134

१. स्त्रियों की शिक्षा

१८५४ के 'घोषणा-पत्र' के आदेशानुसार सरकार ने स्त्रियों की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया था। नवनिर्मित शिक्षा-विभागों ने स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया, और उपयुक्त स्थानों पर बालिका-विद्यालयों का निर्माण किया गया। फलस्वरूप, स्त्री-शिक्षा की प्रगति अबाध गति से होती चली गई। १८८२ में स्त्रियों के लिये सभी प्रकार के विद्यालयों की संख्या २,६९७ थी, जिनमें १,२७,०६६ छात्रायें शिक्षा प्राप्त कर रही थी। भारत की विशाल जनसंख्या को देखते हुए छात्राओं की यह संख्या प्राय नगण्य थी। इसके आधारभूत कारण निम्नांकित थे —

१ हिन्दू और मुसलमान—दोनों स्त्री-शिक्षा को अनावश्यक समझते थे। उनके मतानुसार स्त्री का उचित स्थान घर में था। अत उसके लिये शिक्षा व्यर्थ थी।

२. भारत में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। कम आयु में विवाह हो जाने के कारण स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता था।

३. मुस्लिम शासन-काल में हिन्दुओं और मुसलमानों में पर्दा-प्रथा प्रचलित हो गई थी। अत, एक निश्चित आयु के बाद बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के लिये घर से बाहर भेजना असम्भव था।

४. रूढ़िवादिता में जकड़े हुए भारतीय इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि स्त्रियाँ भी उच्च-शिक्षा प्राप्त करके पुरुषों के समान नौकरियाँ कर सकती हैं। अत उन्होंने स्त्रियों की उच्च या माध्यमिक शिक्षा की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया।

प्राथमिक शिक्षा—जहाँ तक बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न है, उसे कुछ सीमा तक संतोषजनक कहा जा सकता है। प्राथमिक स्कूलों में छात्राओं की संख्या सबसे अधिक थी। १८८२ में १,२७,०६६ शिक्षा प्राप्त करने वाली कुल बालिकाओं में से १,२४,४९१ बालिकायें प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ रही थीं। इस अधिक संख्या का एकमात्र कारण यह था कि भारतीय इस समय तक स्त्रियों के लिये प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव कर चुके थे। परन्तु वे माध्यमिक एवं उच्च-शिक्षा के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इस शिक्षा का अर्थ था—अंग्रेजी का अध्ययन, जिससे स्त्रियों के चरित्रहीन होने की आशंका थी।

माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा—स्त्रियों की शिक्षा के प्रति भारतीयों के इस दृष्टिकोण ने उनकी माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की प्रगति में अवरोध डाला। १८८२ में सम्पूर्ण भारत में माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं की संख्या २,०५४ थी। इनमें से बंगाल में १,०५१, मद्रास में ३८६, बम्बई में ५३८, पश्चिमोत्तर प्रान्त में ६८, और पंजाब में ८ बालिकायें माध्यमिक शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इनमें भी अधिकांश लड़कियाँ यूरोपियन, ऐंग्लो-इण्डियन और पारसी थीं। जहाँ तक उच्च शिक्षा का प्रश्न था, सम्पूर्ण भारत में स्त्रियों के लिये केवल १ कॉलेज

था—कलकत्ता का वैथ्यून कॉलेज। इसमे भी केवल ६ लडकियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी। इस प्रकार, इस अवधि मे स्त्रियो की माध्यमिक एव उच्च शिक्षा अत्यत निराशाजनक रही।

स्त्री-प्रशिक्षण—इस काल की एक विशेषता यह थी कि स्त्रियाँ प्राथमिक विद्यालयो मे अध्यापिकाओ का कार्य करने के लिये दीक्षा ले रही थी। १८८२ मे छात्राध्यापिकाओ की सख्या ५१५ थी। प्रशिक्षण विद्यालयो की स्थापना की ओर सर्वप्रथम मिशनरियो ने ध्यान दिया। इनका निर्माण करने मे मिशनरियो के दो ध्येय थे—(१) मिशन बालिका विद्यालयो के लिए अध्यापिकाओ को दीक्षित करना, और (२) धर्म-परिवर्तित ईसाई स्त्रियो को अध्यापिकायें बनाकर उनके जीविकोपार्जन की समस्या को हल करना। परन्तु मिशन प्रशिक्षण-विद्यालय लोकप्रिय न बन सके। सभ्रान्त व्यक्ति अपनी लडकियो को वहाँ नही भेजना चाहते थे, क्योकि वहाँ बाइबिल का पढना अनिवार्य था। मिशन प्रशिक्षण-विद्यालयो के अतिरिक्त देश मे भारतीयो या सरकार द्वारा सचालित एक भी विद्यालय नही था। भारतीयो द्वारा इस दिशा मे कार्य न किये जाने का कारण यह था कि भारतीय समाज मे ऐसी सुशिक्षित महिलाओ का अभाव था जो प्रधान अध्यापिकाओ एव अध्यापिकाओं के रूप मे कार्य कर सके। १८५४ के 'घोषणा-पत्र' मे अध्यापिकाओ की दीक्षा के लिए आदेश दिये जाने पर भी सरकार ने इस ओर कोई कदम नही उठाया था।

स्त्री शिक्षा के अपने कर्त्तव्य के प्रति सरकार को जागरूक करने का श्रेय एक सुविख्यात समाज-सेविका मिस कारपेन्टर (Miss Carpenter) को प्राप्त है। १८६६ से १८७६ तक उसने चार बार भारत आकर यहाँ की जनता और सरकार को स्त्री शिक्षा की नवीन परम्परा को प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दी। उसी के प्रयासो के फलस्वरूप भारत मे स्त्री शिक्षा-सम्बन्धी वह प्रतिमान स्थापित हुआ जो अनेक झोके झकोरे खाने के बाद भी आज तक अटूट बना हुआ है। अपने भारत-निवास के दौरान मे स्त्री शिक्षा का गहन अध्ययन करने के बाद वह इस परिणाम पर पहुँची कि स्त्री शिक्षा की प्रक्रिया मे गतिशीलता बनाये रखने के लिये अध्यापिकाओ की दीक्षा अति आवश्यक है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये उसने निम्नलिखित सुझाव दिये—

१ सरकार द्वारा महिला-प्रशिक्षण विद्यालयो की व्यवस्था की जाय।
२ उनमे योग्य अध्यापिकाओ की नियुक्ति की जाय।
३ उन्हे सफल बनाने के लिये लब्धप्रतिष्ठ भारतीयो का सहयोग प्राप्त किया जाय।
४ उनमे अध्ययन करने के लिये छात्राध्यापिकाओ को प्रोत्साहन दिया जाय।

भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल, सर जॉन लारेन्स (Sir John Lawrence) ने मिस कारपेन्टर के प्रस्तावो से प्रभावित होकर तत्काल ही महिला प्रशिक्षण विद्यालयो की स्थापना के लिये राज-कोष से धन देने की घोषणा की। इस प्रकार,

इसीलिये कम्पनी ने भी उनकी शिक्षा की उपेक्षा की। यह उपेक्षा १८५५ तक प्रान्तीय शिक्षा-विभाग की स्थापना के पश्चात् भी यथावत् बनी रही। १८७१-७२ मे लार्ड मेयो (Mayo) ने मुसलमानो की शिक्षा पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और उन्हे शिक्षा देने का बीडा उठाया। उसके प्रयास के फलस्वरूप उसी वर्ष भारत सरकार द्वारा एक 'प्रस्ताव' (Resolution) पास किया गया।[1] इसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित थी :—

१. उन क्षेत्रो के अंग्रेजी स्कूलो मे—जहाँ मुसलमान बहुसंख्या में हैं, अंग्रेजी के मुसलमान शिक्षक नियुक्त किये जायें।
२. मुसलमानो को अपने स्कूल स्थापित करने के लिये सहायता-अनुदान दिया जाय।
३. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, उर्दू के माध्यम से दी जाय।
४. अरबी और फारसी साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।
५. सभी राजकीय स्कूलो तथा कॉलेजो के पाठ्य-क्रमो मे मुस्लिम भाषाओ को उचित स्थान दिया जाय।
६ मुसलमानो को उर्दू-साहित्य के सृजन मे सरकार द्वारा विशेष सहायता दी जाय।

इस राजाज्ञा का प्राय. सभी प्रान्तो मे अक्षरशः पालन किया गया। फलस्वरूप, मुस्लिम-शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया। यत्र-तत्र विद्यालयो का निर्माण प्रारम्भ हुआ। उनमे अध्ययन करने के लिये मुस्लिम छात्रो को आधा शुल्क एवं छात्रवृत्तियाँ देकर प्रलोभित किया जाने लगा। विद्यालयो के निरीक्षण के लिये मुस्लिम निरीक्षको की नियुक्तियाँ की गई। सरकार—विद्यालयो को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देने लगी। शिक्षण-कार्य केवल योग्य अध्यापको को सौंपा गया। विश्वविद्यालयो मे अरबी और फारसी को सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

उपर्युक्त कारणो के परिणामस्वरूप, १८८१–८२ मे सम्पूर्ण भारत में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो मे १७·८ प्रतिशत विद्यार्थी मुसलमान थे। इसका अभिप्राय यह था कि मुस्लिम समाज का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित था। शिक्षा की इस

1. "His Excellency-in-Council believes that secondary higher education conveyed in the vernacular and rendered more accessible than now, coupled with a more systematic encouragement and recognition of Arabic and Persian literature, would be not only acceptable to the Muhammadan community but would enlist the sympathies of the more earnest and enlightened of its members on the side of education."—Syed Mahmood : *History of Education in India*, p. 148.

असाधारण प्रगति के बावजूद भी मुसलमान अधोलिखित बातो में हिन्दुओं से पिछड़े रहे :—

१ मुसलमानो मे धार्मिक भावना इतनी प्रबल थी कि मुसलमान विद्यार्थी काफ़ी बडी संख्या मे सार्वजनिक विद्यालयो की अपेक्षा व्यक्तिगत विद्यालयो में ही पढना अधिक लाभप्रद समझते थे।

२. मुसलमानो ने माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा को इतना ग्रहण नही किया जितना कि हिन्दुओ ने।

३. मुसलमानो मे स्त्री-शिक्षा बहुत पिछडी हुई थी।

४. सरकारी नौकरियो तथा व्यवसायो मे मुसलमानो ने हिन्दुओ से कही कम योग्यता एवं कुशलता का परिचय दिया।

३. पिछड़ी जातियो एवं हरिजनो की शिक्षा

१८५४ से पूर्व 'निस्यन्दन-सिद्धान्त' को अपनाने के कारण सरकार ने पिछडी जातियो की शिक्षा के लिए कोई व्यवस्था नही की थी। ऐडम की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि देशी पाठशालाओ में पिछडी जातियो और हरिजनो के कुछ बालक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इस प्रकार, १८३८ तक निम्न जातियो मे शिक्षा प्रचलित हो गई थी, परन्तु विद्यार्थियो की संख्या प्राय नही के बराबर थी। मिशनरियो ने पिछडी जातियो तथा हरिजनो की शिक्षा की ओर ध्यान दिया और कुछ स्कूल भी खोले। इसका एकमात्र कारण यह था कि मिशनरी उनको अपने धर्म का अनुगामी बनाना सरल समझते थे।

'वुड के घोषणा-पत्र' ने 'निस्यन्दन सिद्धान्त' को अमान्य ठहराया और जन-साधारण मे शिक्षा-प्रसार करने का आदेश दिया। परिणामस्वरूप, सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा-विभागो को जन-शिक्षा के साथ-साथ पिछडी जातियो की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने के लिये कहा। शिक्षा-विभाग इस दिशा मे क्रियाशील तो हुए, परन्तु उन्हे अधोलिखित विचित्र कठिनाइयो का सामना करना पडा :—

१. उच्च जातियो के हिन्दू, हरिजनो को हेय तथा घृणित समझते थे। अत. उन्होने हरिजनो के बच्चो को सार्वजनिक स्कूलो मे पढाये जाने का घोर विरोध किया।

२. शताब्दियो से पद-दलित रहने के कारण स्वयं हरिजनो मे शिक्षा प्राप्त करने की तनिक भी अभिलाषा नही थी। अत. उनको शिक्षा के लिये दिये गये प्रलोभन प्राय. व्यर्थ सिद्ध हुए।

३. हरिजनो मे शिक्षा का अभाव था। अत. उनमे से शिक्षण-कार्य के लिये योग्य व्यक्तियो को प्राप्त करने का प्रश्न ही नही उठता था। उच्च वर्ग के हिन्दू पिछडी जातियो और हरिजनो के बच्चो के अध्यापक बनाना स्वीकार नही करते थे।

इन समस्याओ का समाधान करने के लिये हरिजन बालको को राजकीय विद्यालयो में शिक्षा देने की योजना बनाई गई। सरकार के इस निर्णय ने ७

की क्रोधाग्नि को प्रज्वलित कर दिया। उन्होने अपने बच्चो को विद्यालय न भेजने की धमकी दी। वंरा जिले मे तो बल-प्रयोग भी किया गया। अछूतो के घरो और फसलो मे आग लगा दी गई और वहाँ के ५ या ६ विद्यालयो को वर्षो बन्द रखा गया। सरकार ने जनता को शान्त करने के लिये अपनी नीति पर पुनर्विचार किया और पिछडी जातियों के लिये पृथक् विद्यालयो का निर्माण करने का निश्चय किया। १८८२ मे इस प्रकार के विद्यालय कुल २० थे। इनमे से १६ बम्बई मे थे, जिनमे ५६४ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, और ४ मध्य-प्रदेश मे थे, जिनमे छात्रो की सख्या १११ थी। इन दो प्रान्तो के अतिरिक्त किसी भी प्रान्त मे पिछडी जातिया और हरिजनो की शिक्षा-व्यवस्था सरकार द्वारा नही की गई थी।

४ आदिवासियो एव पहाडी जातियो की शिक्षा

१८८२ से पूर्व आदिवासियो एव पहाडी जातियो की शिक्षा के लिए सरकार ने कोई व्यवस्था नही की थी। केवल बगाल और आसाम मे इस दिशा मे सरकार ने कुछ कदम उठाये थे। वस्तुत इनको शिक्षित बनाने की योजना का श्रेय मिशनरियो को ही प्राप्त है। मिशनरियो ने आदिवासियो एव पहाडी जातियो मे अपने धर्म प्रचार मे प्रशसनीय सफलता प्राप्त की और ईसाई धर्म मे परिवर्तित भारतीयो के बच्चा को शिक्षा देने के लिये स्कूलो का निर्माण किया। १८८२ के 'भारतीय शिक्षा-आयोग' के अनुसार आदिवासी और पहाडी जातियो के छात्रा की सख्या इस प्रकार थी—बम्बई मे २,७३८ मध्य प्रदेश मे १,४५३ तथा बगाल और आसाम मे १३,०७८। इनके अतिरिक्त, अन्य प्रान्तो मे छात्रो की सख्या नगण्य थी, क्योकि वहाँ उनके लिये शिक्षा का कोई प्रबन्ध नही था।[1]

साराश

शासन-सत्ता का हस्तान्तरण—*१८५७ की क्रान्ति के बाद* कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने भारत के शासन की बागडोर अपने हाथ म ले ली।

ऐलेनबरा का आदेश-पत्र—इस आदेश-पत्र (१८५८) मे 'वुड के घोषणा-पत्र' की सभी सिफारिशो के विरुद्ध प्रस्ताव किय गये, क्योकि 'घोषणा-पत्र' मे प्रतिपादित शिक्षा-नीति को विद्रोह का कारण माना गया था।

स्टैनले का आदेश-पत्र—इस आदेश-पत्र (१८५९) मे वुड की शिक्षा-नीति का समर्थन किया गया और सरकार से प्राथमिक शिक्षा का भार अपने ऊपर लेने के लिये कहा गया।

शिक्षा विभागो का सगठन—१८५६ के अन्त तक सब प्रान्तो मे शिक्षा-विभागो का निर्माण हो गया और उनको प्रान्तीय शिक्षा का उत्तरदायित्व दे दिया

1. *Report of the Indian Education Commission*, pp *508-9*

गया। परन्तु शिक्षा की समुचित व्यवस्था न की जा सकी। इसका कारण यह था कि शिक्षा-विभागो के यूरोपियन अधिकारी भारतीय परिस्थितियो से परिचित नही थे। दूसरे, निरीक्षको की सख्या कम थी।

सहायता-अनुदान प्रणाली—इस प्रणाली को गैर-सरकारी स्कूलो को आर्थिक सहायता देने के लिए प्रचलित किया गया। परन्तु सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियम जटिल थे, धन-राशि कम थी और वह भी समय पर नही दी जाती थी। अत इस प्रणाली को अधिक सफलता नही मिली।

शिक्षा-प्रसार के साधनो का भारतीयकरण—१८५८ के बाद सरकारी कर्मचारियो के लिये इतने कडे नियम बना दिये गये कि उन्हे वैयक्तिक रूप से शिक्षा-संस्थायें स्थापित करने की स्वतन्त्रता नही रह गई। सरकार ने धार्मिक तटस्थता की नीति घोषित की, जिससे मिशनरियो के धर्म-प्रचार के कार्य पर अंकुश लग गया। इन दोनो बातो का परिणाम यह हुआ कि भारतीयो को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा प्रसार का कार्य करने के लिये विस्तृत क्षेत्र मिल गया और उन्होने राष्ट्रीय विद्यालयो का निर्माण किया।

प्राथमिक शिक्षा—स्टैनले के आदेश-पत्र ने प्राथमिक शिक्षा के कई प्रश्नो पर विवाद खडा कर दिया। मतैक्यता के अभाव मे सभी प्रान्तो ने विभिन्न नीति का अनुसरण किया। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा की प्रगति तो हुई परन्तु उसको सन्तोषजनक नही कहा जा सकता। प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिये स्थानीय कर भी लगाये गये।

माध्यमिक शिक्षा—इस अवधि मे माध्यमिक शिक्षा की आशातीत उन्नति हुई। परन्तु उसमें चार प्रमुख दोष थे—(अ) माध्यम के रूप मे मातृ-भाषाओ की उपेक्षा, (ब) दीक्षित शिक्षक का अभाव, (स) पुस्तकीय ज्ञान पर बल, और (द) औद्योगिक शिक्षा का अभाव।

उच्च शिक्षा—उच्च शिक्षा के लिये कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और पजाब म विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। इनका प्रबन्ध सीनेट के द्वारा किया जाता था। सरकार का अत्यधिक हस्तक्षेप होने के कारण विश्वविद्यालयो का स्वाभाविक विकास न हो सका। उच्च शिक्षा के लिये सरकार, मिशनरियो और भारतीयो ने अनेक कॉलेजो की स्थापना की।

व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत चिकित्सा, कानून, इजीनियरिंग, कृषि, पशु चिकित्सा, वन-विज्ञान, कला और औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। अध्यापको के प्रशिक्षण के लिए भी प्रबन्ध किया गया। सरकार ने व्यावसायिक शिक्षा की योजना केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बनाई थी।

विशिष्ट शिक्षा—विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत स्त्रियो और मुसलमानो की शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। स्त्री-शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय मिस कारपेन्टर को है। उनके प्रयास के फलस्वरूप महिला-प्रशिक्षण विद्यालयो का भी निर्माण हुआ। मुसलमानो की शिक्षा को प्रोत्साहित करने

के लिये सरकार ने विशेष आर्थिक सहायता दी और मुस्लिम निरीक्षण नियुक्त किये। पिछड़ी जातियां, हरिजनो, आदिवासियो और पहाडी जातियो की शिक्षा की ओर सरकार ने कोई ध्यान नही दिया। परन्तु मिशनरियो ने इस दिशा मे प्रशंसनीय प्रयास किये।

सारांश में, इस अवधि मे शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास हुआ। सरकार के साथ-साथ, भारतीयो ने भी शिक्षा-कार्य मे अभिरुचि व्यक्त की।

TEST QUESTIONS

1. *Give a brief history of Primary Education in India between 1854 and 1882*
   १८५४ से १८८२ तक भारत मे प्राथमिक शिक्षा के इतिहास का संक्षेप मे वर्णन कीजिये।

2. What were the defects of the Secondary System of Education? How could they have been combated?
   माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली के क्या दोष थे? उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता था?

3. Trace the history of Women's Education from *1854 to* 1882
   १८५४ से १८८२ तक स्त्री-शिक्षा के इतिहास का वर्णन कीजिये।

१२

भारतीय शिक्षा-आयोग

[हन्टर कमीशन]

(१८८२-१८८३)

प्रस्तावना

हम अध्याय ११ मे बता चुके हैं कि 'स्टैनले के आदेश-पत्र' ने वुड की शिक्षा-नीति का समर्थन किया था और प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे कुछ नये सुझाव दिये थे। १८५९ के पश्चात् भारत-सरकार ने सिद्धान्त रूप मे तो वुड तथा स्टैनले के घोषणा-पत्रो मे प्रतिपादित शिक्षा-नीति का अनुसरण किया, परन्तु क्रियात्मक पग बहुत-कुछ भिन्न ही उठाये। इस प्रकार सिद्धान्त एवं क्रिया मे जो विभिन्नता थी, उसकी जाँच की जानी चाहिये थी। परन्तु जाँच करता कौन ? शासन-सत्ता के हस्तातरण से पूर्व कम्पनी का आज्ञा-पत्र प्रत्येक २० वर्ष के पश्चात् संसद मे नवीनीकरण के लिये आता था। उस अवसर पर भारतीय शिक्षा-नीति की जाँच हो जाती थी। परन्तु अब यह सम्भव नही था। फलस्वरूप, १८५४ के 'घोषणा-पत्र' की अवहेलना करके भारत-सरकार निस्यन्दन सिद्धान्त पर चलती रही और जन-साधारण की शिक्षा की ओर कोई ठोस कदम नही उठाया गया। १८५९ के 'आदेश-पत्र' मे प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया गया था, परन्तु सरकार ने उसके प्रति भी कोई विशेष उत्साह प्रदर्शित नही किया।

आयोग की नियुक्ति के आधारभूत कारण

१८५४ के उपरान्त सम्पादित कार्य की समुन्नति का सिंहावलोकन करने पर हमे यह बात सहज ही ज्ञात हो जाती है कि स्वयं सरकार द्वारा ही प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर बल देने के पश्चात् भी वास्तविक प्रगति रंच-मात्र ही हुई थी, क्योंकि

सरकार का 'निस्यन्दन सिद्धान्त' मे अटल विश्वास था। सहायता-अनुदान प्राप्त उच्च शिक्षा के विद्यालयो पर सरकार की ओर से १३ लाख रुपया व्यय किया जाता था, परन्तु प्राथमिक एव मिडिल स्कूलो पर केवल २४½ लाख ही व्यय होता था। अत अधिकाश लोगो का मत था कि १८५४ के घोषणा-पत्र के उद्देश्य की राज्य ने पूर्ति नही की थी। 'वुड के आदेश-पत्र' मे यह आशा व्यक्त की गई थी कि सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुसरण करके एक समय ऐसा आ जायगा जब केवल व्यक्तिगत विद्यालय रह जायेंगे और राजकीय स्कूल बन्द कर दिये जायेंगे। इससे मिशनरियो को बडी बडी आशायें थी।

परन्तु १८५८ मे 'धार्मिक तटस्थता' की नीति की उद्घोषणा करके सरकार, मिशनरियो पर कडी नजर रखने लगी थी। सहायता-अनुदान देने मे राज्य ने उनके प्रति किसी प्रकार की उदारता का व्यवहार नही किया। इससे मिशनरियो को बडी निराशा हुई। इसके अतिरिक्त, सरकार ने उन स्थानो पर राजकीय विद्यालय स्थापित किये, जहाँ मिशन स्कूल थे। सरकार के इस कार्य से मिशनरी और भी अधिक रुष्ट हो गये। वे नही चाहते थे कि राजकीय स्कूल मिशन विद्यालयो के प्रतिद्वन्द्वी बनें। मिशन स्कूलो मे शिक्षा—धर्म-प्रचार का साधन था, साध्य नही। इसके विपरीत, राजकीय स्कूलो की शिक्षा मे धर्म का कोई स्थान नही था। फलस्वरूप, मिशनरियों को आशंका होने लगी थी कि कही भारतीय, मिशन स्कूलो का पूर्णत बहिष्कार न कर दें।

मिशनरी तो शिक्षा-क्षेत्र मे एकाधिकार चाहते थे। अत, उन्होने विक्षुब्ध होकर आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया कि भारतीय शिक्षा-नीति 'वुड के घोषणा-पत्र' के प्रतिकूल जा रही है। इस आन्दोलन की लोल लहरो से न केवल भारत, अपितु इङ्गलैण्ड भी सराबोर हो गया। वहाँ के कुछ उत्साही निवासियो ने 'जनरल कॉउन्सिल ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया' (General Council of Education in India) नामक एक सस्था स्थापित की। इसमे लार्ड हैलीफेक्स (Halifax) एव लार्ड लॉरेन्स (Lawrence) ऐसे सुविख्यात व्यक्ति सम्मिलित थे।

जब १८८२ मे ब्रिटिश संसद ने भारत के नये गवर्नर-जनरल, लार्ड रिपन (Ripon) की नियुक्ति की, तब इस संस्था के कुछ सदस्यो के एक शिष्ट-मंडल ने उससे भेंट की और भारतीय शिक्षा-नीति की जाँच करने की प्रार्थना की। लार्ड रिपन ने उन्हे आश्वासन देते हुए कहा—"१८५४ के 'घोषणा-पत्र' ने वस्तुत भारतीय शिक्षा-नीति को स्पष्ट एवं जोरदार शब्दो मे निर्धारित कर दिया है और मेरी इच्छा भी उसी नीति पर चलने की है। भारत पहुँचने पर मेरा यह कर्त्तव्य होगा कि वहाँ की उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस प्रश्न की पूर्ण जाँच करूँ। यदि मैं यह स्वीकार करूँ कि इस समय भी भारत मे निर्धनो की प्राथमिक शिक्षा के विकास एव प्रसार की आपकी इच्छा मे मुझे पूर्ण सहानुभूति है, तो इस निर्णय के लिये मेरे ऊपर पक्षपात का दोष लगाया जा सकता है।"

आयोग की नियुक्ति

भारत पहुँच कर लार्ड रिपन ने ३ फरवरी, १८८२ को गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य सर विलियम हन्टर (William Hunter) की अध्यक्षता मे प्रथम 'भारतीय शिक्षा आयोग' (Indian Education Commission) की नियुक्ति की। इसी आयोग को 'हन्टर कमीशन' (Hunter Commission) भी कहा जाता है। इस आयोग म सर हन्टर के अतिरिक्त, २० सदस्य और थे। इनम से ७ भारतीयो के प्रतिनिधि थे—सैयद महमूद, भूदेव मुकर्जी, आनन्द मोहन बोस, के० टी० तैलग, पी० रगानन्द मुदालियर, महाराजा जीतेन्द्र टैगोर और हाजी गुलाम। पादरियो के प्रतिनिधि, डा० डब्ल्यू० मिलर (W Miller) थे। मैसूर के शिक्षा-सचालक, बी० एल० राइस (B L Rice) इस आयोग के मन्त्री थे।

आयोग का कार्य-क्षेत्र एव उद्देश्य

इस आयोग का मुख्य कार्य-क्षेत्र—भारत मे प्राथमिक शिक्षा की जाँच करना था, क्योकि सरकार न 'वुड के घोषणा-पत्र' की अवहेलना करके प्राथमिक शिक्षा की अपेक्षा उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया था। इङ्गलैण्ड मे १८८० म जन शिक्षा का प्रसार करने के विचार से अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम (Elementary Education Act) पारित किया जा चुका था। इसी आदर्श से प्रेरित होकर आयोग को प्राथमिक शिक्षा की सूक्ष्म जाँच करने का भार सौपा गया। जिस प्रस्ताव द्वारा आयोग की नियुक्ति की गई थी, उसम आयोग के उद्देश्य को इन शब्दो मे अकित किया गया था—'कमीशन का कर्तव्य होगा, विशेष रूप से इस बात की जाँच करना कि १८५४ के 'घोषणा पत्र' के सिद्धान्तो को किस प्रकार कार्यान्वित किया गया है और ऐसे उपायो का सुझाव देना जो उस 'घोषणा-पत्र' म निर्धारित नीति को उत्तरोत्तर कार्यान्वित करने के हेतु कमीशन के मतानुसार वाछनीय प्रतीत होते हो।'[1]

सक्षेप मे, कमीशन को अधोलिखित बातो की जाँच करने के लिए कहा गया था —

१ •क्या सरकार न उच्च एव माध्यमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देकर प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की है ?

---

1 'It will be the duty of the Commission to enquire particularly into the manner in which effect has been given to the principles of the Despatch of 1854 and to suggest such measures as it may think desirable in order to further carrying out of th policy therein laid down —*Resolution Appointing the Comm*…
1882

२ प्राथमिक शिक्षा की क्या स्थिति है, और उसके विकास के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिए ?

३ राजकीय विद्यालयो की क्या स्थिति है, और भारतीय शिक्षा के लिए उनकी आवश्यकता है या नही ?

४ देश की शिक्षा व्यवस्था मे मिशन स्कूलो का क्या स्थान है ?

५ शिक्षा क्षेत्र मे वैयक्तिक प्रयासो के प्रति सरकार की नीति क्या होनी चाहिए ?

नियुक्ति के उपरान्त आयोग ने ७ सप्ताह तक कलकत्ता मे कार्य किया। तदुपरान्त उसने ८ माह तक सम्पूर्ण देश मे भ्रमण किया। इस अवधि मे उसने साक्षियो से बयान लेकर शिक्षा-सम्बन्धी सामग्री एकत्र की। आयोग ने प्रान्तीय सरकारो से भी रिपोर्टें माँगी। इस प्रकार, बडे परिश्रम से लगभग १० माह के पश्चात्, मार्च, १८८३ मे आयोग ने ६०० से अधिक पृष्ठो का एक वृहदाकार प्रतिवेदन सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

आयोग की सिफारिशें और सुझाव

अपनी रिपोर्ट मे आयोग ने भारतीय शिक्षा पर विहगम दृष्टिपात करने के उपरान्त भावी शिक्षा प्रसार के लिये अति महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये और शिक्षा के प्रत्येक अग के सम्बन्ध मे अपनी सिफारिशो को लेखबद्ध किया। यहाँ इस बात की ओर सकेत कर देना अनुपयुक्त न होगा कि आयोग के १८५४ के 'घोपणा-पत्र की बातो को ही आशिक परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया गया। उसने अपनी ओर से कोई नई बात नही बताई। शिक्षा के जिन अगो पर आयोग ने अपने विचार प्रकट किये उनका वर्णन निम्नाकित क्रम से किया जा रहा है —

१. प्राथमिक शिक्षा

आयोग का मुख्य कार्य क्षेत्र—प्राथमिक शिक्षा की जाँच करना था। अत आयोग ने इसमें सबसे अधिक रुचि व्यक्त की, और स्पष्ट शब्दो मे कहा कि यदि सरकार वास्तव मे जन शिक्षा का प्रसार करना चाहती है, तो उसे अतीत की अपेक्षा वर्तमान मे प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अधिक क्रियाशील होना आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने प्राथमिक शिक्षा के प्रत्येक अग की ओर, जैसे—प्राथमिक शिक्षा की नीति, सगठन-कार्य, आर्थिक व्यवस्था, अध्यापको का प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध मे अपने सुझाव और सिफारिशें की।

(१) प्राथमिक शिक्षा की नीति—प्राथमिक शिक्षा की नीति के सम्बन्ध मे आयोग ने अग्रलिखित सुझाव दिये —

१. प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य—जन-साधारण मे शिक्षा का प्रसार करना होना चाहिए, न कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक साधन मात्र।
२. प्राथमिक शिक्षा में ऐसे विषयो को स्थान देना चाहिये, जो जन-साधारण के व्यावहारिक जीवन में लाभप्रद सिद्ध हो।
३. प्राथमिक शिक्षा का माध्यम—देशी भाषाएँ होनी चाहिए।
४. प्राथमिक शिक्षा को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।
५. प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार को निम्न पदो पर नियुक्तियाँ करते समय उन व्यक्तियो को प्राथमिकता देनी चाहिए, जिन्हे लिखने-पढने का सामान्य ज्ञान हो।
६. भारत की पिछडी हुई जातियो, आदिवासियो आदि की शिक्षा की दिशा मे सरकार द्वारा भागीरथ प्रयत्न किये जाने चाहिए।
७. "जन-साधारण की प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, उसका प्रसार और सुधार भी शिक्षा-क्षेत्र का वह अङ्ग घोषित किया जाय, जिसकी ओर राज्य के सतत् प्रयास पहले से भी अधिकाधिक मात्रा मे अब केन्द्रीभूत किये जायें।"[1]

(ii) संगठन—इंगलैण्ड मे १८७० एवं १८७६ के 'शिक्षा-अधिनियमो' (Education Acts) के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का भार 'कॉउन्टी कौंसिल्स' (County Councils) को सौंप दिया गया था। इसी का अनुकरण करके लार्ड रिपन ने भारत मे प्राथमिक शिक्षा के संगठन का कार्य नगरपालिकाओ (Municipal Boards) और जिला-परिषदों (District Boards) के हाथ मे दे दिया। शिक्षा-सम्बन्धी सभी बातों, जैसे–प्रबन्ध, विकास, व्यय तथा निरीक्षण—का दायित्व इन्ही स्थानीय संस्थाओ को दे दिया गया। यह व्यवस्था करके सरकार ने अपने को जन-साधारण को शिक्षित करने के भार से मुक्त कर लिया।

(iii) पाठ्यक्रम—आयोग ने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध मे सभी प्रान्तो को स्वतन्त्रता दे दी। वे अपनी परम्परा के अनुसार, पाठ्यक्रम निर्धारित कर सकते थे। परन्तु आयोग ने कुछ जीवनोपयोगी विषयो को पाठ्य-क्रम मे सम्मिलित करने की सिफारिश की, जैसे—भौतिक विज्ञान, क्षेत्रमिति, चिकित्सा, बही-खाता और कृषि।

---

1. "It is desirable, in the present circumstances of the country, to declare the elementary education of the masses, its provision, extension, and improvement, to be that part of the educational system to which the strenuous efforts of the State should now be directed in a still larger measure than heretofore."
—*Indian Education Commission* P.

(iv) **आर्थिक व्यवस्था**—'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने प्राथमिक शिक्षा के आय व्यय के विषय मे कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये। आय के साधनो की ओर सकेत करते हुए आयोग ने कहा कि नगरपालिकायें और ज़िला-परिषदें प्राथमिक शिक्षा के लिये एक पृथक् कोष का निर्माण करें।[1] व्यय की रूप-रेखा निश्चित करते हुए आयोग ने बताया कि ग्रामो तथा नगरो के प्राथमिक विद्यालयो के कोष पृथक् कर दिये जायें, जिससे ग्रामो मे व्यय किया जाने वाला धन नगरो मे व्यय न हो सके। स्थानीय कोष के सम्बन्ध मे आयोग ने सुझाव दिया कि उसे केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय किया जाय। किसी भी दशा मे इस कोष के धन को उच्च शिक्षा या अन्य किसी कार्य के लिये व्यय न किया जाय, जैसा कि अब तक किया जा रहा था। आयोग ने प्रान्तीय सरकारो पर भी प्राथमिक शिक्षा का दायित्व रखा और कहा कि प्रान्तीय स्थानीय कोष का $\frac{1}{2}$ अथवा सम्पूर्ण व्यय का $\frac{1}{3}$ भाग सहायता के रूप मे प्रदान किया जाय। परन्तु भारत की तत्कालीन विशाल जनसख्या के लिये यह आर्थिक सहायता अति अल्प थी।

(v) **अध्यापको का प्रशिक्षण**—'हन्टर कमीशन' ने प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षण स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सिफारिश की, कि अध्यापको को दीक्षित किया जाय और इस कार्य के लिये नार्मल स्कूल खोले जायें। प्राथमिक पाठशालाओ के शिक्षको को दीक्षित करने के लिये कमीशन ने निम्नांकित सिफारिशें की '—

१ प्रशिक्षण विद्यालयो का निर्माण ऐसे स्थानो पर किया जाय, जहाँ से वे समस्त प्राथमिक पाठशालाओ की स्थानीय माँगो की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक विद्यालय-निरीक्षक के क्षेत्र मे कम-से-कम एक नार्मल स्कूल की स्थापना की जाय।'

२ नार्मल स्कूलो को सफल बनाने के लिये यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक निरीक्षक अपने अधीनस्थ प्रशिक्षण विद्यालय मे रुचि ले और उसके कुशल सचालन की व्यवस्था करे।

३ प्रान्तीय सरकारो द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिये स्वीकृत धन राशि मे

---

1 "That Primary Education should be declared to be that part of the whole system of Public Instruction which possesses an almost exclusive claim on local funds set apart for education and a large claim on provincial revenues "—*Indian Education Commission Report*

2 "We recommend that the supply of Normal Schools whether Government or aided, be so localised as to provide for the local requirements of all primary schools, whether Government or aided, within the division under each Inspector "—*Ibid*

के प्राथमिक विद्यालयों में निरीक्षण तथा नार्मल स्कूलों की स्थापना की उचित व्यवस्था की जाय।[1]

समीक्षा

'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने प्राथमिक शिक्षा के प्राय सभी अंगों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग की हार्दिक अभिलाषा थी कि भारत-सरकार प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन देकर जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार करे। प्राथमिक विद्यालयों को नगरपालिकाओं तथा जिला-परिषदों को सौंपने से शिक्षालयों का बड़ा उपकार हुआ। कारण यह है कि जिस कार्य को करने के लिये सरकार के पास समय नहीं था, उसको स्थानीय संस्थायें सम्पादित कर सकती थीं। इस प्रकार जन-शिक्षा की समस्या के समाधान की आशा दृष्टिगोचर होने लगी। इसके अतिरिक्त, आयोग की सिफारिश के अनुसार स्थानीय-कोष केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय किया जाने लगा। फलस्वरूप, प्राथमिक विद्यालयों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया। सरकार ने आयोग के सुझावों को स्वीकार करके प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया।

२ देशी शिक्षा[2]

देशी शिक्षा से आयोग का अभिप्राय उस शिक्षा से था, जो देश की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित, भारतीयों द्वारा सचालित देशी विद्यालयों (Indigenous Schools) में दी जा रही थी। आयोग ने इन विद्यालयों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सिफारिश की, कि सरकार इनको सरक्षण दे और शिक्षा की नवीन संरचना में इनको सम्मिलित करे। कमीशन ने अनुभव किया कि "अति दीर्घकाल से कठिनाइयों का सामना करने पर भी इन विद्यालयों का अस्तित्व इस बात का ज्वलन्त प्रमाण था कि वे सजीव तथा लोकप्रिय थे। कमीशन के मतानुसार सरकार से मान्यता तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करके देशी पाठशालाएँ राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती थीं।"[3]

---

1. "We recommend that the first charges on provincial funds assigned for Primary Education be the cost of the direction and inspection, and the provision of an adequate supply of Normal Schools"—*Indian Education Commission Report*

2 Indigenous Education.

3 "They have survived a severe competition, and have thus proved that they possess both vitality and popularity The indigenous schools, if recognised and assisted, may be expected to improve their method and fill a useful position in the State System of National Education"—*Indian Education Commission Report*



देशी पाठशालाओं के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ सभी पाठशालाओं को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जाय।

२ उनमें प्रवेश पाने के लिये छात्रों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाए।

३ उनमें पढ़ने वाले निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जायें।

४ देशी विद्यालयों के संचालन का भार नगरपालिकाओं तथा जिला परिषदों को सौंपा जाय। परन्तु विद्यालयों को इन संस्थाओं के अन्तर्गत रहने या न रहने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

५. इन पाठशालाओं के पाठ्य-क्रम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय। पाठ्य-क्रम में लाभप्रद विषयों को सम्मिलित करने के लिये सरकार द्वारा विशेष आर्थिक सहायता दी जाय।

६ देशी शिक्षालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाए।

समीक्षा

आयोग ने देशी शिक्षा के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये, वे वस्तुतः अति प्रशंसनीय थे। परन्तु एक सुझाव ऐसा था जिसे देकर देशी शिक्षा का महान् अहित किया गया। आयोग ने कहा कि देशी विद्यालयों को आर्थिक सहायता, परीक्षा-फल (Payment by Results System) के अनुसार दी जाय। आयोग ने इस प्रथा को उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये अनुपयुक्त बताया, परन्तु इसी को देशी शिक्षा के लिये उचित ठहराया। यद्यपि सरकार ने आयोग के बहुत कम सुझावों को स्वीकृत किया, परन्तु इस सुझाव पर अमल किया। परिणामस्वरूप, देशी विद्यालयों की स्वाभाविक प्रगति अवरुद्ध हो गई और कुछ समय के उपरान्त वे निष्प्राण हो गये।

३ माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आयोग ने केवल दो बातों के विषय में अपने सुझाव दिये—(१) माध्यमिक शिक्षा में विस्तार करने के उपाय, और (२) माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने की विधि।

शिक्षा-प्रसार के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव था कि सरकार माध्यमिक शिक्षा को सुयोग्य एवं बुद्धिमान भारतीयों के हाथों में सौंप कर स्वयं उसके उत्तर दायित्व से मुक्त हो जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सरकार, सहायता-अनुदान-प्रणाली का अनुसरण करे। यदि किसी क्षेत्र में अंग्रेज़ी की शिक्षा के लिये माध्यमिक स्कूलों की स्थापना आवश्यक प्रतीत हो, तो उनको सहायता-अनुदान की प्रणाली पर

स्थापित किया जाए।[1] आयोग को विश्वास था कि कुशल भारतीयों पर माध्यमिक शिक्षा का भार होने से उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी और शीघ्र ही वह जन-साधारण की मांग की पूर्ति कर सकेगी।

अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि यदि एक क्षेत्र की जनता इतनी धनी नहीं है कि वह सहायता-अनुदान से माध्यमिक विद्यालय को चला सके, तो क्या किया जाए? इसके उत्तर में आयोग ने कहा कि ऐसे स्थान पर सरकार स्कूल का निर्माण कर सकती है। परन्तु आयोग ने इस बात पर बल दिया कि ऐसा स्कूल एक जिले में एक ही होना चाहिए। स्कूल की स्थापना के पश्चात् सरकार को माध्यमिक शिक्षा के प्रसार का कार्य जिले के निवासियों पर छोड़ देना चाहिए। यदि वे चाहें, तो अपने विद्यालयों को लोकप्रिय बनाने के लिए राजकीय विद्यालयों से कम शुल्क ले सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने की विधि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कमीशन ने लिखा कि हाई-स्कूल की शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर दिया जाय—(१) अ-कोर्स 'A' Course, एवं (२) ब-कोर्स 'B' Course। प्रथम कोर्स उन विद्यार्थियों के लिये हो, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश करना चाहते हों। द्वितीय कोर्स अधिक व्यावहारिक हो और उसका उद्देश्य नवयुवकों को व्यावसायिक तथा असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो।[2]

समीक्षा

आयोग ने शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में भी अपने सुझाव दिये। परन्तु वे अत्यधिक निराशाजनक थे। आयोग ने हाई स्कूल के स्तर पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजी का पक्ष लिया और मातृभाषा के विषय में मौन रहा। उसने मिडिल स्कूलों के लिए भी शिक्षा का कोई माध्यम निश्चित नहीं किया। इसका निर्णय परिस्थितियों के अनुसार मिडिल स्कूलों के प्रबन्धकों पर छोड़ दिया गया। आयोग की इन ढुल-मुल सिफारिशों का परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक स्तर पर भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जा सका।

---

1. "Secondary Schools for instruction in English be hereafter established by the State preferably on the footing of the system of Grant-in-Aid."—*Indian Education Commission Report.*

2. "We, therefore, recommend that in the upper classes of High Schools there be two divisions; one leading to the Entrance Examination of the Universities, the other of a more practical character, intended to fit youths for commercial or non-literary pursuits."—*Ibid*

देशी पाठशालाओ के सम्बन्ध मे आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये —

१. सभी पाठशालाओ को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जाय।

२ उनमे प्रवेश पाने के लिये छात्रो पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाए।

३ उनमे पढने वाले निर्धन विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ।

४ देशी विद्यालयो के संचालन का भार नगरपालिकाओ तथा ज़िला-परिषदो को सौपा जाय। परन्तु विद्यालयो को इन संस्थाओ के अन्तर्गत रहने या न रहने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

५. इन पाठशालाओ के पाठ्य-क्रम मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय। पाठ्य-क्रम मे लाभप्रद विपयो को सम्मिलित करने के लिय सरकार द्वारा विशेप आर्थिक सहायता दी जाय।

६ देशी शिक्षालयो के अध्यापको के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाए।

समीक्षा

आयोग ने देशी शिक्षा के सम्बन्ध मे जो सुझाव दिये, वे वस्तुतः अति प्रशंसनीय थे। परन्तु एक सुझाव ऐसा था जिसे देकर देशी शिक्षा का महान् अहित किया गया। आयोग ने कहा कि देशी विद्यालयो को आर्थिक सहायता, परीक्षा-फल (Payment by Results System) के अनुसार दी जाय। आयोग ने इस प्रथा को उच्च एव माध्यमिक शिक्षा के लिये अनुपयुक्त बताया, परन्तु इसी को देशी शिक्षा के लिये उचित ठहराया। यद्यपि सरकार ने आयोग के बहुत कम सुझावो को स्वीकृत किया, परन्तु इस सुझाव पर अमल किया। परिणामस्वरूप, देशी विद्यालयो की स्वाभाविक प्रगति अवरुद्ध हो गई और कुछ समय के उपरान्त वे निष्प्राण हो गये।

३ माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे आयोग ने केवल दो बातो के विपय मे अपने सुझाव दिये—(१) माध्यमिक शिक्षा मे विस्तार करने के उपाय, और (२) माध्यमिक शिक्षा के दोपो को दूर करने की विधि।

शिक्षा-प्रसार के सम्बन्ध मे आयोग का सुझाव था कि सरकार माध्यमिक शिक्षा को सुयोग्य एवं बुद्धिमान भारतीयो के हाथो मे सौंप कर स्वयं उसके उत्तर-दायित्व से मुक्त हो जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सरकार, सहायता-अनुदान-प्रणाली का अनुसरण करे। यदि किसी क्षेत्र मे अंग्रेजी की शिक्षा के लिये माध्यमिक स्कूलो की स्थापना आवश्यक प्रतीत हो, तो उनको सहायता-अनुदान की प्रणाली पर

स्थापित किया जाए।[1] आयोग को विश्वास था कि कुशल भारतीयो पर माध्यमिक शिक्षा का भार होने से उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी और शीघ्र ही वह जन-साधारण की माँग की पूर्ति कर सकेगी।

अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि यदि एक क्षेत्र की जनता इतनी धनी नही है कि वह सहायता-अनुदान से माध्यमिक विद्यालय को चला सके, तो क्या किया जाए ? इसके उत्तर मे आयोग ने कहा कि ऐसे स्थान पर सरकार स्कूल का निर्माण कर सकती है। परन्तु आयोग ने इस बात पर बल दिया कि ऐसा स्कूल एक जिले में एक ही होना चाहिए। स्कूल की स्थापना के पश्चात् सरकार को माध्यमिक शिक्षा के प्रसार का कार्य जिले के निवासियो पर छोड देना चाहिए। यदि वे चाहे, तो अपने विद्यालयो को लोकप्रिय बनाने के लिए राजकीय विद्यालयो से कम शुल्क ले सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोषो को दूर करने की विधि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कमीशन ने लिखा कि हाई-स्कूल की शिक्षा को दो भागो मे विभक्त कर दिया जाय—(१) अ-कोर्स 'A' Course, एवं (२) ब-कोर्स 'B' Course। प्रथम कोर्स उन विद्यार्थियो के लिये हो, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय मे प्रवेश करना चाहते हो। द्वितीय कोर्स अधिक व्यावहारिक हो और उसका उद्देश्य नवयुवकों को व्यावसायिक तथा असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो।[2]

समीक्षा

आयोग ने शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में भी अपने सुझाव दिये। परन्तु वे अत्यधिक निराशाजनक थे। आयोग ने हाई स्कूल के स्तर पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजी का पक्ष लिया और मातृभाषा के विषय मे मौन रहा। उसने मिडिल स्कूलो के लिए भी शिक्षा का कोई माध्यम निश्चित नही किया। इसका निर्णय परिस्थितियो के अनुसार मिडिल स्कूलो के प्रबन्धको पर छोड दिया गया। आयोग की इन ढुल-मुल सिफारिशो का परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक स्तर पर भारतीय भाषाओ को शिक्षा का माध्यम नही बनाया जा सका।

---

1. "Secondary Schools for instruction in English be hereafter established by the State preferably on the footing of the system of Grant-in-Aid."—*Indian Education Commission Report.*

2. "We, therefore, recommend that in the upper classes of High Schools there be two divisions; one leading to the Entrance Examination of the Universities, the other of a more practical character, intended to fit youths for commercial or non-literary pursuits."—*Ibid.*

४. अध्यापकों का प्रशिक्षण

सन् १८८२ तक भारत मे केवल दो प्रशिक्षण-विद्यालय थे—एक लाहौर मे और दूसरा मद्रास मे। आयोग ने अध्यापको के प्रशिक्षण पर विशेष रूप से बल दिया और निम्नांकित सिफारिशें की —

१. स्नातको (Graduates) का प्रशिक्षण-काल उनसे निम्न योग्यताओ के छात्राध्यापको की अपेक्षा कम होना चाहिये।
२. प्रशिक्षण-विद्यालयो के पाठ्य-क्रम मे शिक्षा-सिद्धान्त एवं प्रायोगिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाय।

५. उच्च शिक्षा

यद्यपि 'भारतीय शिक्षा-आयोग' को उच्च शिक्षा की जाँच करने का आदेश नही दिया गया था, परन्तु फिर भी उसने कॉलेज की शिक्षा के विषय मे कुछ महत्व-पूर्ण सुझाव दिये। हम इनकी ओर नीचे संकेत कर रहे हैं :—

१ कॉलेजो को सहायता-अनुदान देते समय शिक्षको की संख्या, कॉलेजो के व्यय, उनकी कार्य-क्षमता एवं स्थानीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखा जाय।
२. आवश्यकता पड़ने पर कॉलेजो को भवन निर्माण, फर्नीचर, पुस्तकालय और शिक्षण-सामग्री के लिये विशेष सहायता-अनुदान दिया जाय।
३. कॉलेजो के अध्यापको की नियुक्ति के समय यूरोप के विश्वविद्यालयो मे शिक्षित भारतीयो को वरीयता दी जाय।
४. कॉलेजो मे विभिन्न प्रकार के विस्तृत पाठ्यक्रमो का समावेश किया जाय, जिससे कि विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयो का चयन कर सकें।
५. छात्रो के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक ऐसी पाठ्य-पुस्तक की रचना की जाय, जिसमे प्रकृति-धर्म तथा मानव-धर्म के सिद्धान्तो की पूर्ण व्यवस्था हो।
६. कॉलेजो के प्रधानाचार्य या अध्यापको द्वारा एक ऐसी व्याख्यान-माला जारी की जाय, जिसमे विद्यार्थियो को मानव तथा नागरिक के कर्तव्य बताये जायें।
७. वैयक्तिक कॉलेजो को राजकीय कॉलेजो से कम शुल्क लेने का अधिकार दिया जाय।
८. कॉलेजो मे नि शुल्क शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी एक निश्चित संख्या से अधिक न रखे जायें।
९. योग्य विद्यार्थियो को यूरोप मे शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करने के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायें।

६. शिक्षा-विभाग

१८५४ के 'घोषणा-पत्र' के अनुसार प्रान्तीय शिक्षा-विभागो का निर्माण हुआ था। इन विभागो के दोषो का उल्लेख पिछले अध्याय मे किया जा चुका है। शिक्षा-विभागो की जाँच के दौरान मे आयोग का ध्यान उन दोषो की ओर आकृष्ट हुआ और उनको दूर करने के लिये आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ प्रत्येक प्रान्त मे निरीक्षको की संख्या मे वृद्धि की जाय, जिससे कि समस्त विद्यालयो का निरीक्षण वहाँ जाकर किया जा सके।

२. निरीक्षको द्वारा ली जाने वाली परीक्षायें प्रत्येक विद्यालय मे ली जायें। इसके लिये समीपवर्ती विद्यालयो के छात्रो को एक शिक्षालय मे एकत्र न किया जाय।

३ सहायता-अनुदान पाने वाले प्रत्येक विद्यालय का निरीक्षण अनिवार्य रूप से किया जाए।

४. सहायक निरीक्षको के वेतन मे वृद्धि की जाय।

५ जिला-निरीक्षको के पदो पर यूरोपियनो की अपेक्षा भारतीयो को अधिक संख्या मे नियुक्त किया जाय।

शिक्षा-विभागो के सम्बन्ध मे आयोग की ये सिफारिशें अत्युत्तम थी। परन्तु ये इतने दबे हुए शब्दो मे की गई थी कि सरकार ने इनकी ओर कोई ध्यान नही दिया। फलस्वरूप, शिक्षा-विभागो मे वांछित सुधार न हो सका।

७. सहायता-अनुदान-प्रणाली

'वुड के घोषणा-पत्र' मे प्रतिपादित सहायता-अनुदान-प्रणाली को भारत के विभिन्न प्रान्तो मे प्रचलित किया गया था, परन्तु सभी प्रान्तो मे इसका रूप भिन्न था। उदाहरणत —बम्बई मे 'परीक्षा-फल के अनुसार वेतन-प्रणाली' (Payment by Results System), मद्रास मे 'वेतन-अनुदान-प्रणाली' (Salary Grant System), तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त, मध्य प्रान्त और कुछ सीमा तक पजाब मे 'नियत कालीन-प्रणाली' (Fixed Period System) का प्रचलन था। शिक्षा-आयोग ने इन समस्त प्रणालियो के गुण-दोषो का विवेचन करके निम्नांकित सुझाव दिये —

१ 'परीक्षाफल के अनुसार वेतन प्रणाली' को उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के लिये प्रयोग न किया जाकर, सामान्यत प्राथमिक शिक्षा के किये प्रयोग किया जाय। अन्य प्रणालियो का अनुसरण करने के लिये प्रातो को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाए।

२ प्रान्त के समस्त विद्यालयो की आवश्यकताओ तथा परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियमो मे संशोधन किया जाय।

३ उपर्युक्त नियमो के संशोधन के समय गैर-सरकारी स्कूलो के प्रबन्धको का परामर्श अनिवार्य रूप से लिया जाय ।

४ सहायता-अनुदान के लिये निर्धारित नियमो को समाचार-पत्रो मे प्रकाशित किया जाय, जिससे कि सभी लोग उससे अवगत हो जायँ ।

५ सहायता-अनुदान के नियमो को हिन्दी मे अनुवादित कराया जाय, और उनको गैर-सरकारी स्कूलो के प्रबन्धको के पास सूचनार्थ भेज दिया जाय ।

६ आर्थिक सहायता देते समय प्रत्येक विद्यालय की आवश्यकताओ तथा परिस्थितियो पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय ।

७. जो विद्यालय पिछड़े हुए क्षेत्रो मे हैं या जिनके पास आय के साधनो की कमी है, उन्हे विशेष आर्थिक सहायता दी जाय ।

८. सहायता-अनुदान के सम्बन्ध मे विद्यालयों से प्राप्त प्रार्थना-पत्रो पर शिक्षा-विभाग द्वारा गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय । उन विद्यालयो का निरीक्षण किया जाय और तत्पश्चात् उनके पास शिक्षा-विभाग का निर्णय भेज दिया जाय ।

९ सहायता अनुदान देने मे किसी प्रकार का पक्षपात न किया जाय । किसी गैर-सरकारी विद्यालय को इसलिये अधिक धन-राशि न दी जाय, क्योंकि वह राजकीय विद्यालय के निकट है ।

१० भवन-निर्माण, फर्नीचर, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, शिक्षण-सामग्री आदि के लिये विद्यालयो को विशेष सहायता-अनुदान एक निश्चित अवधि तक दिया जाय । इसके सम्बन्ध मे भी नियमो का निर्माण किया जाय ।

११ विद्यालयो को विशेष आर्थिक सहायता देकर, उन्हे विशिष्ट विषयो के शिक्षण की व्यवस्था करने का अवसर दिया जाय ।

१२. सहायता अनुदान की धन-राशि विद्यालयो को निश्चित समय पर दी जाय और उसे अकारण बन्द या समाप्त न किया जाय ।

१३. सहायता-अनुदान-सम्बन्धी नियमो को अधिक से अधिक उदार बनाने का प्रयास किया जाय ।

१४. आर्थिक सहायता-प्राप्त विद्यालयो के आन्तरिक प्रबन्ध मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय ।

१५ सहायता-अनुदान-प्राप्त विद्यालयो के प्रबन्धको को परामर्श देने के लिये विशेष शिक्षा-अधिकारियो की नियुक्ति की जाय ।

समीक्षा

आयोग के सहायता-अनुदान-सम्बन्धी सुझाव अति सराहनीय थे । सरकार ने लगभग इन सभी सुझावो को स्वीकार करके भारतीय शिक्षा का महान् हित किया ।

गैर-सरकारी स्कूलो को निश्चित समय पर पर्याप्त धन-राशि मिलने लगी, जिससे उनकी रूपरेखा पूर्णत परिवर्तित हो गई। शिक्षा के लिये राज-कोष से धन प्राप्त होने के कारण भारतीय, शिक्षा के क्षेत्र मे उतर आये और उन्होने विद्यालयो के नवनिर्माण मे विलक्षण उत्साह का परिचय दिया। भारतीय शिक्षा तीव्र वेग से प्रवाहित होने लगी और शिक्षा के जो अवयव अधूरे या उपेक्षित छोड दिये गये थे, उन्हे अधिक पुष्ट करने की चेष्टा की जाने लगी।

८. शिक्षा के साधनो का भारतीयकरण

१८५४ के 'घोषणा-पत्र' मे यह आशा व्यक्त की गई थी कि सरकार सहायता-अनुदान-प्रणाली को प्रचलित करके कुछ समय उपरान्त शिक्षा के क्षेत्र से पृथक् हो जाय। शिक्षा-विभाग के पदाधिकारियो ने इस आदेश की ओर रचमात्र भी ध्यान न देकर राजकीय विद्यालयो का निर्माण अति तीव्र गति से किया। मिशनरियो ने सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि राजकीय विद्यालयो को बन्द कर देना चाहिए या उसका प्रबन्ध गैर-सरकारी संस्थाओ को सौप देना चाहिये। केवल ऐसी ही दशा मे व्यक्तिगत विद्यालयो के प्रति सरकार का व्यवहार निष्पक्ष हो सकेगा। मिशनरियो की इस माँग को ध्यान मे रखकर शिक्षा-आयोग से दो बातो पर सुझाव देने के लिए कहा गया—(१) क्या सरकार शिक्षा से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर दे ? एव (२) यदि हाँ, तो किस प्रकार ?

प्रथम प्रश्न जटिल था। इस विषय मे दो विचारधारायें प्रवाहित हो रही थी (i) प्रथम विचारधारा के व्यक्तियो का कथन था कि सरकार को शिक्षा से कोई प्रयोजन नही रखना चाहिये। (ii) द्वितीय विचारधारा के समर्थक इसके विपरीत, यह कहते थे कि शिक्षा का प्रसार करना सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है। दोनो विचारधाराओ का गहन अध्ययन करने के उपरान्त, आयोग इस परिणाम पर पहुँचा कि शिक्षा का कार्य भारतीयो को सौंपकर सरकार को इस भार से मुक्त हो जाना ही श्रेयस्कर होगा। अपने इस निर्णय पर पहुँचने के लिये आयोग ने निम्नलिखित दो कारणो का उल्लेख किया —

१. सरकार के पास धन का अभाव है। अतः वह शिक्षा की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करने मे असमर्थ है। ऐसी दशा मे सहायता-अनुदान-प्रणाली द्वारा गैर-सरकारी शिक्षा-संस्थाओ को प्रोत्साहित करना अधिक विवेकपूर्ण कार्य होगा।

२. राजकीय शिक्षालयों पर अत्यधिक धन व्यय हो जाता है। यदि इन शिक्षालयों को स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय, तो काफी बचत हो सकती है और इस धन से अधिक व्यक्तिगत विद्यालयों को आर्थिक सहायता दी जा सकती है।

इन कारणों को दृष्टिकोण मे रखते हुए कमीशन ने अधोलिखित दो सुझाव प्रस्तुत किये —

१ सरकार को राजकीय विद्यालयों का विस्तार स्थगित कर देना चाहिये।

२. जैसे ही कोई सार्वजनिक या व्यक्तिगत संस्था किसी राजकीय विद्यालय का भार अपने ऊपर ले ले, वैसे ही सरकार को उस विद्यालय से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर देना चाहिये।

उपर्युक्त सुझावों के फलस्वरूप निम्नांकित दो नये प्रश्न उपस्थित हुए —

१ राजकीय विद्यालयों को किस संस्था को हस्तान्तरित किया जाय ?

२ विद्यालयों को किन शर्तों पर हस्तान्तरित किया जाय ?

मिशनरियों का विरोधी होने के कारण आयोग ने उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर मे लिखा —

१ प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण रूप से स्थानीय परिषदों और नगरपालिकाओं को सौंपकर सरकार अपने को उससे अलग कर ले।

२ उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा-विभाग के संरक्षण मे गैर-सरकारी संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय।

सरकार ने आयोग के प्रथम सुझाव को स्वीकार कर लिया और सभी प्राथमिक विद्यालयों को स्थानीय संस्थाओं के हाथ मे सौंप दिया। परन्तु दूसरे सुझाव को सरकार ने स्वीकृत नहीं किया और उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा मे अपनी रुचि को यथावत् बनाये रखा।

६ मिशनरी प्रयास

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि 'भारतीय शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति का प्रमुख कारण—मिशनरियों का आन्दोलन था। वे लोग आयोग से बड़ी-बड़ी आशायें लगाये बैठे थे। परन्तु आयोग की शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशों से उनकी सभी आशाओं पर तुषार-पात हो गया। आयोग ने प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित करने का सुझाव दिया। इसमे मिशनरियों को कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि उन्हे प्राथमिक शिक्षा मे कोई विशेष रुचि नहीं थी। मिशनरियों को पूर्ण विश्वास था कि माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का प्रबन्ध उनके हाथ मे आ जायगा। परन्तु ऐसा न हुआ। आयोग ने निःशंक भाव मे घोषित किया कि भारत ऐसे विशाल देश की शिक्षा का भार केवल एक दल को सौंप देना उचित न होगा, और विशेषतः मिशनरियों को, जो उदार और सच्चे होते हुए भी जन-साधारण की विभिन्न भावनाओं

से सहानुभूति रखने में असमर्थ है।[1] अतः आयोग ने सिफारिश की, कि उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा को भारतीय प्रबन्धको के हाथ मे ही सौंपा जाय। आयोग के इस निर्णय ने मिशनरियो की सभी आशाओ तथा अभिलाषाओ को चूर-चूर कर दिया। उन्हे यह विदित हो गया कि उनके शिक्षालयो को भारतीय विद्यालयो से निम्नतर स्थान प्रदान किया गया है। आयोग के इस निर्णय से भारतीयो को आभास हो गया कि उन्हे शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना है। ऐसा करके ही वे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली को पुनर्संङ्गठित करके उसका विकास कर सकेंगे।

१०. धार्मिक शिक्षा

मिशनरी सदैव से ही धार्मिक शिक्षा पर बल देते चले आ रहे थे। धार्मिक शिक्षा के पक्ष मे उनका दृष्टिकोण निम्नांकित था :—

१. वास्तविक शिक्षा को धर्म से पृथक् नही किया जा सकता है। अतः प्रत्येक विद्यालय मे धार्मिक शिक्षा का दिया जाना अनिवार्य होना चाहिए।

२. मिशनरियो को अपने स्कूलो मे बाइबिल की शिक्षा देने की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये।

३. सरकार की 'धार्मिक तटस्थता' की नीति भारतीयो की आध्यात्मिक उन्नति के लिए कल्याणकारी नही है।

मिशनरियो के अतिरिक्त, ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज और आर्य-समाज ने भी अपने धार्मिक सिद्धान्तो के अनुसार विद्यालयो मे धार्मिक शिक्षा को स्थान देने की माँग की। कट्टर हिन्दुओ तथा मुसलमानो ने अपने धर्म की शिक्षा के लिये बल दिया। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने धार्मिक शिक्षा की समस्या पर गम्भीर विचार करने के उपरान्त अधोलिखित सुझाव दिये —

१. राजकीय विद्यालयो मे किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा न दी जाय।

---

1. "In a country with such varied needs as India, we should deprecate any measure which would throw excessive influence over higher education into the hands of any single agency, and particularly into the hands of an agency which, however, benevolent and earnest, cannot on all points be in sympathy with the mass of the community. At the same time, we think it well to put on record our unanimous opinion that withdrawal of direct departmental agency should not take place in favour of missiorary bodies and that departmental institutions of the higher order should not be transferred to missionary management."—*Indian Education Commission Report.*

२ गैर-सरकारी स्कूलो मे धार्मिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है और सरकार उस शिक्षा की ओर कोई ध्यान न दे ।

३ धार्मिक शिक्षा देने वाले विद्यालयो को सहायता-अनुदान देने का आधार उनकी लौकिक शिक्षा होनी चाहिय ।

टिप्पणी

धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध मे आयोग की सिफारिशें अमूल्य थी। १८१३ से जब से कम्पनी ने भारतीयो की शिक्षा का दायित्व अपने ऊपर लिया था, धार्मिक शिक्षा पर वाद-विवाद चला आ रहा था। धार्मिक शिक्षा के लिए एक निश्चित नीति निर्धारित करके इस विवाद को समाप्त करने का श्रेय आयोग को ही प्राप्त है। उस समय से लेकर आज तक शिक्षा मे धार्मिक तटस्थता की नीति का अनुसरण किया जा रहा है ।

११. मुस्लिम शिक्षा

पिछले अध्याय मे मुस्लिम शिक्षा के दोषो पर प्रकाश डाला जा चुका है। 'हन्टर कमीशन' ने उन दोषो पर मनन किया और उनको दूर करने के लिये निम्न लिखित सुझाव दिये —

१ मुस्लिम शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन देने का भार स्थानीय सस्थाओ और प्रान्तो के कोषो पर होना चाहिये ।

२ देशी मुस्लिम विद्यालयो को अपने पाठय-क्रमो मे पूर्णत लौकिक विषयो को स्थान देने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।

३ मुस्लिम प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाना चाहिये ।

४ उन स्थानो के अतिरिक्त जहाँ की मुस्लिम जनता इस पक्ष मे न हो प्राथमिक एव मिडिल स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम 'हिन्दुस्तानी' होना चाहिये ।

५ जिन स्थानो पर हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा का प्रयोग किया जाता है, वहाँ उस भाषा को प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलो के पाठ्यक्रमो मे स्थान दिया जाय ।

६ जिन स्थानो मे मुसलमानो की जनसख्या अधिक है, वहाँ के मिडिल और हाई स्कूलो म हिन्दुस्तानी और फारसी की शिक्षा की व्यवस्था की जाय ।

७ मुसलमानो को अंग्रेजी की उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। अत इस शिक्षा को समुन्नत करने के लिए उदार आर्थिक सहायता प्रदान की जाय ।

८. मुसलमानो मे शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए छात्रवृत्तियाँ देने की योजना बनाई जाय। जो छात्रवृत्तियाँ प्रारम्भिक विद्यालयो मे दी जायँ, वे मिडिल स्कूलो मे चलती रहे, जो मिडिल स्कूलो मे दी जायँ, वे हाई स्कूलो मे समाप्त हो, और जो हाई स्कूलो मे दी जायँ वे कॉलेजो मे भी मिलें।

९ राजकीय विद्यालयो मे नि शुल्क शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो मे मुसलमान विद्यार्थियो की संख्या स्पष्ट रूप से निश्चित कर दी जाय।

१०. जो सम्पत्ति मुसलमानो को शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए दी गई है और जिसका प्रबन्ध सरकार द्वारा किया जाता है, उसकी आय केवल मुस्लिम शिक्षा के विकास मे ही व्यय की जाय।

११ यदि सम्पत्ति का प्रबन्ध व्यक्तियो तथा सस्थाओ के हाथ मे है, तो उन्हे उदार सहायता-अनुदान देकर अंग्रेजी विद्यालयो या कॉलेजो की स्थापना के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

१२. मुसलमान अध्यापको की दीक्षा के लिये नार्मल स्कूलो तथा प्रशिक्षण-कक्षाओ का प्रबन्ध किया जाय।

१३ जिन मुस्लिम स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम 'हिन्दुस्तानी' हो, उनमे यथासम्भव मुसलमान अध्यापक ही नियुक्त किये जायँ।

१४ मुसलमानो के प्राथमिक विद्यालयो के निरीक्षण के लिए मुसलमान निरीक्षको की नियुक्ति अधिक संख्या मे की जाय।

१५. मुस्लिम-शिक्षा को प्रोत्साहित करने वाली संस्थाओ को सरकार द्वारा मान्यता तथा सहायता दी जाय।

१६ सार्वजनिक शिक्षा की वार्षिक रिपोर्टो मे मुसलमानो की शिक्षा का पृथक् वर्णन किया जाय।

१७. शिक्षित मुसलमानो तथा अन्य जातियो के पढे-लिखे व्यक्तियो को राजकीय पदो पर नियुक्त करते समय मुसलमानो के उचित अनुपात का ध्यान रखा जाय।

समीक्षा

आयोग की सभी सिफारिशो को केन्द्रीय एव प्रान्तीय सरकारो ने स्वीकार कर लिया। केवल इस बात की स्वीकृति नही दी कि अरबी और फारसी के अध्ययन पर बल दिया जाय। इस सम्बन्ध मे स्वयं सरकार का मत यह था कि यदि मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा से लाभ नही उठायेंगे, तो वे राजपदो को प्राप्त करने मे हिन्दुओ से

पीछे रह जायेंगे ।[1] इस प्रकार अंग्रेजों ने मुसलमानो को अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया । इसका आधारभूत कारण—मुसलमानो को ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ एवं ब्रिटिश सरकार के विश्वासपात्र कर्मचारी बनाना था ।

१२. स्त्री-शिक्षा

तत्कालीन स्त्री-शिक्षा की दयनीय दशा पर अपने हृदयोद्गारो को व्यक्त करते हुए **कमीशन** ने लिखा :—"यह बात स्पष्ट है कि स्त्री-शिक्षा अभी तक अत्यधिक पिछड़ी हुई दशा मे है । अत: इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक सम्भव विधि से इसका पोषण किया जाय ।[2]" स्त्री-शिक्षा की अनेकमुखी उन्नति के लिए **आयोग** ने निम्नांकित व्यापक सुझाव दिए —

१ **सार्वजनिक कोष**—स्थानीय, म्युनिसिपल और प्रान्तीय सार्वजनिक कोषो से बालको तथा बालिकाओ मे विद्यालयो के लिए उचित अनुपात मे धन व्यय किया जाय ।

२. **सहायता-अनुदान**—बालिका-विद्यालयो को उससे अधिक आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए, जितनी कि उन्हे मिल रही है । अतः यह आवश्यक है कि बालिका-विद्यालयो के लिए सहायता-अनुदान के नियम सरल हो ।

३ **पाठ्य-क्रम एव पाठ्य-पुस्तको मे विभिन्नता**—यह बात अमान्य है कि जो शिक्षा बालको के लिए उपयोगी हो, वह बालिकाओ के लिए भी लाभप्रद सिद्ध हो । अत यह आवश्यक है कि बालिकाओ का पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-पुस्तकें बालको से भिन्न हो । बालिकाओ को साहित्यिक विषयो की अपेक्षा प्रायोगिक विषयो की शिक्षा देना अधिक उपयुक्त होगा ।

४. **शुल्क एवं छात्रवृत्तियाँ**—स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार करने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उनको नि:शुल्क शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय । सहायता-अनुदान की शर्त—शुल्क पर आधारित है । यह सर्वथा उचित होगा, यदि इस शर्त को कन्या-विद्यालयो के लिये न रखा जाय । बालिकाओ की शिक्षा-अवधि मे वृद्धि करने के लिये उनको छात्रवृत्तियाँ देने की योजना कार्यान्वित की जाय ।

---

1. "It is only by frankly placing themselves in line with the Hindus, and taking full advantage of the Government system of high and especially of English education, that the Muhammadans can hope fairly to hold their own in respect of the better description of the State appointments."—Syed Mahmood : *op cit*, p. 174.

2. "It will have been seen that female education is still in an extremely backward condition, and that it needs to be fostered in every legitimate way."—*Indian Education Commission Report.*

५ **माध्यमिक शिक्षा**—बालिकाओ की माध्यमिक शिक्षा की दिशा म अभी तक बहुत ही कम कार्य किया गया है। अत इस शिक्षा का प्रबन्ध उन क्षेत्रो मे किया जाय, जहाँ इसकी माँग है।

६ **छात्रावास**—यदि बालिकाओ के निवास स्थान दूर हैं तो उन्हे विद्यालय आने म बहुत कठिनाई होती है। अत स्कूलो के प्रबन्धको को छात्रावासो की व्यवस्था करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

७ **कन्या-विद्यालयो का स्थानीय सस्थाओ को हस्तान्तरण**—कन्या विद्यालयो का कार्य भार स्थानीय सस्थाओ को हस्तान्तरित कर दिया जाय। जिन क्षेत्रो की सस्थाय इस कार्य के लिए अन्यमनस्क हो, वहाँ विद्यालयो का प्रबन्ध स्वय सरकार द्वारा किया जाय।

८ **अध्यापको की व्यवस्था**—तत्कालीन भारतीय समाज महिला विद्यालयों [illegible] मे पुरुष शिक्षको के पक्ष मे नही था। अत आयोग ने सिफारिश की, कि [illegible] अध्यापन-कार्य के लिए आकर्षित किया जाए। उनके लिये प्रशिक्षण-[illegible] शिलान्यास किया जाय और धीरे धीरे पुरुषो के स्थान पर स्त्री-अध्यापिकायें [illegible] की जायें।

९ **पर्दानशीन स्त्रियो की शिक्षा**—उस समय भारत में [illegible] प्रचलन था। कुछ लडकियाँ तो एक निश्चित आयु तक घर म [illegible], पर कुछ के लिए इस पर भी प्रतिबन्ध था। आयोग ने [illegible] की शिक्षा के लिये सरकार कोई कसर न उठा रखे। [illegible] जायें और वे घरो म जाकर शिक्षण-कार्य करें।

१० **निरीक्षिकाओ की नियुक्ति**—महिला-[illegible] प्रोत्साहन के लिये सुशिक्षित निरीक्षिकायें नियुक्त की [illegible]

११ **जनता का सहयोग**—जिन पुरुषो [illegible], [illegible] कन्या विद्यालयो की प्रबन्धकारिणी समितियो [illegible]। [illegible] उनका और उनके द्वारा शेष स्थानीय [illegible] फलस्वरूप विद्यालयो के कार्य म कोई [illegible]

समीक्षा

१३ हरिजनो तथा पिछडी जातियो की शिक्षा

हरिजनो तथा पिछडी जातियो की शोचनीय शिक्षा व्यवस्था का वर्णन पिछले अध्याय मे किया जा चुका है। 'भारतीय शिक्षा आयोग' ने इन जातियो की सामाजिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि ये जातियाँ अनादि काल से सामाजिक सरचना मे निम्नतम स्तर पर रही हैं। उनकी स्थिति को सहसा उच्च वर्गो के समकक्ष बना देना सम्भव नही है। अत आयोग ने शिक्षा द्वारा उनकी अवस्था मे शनै शनै, पर निश्चित रूप से परिवर्तन लाने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ हरिजनो तथा पिछडी जातियो के विद्यार्थिया के लिये उन सभी विद्यालयो के द्वार खोल दिये जायँ, जो सरकार नगरपालिकाओ या स्थानीय सस्थाओ द्वारा चलाये जा रहे है।

२ जिन स्थानो पर इन छात्रो के विद्यालय प्रवेश पर अन्य जातिया द्वारा विरोध प्रकट किया जाय, वहा इनके लिए विशिष्ट विद्यालय स्थापित किये जायँ।

३ शिक्षक तथा शिक्षा अधिकारी जनता की इच्छा के विरुद्ध हरिजना एव पिछडी जातियो के छात्रो को विद्यालयो मे प्रवेश न दें। इसके विपरीत वे बुद्धिमानी से जातीय भेदभाव का अन्त करने का प्रयास करें।

उपर्युक्त सुझावो के फलस्वरूप हरिजना तथा पिछडी जातियो मे शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ।

१४ आदिवासियो एव पहाडी जातियो की शिक्षा

आयोग ने आदिवासियो एव पहाडी जातिया की शिक्षा का भी अध्ययन किया। यह बात छिपी न रह सकी कि उनको शिक्षा देने के प्रयत्नो मे सरकार असफल रही थी। आयोग ने इस बात पर बल दिया कि सरकार को उनकी शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये —

१ आदिवासिया तथा पहाडी जातिया की शिक्षा को व्यक्तिगत प्रयासा पर नही छोडा जा सकता है। अत यह आवश्यक है कि सरकार उनके लिए विशेष प्रकार के विद्यालया का निर्माण करे।

२ जो गैर-सरकारी स्कूल इन जातिया को शिक्षा प्रदान करने का काम कर रहे हैं, उन्हे प्रोत्साहित किया जाय।

३ इन जातियों के छात्रा से विद्यालय मे किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाय।

४ आदिवासी क्षेत्रों के समीपवर्ती विद्यालयों में उन जातियों के विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये आकर्षित किया जाय।

५ इन जातियों के छात्रों के शिक्षण का कार्य इन्हीं जातियों के शिक्षकों को सौंपा जाय।

६ यदि किसी आदिवासी जाति की भाषा को लिखित रूप में प्रयोग किया जा सकता है, तो उस भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

७ आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जिससे वे अपनी पड़ोसी सभ्य जातियों से सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हों।

८ इन जातियों के अध्यापकों को साधारण नार्मल स्कूल में अति सामान्य विषयों की शिक्षा देकर थोड़े ही समय में प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जाय।

उपर्युक्त सुझावों को सरकार ने स्वीकार किया। आर्थिक सहायता एवं नि शुल्क शिक्षा का प्रलोभन देकर आदिवासियों तथा पहाड़ी जातियों के छात्रों को विद्यालयों में पढ़ने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। उनके लिये विशेष प्रकार के विद्यालयों का निर्माण किया गया, गैर-सरकारी स्कूलों को उदारतापूर्वक सहायता-अनुदान दिया गया और अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

भारतीय शिक्षा-आयोग का मूल्यांकन

आयोग ने अपने अमूल्य सुझाव देकर भारतीय शिक्षा की एक निश्चित नीति का सूत्रपात किया। आयोग ने १८५४ के 'घोषणा-पत्र' में शिक्षा के लिये प्रतिपादित सिद्धान्तों की पुष्टि की और उन्हीं के आधार पर १९०१-०२ तक भारतीयों की शिक्षा की योजना को कार्यान्वित किया गया। इसी आशय से हावेल ने लिखा है —"भारत में ब्रिटिश शासन-काल में प्रथमतः शिक्षा की अवहेलना हुई, फिर उग्रता एवं सफलता के साथ उसका विरोध किया गया, तत्पश्चात् एक ऐसी प्रणाली का सूत्रपात किया गया जो सर्वमान्य रूप से हानिकारक थी और अन्त में वह अपने वर्तमान स्तर पर रख दी गई।"[1]

आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया। निस्सदेह, देशी शिक्षा निष्प्राण हो चुकी थी, परन्तु उसमें न तो कोई व्यथित हुआ और न किसी ने उसके लिये अश्रुपात किया। इसके विपरीत, लोगों ने अंग्रेजी

---

1 "Education in India under the British Government was first ignored, then violently and successfully opposed, then conducted on a system now universally admitted to be erroneous and finally placed on its present footing"—Quoted by Sharp : *op cit*, p 2

स्कूलों तथा कॉलेजों का आश्चर्यजनक विस्तार देखा। सम्पूर्ण देश में प्राथमिक विद्यालयों का जाल बिछ गया और ये विद्यालय निश्चय रूप से देशी पाठशालाओं से अधिक उत्तम थे। शिक्षा ने कुछ विशिष्ट अवयवों का क्रमिक विकास होने लगा। उदाहरणार्थ–स्त्रियों, मुसलमानों, हरिजनों, आदिवासियों आदि की शिक्षा में व्यापकता नज़र आने लगी। व्यावसायिक शिक्षा ने भारतीयों की अर्थोपार्जन की समस्या का बहुत बड़ी सीमा तक समाधान कर दिया। सारांश में, सरकारी अधिकारी तथा भारतीय, शिक्षा के लिये किये गये अपने प्रयासों से सुख और सन्तोष की साँस लेने लगे।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आयोग के सुझावों के फलस्वरूप शिक्षा का जो विकास प्रारम्भ हुआ, उसमें त्रुटियाँ नहीं थीं या उसके प्रति किसी को कोई शिकायत नहीं थी। वस्तुतः शिक्षा में अनेक दोष स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। **प्रथम**—इस शिक्षा ने भारत के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में कोई योग नहीं दिया। **द्वितीय**—शिक्षा के ऊपर पर्याप्त धन व्यय नहीं किया गया, जिससे जनसाधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति नहीं हुई। **तृतीय**—शिक्षा के द्वारा एक ऐसे नवीन वर्ग का निर्माण हुआ, जिसे निर्धन जनता से किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं थी। **चतुर्थ**—शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति, नगरों में नौकरियाँ करने लगे, जिससे ग्रामीण जनता से उनका सम्बन्ध विच्छेद हो गया। **पंचम्**—इस शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय समाज दो प्रमुख वर्गों में विभाजित हो गया—एक वर्ग में नगरों में निवास करने वाले शिक्षित व्यक्तियों की अल्प संख्या थी, और दूसरे वर्ग में ग्रामों में रहने वाले अशिक्षित व्यक्तियों की विशाल संख्या। इसी पार्थक्य ने आधुनिक भारतीय शिक्षा के अधिकांश दोषों का बीजारोपण किया और दुर्भाग्यवश भारतीय समाज आज भी इनका शिकार है। अन्तिम दोष यह था कि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों का पुस्तकीय ज्ञान विद्यार्थियों के लिये उपयोगी तथा सहायक सिद्ध नहीं हुआ।

सारांश

आयोग की नियुक्ति—मिशनरियों ने आन्दोलन किया कि भारतीय शिक्षा नीति १८५४ के 'घोषणा-पत्र' के विरुद्ध जा रही है। फलस्वरूप भारतीय शिक्षा की जाँच करने के लिये १८८२ में 'भारतीय शिक्षा आयोग' की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने शिक्षा के सभी अंगों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये।

प्राथमिक शिक्षा—(१) प्राथमिक शिक्षा को जन-साधारण के व्यावहारिक जीवन के लिये लाभप्रद बनाया जाय, (२) निम्न पदों की नियुक्तियों में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को वरीयता दी जाय, (३) शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं हों (४) प्राथमिक शिक्षा का कार्य स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया जाय, (५) अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय, और (६) स्थानीय कोष केवल प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जाय।

देशी शिक्षा—(१) देशी विद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये छात्रो पर कोई प्रतिबन्ध नही होना चाहिये, (२) निर्धन विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ, और (३) देशी विद्यालयों का प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओ को सौप दिया जाय।

माध्यमिक शिक्षा—(१) माध्यमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीयो को दे दिया जाय; (२) सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुसरण किया जाय; और (३) हाई-स्कूल की शिक्षा को 'अ-कोर्स' तथा 'ब-कोर्स' मे विभक्त कर दिया जाय।

अध्यापको का प्रशिक्षण—(१) स्नातको का प्रशिक्षण-काल निम्न योग्यताओ के छात्राध्यापको से कम, (२) प्रशिक्षण-विद्यालयो के पाठ्य-क्रम मे शिक्षा-सिद्धान्त व प्रायोगिक शिक्षा को स्थान।

उच्च शिक्षा—(१) कॉलेजो को सहायता-अनुदान के अतिरिक्त अन्य आवश्य-कताओ के लिये विशेष आर्थिक सहायता दी जाय, (२) छात्रो का वैज्ञानिक-स्तर ऊँचा उठाने के लिये प्रकृति-धर्म एवं मानव-धर्म पर व्याख्यान दिये जायँ, और (३) योग्य विद्यार्थियो को यूरोप मे विशिष्ट अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियाँ दी जाएँ।

शिक्षा-विभाग—(१) निरीक्षकों की संख्या मे वृद्धि की जाय, (२) प्रत्येक विद्यालय का निरीक्षण किया जाय, और (३) यूरोपियनो की अपेक्षा भारतीय निरीक्षक अधिक नियुक्त किये जाएँ।

सहायता-अनुदान—(१) सहायता-अनुदान के लिये निश्चित नियम बनाए जाएँ, (२) पिछडे क्षेत्रो के विद्यालयो को अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय, और (३) सहायता-अनुदान की धन-राशि निश्चित समय पर दी जाय।

विशिष्ट शिक्षा—आयोग ने स्त्रियों, मुसलमानो, हरिजनो, पिछडी जातियो, आदिवासियो और पहाडी जातियो मे शिक्षा का प्रसार करने के लिये महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। फलस्वरूप उनकी शिक्षा का विकास प्रारम्भ हो गया।

आयोग का मूल्यांकन—आयोग के सुझावो के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा की निश्चित नीति का सूत्रपात हुआ और उसका प्रवाह तीव्र हो गया। देश मे प्राथमिक विद्यालयो का जाल-सा बिछ गया। अंग्रेजी स्कूलों तथा कॉलेजों का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ। समाज के सभी वर्गों की शिक्षा का विकास हुआ।

आयोग की सिफारिशो के फलस्वरूप शिक्षा का जो विकास हुआ, उसमे अग्रलिखित दोष थे :—

१. आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का अभाव;
२. जन-साधारण की शिक्षा की माँग की अपूर्ति,
३. समाज का दो स्पष्ट वर्गों मे विभाजन; और
४. पुस्तकीय ज्ञान की निरर्थकता।

TEST QUESTIONS

1. State and discuss the recommendations of the Hunter Commission of 1882 regarding either Primary Education or Higher Education.
   प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा के बारे मे १८८२ के 'हन्टर कमीशन' की सिफारिशो का उल्लेख कीजिये और उनकी विवेचना कीजिये।
2. Summarize the chief recommendations of the Hunter Commission of 1882 on Secondary Education and trace their influence on the subsequent development of Secondary Education in India
   माध्यमिक शिक्षा के बारे मे १८८२ के 'हन्टर कमीशन' की मुख्य सिफारिशो का साराश मे वर्णन कीजिए और भारत मे माध्यमिक शिक्षा के भावी विकास पर उसके प्रभाव को बताइये।
3. Write an extensive note on :—Recommendations of Hunter Commission regarding Secondary Education.
   अग्रलिखित पर विस्तृत नोट लिखिये :—"माध्यमिक शिक्षा के बारे मे 'हन्टर आयोग' की सिफारिशें।"

१३

शिक्षा की प्रगति

(१८८२-१९०२)

प्रस्तावना

हम अध्याय १२ मे 'भारतीय शिक्षा-आयोग' द्वारा शिक्षा के विभिन्न अंगो के सम्बन्ध मे की गई सिफारिशो का वर्णन कर चुके है। इनमे से अधिकाश सिफारिशो को भारत सरकार ने स्वीकृत किया। फलस्वरूप, शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रो मे आश्चर्य-जनक प्रगति हुई। हम इन पर नीचे प्रकाश डाल रहे है :—

प्राथमिक शिक्षा

जैसा कि पहले बताया जा चुका है—लार्ड रिपन ने इङ्गलैण्ड की 'कॉउन्टी कौंसिल्स' का अनुकरण करके भारत मे नगर-पालिकाओ एवं जिला-परिषदो का निर्माण किया था। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध इन स्थानीय संस्थाओ को हस्तान्तरित कर दिया गया। इस नवीन व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा की कुछ प्रगति अवश्य हुई, पर उसको संतोषजनक नही कहा जा सकता है।

आयोग के सुझाव को मान्यता देकर देशी पाठशालाओ (Indigenous Schools) को भी इन्ही स्थानीय संस्थाओ के अन्तर्गत रख दिया गया, परन्तु उनके विकास की ओर रंचमात्र भी ध्यान नही दिया गया। परिणामतः, वे क्रमशः क्षीण होती चली गई और २०वी शताब्दी के आरम्भ तक उनके अवशेष भी दिखाई देने बन्द हो गये। अधिकाश देशी पाठशालायें काल के गाल मे पहुँच गई और कुछ को राजकीय विद्यालयो में विलीन कर लिया गया।

स्थानीय संस्थाओं पर सरकार ने अपना अंकुश रखा और उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को एक 'संहिता' (Code) में नियमबद्ध कर दिया। प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करना—संस्थाओं का अनिवार्य कर्त्तव्य घोषित किया गया। कुछ प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय के सम्बन्ध में नियम बना दिये गये, जिनके अनुसार स्थानीय संस्थाओं को अपनी आय की एक निश्चित धन राशि प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करनी आवश्यक थी। इस धन को अन्य किसी कार्य में व्यय नहीं किया जा सकता था। इस व्यय का भार वहन करने के लिये प्रान्तीय सरकारें सहायता-अनुदान देती थी। बम्बई सरकार ने व्यय का आधा भाग देना निश्चय किया। मद्रास प्रान्त में सम्पूर्ण आय का ५ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया गया। इसी प्रकार बंगाल उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य-प्रदेश तथा आसाम आदि प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करने के नियम बनाये गये। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' के सुझाव के अनुसार सभी प्रान्तों में सहायता-अनुदान के नियमों को उदार बनाकर प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया गया।

समीक्षा

यद्यपि 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने इस बात पर बल दिया था कि प्राथमिक शिक्षा को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होना चाहिए, तथापि यह बड़े खेद की बात है कि सरकार ने इसकी अवहेलना की। वास्तविकता यह है कि सरकार ने स्थानीय संस्थाओं पर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व रखकर उससे अपना पीछा छुड़ाया। सरकार की उपेक्षा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि प्राथमिक शिक्षा पर किया जाने वाला राजकीय व्यय १८८२ से १९०२ तक केवल १५ लाख रुपया बढ़ाया गया। इसके विपरीत, स्थानीय संस्थाओं ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में यथाशक्ति योग दिया। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले अपने व्यय को १८८२ से १९०२ तक २२ लाख बढ़ा दिया। परन्तु स्थानीय संस्थाओं की अपनी असमर्थतायें थी। उनमें से अधिकांश की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी और उनमें कुशल प्रबन्ध की क्षमता का अभाव था। फलस्वरूप, इस अवधि में प्राथमिक विद्यालयों और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में विशेष वृद्धि न हो सकी। १८७१ से १८८६ तक छात्रों की संख्या २० लाख बढ़ी, पर १८८६ से १९०२ तक छात्र संख्या में केवल ६ लाख ६० हजार की वृद्धि हुई। प्रशिक्षित निरीक्षकों एवं सुव्यवस्थित शिक्षा के कारण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का स्तर तो अवश्य ऊँचा हो गया, पर शिक्षा का विकास अवरुद्ध हो गया। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में नवीन विद्यालयों की स्थापना नहीं की गई, और इस प्रकार वहाँ के बालकों तथा बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करने के अवसर से वंचित रखा गया।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के विषय में 'हन्टर कमीशन' का सुझाव था कि सरकार इसकी व्यवस्था को व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ दे, और स्वयं इसके उत्तरदायित्व से

मुक्त हो जाए। सरकार ने इस सुझाव के प्रतिकूल कार्य किया और पूर्व के समान माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में व्यस्त रही। फलतः शिक्षा के इस क्षेत्र में प्रगति होनी स्वाभाविक थी। शिक्षा-विभाग ने राजकीय विद्यालयों की सुव्यवस्था में शिथिलता न आने दी और वे उत्तरोत्तर समुन्नत होते चले गये। इसके विपरीत, सहायता-अनुदान से चलने वाले विद्यालयों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। उनके पास धन का अभाव था और वे अपने व्यय के लिये मुख्यतः शुल्क तथा चन्दों पर निर्भर रहते थे।

आयोग ने हाई स्कूल की शिक्षा को अधिक लाभप्रद बनाने के विचार से उसे 'अ-कोर्स' एवं 'ब-कोर्स' में विभाजित किया था। प्रथम का उद्देश्य—छात्रों को उच्च शिक्षा के विद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये तैयार करना था। द्वितीय के अन्तर्गत औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान देने की सिफारिश की गई थी। यद्यपि आयोग के इस सुझाव को स्वीकृत किया गया, परन्तु इन विषयों को लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। कारण यह था कि उस समय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—राजपद की प्राप्ति करना था। विद्यार्थियों का झुकाव 'ब-कोर्स' की अपेक्षा 'अ'-कोर्स' की ओर ही रहा। फिर भी प्रान्तीय सरकारों ने हाई-स्कूल के पाठ्य-क्रम में जीवनोपयोगी व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करके उसको प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया। उदाहरणार्थ-१८८८ में मद्रास में प्राविधिक (Technical) पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया गया। १८९७ में बम्बई प्रान्त में 'स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट' परीक्षा आरम्भ की गई। इसमें उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थी, विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के अधिकारी होते थे। बम्बई के 'स्कूल-फाइनल कोर्स' के पाठ्य-क्रम में भौतिक-विज्ञान, मैनुअल ट्रेनिंग, अर्थ-शास्त्र एवं कृषि को स्थान दिया गया। राजपद प्राप्त करने के लिये इस कोर्स की अनिवार्यता प्रदान करके लोकप्रिय बनाने की चेष्टा की गई। १८९४ में इलाहाबाद में 'स्कूल-फाइनल परीक्षा' की व्यवस्था की गई। १९०० में बंगाल में इंजीनियर एवं अन्य व्यावसायिक व्यक्तियों को तैयार करने के लिये शिक्षा की एक विशिष्ट योजना कार्यान्वित की गई। पंजाब विश्वविद्यालय ने व्यापार, वाणिज्य एवं क्लर्कों की शिक्षा का प्रबन्ध किया।

इस प्रकार, प्रायः सभी प्रान्तों में औद्योगिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया, परन्तु जनता इसकी ओर आकृष्ट नहीं हुई। १९०२ में इस पाठ्य-क्रम में केवल २,००० छात्रों ने परीक्षा दी, जब कि 'मैट्रीकुलेशन' परीक्षा में २३,००० छात्र सम्मिलित हुए। इस प्रकार औद्योगिक पाठ्य-क्रम में कोई विशेष प्रगति न हुई और 'मैट्रीकुलेशन' परीक्षा की प्रधानता बनी रही।

समीक्षा

इस काल में अंग्रेज़ी की बढ़ती हुई लोकप्रियता एवं सरकार के प्रोत्साहन के कारण माध्यमिक शिक्षा का अपूर्व प्रसार हुआ। १८८२ में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या ३,९१६ और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या २,१४,०७७ थी। १९०२ में यह संख्या क्रमशः ५,१२४ और ५९,०१६ हो गई। माध्यमिक विद्यालयों के

के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रशिक्षण-महाविद्यालयो का भी निर्माण किया गया। १८८२ तक भारत मे केवल २ प्रशिक्षण महाविद्यालय थे, परन्तु १९०२ मे उनकी सख्या बढकर ६ हो गई। इन महाविद्यालयो के अतिरिक्त, माध्यमिक विद्यालयो के अध्यापको की 'सर्टीफिकेट परीक्षा' के लिये प्राय प्रत्येक प्रान्त मे ट्रेनिंग स्कूल खोल दिये गये थे।

माध्यमिक शिक्षा के विषय मे एक दु ख की बात यह है कि मातृभाषाओं को शिक्षा का माध्यम नही बनाया गया। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने अंग्रेजी का ही पक्ष लिया था। परिणामस्वरूप देश के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय मे अंग्रेजी की पताका फहराने लगी। विद्यालयो का एकमात्र उद्देश्य—अंग्रेजी की शिक्षा देना और विद्यार्थियो का चरम लक्ष्य—उस पर अधिकार प्राप्त करना हो गया। इसका परिणाम विद्यार्थियो के लिये अति हानिकारक सिद्ध हुआ। उनको इस कठिन और विदेशी भाषा को सीखने मे अपना अधिकाश समय लगाना पडता था, जिससे अन्य विषयो के अध्ययन के लिये उनके पास समय का अभाव रहता था। फलतः छात्रो का स्वाभाविक मानसिक विकास अवरुद्ध हो गया। अंग्रेजी का आधिपत्य स्थापित हो जाने से भारतीय भाषाओ के विकास पर भी रोक लग गई।

उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय एव कॉलेज)

'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिशो ने अप्रत्यक्ष रूप से उच्च शिक्षा के विद्यालयो के विकास मे योग दिया। माध्यमिक विद्यालयो मे छात्रो की संख्या मे तीव्र वृद्धि होने के कारण उच्च शिक्षा के लिये कॉलिजो का निर्माण आवश्यक हो गया। माध्यमिक विद्यालयो मे शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त, छात्र कॉलिजो मे शिक्षा ग्रहण करने के लिए लालायित रहते थे, क्योकि उन्हे आशा रहती थी कि उच्च शिक्षा प्राप्त करके वे उच्च राजकीय पदो पर आसीन हो सकेंगे। आयोग ने भारतीय शिक्षा मे वैयक्तिक प्रणाली के प्रयासो को भी प्रोत्साहित किया था। मिशनरियो का विरोधी होने के कारण आयोग ने भारतीयो को ही वरीयता दी थी। फलत. भारतीयो ने मिशनरियों की अपेक्षाकृत अधिक कॉलिजो की स्थापना करके शिक्षा मे अपनी अभिरुचि का प्रमाण दिया।

१९०२ मे भारतीय, ४२ कॉलिजो का संचालन कर रहे थे, जब कि मिशनरियों के संचालन मे केवल ३७ कॉलेज चल रहे थे। १८८२ मे सम्पूर्ण भारत मे ६८ कॉलेज थे, परन्तु १९०२ मे इनकी संख्या बढकर १९१ हो गई। इनमे से १४५ आर्ट्स कॉलिज और ४६ व्यावसायिक शिक्षा के कॉलिज थे। १२ कॉलेज स्त्रियों की शिक्षा के लिए भी थे। इन कॉलेजो के अतिरिक्त ५ विश्वविद्यालय भी थे। १८८२ तक कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और पंजाब विश्वविद्यालयो का शिलान्यास हो चुका था। इन विश्वविद्यालयो को केवल परीक्षा लेने का अधिकार था। १८८७ मे 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय' का शिलारोपण हुआ, जिसमे परीक्षाओ के अतिरिक्त शिक्षा देने की भी व्यवस्था की गई।

इस दौरान मे १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीयो मे राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका था, जिसके फलस्वरूप १८८५ मे 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की नींव पड़ी। उसके उपरान्त देश में जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसके प्रभाव से शिक्षा-क्षेत्र अछूता न बचा। भारतीयो ने अंग्रेजी पढ़कर बेकन, मिल्टन, लॉक, बर्क, वर्ड्सवर्थ एवं बायरन की विचारधाराओं का अध्ययन किया। अंग्रेजी साहित्य-सरोवर मे स्वतन्त्रता-संदेश का जल-पान करके भारतीयों के अन्तर मे अपनी मातृभूमि की दासता की बेड़ियो को काट डालने के लिए आत्म-समर्पण एवं आत्म-त्याग की भावनायें उमड़ उठी। इन राजनैतिक विचारो के फलस्वरूप देश के पुनरुत्थान के लिए सभी क्षेत्रो से सम्बन्धित विशाल योजनाओ का प्रतिपादन किया गया। इन योजनाओ के अन्तर्गत शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। १८८२ के बाद आने वाली पीढ़ी ने शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास देखा।[1]

राष्ट्रीय भावनाओ से ओत-प्रोत भारतीयों को यह पूर्णतया विदित हो चुका था कि भारत के नवयुवकों का चारित्रिक निर्माण भारतीयों द्वारा संचालित राष्ट्रीय विद्यालयो मे ही किया जा सकता है। इसी भावना से प्रेरित होकर कुछ सुयोग्य तथा देश-प्रेमी भारतीयो ने शिक्षा-संस्थाओं मे अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। इनमे आर० पी० पराजपे (R. P. Paranjpe) का नाम सर्वोपरि है। उनका अनुकरण अन्य भारतीय विद्वानो ने किया। १८८० मे प्रसिद्ध देश-भक्त बाल गंगाधर तिलक, चिपलाकर एवं आयंगर के सम्मिलित प्रयासो के फलस्वरूप पूना मे 'फर्ग्यूसन कॉलेज' (Fergusson College) की स्थापना हुई। १८८२ मे भारत के महान् नेता, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'रिपन कॉलेज' का प्रबन्ध-सूत्र अपने हाथ मे लिया।

देश के कुछ धार्मिक तथा सामाजिक नेता भी शिक्षा-प्रसार के द्वारा जनता मे जागरण एवं उद्बोधन फूंकने के लिए क्रियाशील थे। ऐसे नेताओ मे स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम सर्वप्रथम है। उन्होने देश के कोने-कोने मे विद्यालय स्थापित करने का बीड़ा उठाया। १८८६ मे लाहौर मे 'दयानन्द वैदिक कॉलेज' की स्थापना हुई। इस कॉलेज के सिद्धान्तो पर शीघ्र ही भारत के विभिन्न भागो मे अन्य शिक्षालयो का निर्माण किया गया। १८९८ मे श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बनारस मे 'सेन्ट्रल-हिन्दू-कॉलेज' का शिलारोपण किया, जिसने कुछ समय उपरान्त 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' का रूप धारण किया।

समीक्षा

इस अवधि मे कॉलेजो और उनमे शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियो की शिक्षा मे असाधारण वृद्धि हुई, परन्तु शिक्षा का स्तर क्रमशः गिरता चला गया। इसके अनेक कारण थे। अधिकांश कॉलेजो का संचालन भारतीयो के हाथ मे था और उनके पास

1. A. A Zellner : *Education in India*, p. 96.

के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रशिक्षण-महाविद्यालयों का भी निर्माण
१८८२ तक भारत में केवल २ प्रशिक्षण महाविद्यालय थे, परन्तु १९०
संख्या बढ़कर ६ हो गई। इन महाविद्यालयों के अतिरिक्त, माध्यमिक
अध्यापकों की 'सर्टीफिकेट परीक्षा' के लिये प्रायः प्रत्येक प्रान्त में ट्रेनिंग
दिये गये थे।

माध्यमिक शिक्षा के विषय में एक दुःख की बात यह है कि मातृ
शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया गया। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने अंग्रेजी
किया था। परिणामस्वरूप देश के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में अंग्रेजी
पकड़ने लगी। विद्यालयों का एकमात्र उद्देश्य—अंग्रेजी की शि
विद्यार्थियों का चरम लक्ष्य—उस पर अधिकार प्राप्त करना हो गया। इ
विद्यार्थियों के लिये और हानिकारक सिद्ध हुआ। उनको इस कठिन
भाषा को सीखने में अपना अधिकांश समय लगाना पड़ता था, जिससे
अध्ययन के लिये उनके पास समय का अभाव रहता था। प
स्वाभाविक मानसिक विकास अवरुद्ध हो गया। अंग्रेजी का आधिपत्य
से भारतीय भाषाओं के विकास पर भी रोक लग गई।

संकीर्णता आ गई। उसका अर्थ—परीक्षा में सफलता प्राप्त करना हो गया था, न कि जीवन में सफलता प्राप्त करना। इस दोष की ओर संकेत करते हुए १६०२ में 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' का कथन था—"भारतीय विश्वविद्यालयों में पाया जाने वाला निकृष्ट दोष यह है कि शिक्षण—परीक्षा के अधीन है, न कि परीक्षा शिक्षण के।" इसके अतिरिक्त इस काल में व्यापारिक प्रवृत्ति आविर्भूत हुई और शिक्षा का मूल्य बाजारू वस्तुओं के समान निर्धारित किया जाने लगा।

इस स्थान पर एक बात का उल्लेख करना असंगत न होगा। यद्यपि कॉलेजों के विस्तार के साथ-साथ, शिक्षा का स्तर निरन्तर निम्नतर होता जा रहा था, तथापि कुछ कर्मठ भारतीय नेताओं का मत था कि—शिक्षा का स्तर भले ही गिर जाय, पर उसका विस्तार अति आवश्यक है। उनकी धारणा थी कि कॉलेजों की कार्य-क्षमता को बढ़ाकर शिक्षा के स्तर को किसी समय भी ऊँचा किया जा सकता है। इस विषय में गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया था—"भारत की वर्तमान परिस्थितियों में सभी प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा अमूल्य एवं लाभदायक है। यदि वर्तमान परिस्थितियों में यह सर्वोत्तम प्रकार की है, तो अच्छा है। परन्तु यदि यह सर्वोत्तम नहीं है, तो भी इस कारण इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मेरे विचारानुसार भारत की वर्तमान दशा में पाश्चात्य शिक्षा का महानतम कार्य—ज्ञान को इतना प्रोत्साहन देना नहीं है, जितना कि भारतीयों के मस्तिष्क को पुराने विचारों के बन्धन से मुक्त करना। इसके लिए न केवल सर्वोत्तम शिक्षा, अपितु सब प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा लाभप्रद है।"[1]

सारांश में, १६०२ के अन्त में विश्वविद्यालय एवं कॉलेज की शिक्षा का चित्र रंग-बिरंगा था। एक ओर तो उच्च शिक्षा का आश्चर्यजनक प्रसार हो रहा था, जिससे भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में यथार्थ जागृति का सूत्रपात हुआ। दूसरी ओर नवीन कॉलेजों की शिक्षा का स्तर उच्च नहीं था और उसमें आधुनिक भारतीय भाषाओं की अवहेलना के दोष का समावेश हो गया था। परन्तु दोषयुक्त होते हुए भी उच्च शिक्षा के विस्तार ने भारतीयों के ज्ञान-भण्डार में वृद्धि की और वे अपने देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए व्याकुल हो उठे।

---

1. "In the present circumstances of India, all Western education is valuable and useful. If it is the highest that under the circumstances is possible, so much the better. But even if it is not the highest, it must not on that account be rejected. To my mind, the greatest work of Western education in the present state of India is not so much the encouragement of learning as the liberation of the Indian mind from the thraldom of old-world ideas. For this purpose not only the highest but all Western education is useful."—**G. H. Gokhale** · *Speeches*, **pp. 234-35.**

कॉलेजो को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए धन का अभाव था। उत्तम पुस्तको, सुयोग्य अध्यापको तथा कॉलेजो के लिये अच्छे एवं पर्याप्त भवन का भी अभाव था। पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता था और छात्रो मे परीक्षा पास करने के लिए रटने की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। फलस्वरूप, छात्रो की निर्णय शक्ति, मौलिक निरीक्षण और विचार-स्वातन्त्र्य नष्ट हो गया। १८८५ मे इलबर्ट (Ilbert) ने कहा - "जैसे-जैसे कॉलेज की शिक्षा की अधिक प्रगति हो रही है, वैसे-वैसे उस प्रतीक का मूल्य, जिसका कि वह बोध कराती है, निरन्तर होता जा रहा है।"[1] १८७१ मे कलकत्ता के एक कॉलेज के प्रिंसिपल का कथन था—"स्नातक तो केवल स्मृति-यन्त्र हैं और शिक्षा, अधकचरे ज्ञान को अधिकाश मात्रा मे रट लेने तक ही सीमित प्रतीत होती है।" १८८९ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप मे लार्ड लैन्सडाउन (Lansdowne) ने चेतावनी देते हुए कहा—"मुझे भय है कि हमे यह बात नही छिपानी चाहिए कि यदि हमने इस वर्तमान गति से अपने स्कूलो एवं कॉलेजो द्वारा देश के नवयुवको को शिक्षित करने की परम्परा को जारी रखा, तो हमे यह शिकायत और भी अधिक सुननी पड़ेगी कि प्रति वर्ष हम इन नवयुवको की अधिकाधिक सख्या इस प्रकार के बौद्धिक उपार्जनो से युक्त उत्पन्न करते जा रहे हैं, जो अपने आप मे प्रशंसनीय होते हुए भी उनके लिए पूर्णतया व्यर्थ सिद्ध होते है, क्योकि देश मे इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने वाले सज्जनो के योग्य शिक्षित व्यवसाय सम्बन्धी अवसर अति न्यून हैं।"[2]

इस अवधि मे उच्च शिक्षा की समृद्धि एवं विस्तार के साथ-साथ, एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण हो रहा था—जिसके सदस्यो पर एक-सी छाप लगी हुई थी, जिन्हे प्रायोगिक कार्य मे कोई रुचि नही थी और जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य—शिक्षा ग्रहण करके नौकरी प्राप्त करना था। परीक्षा की प्रचलित प्रणाली के दोष की जड़ें भारतीय शिक्षा-व्यवस्था मे गहरी पहुँच चुकी थी। शिक्षा के व्यापक उद्देश्य मे

---

1 "As collegiate education has become more common, the value of the symbol which denotes it has proportionately fallen."—**T. N. Siqueria :** *op. cit.*, p. 82.

2. "I am afraid that we must not disguise from ourselves that if our schools and colleges continue to educate youth of India at present rate, we are likely to hear even more than we do at present of the complaint that we are turning out every year an increasing number of young men whom we have provided with an intellectual equipment admirable in itself, but practically useless to them, on account of the small number of openings which the professions afford for gentlemen who have received this kind of education."—**James :** *op, cit.*, p. 62.

सकीर्णता आ गई। उसका अर्थ—परीक्षा मे सफलता प्राप्त करना हो गया था, न कि जीवन मे सफलता प्राप्त करना। इस दोष की ओर सकेत करते हुए १६०२ मे 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' का कथन था—"भारतीय विश्वविद्यालयो मे पाया जाने वाला निकृष्ट दोष यह है कि शिक्षण—परीक्षा के अधीन है, न कि परीक्षा शिक्षण के।" इसके अतिरिक्त इस काल मे व्यापारिक प्रवृत्ति आविर्भूत हुई और शिक्षा का मूल्य बाजारू वस्तुओ के समान निर्धारित किया जाने लगा।

इस स्थान पर एक बात का उल्लेख करना असगत न होगा। यद्यपि कालेजो के विस्तार के साथ-साथ, शिक्षा का स्तर निरन्तर निम्नतर होता जा रहा था, तथापि कुछ कर्मठ भारतीय नेताओ का मत था कि—शिक्षा का स्तर भले ही गिर जाय, पर उसका विस्तार अति आवश्यक है। उनकी धारणा थी कि कॉलेजो की कार्य क्षमता को बढाकर शिक्षा के स्तर को किसी समय भी ऊँचा किया जा सकता है। इस विषय मे **गोपाल कृष्ण गोखले** ने अपने विचारो को इन शब्दो मे व्यक्त किया था—"भारत की वर्तमान परिस्थितियो मे सभी प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा अमूल्य एव लाभदायक है। यदि वर्तमान परिस्थितियो म यह सर्वोत्तम प्रकार की है, तो अच्छा है। परन्तु यदि यह सर्वोत्तम नही है, तो भी इस कारण इसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। मेरे विचारानुसार भारत की वर्तमान दशा मे पाश्चात्य शिक्षा का महानतम कार्य—ज्ञान को इतना प्रोत्साहन देना नहीं है, जितना कि भारतीयो के मस्तिष्क को पुराने विचारो के बन्धन से मुक्त करना। इसके लिए न केवल सर्वोत्तम शिक्षा, अपितु सब प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा लाभप्रद है।"[1]

साराश म, १६०२ के अन्त मे विश्वविद्यालय एव कॉलिज की शिक्षा का चित्र रग विरगा था। एक ओर तो उच्च शिक्षा का आश्चर्यजनक प्रसार हो रहा था, जिससे भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रो मे यथार्थ जागृति का सूत्रपात हुआ। दूसरी ओर नवीन कॉलिजो की शिक्षा का स्तर उच्च नही था और उसमे आधुनिक भारतीय भाषाओ की अवहेलना के दोष का समावेश हो गया था। परन्तु दोषयुक्त होते हुए भी उच्च शिक्षा के विस्तार ने भारतीयो के ज्ञान-भण्डार मे वृद्धि की और वे अपने देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए व्याकुल हो उठे।

---

1 "In the present circumstances of India, all Western education is valuable and useful If it is the highest that under the circumstances is possible, so much the better But even if it is not the highest, it must not on that account be rejected To my mind, the greatest work of Western education in the present state of India is not so much the encouragement of learning as the liberation of the Indian mind from the thraldom of old world ideas For this purpose not only the highest but all Western education is useful"—**G. H Gokhale** *Speeches*, pp 234-35

स्त्रियों की शिक्षा

१८८२ से १९०२ तक स्त्री-शिक्षा की प्रगति मन्द अवश्य थी, पर वह निरन्तर होती रही। हम स्त्री-शिक्षा के विभिन्न अङ्गों पर नीचे दृष्टिपात कर रहे हैं —

(१) प्राथमिक शिक्षा—इस अवधि मे प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे सबसे अधिक उन्नति हुई। १८८२ मे शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं की संख्या १,२४,४९१ थी। १९०२ मे यह संख्या बढकर ३,४८,५१० हो गई। इनमे से १,६२,१६४ बालिकायें, लडको के स्कूलो मे पढ रही थी। यह इस बात का प्रमाण है कि इस काल मे सहशिक्षा का प्रचार अधिक हो गया था। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं मे अधिकाश संख्या हिन्दू और मुसलमान बालिकाओं की थी। छात्राओ की उपरोक्त सख्या मे २,३०,०२४ हिन्दू एवं ४७,५६७ मुसलमान बालिकायें थी। प्राथमिक विद्यालयो मे बालको और बालिकाओ के पाठ्य-क्रमो मे अन्तर कर दिया गया था। छात्राओ को गणित, भूगोल और इतिहास के स्थान मे संगीत, चित्रकला और सीने पिरोने की शिक्षा दी जाने लगी थी।

(२) माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे उतनी प्रगति नही हुई, जितनी प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे हुई। १८८२ मे माध्यमिक विद्यालयो मे अध्ययन करने वाली छात्राओ की सख्या २,०५४ और १९०२ मे ४१,५८२ थी। परन्तु इस अवधि मे बालिकाओ की माध्यमिक शिक्षा लोकप्रियता बढ रही थी, और विशेष रूप से हिन्दू उसकी उपयोगिता को समझने लगे थे। हिन्दू समाज मे इस परिवर्तित दृष्टिकोण को उपस्थित करने का श्रेय पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, अगारकर, महादेव गोविन्द रानाडे और बैरामजी मालाबारी ऐसे उत्साही समाज-सुधारको को था। इन नि:स्वार्थ समाज-सेवको ने कन्या-विद्यालयो के निर्माण के लिये जनता से धन एकत्र करने मे अथक् प्रयास किया और देश के विभिन्न भागो मे बालिका-विद्यालयो की स्थापना करके माध्यमिक शिक्षा के प्रसार मे सराहनीय योग दिया।

(३) उच्च शिक्षा—इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि महिलाओ ने उच्च शिक्षा के लिए कॉलिजो मे प्रवेश करना प्रारम्भ किया। १८८२ मे कॉलेजो मे पढने वाली छात्राओ की संख्या केवल ६ थी, पर १९०२ मे यह संख्या बढकर २६४ हो गई। इनमे से अधिकाश छात्रायें ऍग्लो-इण्डियन और ईसाई थी। हिन्दू छात्राओ की संख्या केवल २८ थी और मुस्लिम छात्रा एक भी नही थी। इस प्रकार इस काल मे हिन्दू समाज मे तो स्त्री-शिक्षा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था, परन्तु मुस्लिम समाज मे उसका सर्वथा अभाव था।

(४) व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति बहुत धीमी थी। १९०२ मे २,८०७ लडकियाँ विभिन्न व्यावसायिक विद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त कर रही थी। परन्तु इनमे ऍग्लो-इण्डियन एव ईसाई छात्राओ की संख्या ही अधिक

थी। व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाली लडकियो मे से अधिकाश का झुकाव प्रशिक्षण-विद्यालयो और मेडिकल कॉलेजो की ओर था।

मुसलमानों की शिक्षा

हम पहले बता चुके है कि **सर सैयद अहमद खाँ** के प्रयासो और सरकार के प्रोत्साहन के कारण मुस्लिम-शिक्षा मे प्रगति होनी प्रारम्भ हो गई थी। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने मुसलमानो की शिक्षा के विकास के लिये कुछ विशेष सुझाव दिये थे। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारो ने उनमे से अधिकाश सुझावो को स्वीकार करके मुसलमानो की शिक्षा मे अपनी रुचि व्यक्त की। फलस्वरूप, मुस्लिम-शिक्षा का उत्तरोत्तर विकास होने लगा। १६०२ मे सभी प्रकार के विद्यालयो मे पढने वाले मुसलमान छात्रो की संख्या ६,७८,००० थी। इसका अर्थ था कि —सम्पूर्ण छात्रो मे मुसलमान विद्यार्थियो की संख्या २१.६ प्रतिशत थी। यह प्रतिशत मुसलमानो की जनसंख्या के प्रतिशत से, जो २२.६ था, कम था। स्पष्टत मुसलमानो की शिक्षा अन्य जातियो की अपेक्षा कम थी। प्राथमिक विद्यालयो मे मुसलमान विद्यार्थियो की सख्या सबसे अधिक थी, परन्तु उच्च तथा माध्यमिक शिक्षालयो मे अन्य जातियो की अपेक्षा कम थी। विशिष्ट शिक्षा की सस्थाओं मे मुसलमानों की सख्या हिन्दुओ से अधिक थी। इस प्रकार, यह ज्ञात हो जाता है कि इस काल मे मुस्लिम-शिक्षा का वाछित विकास नही हुआ।

हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा

१८८२ से १६०२ तक की अवधि मे हरिजनो एव पिछडी जातियो की शिक्षा मे आशातीत उन्नति हुई। इसके अनेक आधारभूत कारण थे। प्रथम—'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार राजकीय विद्यालयो के द्वार हरिजनो एव पिछडी जातियो के छात्रो के लिये खोल दिये गये। परन्तु सवर्ण हिन्दुओ ने सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया। अत. सरकार ने 'आयोग' के सुझाव को स्वीकार करके हरिजनो एव पिछडी जातियो के लिये विशिष्ट स्कूल स्थापित किये। फलस्वरूप हरिजनो एव पिछडी जातियो के छात्रो की शिक्षा का कार्य निर्विघ्न रूप से चलने लगा। द्वितीय—शिक्षा-विभागो ने सवर्ण हिन्दुओ के विरोध का उत्तर यह घोषित करके दिया कि समस्त सार्वजनिक विद्यालयो मे सभी जातियो के छात्रो को प्रवेश पाने का समान अधिकार है। जब जनता ने देखा कि शिक्षा-विभाग अपनी नीति का दृढता से पालन कर रहे हैं, तब उसने विरोध करना बन्द कर दिया। कारण यह था कि अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यालयो मे अध्ययन करना आवश्यक था, और जनता इस बात का अनुभव कर चुकी थी कि अंग्रेजी की शिक्षा के अभाव मे धन का उपार्जन एव राजपद की प्राप्ति सम्भव नही थी। इन परिस्थितियो मे विरोध स्वय ही कुछ समय के उपरान्त समाप्त हो गया। तृतीय—इस अवधि मे समाज-सुधारको ने अस्पृश्यता को दूर करने का दृढ सकल्प कर लिया था। महात्मा फूले,

ब्रह्म-समाजी, प्रार्थना-समाजी और आर्य समाजी छुआछूत को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये क्रियाशील थे। उनके आन्दोलनों का प्रभाव यह हुआ कि १९०२ के अन्त तक भारतीयों के मस्तिष्क से छुआछूत की भावना बहुत-कुछ निकल गई। फलत विद्यालयो मे अछूतो के बालको की उपस्थिति सवर्ण हिन्दुओ द्वारा सहन की जाने लगी। चतुर्थ-उपर्युक्त आन्दोलनो के परिणामस्वरूप हरिजनो मे भी जागरूकता का प्रादुर्भाव हो गया और वे सार्वजनिक स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की माँग करने लगे। अन्तिम कारण यह था कि कुछ प्रान्तीय सरकारो ने हरिजनो एव पिछड़ी जातियो के प्रति अत्यधिक उदारता दिखाई और अनेक नियम बनाकर उनकी शिक्षा को प्रत्येक सम्भव रीति से प्रोत्साहित किया। इन प्रान्तो मे मद्रास अग्रणी था।

१८९३ मे मद्रास की सरकार ने हरिजनो की शिक्षा के लिये एक विस्तृत प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव को "पचम शिक्षा का महाधिकार पत्र" (Magna Charta of Pancham Education) माना गया है। इसके प्रमुख उपबन्ध (Provisions) निम्नाङ्कित थे —

१ प्रशिक्षण-विद्यालयो मे पढने वाले पचम छात्रो को अन्य विद्यार्थियो की अपेक्षा २ रुपये मासिक वृत्तिका (Stipend) अधिक दी जायगी।
२ जिन गैर-सरकारी प्रशिक्षण-विद्यालयो मे पचम छात्र प्रवेश लें, उन्हे अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय।
३ स्थानीय सस्थायें एव नगरपालिकायें सभी बड़े पचम ग्रामो और नगरो मे पचम छात्रो के लिये विशिष्ट स्कूलो की स्थापना करें।
४ सरकारी बजर भूमि को पचम विद्यालयो के निर्माण के लिये बिना मूल्य लिये दे दिया जाय।
५ पचम वर्ग के लिये रात्रि पाठशालायें स्थापित की जायें, क्योंकि ये पाठशालायें इस वर्ग के लिये विशेष रूप से लाभप्रद सिद्ध होंगी।

उपर्युक्त रियायतो के अतिरिक्त, हरिजनो एव पिछड़ी जातियो के छात्रो को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गई और हरिजन अध्यापको के लिये मद्रास नगर मे एक प्रशिक्षण विद्यालय का निर्माण किया गया।

मद्रास सरकार की इस नीति ने हरिजनो एव पिछड़ी जातियो की शिक्षा मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इस प्रान्त मे १९०२ मे ३,००० विद्यालय ऐसे थे, जिनमे केवल हरिजनो को शिक्षा दी जाती थी। इनमे से अधिकाश विद्यालय प्राथमिक शिक्षा के थे, पर १४ माध्यमिक विद्यालय भी थे। सब प्रकार के विद्यालयो मे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की सख्या ४४,१५० थी। इनमे से ८,३२८ लड़कियाँ थी। इससे स्पष्ट होता है कि मद्रास प्रान्त मे हरिजनो की शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ।

मद्रास के समान बम्बई प्रान्त मे भी हरिजनो को शिक्षा के प्रति उदारता प्रदर्शित की गई। परन्तु इस प्रान्त की नीति मद्रास से भिन्न थी। यहाँ की सरकार ने हरिजनो के लिये विशिष्ट विद्यालयो की स्थापना पर अधिक बल नहीं दिया। इसके

विपरीत, सरकार ने मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया कि हरिजन छात्रो को सामान्य विद्यालयो मे शिक्षा दी जाय और उसे इस कार्य मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इसमे समय लगा, क्योंकि प्रारम्भ मे हरिजन छात्रों के प्रति बडा दुर्व्यवहार किया गया। समय की गति के साथ उनकी स्थिति मे परिवर्तन होता चला गया और कुछ समय पश्चात् उन्हे सभी सुविधायें प्राप्त हो गईं।

दुर्भाग्यवश, अन्य प्रान्तो मे हरिजनो एव पिछडी जातियो की शिक्षा मे कोई रुचि प्रदर्शित नही की गई। परिणामस्वरूप, वहाँ उनकी शिक्षा मे प्रगति नही हुई। अभी तक भारतीयो ने उनकी शिक्षा के प्रसार के लिये कुछ नही किया था। हाँ, मिशनरियो ने अवश्य कुछ प्रयास किये थे, पर उनकी शिक्षा की समस्या इतनी जटिल थी कि मिशनरी अकेले उनका समाधान करने मे असमर्थ थे।

आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियो की शिक्षा

'भारतीय शिक्षा आयोग' अपनी जाँच के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि आदिवासियो एव पहाडी जातियो मे शिक्षा का प्राय पूर्ण अभाव था। उनकी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये 'आयोग' ने कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये थे। सरकार ने उनमे से अधिकाश सुझावो को स्वीकार किया। फलस्वरूप, १८८२ से १९०२ तक आदिवासियो एवं पहाडी जातियो की शिक्षा मे कुछ प्रगति हुई। इस काल मे सरकार ने उनकी शिक्षा के प्रसार के लिये जो साधन अपनाये, वे अग्रलिखित थे—(१) विशिष्ट विद्यालयो का निर्माण, (२) नि शुल्क शिक्षा का प्रवन्ध, (३) छात्रवृत्तियो की व्यवस्था, (४) अध्यापको के प्रशिक्षण के लिए विशेष सुविधायें, (५) इन जातियो के शिक्षा-कार्य मे लगे हुए गैर-सरकारी शिक्षालयो को उदार आर्थिक सहायता, और (६) पाठ्य-पुस्तको का बिना मूल्य वितरण।

राजकीय प्रयत्नो की अपेक्षा मिशनरी प्रयासो को आदिवासियो तथा पहाडी जातियो के शिक्षा-कार्य मे अधिक सफलता प्राप्त हुई। मिशनरियो ने छोटा नागपुर, सथाल के परगनो, मद्रास और आसाम के आदिवासियो एवं पहाडी जातियो मे शिक्षा-प्रसार का कार्य मुख्य रूप से किया। परन्तु सरकारी और मिशनरी प्रयासो के बावजूद भी इन जातियो मे शिक्षा का अधिक प्रसार न हो सका। इस बात की पुष्टि तत्कालीन आँकडो से हो जाती है। १९०२ मे इन जातियो मे शिक्षित पुरुषो का अनुपात इस प्रकार था—बम्बई मे १०,००० मे १०५, बरार मे १८, बगाल और आसाम मे ८९, मद्रास मे ४७, तथा मध्य-प्रदेश मे ४०। शिक्षित स्त्रियो का अनुपात और भी कम था—आसाम मे १०,००० मे १३, बगाल मे ४, और अन्य प्रान्तो मे २ से कम।[1]

1. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India* (1897-1902), p. 384.

व्यावसायिक शिक्षा

'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने व्यावसायिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने पर बल दिया था और इस सम्बन्ध मे अनेक सुझाव दिये थे। भारत-सरकार ने अपने हित को ध्यान मे रखते हुए इनमे से कुछ सुझावो को मान लिया। परिणामत इस अवधि मे विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा मे प्रगति दृष्टिगोचर हुई। हम नीचे इनका विवरण दे रहे हैं —

(१) **कानून की शिक्षा**—१८८२ तक आधुनिक ढग के न्यायालयो की स्थापना से और उनके कारण कानून की शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो की माँग बढने से भारतीयो का झुकाव कानून के अध्ययन की ओर हो गया था। १८८२ के पश्चात् उनका झुकाव और भी बढ गया, क्योकि अभिवक्ता (Pleader) के रूप मे वे समाज के आदर के पात्र बन सकते थे, और साथ ही पर्याप्त धन का उपार्जन भी कर सकते थे।

१९०२ मे कानून की शिक्षा का प्रबन्ध सम्मिलित रूप से विश्वविद्यालयो, शिक्षा-विभागो एव उच्च न्यायालयो के हाथ म था। कानून के विद्यालय शिक्षा विभाग की अध्यक्षता मे थे। विश्वविद्यालय-परीक्षाओ के लिये पाठ्यक्रम निर्धारित करते थे। उच्च न्यायालय की परीक्षा पास करने के पश्चात् उच्च न्यायालयो द्वारा ली जाने वाली परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर ही एक व्यक्ति कानून के व्यवसाय मे प्रवेश कर सकता था।

कानून की शिक्षा के लिये तीन प्रकार की सस्थायें थी—(१) आर्ट्स और साइन्स के कॉलेजो से सम्बद्ध कानून की कक्षायें, (२) कानून के कॉलेज एव (३) कानून के स्कूल। मद्रास-सरकार की अध्यक्षता मे कानून का एक कॉलेज था। इसी प्रकार का एक कॉलेज पजाब विश्वविद्यालय की अधीनता मे था। बम्बई नगर मे एक राजकीय कानून-कॉलेज था, जिसमे कानून की शिक्षा सायकाल को दी जाती थी। बङ्गाल, मध्य प्रदेश एव सयुक्त प्रान्त मे पृथक् कानून-कॉलेज नही थे, पर आर्ट्स और विज्ञान के कॉलिजो को कानून-विभाग खोलने का अधिकार था। आसाम मे हाईस्कूलो से सम्बद्ध कानून की ४ कक्षायें चलती थी, जो विद्यार्थियो को 'अभिवक्ता परीक्षा (Pleader's Examination) के लिये तैयार करती थी।

(२) **चिकित्सा शिक्षा**—१९०२ मे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और लाहौर में ४ राजकीय मैडिकल कॉलिज थे। इनके अतिरिक्त, देश मे अनेक मैडिकल स्कूल थे, जिनका सचालन राज्य या व्यक्तिगत सस्थाओ द्वारा किया जा रहा था। प्रारम्भ मे भारतीयो ने अपनी धार्मिक भावनाओ तथा सामाजिक परम्पराओ के कारण पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली का बहिष्कार कर दिया था। १९०२ तक पुरुष इसकी ओर पर्याप्त सख्या मे आकर्षित होने लगे थे, परन्तु स्त्रियो ने इसमे कोई विशेष रुचि प्रकट नहीं की थी। १९०२ मे मैडिकल कॉलेजो की छात्र सख्या १,४६६ और मैडिकल स्कूलो की छात्र संख्या २,७२७ थी। इनमे छात्राओ की सख्या केवल २४२ थी, जिनम स

७६ लडकियाँ मैडिकल कॉलेजो मे और १६६ मैडिकल स्कूलो मे अध्ययन कर रही थी। इन समस्त छात्राओ मे ६२ यूरोपियन और एँग्लो-इण्डियन, १२० ईसाई, ८ ब्राह्मण, १५ अन्य जातियो की, १५ मुसलमान, तथा २२ पारसी थी।[1]

(३) इन्जीनियरिंग की शिक्षा—इस अवधि मे सार्वजनिक निर्माण विभागो, नगर-महापालिकाओ और कारखानो आदि मे इन्जीनियरो की माँग बढने से इन्जीनियरिंग शिक्षा की अच्छी प्रगति हुई। १९०२ मे रुडकी, शिवपुर, पूना और मद्रास मे सरकार द्वारा सचालित इजीनियरिंग कॉलेज थे। इन कॉलेजो मे ८६५ छात्र थे। कॉलेजो के अतिरिक्त, इजीनियरिंग एव सर्वे के १८ स्कूल भी थे, जिनकी छात्र-सख्या ७९७ थी। इन कॉलेजो और स्कूलो मे सिविल, मेकैनिकल और एलेक्ट्रिकल इजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध था। इजीनियरिंग के कुछ अन्य अगो की शिक्षा की भी व्यवस्था थी।

(४) कृषि-शिक्षा—कृषि-प्रधान देश होने के कारण भारत मे कृषि-शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता थी। परन्तु खेद है कि विदेशी शासको ने इस शिक्षा की ओर १८८० तक कोई ध्यान नही दिया। उस वर्ष 'दुर्भिक्ष-आयोग' (Famine Commission) ने भारत-सरकार का ध्यान कृषि-शिक्षा की ओर आकृष्ट किया। परन्तु फिर भी इसकी उपेक्षा की गई। १८८६ मे इङ्गलैण्ड की 'रॉयल-सोसाइटी' का एग्रीकल्चरल केमिस्ट, डा० वोल्कर (Voelcker) भारत की कृषि की जाँच करने और इस सम्बन्ध मे सरकार को अपना परामर्श देने के लिये यहाँ आया। उसने अपनी रिपोर्ट मे कृषि-शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया। १८९० मे उसकी रिपोर्ट पर प्रान्तीय सरकारो के प्रतिनिधियो मे विचार-विनिमय हुआ और केन्द्रीय सरकार से कृषि शिक्षा की व्यवस्था करने की सिफारिश की गई। उसी समय से यथार्थ रूप मे सरकार—कृषि-शिक्षा के लिए प्रयत्नशील हुई, यद्यपि यह शिक्षा भारत मे कुछ स्थानो पर पहले भी प्रदान की जा रही थी। १९०२ मे पूना, शिवपुर, सैदपत (मद्रास), कानपुर और नागपुर मे कृषि-कॉलेज थे, जिनमे २१९ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

(५) पशु-चिकित्सा शिक्षा—कृषि-शिक्षा के समान पशु-चिकित्सा-शिक्षा के प्रति भी सरकार की उदासीनता रही। १९०२ मे पशु-चिकित्सा की शिक्षा देने के लिये भारत मे ३ राजकीय कॉलेज—बम्बई, बेलगछिया (कलकत्ता के समीप) और लाहौर मे थे। लाहौर के कॉलेज मे शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा थी। कॉलेजो के अतिरिक्त, अजमेर म एक स्कूल भी था। इन चारो सस्थाओ मे ३०१ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

(६) वन विज्ञान की शिक्षा—१९वी शताब्दी के मध्य मे सरकार ने भारतीय वनो से उपलब्ध होने वाली वस्तुओ की ओर ध्यान दिया। अत वनो की देख-रेख

1. Nurullah & Naik : *op cit*, p 377.

और सुरक्षा के लिये कर्मचारियो की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इन्ही कर्मचारियो को प्रशिक्षित करने के विचार से देहरादून और पूना मे वन-विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

(७) कला की शिक्षा—१६०२ मे सरकार द्वारा संचालित ४ आर्ट स्कूल—बम्बई, कलकत्ता, लाहौर और मद्रास मे थे। इन विद्यालयो मे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की यौगिक संख्या १,२२० थी।

(८) वाणिज्य-शिक्षा—वाणिज्य-शिक्षा को सरकार ने बहुत कम प्रोत्साहन दिया। इस शिक्षा के लिये केवल बम्बई मे एक कॉलेज था। परन्तु वह भी यथार्थ मे वाणिज्य-शिक्षा प्रदान करने का कार्य न करके—केवल विद्यार्थियो को 'लन्दन चेम्बर ऑफ कामर्स' की परीक्षा के लिए तैयार करता था। १६०२ मे इस कॉलेज के अतिरिक्त, १५ स्कूल भी थे, जिनमे १,१२३ छात्रो को शिक्षा दी जा रही थी।

(६) प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा—भारत-सरकार प्रारम्भ से ही प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा की विरोधी थी। अग्रेज शासको का विचार था कि यदि भारत मे इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई, तो देश का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हो जायगा और इससे इगलैंड के उद्योगो को आघात पहुँचेगा। भारत के राष्ट्रीय नेताओ का विश्वास था कि देश की निर्धनता को दूर करने के लिये प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा अति आवश्यक थी। कांग्रेस ने १८८७ मे होने वाले अपने तीसरे अधिवेशन मे सरकार से इस शिक्षा की माँग की, और अन्य अधिवेशनो मे इस माँग को दोहराती रही।[1] परन्तु निज स्वार्थ मे लिप्त भारत की अंग्रेजी सरकार इस माँग को निरन्तर ठुकराती रही। ऐसी स्थिति मे प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा का विकास होना सम्भव नही था। १६०२ मे सम्पूर्ण भारत मे केवल ८० प्राविधिक एवं औद्योगिक स्कूल थे, जिनमे ४,८६४ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन स्कूलो मे से कुछ ही टेकनिकल स्कूल कहलाने के अधिकारी थे, क्योकि अधिकाश मे देश की प्राचीन परम्पराओ के आधार पर देशी कला-कौशल की ही शिक्षा प्रदान की जाती थी। वस्तुत देश की आवश्यकताओ को देखते हुए प्राविधिक एवं औद्योगिक स्कूलो की संख्या नगण्य थी।

व्यावसायिक शिक्षा का पुनर्वालोकन

इस अवधि मे व्यावसायिक शिक्षा के उपर्युक्त वर्णन मे कुछ महत्वपूर्ण बातें

1. "It reiterated its request in 1891, 1892 and 1893. In 1894 it affirmed in the most emphatic manner the importance of increasing public expenditure on all branches of education and the expediency of establishing technical schools and colleges. It repeated the same request in 1895."—Madan Mohan Malviya in *Report of the Indian Industrial Commission* (1916-18), p. 250.

स्पष्ट हो जाती है। प्रथम—व्यावसायिक शिक्षा की जो भी व्यवस्था सरकार द्वारा गई थी, उसका एकमात्र उद्देश्य—सार्वजनिक प्रशासन के लिये उपयुक्त व्यक्तियो को तैयार करना था। द्वितीय—सामान्य शिक्षा के प्रसार मे व्यक्तिगत प्रयास सराहनीय थे, परन्तु व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे उनका पूर्ण अभाव था। ऐसी सस्थाये उँगलिया पर ही गिनी जा सकती है, जिनका सचालन भारतीयो द्वारा किया जा रहा था। तृतीय—कानून, चिकित्सा और इजीनियरिंग की शिक्षा मे कुछ प्रगति अवश्य हुई, पर व्यावसायिक शिक्षा के अन्य अगो की ओर न तो समुचित ध्यान दिया गया, और न उनको सगठित करने का प्रयत्न ही किया गया। इन्ही दोषो को दूर करने के लिए भविष्य मे अविराम रूप से प्रयास किये गये।

साराश

प्राथमिक शिक्षा—'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय सस्थाओ को सौप दिया गया। इन सस्थाओ ने १८८२ से १९०२ तक प्राथमिक शिक्षा पर किय जाने वाले व्यय को २२ लाख बढा दिया, परन्तु सरकार ने केवल १५ लाख बढाया। फलस्वरूप, प्राथमिक विद्यालयो की सख्या मे वृद्धि तो अवश्य हुई, पर उसे सन्तोषजनक नही कहा जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा—इस अवधि मे माध्यमिक शिक्षा की सन्तोषजनक प्रगति हुई। राजकीय विद्यालयो की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही, परन्तु व्यक्तिगत विद्यालयो की आर्थिक दशा शोचनीय थी। 'आयोग' के सुझाव के अनुसार हाई स्कूल की शिक्षा को 'अ-कोर्स' और 'ब-कोर्स' मे विभाजित किया गया। लगभग सभी प्रान्तो मे औद्योगिक पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया गया, पर वह लोकप्रिय न हो सका। अध्यापको के लिये प्रशिक्षण-विद्यालय भी खोल गये। अग्रेजी की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिये जाने से भारतीय भाषाओ का विकास रुक गया।

उच्च शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा की प्रगति ने उच्च शिक्षा के विकास म योग दिया। भारतीयो के व्यक्तिगत प्रयासो के फलस्वरूप अनेक कॉलेजो का निर्माण हुआ। देश मे कुछ आत्म-त्यागी विद्वानो ने कॉलेजो मे अध्यापन का कार्य प्रारम्भ करके भारतीय नवयुवको के चारित्रिक निर्माण म अपूर्व योग दिया। फर्ग्यूसन कॉलेज, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज और सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज का निर्माण हुआ। इस अवधि मे उच्च शिक्षा की सन्तोषजनक प्रगति तो हुई, परन्तु शिक्षा का स्तर गिर गया। शिक्षा का एक विशेष दोष यह था कि पुस्तकीय ज्ञान और परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होने पर अधिक बल दिया जाता था।

स्त्रियो की शिक्षा—इस काल मे स्त्री शिक्षा की प्रगति मन्द रही, परन्तु वह निरन्तर होती रही। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र म सबसे अधिक उन्नति हुई। देश मे कुछ नि स्वार्थ समाज-सेवको ने माध्यमिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने मे कोई कसर न उठा रखी। हिन्दू समाज—बालिकाओ की माध्यमिक शिक्षा की उपयोगिता का

अनुभव करने लगा। हिन्दू लडकियाँ उच्च-शिक्षा की ओर अग्रसर हुई, पर मुस्लिम लडकियाँ उसकी ओर से उदासीन रही।

मुसलमानो की शिक्षा—मुस्लिम-शिक्षा को सरकार द्वारा विशेष प्रोत्साहन दिया गया। फलस्वरूप, शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ। फिर भी मुस्लिम शिक्षा का उतना विकास न हो सका, जितना हिन्दुओ की शिक्षा का हुआ।

हरिजनो एव पिछडो जातियो की शिक्षा—'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार सरकार ने हरिजनो एव पिछडी जातियो की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। इन जातियो के लिये विशिष्ट स्कूलो का निर्माण किया गया और छात्रो को नि शुल्क शिक्षा तथा छात्रवृत्तियो द्वारा पढने के लिये प्रलोभित किया गया।

आदिवासियो एव पहाडी जातियो की शिक्षा—सरकारी प्रयास के कारण इन जातियो की शिक्षा मे प्रगति तो हुई, परन्तु वह कम थी। मिशनरियो ने इन जातियो की शिक्षा के लिये भारत के कुछ भागो मे विशेष रूप से प्रयत्न किये।

व्यावसायिक शिक्षा—इस अवधि मे कानून, चिकित्सा, इजीनियरिंग, कृषि, वन-विज्ञान, पशु-चिकित्सा, कला, वाणिज्य, प्राविधिक एव औद्योगिक शिक्षा का भी विस्तार हुआ। इस दिशा मे सरकार द्वारा ही अधिक कार्य किया गया। भारतीयो ने इसमे विशेष रुचि व्यक्त नही की।

TEST QUESTIONS

1 "The most significant achievement of the period from 1882 to 1902 was an unprecedented expansion of primary, secondary and collegiate education" Do you agree with this view? If so, give reasons and illustrate your answer with facts and figures

"१८८२ से १९०२ तक की अवधि मे सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि—प्राथमिक, माध्यमिक और कॉलेजीय शिक्षा का अद्भुत प्रसार था।" क्या आप इस विचार से सहमत हैं? यदि हाँ, तो कारण बताइए, और अपने उत्तर की पुष्टि तथ्यो एव आँकडो से कीजिए।

2 "In the period of twenty years between 1882 and 1902 the education of women made slow but steady progress" Elucidate this statement

"१८८२ से १९०२ तक की २० वर्ष की अवधि मे स्त्री-शिक्षा ने धीमी, पर निरन्तर प्रगति की।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

१४

लार्ड कर्ज़न की शिक्षा-नीति

(१८९९–१९०५)

प्रस्तावना

१९वी शताब्दी के अन्तिम दशक भारतीय शिक्षा के इतिहास मे सदैव स्मरण रहेगे। यह वह समय था—जब भारत के कुछ सपूत विदेशियो द्वारा पदाक्रान्त देश की दुर्दशा देख, विक्षुब्ध हो उठे थे। स्वतन्त्रता के विचारो से सरोबार हो, उन्होने अपने देशवासियो को आलस्य और अकर्मण्यता की चिर-निद्रा से जाग्रत करके उनमे राष्ट्रीय भावनाओ को कूट-कूट कर भरना प्रारम्भ कर दिया था। इन्ही भावनाओ से ओत-प्रोत भारत के कुछ सुयोग्य एव त्यागी समाज-सुधारको ने राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की। केवल ऐसी ही शिक्षा से भारतीय सस्कृति, सभ्यता, साहित्य और भाषा का सरक्षण सम्भव था। शीघ्र ही उनकी यह माँग साकार रूप से प्रकट हुई। लाहौर मे 'दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कॉलिज', हरिद्वार मे स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा सस्थापित 'गुरुकुल' और बनारस मे 'सेन्ट्रल हिन्दू-कॉलेज' का मुख्य उद्देश्य—राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करना था।

कर्ज़न का भारत आगमन

ऐसे समय पर जनवरी, १८९९ मे लार्ड कर्ज़न (Curzon) ने गवर्नर जनरल के रूप मे इस देश मे पदार्पण किया। "वह स्वभाव मे उदार एव स्वेच्छाचारी शासक था और प्रशिक्षण द्वारा कठोर शासन मे विश्वास करने वाला, कठोर साम्राज्यवादी

था। वह केन्द्रीयकरण एवं कार्य-क्षमता का भी पुजारी था।"[1] वह धुरन्धर विद्वान्, कुशल प्रशासक और पाश्चात्य सभ्यता का परम भक्त था। उसका अटल विश्वास था कि एशियाई जातियो का उद्धार—केवल पाश्चात्य सभ्यता को अंगीकार करने से ही हो सकता था। अत: प्रत्येक अंग्रेज का यह कर्त्तव्य था कि वह प्राच्य जातियो को सभ्य बनाये। इस प्रकार भारत मे फैलती हुई राष्ट्रीयता की भावना के विरोधी के रूप मे कर्जन ने इस देश का शासन-सूत्र अपने हाथ मे सम्हाला।

शिमला शिक्षा-सम्मेलन (१९०१)[2]

जिस समय कर्जन ने इस देश मे प्रवेश किया, उस समय यहाँ की शिक्षा की दशा अच्छी नही थी। १८९७ से १९०२ तक का काल भारतीय शिक्षा के इतिहास मे सबसे अधिक अप्रगतिशील था, विद्यार्थियो की संख्या अति न्यून थी और स्कूलो की संख्या भी कम हो गई थी।[3] कर्जन को शिक्षा मे विशेष अभिरुचि थी। अतः भारत आने के कुछ समय उपरान्त ही उसने शिक्षा की ओर ध्यान दिया। उसका विश्वास था कि भारतीय शासन को पुनर्संङ्गठित करने के लिए शिक्षा मे सुधार किया जाना अति आवश्यक था।[4] अपने विचारो को क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिये उसने १९०१ मे शिमला मे एक गुप्त 'शिक्षा-सम्मेलन' आयोजित किया। सम्मेलन मे प्रत्येक प्रान्त के शिक्षा-संचालक एवं मिशनरियो के प्रतिनिधियो को आमंत्रित किया गया। इसमे भारतीय प्रतिनिधियो को कोई स्थान नही दिया गया। फलतः, कर्जन की शिक्षा-नीति के प्रति भारतीयो का सशंकित होना स्वाभाविक था। यह सम्मेलन कर्जन के सभापतित्व मे १५ दिन चला। इसमे १५० प्रस्ताव पास किये गये और इन्ही के आधार पर कर्जन ने अपनी शिक्षा-नीति निर्धारित की। सम्मेलन की कार्यवाही को पूर्णत गुप्त रखा गया और उसको किसी समाचार-पत्र मे प्रकाशित नहीं किया गया। सम्मेलन मे प्रतिनिधित्व प्राप्त न होने के कारण भारतीय पहले से ही सशंकित थे। अब उन्हें

---

1. "By temperament he was a benevolent autocrat and by training a diehard imperialist with implicit faith in a strong rule. He was also the archpriest of centralisation and efficiency."
—**A. N. Basu** : *op. cit.*, p. 60.

2. Simla Educational Conference, 1901.
3. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India* (1902-07), Vol. I, p. 22.
4. "When I came to India, Educational Reform loomed before me as one of those objects which appeared to deserve a prominent place in any programme of administrative reconstruction."—*Lord Curzon in India*, Vol. II, p. 65.

पूर्ण निश्चय हो गया कि—"सम्मेलन भारतीयो को यातना देने वाली सभा थी, जिसमे उनके विरुद्ध किसी षड्यन्त्र की रचना की गई थी।"[1]

'शिमला-सम्मेलन' मे भारतीय शिक्षा के प्रत्येक पहलू और उससे सम्बन्धित प्राय प्रत्येक समस्या पर विचार-विमर्श किया गया और उन्ही पर भारत मे शिक्षा-प्रसार की योजना को आधारित किया गया। हम उनका अध्ययन नीचे करेंगे, यथा—

विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा

कर्जन ने अपने शिक्षा के कार्य-क्रम में विश्वविद्यालयो के सुधार को अग्रिमता प्रदान की। अभी तक विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने और उपाधियाँ वितरण करने का कार्य कर रहे थे। छात्रो से उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही था। भारतीय विश्वविद्यालयो की इस स्थिति की कर्जन ने तीक्ष्ण आलोचना की। उसने कहा—"आदर्श विश्वविद्यालय के दो पहलू होने चाहिए। उसे ज्ञान के प्रसार और विद्या के प्रोत्साहन का स्थान होना चाहिए, और उसे मानवीय कारखाना होना चाहिए—जहाँ चरित्र का निर्माण अनुभव रूपी अग्निशाला मे किया जाय और जहाँ उसको सत्य की कसौटी पर कसा जाय।"[2] इन शब्दो द्वारा कर्जन ने भारतीय विश्वविद्यालयो के समक्ष एक नया आदर्श रखा। परन्तु इस आदर्श तक पहुँचने के लिये उसने यह आवश्यक समझा कि पहले भारतीय विश्वविद्यालयो की वास्तविक स्थिति की जाँच कर ली जाय। इस विचार से उसने २७ जनवरी, १९०२ को प्रथम "भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग' की नियुक्ति की।

भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग (१९०२)[3]

(१) नियुक्ति के कारण—कर्जन का विचार था कि भारतीय विश्वविद्यालयो मे सुधार की आवश्यकता थी, क्योंकि जिस समय से उनकी स्थापना हुई थी, उस समय से किसी ने भी उनकी सुध नही ली थी। इन विश्वविद्यालयो का संगठन लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मानकर किया गया था। १८९८ मे लन्दन विश्वविद्यालय का पुनर्संङ्गठन हो गया था। अतः उसी के आधार पर भारतीय विश्वविद्यालयो मे भी

1. "A Star Chamber conclave that was engaged in some dark and sinister conspiracy."—*Lord Curzon in India*, Vol. II, p. 67.

2. "The ideal university would consist of two aspects. It would be a place for the dissemination of knowledge and the encouragement of learning, and it would further be a smithy where character was forged in the furnace of experience, and beaten out on the anvil of truth."—Curzon's Convocation Address at the Calcutta University, 1904. : *Lord Curzon in India*, Vol. II, pp. 59-61.

3. Indian Universities Commission, 1902.

परिवर्तन करना वाछनीय था। उस समय तक कॉलेजो की संख्या मे बहुत वृद्धि हो गई थी और विश्वविद्यालयो का कार्य-भार अत्यधिक हो गया था। सीनेट के सदस्यो की संख्या निश्चित न होने के कारण उनकी अनावश्यक रूप से वृद्धि हो गई थी। सीनेट मे अध्यापको को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नही था। विश्वविद्यालयो का मान्यता-प्राप्त कॉलेजो पर परीक्षा लेने के अतिरिक्त अन्य कोई नियन्त्रण नही था। अत कॉलेजो का शिक्षा-स्तर गिर गया था। इन सभी बातो के कारणो की जाँच करने के लिये 'आयोग' की नियुक्ति की गई।

(२) **जाँच का विषय**—विश्वविद्यालयो के उपर्युक्त दोषो को ध्यान मे रखते हुए 'आयोग' की जाँच का विषय यह रखा गया—"ब्रिटिश भारत मे स्थित विश्वविद्यालयो की दशा एव उनकी भावी उन्नति की जाँच करना; एवं उनके विधान तथा कार्य-प्रणाली को सुधारने के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत करना, एवं ऐसे सुझाव देना जिनसे विश्वविद्यालयो का शिक्षा-स्तर उठ सके और विद्या की उन्नति हो सके।"[1]

(३) **सुझाव**—'आयोग' ने सभी विश्वविद्यालयो मे भ्रमण किया और उनकी अवस्था की सूक्ष्म छानबीन करके लगभग ६ माह पश्चात् एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमे विश्वविद्यालयो के सुधार के लिये अनेक सुझाव दिये गये। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नांकित थे —

१. विश्वविद्यालयो के विधान मे ऐसा परिवर्तन कर दिया जाय, जिससे वे कुछ सीमा तक शिक्षण-कार्य कर सकें।
२. विश्वविद्यालय, उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये अध्यापको की नियुक्ति करें।
३. सीनेट एवं सिन्डीकेट का पुनर्सङ्गठन आवश्यक है। सीनेट के सदस्यो की संख्या कम कर दी जाय और उनकी अवधि ५ वर्ष कर दी जाय। सिन्डीकेट के सदस्यो की संख्या ६ से १५ तक रखी जाय।
४. सीनेट मे कॉलेजो एवं विश्वविद्यालयो के अध्यापको तथा सुयोग्य विद्वानो को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये।
५. कॉलेजो को मान्यता प्रदान करने के नियमों मे अधिक कड़ाई रखी जाय।
६. मान्यता-प्राप्त कॉलेजो का नियमित निरीक्षण किया जाय।
७. प्रत्येक कॉलेज का प्रबन्ध एक संगठित समिति द्वारा किया जाय। यह समिति योग्य अध्यापको की नियुक्ति, विद्यार्थियो के अनुशासन, छात्रावास और भवन आदि की ओर विशेष ध्यान दे।
८. मेट्रीकुलेशन का स्तर उच्च किया जाय, इन्टरमीडियेट परीक्षा समाप्त

1. *Indian Universities Commission Report*, 1902.

कर दी जाय और बी० ए० का पाठ्य-क्रम ३ वर्ष का कर दिया जाय।

(४) 'आयोग' का मूल्यांकन—उपर्युक्त सुझावों से स्पष्ट हो जाता है कि 'आयोग' का उद्देश्य—विश्वविद्यालयों के संगठन में आमूल-चूल परिवर्तन करना नहीं था, अपितु प्रचलित प्रणाली को पुनर्संङ्गठित करके शक्तिशाली बनाना था। 'आयोग' ने विश्वविद्यालयों को शिक्षा-केन्द्र बनाने का सुझाव नहीं दिया। उसके मतानुसार—कॉलेज देश के प्रत्येक भाग में दूर-दूर तक फैले हुए थे। अत उनको एकत्र करके विश्वविद्यालयों को शिक्षा-केन्द्र बनाना असम्भव था। शिक्षा-शुल्क की निम्नतर दर निश्चित करने एवं द्वितीय श्रेणी के कॉलेजों को तोडने का सुझाव देने के कारण 'आयोग' ने भारतीयों की शत्रुता मोल ले ली। वैसे तो भारतीय पहिले से ही इसके विरोधी थे, क्योंकि 'शिमला-सम्मेलन' के समान इसमें भी किसी भारतीय का प्रतिनिधित्व नहीं था। यद्यपि पुनर्विचार के उपरान्त सरकार ने डाक्टर गुरुदास बनर्जी और सैयद हुसन बिलग्रामी को 'आयोग' के सदस्यों में स्थान दे दिया था, परन्तु इससे भारतीयों को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ था। उनका प्रारम्भ से ही विश्वास था कि सरकार देश में प्रवाहित राष्ट्रीयता की लहर को मोडने का प्रयास कर रही थी। जनता का विरोध व्यर्थ सिद्ध हुआ। कर्जन की सरकार ने 'आयोग' की सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक तैयार किया, जो २१ मार्च, १९०४ को 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' के रूप में पारित किया गया।

भारतीय विश्वविद्यालय-अधिनियम (१९०४)[1]

इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों के संगठन, कार्य-क्षेत्र, अधिकार और शासन आदि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। ये परिवर्तन निम्नलिखित थे —

१ विश्वविद्यालयों के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया। उन्हें परीक्षायें लेने के अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था करने का भी अधिकार दे दिया गया। वे शिक्षण-कार्य के लिये प्राध्यापकों को नियुक्त कर सकते थे, उच्च ज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिये पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं का प्रबन्ध कर सकते थे, और विद्यार्थियों के अनुशासन के सम्बन्ध में नियमों का निर्माण कर सकते थे।

२. १८५७ के 'विश्वविद्यालय-अधिनियम' के अनुसार सीनेट के सदस्यों को सरकार आजीवन के लिये मनोनीत करती थी। फलस्वरूप, सीनेट का आकार अति विशाल हो गया था। इस अधिनियम द्वारा वह निश्चय कर दिया गया कि सीनेट के सदस्यों की निम्नतम संख्या ६० और

1. Indian Universities Act, 1904

उच्चतम १०० होगी, और ये सदस्य अपने पद पर आजीवन न रहकर केवल ५ वर्ष तक रहेगे।

३ बम्बई, कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालया की सीनेटो के निर्वाचित सदस्यो की सख्या २० एवं अन्य विश्वविद्यालयो की सीनेटो की सख्या १५ से अधिक नही होगी। इस अधिनियम द्वारा सीनेटो के निर्वाचित सदस्या की सख्या मे अभिवृद्धि कर दी गई।

४ विश्वविद्यालयो के सिण्डीकेटो को कानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी गई। सिण्डीकेटो के सदस्यो मे विश्वविद्यालयो के प्राध्यापको का उचित प्रतिनिधित्व होना अनिवार्य कर दिया गया।

५ १८५७ के 'विश्वविद्यालय-अधिनियम' के अनुसार सीनेट को विश्व विद्यालय के सम्बन्ध मे नियम बनाने का अधिकार प्राप्त था। उसे सरकार से उनकी स्वीकृति केवल नाम मात्र के लिये लेनी पडती थी। अब तक सरकार को केवल यह अधिकार था कि उनको अस्वीकृत कर सकती थी, परन्तु स्वीकृति देने के उपरान्त उनमे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही कर सकती थी। १९०४ के अधिनियम के अनुसार सरकार को सीनेट द्वारा बनाये हुए नियमो मे सशोधन करने, उन्हे स्वीकृति देने तथा सीनेट द्वारा समय पर नियम न बनाये जाने पर स्वय नियम वनाने का अधिकार प्राप्त हो गया।

६ विश्वविद्यालयो द्वारा मान्यता चाहने वाले कॉलेजो के लिये नियम कडे कर दिये गये और सिण्डीकेटो को यह अधिकार दे दिया गया कि वे मान्यता प्राप्त कालेजो के शिक्षण-स्तर को ऊँचा रखने के लिय समय-समय पर उनका निरीक्षण कर सकते थे।

७ १८५७ के अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालयो के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार (Territorial Jurisdiction) की सीमा निश्चित नही की गई थी। परिणामस्वरूप, कुछ कॉलेजो ने दो विश्वविद्यालयो से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, और कुछ एक विश्वविद्यालय के क्षेत्र मे होते हुए भी दूसरे से सम्बन्धित हो गये थे। १९०४ के अधिनियम के अनुसार गवर्नर-जनरल को विश्वविद्यालयो के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार की सीमायें निश्चित करने का अधिकार दे दिया गया।

भारतीय प्रतिक्रिया

भारतीयो ने प्रारम्भ से ही विश्वविद्यालय-सुधार के इस अधिनियम का घोर विरोध किया गया था। भारतीय मत को केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्य गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने ऐतिहासिक व्याख्याना मे व्यक्त किया। वस्तुत भारतीय विश्वविद्यालय

सुधार के विरोधी नही थे। जिस समय १८९९ मे कर्जन ने विश्वविद्यालयों के सुधार की बात कही थी, उस समय भारतीयो ने इस बात का हृदय से स्वागत किया था। परन्तु उसके पश्चात् 'शिमला-सम्मेलन' मे भारतीयो को प्रतिनिधित्व न देना, सम्मेलन की कार्यवाही को गुप्त रखना और 'विश्वविद्यालय-आयोग' मे किसी भारतीय को नियुक्त न करना—कुछ ऐसी घटनाये थी, जिन्होने भारतीयो को शंकापूर्ण कर दिया था। वे समझने लगे थे कि सरकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे भारतीय प्रयासो पर रुकावट डालना चाहती थी और देश की शिक्षा को अंग्रेजो के हाथ मे रखना चाहती थी। भारतीयो का यह भी विचार हो गया था कि सरकार उच्च शिक्षा-संस्थाओं पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहती थी और नये नियमो का निर्माण करके शिक्षा-प्रसार को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा उसकी प्रगति मे अवरोध डालना चाहती थी।

भारतीयो के विरोध का सबसे शक्तिशाली कारण यह था कि १९०४ के अधिनियम द्वारा गवर्नर-जनरल को विश्वविद्यालयो के आन्तरिक प्रबन्ध पर पूर्ण अधिकार दे दिया गया था। वह विश्वविद्यालयो के नियम बना सकता था, सीनेट द्वारा बनाये हुए नियमो मे परिवर्तन कर सकता था, और यह आदेश दे सकता था कि विश्वविद्यालय किन कॉलिजों को मान्यता प्रदान करें। इन सब बातों को देखकर भारतीयो को विश्वास हो गया था कि सरकार विश्वविद्यालयो के स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त करके उन पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना चाहती थी। यद्यपि भारतीयों का यह सन्देह भविष्य मे निराधार सिद्ध हुआ, परन्तु उस समय की परिस्थितियो मे इसका निराकरण न हो सका।

विश्वविद्यालय-अधिनियम का मूल्यांकन

'विश्वविद्यालय-अधिनियम' के सम्बन्ध मे दो विचारधारायें प्रवाहित हो रही थी। सरकार का कहना था कि इस अधिनियम से विश्वविद्यालयों के समस्त दोषो का निवारण हो जायगा और उच्च शिक्षा की ऐसी सुन्दर व्यवस्था हो जायगी कि उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी। इसके विपरीत, भारतीयो का मत था कि अधिनियम द्वारा उच्च-शिक्षा पर सरकार का पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो जायगा और उसकी प्रगति रुक जायगी। परन्तु अधिनियम द्वारा न तो प्रथम बात सत्य सिद्ध हुई और न दूसरी असत्य। हाँ, इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि उच्च शिक्षा को लाभ अधिक हुआ और हानि कम। विश्वविद्यालयो का संचालन पहले से अधिक उत्तम रीति से किया जाने लगा, उनका संगठन बहुत कुछ निर्दोष हो गया और उसके सीनेटो के सदस्य सरकार के चाटुकार न होकर सुयोग्य और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होने लगे। कुछ विश्वविद्यालयो मे शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हो गया। पुस्तकालयो और प्रयोगशालाओ की स्थापना हो गई। निरीक्षण की व्यवस्था होने के कारण शिक्षा का स्तर उच्च हो गया। जो कॉलिज इसमें सफलता न प्राप्त कर सके, उनका अन्त हो गया। शिक्षा का स्तर उच्च होने से विद्यार्थियो की योग्यता मे वृद्धि हुई और वे विभिन्न विषयो मे अपनी विद्वत्ता का परिचय देने लगे।

भारतीयो को भय था कि 'विश्वविद्यालय अधिनियम' से शिक्षा प्रसार के क्षेत्र मे भारतीयो की व्यक्तिगत चेष्टाओ पर घातक प्रहार होगा। परन्तु भारतीयो का यह भय असत्य सिद्ध हुआ। यद्यपि मान्यता प्रदान करने के नियमो का कठोरता पूर्वक पालन किये जाने से १९०४ मे १९१२ तक कॉलेजो की सख्या बहुत कम हो गई, परन्तु उनमे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की सख्या म निश्चित रूप से वृद्धि हुई।

इस अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालयो एव कॉलेजो का बहुत सुधार हुआ और शिक्षा का स्तर ऊँचा हो गया, परन्तु उनकी शिक्षा-प्रणाली मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ और न उसको उचित आधार पर ही रखा गया। पूर्व के समान पुस्तकीय ज्ञान तथा साहित्यिक विषयो को वरीयता प्रदान की गई। पाठ्यक्रमो मे जीवनोपयोगी विषयो को सम्मिलित नही किया गया। अधिनियम ने विश्वविद्यालयो पर सरकार का इतना कठोर नियन्त्रण स्थापित कर दिया कि उन्हे स्वेच्छा से किसी कार्य को करने की स्वतन्त्रता न रह गई। 'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग' के अनुसार भारतीय विश्वविद्यालय—विश्व मे सबसे अधिक सरकारी शासन के अधीन थे। "यह सत्य है कि 'विश्वविद्यालय-अधिनियम से कोई विशेष लाभ नही हुआ, परन्तु विश्वविद्यालय सुधार का आन्दोलन प्रारम्भ करने का सेहरा कर्जन के सिर पर है। यह आन्दोलन मन्थर गति से पर दृढतापूर्वक अपने निश्चित लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ रहा है।[1]

कॉलेजो मे सुधार

विश्वविद्यालयो मे सुधार होने के कारण उनसे सम्बन्धित कॉलेजो मे सुधार होना स्वाभाविक था। शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिए कॉलेजो म निक्षण सामग्री से सुसज्जित प्रयोगशालाओ तथा रसायनशालाओ का होना अनिवार्य था। उनमे पुस्तकालयो, वाचनालयो और छात्रावासो की भी उचित व्यवस्था वाछनीय थी। व्यक्तिगत सस्थाओ के पास इन सब बातो का प्रबन्ध करने के लिए धन का अभाव था। अत कर्जन ने उदारतापूर्वक कॉलेजो को १३½ लाख रुपये का विशेष सहायता अनुदान दिया। इस धन का वितरण विभिन्न प्रान्तो की जनसख्या और कॉलेजो म शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की यौगिक सख्या के आधार पर किया गया। गैर-सरकारी कॉलेजो को इस विशेष अनुदान से बहुत सहारा मिला और उन्होंने उचित व्यवस्था करके शिक्षा मे गुणात्मक वृद्धि की।

---

1 "It is true that the Act of 1904, by itself did not achieve much But Curzon will have the credit of having been the pioneer to start a new movement in university reform which slowly and laboriously, but nevertheless steadily, has ever been progressing to its destined goal" —Nurullah & Naik · *op cit*, pp 474 475

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव[1] (१६०४)

११ मार्च, १६०४ को लार्ड कर्जन ने अपनी शिक्षा-नीति को एक सरकारी प्रस्ताव के रूप मे प्रकाशित किया। इस प्रस्ताव मे तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषो का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया। इनमे से अनेक दोष आज भी इस देश की शिक्षा मे कलक बिन्दुओ के समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। प्रस्ताव मे कहा गया—"संख्यात्मक दृष्टि से वर्तमान शिक्षा के दोष सर्वविदित हैं। ५ मे से ४ गांवो मे स्कूल नही है। ४ बालको मे से ३ बिना शिक्षा प्राप्त किये बडे होते है और ४० मे से केवल १ बालिका किसी प्रकार के स्कूल मे शिक्षा प्राप्त करती है।"[2] गुणात्मक दृष्टि से शिक्षा मे निम्नाकित दोषों की ओर सकेत किया गया —

१ उच्च शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—सरकारी नौकरी प्राप्त करना है। इस प्रकार शिक्षा का क्षेत्र अत्यधिक सकुचित कर दिया जाता है, और जो व्यक्ति राजपद प्राप्त करने मे असफल होते हैं, वे अन्य कार्यों के लिये अयोग्य हो जाते है।

२ परीक्षाओं को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जाता है।

३ पाठ्य क्रम पूर्णतया साहित्यिक है।

४ स्कूलो और कॉलिजो मे विद्यार्थियो की बुद्धि का विकास कम किया जाता है और स्मृति का अधिक। परिणामत , ठोस ज्ञान का स्थान यन्त्रवत् पुनरावृत्ति द्वारा ले जाया जाता है।

५ अग्रेजी शिक्षा को प्रधानता देकर भारतीय भाषाओ की उपेक्षा की जाती है।

'प्रस्ताव' मे शिक्षा के सभी अगो का विवेचन करने के पश्चात् उसके विकास के लिये सरकारी नीति घोषित की गई। इस नीति की मुख्य-मुख्य बातें अधोलिखित थी —

१ प्राथमिक शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है और उसके विकास के लिये पर्याप्त प्रयास नही किया है। प्राथमिक शिक्षा का विकास करना—सरकार का एक प्रमुख कर्तव्य होना चाहिये।

२ प्राथमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम मे अग्रेजी को नहीं सम्मिलित करना चाहिये। इस स्तर पर भारतीय भाषाओ की शिक्षा पर ही अधिक बल

---

1 Government Resolution on Educational Policy

2 'The shortcomings of the present system in point of quantity are well known Four out of five villages are without a school Three boys out of four grow up without education and only one girl in forty attends any kind of school"—*Government Resolution on Educational Policy*, 1904

दिया जाना चाहिये। अंग्रेजी की शिक्षा १३ वर्ष की आयु के पश्चात् दी जानी चाहिये।

३. माध्यमिक विद्यालयो का शिक्षण-स्तर ऊँचा उठाना चाहिये। नवीन शिक्षालयो को मान्यता एवं सहायता-अनुदान देने मे कड़ाई करनी चाहिये जिससे अवाछनीय स्कूलो की स्थापना न हो सके।

४. विश्वविद्यालयो और कॉलेजो की शिक्षा का स्तर ऊँचा किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा का उद्देश्य—केवल सरकारी नौकरी प्राप्त करना नही होना चाहिये।

उपरिकथित बातो के अतिरिक्त प्रौद्योगिक, कृषि, कला और नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध मे भी कर्जन ने अपनी नीति की घोषणा की। इनका वर्णन आगे यथा-स्थान किया जायगा। यद्यपि कर्जन ने अपने प्रस्ताव मे तत्कालीन भारतीय शिक्षा के गुण-दोषो का निरूपण बिल्कुल ठीक किया था और शिक्षा-प्रसार के लिये उसके सुझाव भी प्रशंसनीय थे, परन्तु जिस नीति का अनुसरण करके वह कार्य को सम्पादित करना चाहता था, वह भारतीयो को पसन्द नहीं थी। "यद्यपि रोग का निदान ठीक था, परन्तु प्रस्तावित औषधि न तो उपयुक्त ही थी और न सामयिक ही। लार्ड कर्जन ने जो बातें कही, उनमे से बहुत-सी ठीक थी, पर जिस विधि से वह सुधार करना चाहता था, उससे शिक्षित भारतीयो के मस्तिष्क मे गम्भीर सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होने समझा कि इस सुधार कार्य मे कोई गहरी राजनैतिक चाल छिपी हुई है।"[1]

कर्जन और माध्यमिक शिक्षा

यद्यपि १८८२ से १९०२ तक माध्यमिक शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से हुआ था, तथापि उसमे अनेक दोष उत्पन्न हो गये थे। माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यार्थियो मे से अधिकाश भारतीयो द्वारा संचालित थे। इन सस्थाओ का शिक्षण-स्तर निम्न था। इनके पास शिक्षा की उचित व्यवस्था करने के लिये धन का अभाव था। अत इन विद्यालयो के सुधार की ओर कर्जन का ध्यान जाना स्वाभाविक था। उसने माध्यमिक शिक्षा के लिये एक नवीन नीति निर्धारित करके कार्यान्वित की। इस नीति की मुख्य-मुख्य बातो पर हम आगे प्रकाश डाल रहे हैं —

1. "Though the diagnosis was correct, the remedy suggested was neither appropriate nor opportune. Lord Curzon was right in many of the things he said, but it was the way in which he wanted to reform that raised grave suspicions in the minds of the educated Indians. They thought that this reform move camouflaged some deep political motive."—A. N. Basu : *op cit.*, p. 64.

शिक्षा-विभाग द्वारा मान्यता

'भारतीय शिक्षा-आयोग' द्वारा दिये गये सहायता-अनुदान सम्बन्धी सुझावों को सरकार ने स्वीकृत किया था। जिन विद्यालयों को सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी, उन पर शिक्षा-विभाग का पूर्ण नियन्त्रण रहता था। परन्तु जिन स्कूलों को सहायता-अनुदान नहीं प्राप्त था, वे शिक्षा-विभाग के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं थे। वे अपनी प्रगति के लिये किसी भी नीति का अनुसरण कर सकते थे। ऐसी स्थिति में सभी गैर-सरकारी स्कूल अपनी मनमानी कर रहे थे। फलस्वरूप उनमें ऐसे दोष उत्पन्न हो गए थे, जिनसे शिक्षा का बहुत अपकार हो रहा था। लार्ड कर्जन को विद्यालयों की इस स्थिति से सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा कि सभी माध्यमिक विद्यालयों पर शिक्षा-विभाग का नियन्त्रण होना चाहिए, चाहे वे सहायता प्राप्त हों अथवा नहीं। १९०४ के 'प्रस्ताव' में कुछ शर्तें निर्धारित कर दी गई।[1] इनको पूरा करने पर ही स्कूलों को शिक्षा-विभाग से 'मान्यता' (Recognition) प्राप्त हो सकती थी। ये शर्तें निम्नलिखित थीं :—

१. जिस क्षेत्र में स्कूल स्थापित हो, वहाँ उसकी वास्तव में माँग हो।
२. विद्यालय की प्रबन्ध-समिति उचित प्रकार से संगठित हो।
३. विद्यालय में आवश्यक विषयों के शिक्षण का समुचित प्रबन्ध हो।
४. विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, मनोरंजन और अनुशासन की उपयुक्त व्यवस्था हो।
५. अध्यापकों का चरित्र अच्छा हो, उनकी संख्या पर्याप्त हो और उनमें अध्यापन कार्य की क्षमता हो।
६. शिक्षा-शुल्क की दर ऐसी हो, जिससे समीपवर्ती विद्यालयों की हानि की आशंका न हो।

इन शर्तों को पूरा करने वाले विद्यालयों को ही सहायता-अनुदान प्राप्त होता था। ऐसे ही स्कूलों के विद्यार्थी छात्रवृत्तियाँ पाने और सार्वजनिक परीक्षाओं में सम्मिलित होने के अधिकारी थे। इस प्रकार, १९०४ से सभी गैर-सरकारी स्कूलों को मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य हो गया और उन पर शिक्षा-विभाग का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता

१९०४ से पूर्व विश्वविद्यालयों के नियमों में बहुत शिथिलता थी। जिन विद्यालयों को मान्यता नहीं प्राप्त थी, उनके छात्र भी विश्वविद्यालयों द्वारा ली जाने

1. *Government Re olution on Educational Polic*}, 1904.

वाली 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे सम्मिलित हो सकते थे। १९०४ के 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' द्वारा इस परीक्षा के लिये तैयार करने वाले सभी स्कूलो को अपने क्षेत्र के विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। जिन स्कूलो को मान्यता नही प्राप्त थी, उनके छात्र 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे नही बैठ सकते थे। इस प्रकार माध्यमिक स्कूलो पर विश्वविद्यालय और शिक्षा विभाग—दोनो का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

मान्यता-प्राप्त विद्यालयो को सुविधायें

विश्वविद्यालय से मान्यता-प्राप्त विद्यालयो के छात्र 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे बैठ सकते थे। विद्यालयो को शिक्षा-विभाग से भी मान्यता प्राप्त करना आवश्यक था। उन्हे कुछ सरकारी नियमो का भी पालन करना पडता था। यदि स्कूलो को शिक्षा-विभाग से कोई लाभ न होता, तो वे मान्यता-प्राप्त करने के इच्छुक न होते। अत मान्यता-प्राप्त माध्यमिक विद्यालयो को शिक्षा विभाग से अधोलिखित सुविधायें प्राप्त करने की व्यवस्था की गई —

१ मान्यता-प्राप्त स्कूलो के छात्र, सरकार द्वारा ली जाने वाली सभी परीक्षाओ मे प्रविष्ट हो सकेंगे।

२ ऐसे विद्यालय सरकार से सहायता-अनुदान प्राप्त करके आर्थिक लाभ उठा सकेंगे।

३ राजकीय छात्रवृत्तियो का उपभोग करने वाले विद्यार्थियो को अपने यहाँ प्रवेश दे सकेंगे।

विद्यालयो को मान्यता प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन देने, और इस प्रकार उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये राज्य की ओर से गैर-सरकारी स्कूलो को अधिक सहायता अनुदान देना प्रारम्भ किया गया। उन पर कडा नियन्त्रण रखने के लिये निरीक्षको की सख्या मे भी वृद्धि कर दी गई।

अमान्य विद्यालयो के छात्रो पर प्रतिबन्ध

मान्यता प्राप्त करने की शर्त निर्धारित करके सरकार का उन विद्यालयो पर अधिकार स्थापित हो गया, जो अपने छात्रो को 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे भेजते थे। परन्तु कुछ मिडिल स्कूल भी थे, जिन्हे 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा से कोई प्रयोजन नही था। वे न तो मान्यता चाहते थे, और न सहायता अनुदान। उनका एकमात्र उद्देश्य—विद्यार्थियो को निम्न कक्षाओ म शिक्षा प्रदान करके मान्यता प्राप्त स्कूलो मे भेजना था। इस प्रकार के विद्यालयो को स्वतन्त्र छोडना उचित न समझा गया। अत. यह नियम बना दिया गया कि किसी भी अमान्य (Unrecognised) विद्यालय का छात्र मान्यता प्राप्त स्कूल मे प्रवेश नही पा सकेगा। फलत विवश होकर मिडिल स्कूल भी सरकार से मान्यता प्राप्त करने लगे। इस प्रकार सभी श्रेणी के शिक्षालयो पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

सरकार की नई नीति की भारतीयो ने कटु आलोचना की। उनका कथन था कि सरकार माध्यमिक विद्यालयो पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करके भारतीयो के शिक्षा-कार्यों और उनकी राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना चाहती थी। यह कथन भविष्य मे निराधार सिद्ध हुआ। परन्तु सरकारी नियन्त्रण से माध्यमिक विद्यालयो की स्वतन्त्रता अवश्य नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त, सहायता-अनुदान एवं मान्यता प्राप्त होने से उनके कार्य मे शिथिलता भी आ गई। किन्तु इसके विपरीत, विद्यालयो को पर्याप्त लाभ भी हुआ। सरकारी निरीक्षण के कारण उनके शिक्षण-कार्य मे सुधार हुआ और सभी विद्यालयों के शिक्षण-स्तर मे समानता स्थापित हो गई।

माध्यमिक विद्यालयो की गुणात्मक उन्नति

कर्जन माध्यमिक विद्यालयो की गुणात्मक उन्नति के लिये बहुत चिन्तित था। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने निम्नलिखित आदेश दिये :—

१. माध्यमिक विद्यालयो के लिये प्रशिक्षित अध्यापको की संख्या और कार्य-क्षमता मे उन्नति की जाय। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षण-महाविद्यालयो का सुधार किया जाय और उनकी संख्या में वृद्धि की जाय।

२. माध्यमिक विद्यालयो के पाठ्यक्रम मे व्यावसायिक विषयो को स्थान दिया जाए।

३. मिडिल स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम 'भारतीय भाषायें' हो और माध्यमिक विद्यालयो मे प्रत्येक विद्यार्थी के लिये मातृभाषा का अध्ययन अनिवार्य हो।

४. माध्यमिक विद्यालयो की शिक्षा के स्तर को उच्च करने का भार निरीक्षको को सौंपा जाय और इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये निरीक्षको की संख्या मे वृद्धि की जाय।

५. गैर-सरकारी स्कूलो को अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय, जिससे वे शिक्षण की समुचित व्यवस्था करके शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठा सकें।

६. प्रत्येक जिले मे एक राजकीय विद्यालय की स्थापना की जाय, और गैर-सरकारी स्कूल उसको अपना आदर्श मानकर शिक्षण-कार्य करें।

कर्जन और प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कर्जन के विचार अति उदार थे। 'शिमला-सम्मेलन' मे अपना भाषण देते हुए उसने कहा : "प्राथमिक शिक्षा से मेरा अभिप्राय —जन-साधारण को मातृ-भाषा की शिक्षा देना है। मैं उन व्यक्तियों मे हूँ जो अनुभव कि सरकार ने इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है। भारत को

अधिक भय अज्ञानता से है। वस्तुत अज्ञानता ही अविश्वास, अन्धविश्वास, असताप एव अनैतिकता का मूल कारण है। अज्ञानता का विनाश केवल ज्ञान से हो सकता है। हम भारतीय जनता को जितना ही अधिक शिक्षित बनायेंगे, उतना ही अधिक वह सुखी होगी और उसी अनुपात मे वह राजनैतिक जीवन के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी।'[1]

कर्जन की प्रारम्भिक शिक्षा-नीति कुछ भिन्न थी। उच्च शिक्षा म तो वह केवल गुणात्मक उन्नति चाहता था, परन्तु प्राथमिक शिक्षा म वह विस्तार के साथ साथ छात्रो की योग्यता मे भी वृद्धि चाहता था। सख्यात्मक (Quantitative) वृद्धि के सम्बन्ध मे उसका विचार था कि—

१ प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की पहले से अधिक आवश्यकता है।
२ प्राथमिक शिक्षा की प्रगति मे सदैव शिथिलता रही है।
३ प्राथमिक शिक्षा की मन्द प्रगति का कारण यह है कि उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता नही दी गई है।

प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक (Qualitative) उन्नति के लिए उसकी नीति निम्नाकित सिद्धान्तो पर आधारित थी —

१ प्राथमिक विद्यालयो के अध्यापको के प्रशिक्षण की व्यवस्था।
२ पाठयक्रम मे सुधार।
३ सहायता अनुदान मे सुधार।

कर्जन ने उपरिकथित दोनो दिशाओ मे प्राथमिक शिक्षा के लिए जो काय किये उनका अध्ययन हम नीचे करगे —

प्राथमिक विद्यालयो की सख्यात्मक वृद्धि

१९वी शताब्दी के अन्त मे भारत पर महामारी और अकाल का भयकर प्रकोप रहा था। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयो का नवनिर्माण स्थगित हो गया था। अत कर्जन ने उनकी सख्या मे वृद्धि करने के लिए उदारतापूवक अनावर्तक अनुदान

---

1 'Primary Education—by which I understand the teaching of the masses in the vernaculars—opens a wider and more contested field of study I am one of those who think that Government has not fulfilled its duty in this respect What is the greatest danger in India ? What is the source of suspicion super stition outbreaks crime ? It is ignorance And what is the only antidote to ignorance ? Knowledge In proportion as we teach the masses, so we shall make their lot happier and in proportion as they are happier, so they will become more useful members of the body politic'—**Curzon's** *Speech at the Simla Conference, 1901*

(Non recurring Grant) दिया। साथ ही प्राथमिक विद्यालयों को दिये जाने वाले सहायता-अनुदान में वृद्धि कर दी। जिला-परिषदों और नगरपालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का ½ भाग मिलने लगा, जबकि उन्हें अब तक केवल ⅓ मिलता था। कर्जन की इस नीति के फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। १९०२ में इन विद्यालयों की संख्या ९३,६०४ और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की यौगिक संख्या ३०,७६ ६७१ थी। १९११ में विद्यालयों की संख्या बढ़कर १,१८,२६२ और विद्यार्थियों की संख्या ४८,०६,७३६ हो गई।

प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति

प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति के लिए कर्जन ने निम्नलिखित कार्य किये —

(१) अध्यापकों का प्रशिक्षण—प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या बहुत कम थी। अतः कर्जन ने इस बात पर बल दिया कि अध्यापकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण-विद्यालयों का निर्माण किया जाय। प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष नियत की गई। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह थी कि अध्यापकों को कृषि का सामान्य ज्ञान भी दिया जाता था, जिससे वे ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों को कृषि की शिक्षा दे सकें। ग्रामीण छात्रों के लिये कृषि-शिक्षा की व्यवस्था करके कर्जन ने वास्तव में अत्युत्तम कार्य किया।

(२) पाठ्य क्रम में सुधार—कर्जन के मतानुसार प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति के लिए पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाना आवश्यक था। वह 'भारतीय शिक्षा-आयोग' के विचार से सहमत नहीं था कि विद्यालयों के पाठ्यक्रम को सरल बना दिया जाय। इसके विपरीत, वह पाठ्य-क्रम में अधिक-से-अधिक विषयों को सम्मिलित करना चाहता था। अतः उसने पाठ्य क्रम में लिखने पढ़ने और गणित के अतिरिक्त कृषि को भी स्थान दिये जाने की इच्छा व्यक्त की। उसने सिफारिश की, कि—जिन विद्यालयों में सुयोग्य शिक्षक हों, उनमें 'किंडरगार्टन' (Kindergarten) एवं 'आब्जेक्ट पद्धति' (Object Method) को अपनाया जाय। उसका विश्वास था कि इस पद्धति का प्रयोग करने से भारतीयों के स्वाभाविक मानसिक दोषों का निवारण हो जायेगा और उनकी तर्क शक्ति का विकास होगा। प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों के लिये शारीरिक व्यायाम आवश्यक कर दिया गया।

कर्जन का विचार था कि पाठ्यक्रम का सम्बन्ध स्थानीय वातावरण से होना आवश्यक है। अतः उसने ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों के लिए विभिन्न पाठ्य क्रमों की व्यवस्था की। उसने ग्रामीण विद्यालयों के लिए कृषि की शिक्षा देना वांछनीय बताया। परन्तु साथ ही उसने इस बात पर बल दिया कि छात्रों को ऐसी शि दी जाय जिससे वे कुशल कृषक, विचारक एवं परीक्षण-कर्त्ता बन सकें

विक्रय मे अपने हित की रक्षा कर सकें। ग्रामीण बालको को इस प्रकार की शिक्षा दिये जाने के विचार अति श्रेष्ठ थे। परन्तु दुर्भाग्यवश, कर्जन के विचारो को कार्यरूप मे परिणत न किया जा सका। कृषि को पाठ्य-क्रम मे अतिरिक्त विषय के रूप मे स्थान दिया गया और ग्रामीण विद्यालयो के पाठ्य-क्रम को नागरिक विद्यालयो के पाठ्य-क्रम की अपेक्षा सरल बना दिया गया।

सहायता-अनुदान

'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों को सहायता-अनुदान देने के लिये 'परीक्षा-फल के अनुसार वेतन प्रणाली' का अनुसरण किया जाने लगा था। कर्जन ने इस प्रणाली को सर्वथा अनुपयुक्त ठहराया। इसके स्थान पर उसने शिक्षको की योग्यता, विद्यालयों की कार्य-क्षमता और छात्रो की संख्या आदि के आधार पर सहायता-अनुदान देने की प्रणाली प्रचलित की। यद्यपि सहायता-अनुदान मे दी जाने वाली धन-राशि अपर्याप्त थी, तथापि इस प्रणाली से प्राथमिक विद्यालयो का बहुत हित हुआ।

कर्जन के अन्य शिक्षा-कार्य

कर्जन ने सामान्य शिक्षा के साथ-साथ, शिक्षा के अन्य क्षेत्रो की ओर भी ध्यान दिया। उसके प्रयास के फलस्वरूप कृषि, कला और नैतिक शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त, उसने पुरातत्व विभाग का निर्माण किया, केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना की, और छात्रो को विदेश मे अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्तियाँ दी। हम इस पर नीचे विहंगम दृष्टि डाल रहे हैं —

(१) कृषि-शिक्षा—अपनी प्रखर बुद्धि के कारण कर्जन को यह समझते देर न लगी कि भारत कृषि-प्रधान देश है, और इसलिए कृषि-शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा मे अब तक कुछ कॉलेजो की स्थापना करके थोडा-सा कार्य किया जा चुका था। परन्तु इन कॉलेजो मे कृषि का व्यावहारिक ज्ञान देने एव कुशल कृषको को उत्पन्न करने की क्षमता का अभाव था। कर्जन को कृषि शिक्षा की इस शोचनीय दशा से बहुत दु ख हुआ। अत उसने कृषि-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये अधोलिखित कार्य किये —

१. भारत के प्रत्येक प्रान्त मे कृषि-विभाग का निर्माण किया और कृषि कार्यो तथा कृषि-शिक्षा को इसे सौप दिया।
२ बिहार प्रान्त मे पूसा नामक स्थान पर केन्द्रीय गवेषण-शाला (Central Research Institute) स्थापित की, और इसमे कृषि-सम्बन्धी सर्वोच्च शिक्षा एव अनुसधान-कार्य की व्यवस्था की।
३ कर्जन ने निश्चय किया कि प्रत्येक प्रान्त मे एक कृषि-कॉलिज खोला जाय, जिसमे पूर्ण शिक्षण-सामग्री से युक्त प्रयोगशालायें हो और कॉलिज से सम्बद्ध कृषि का एक फार्म हो।

४ मिडिल और हाई स्कूलों के पाठ्य-क्रमो मे कृषि के विषय को स्थान दिया जाय।

५ कृषकों को शिक्षा देने के लिये कृषि की विशिष्ट कक्षायें खोली जायें।

६ भारतीय भाषाओं द्वारा कृषि की शिक्षा देने के लिये उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन किया जाय।

(२) **कला की शिक्षा**—कला की शिक्षा को स्थिरता एवं प्रोत्साहन देने के लिये कर्जन का नाम सदैव गर्व से लिया जायगा। १८९३ से कला-विद्यालयों के सम्बन्ध मे दो विचारधारायें प्रवाहित हो रही थी। प्रथम विचारधारा के लोगों का मत था कि भारत के कला-विद्यालय भारतीय कलाओं की उन्नति करने मे असफल हुए है, अत उनको बन्द कर देना चाहिये। दूसरी विचारधारा को मानने वाले व्यक्तियों का कथन था कि कला-विद्यालयों के रूप को तो परिवर्तित कर देना चाहिये, पर उन्हे बन्द नही करना चाहिये। कर्जन दोनों विचारधाराओं का अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचा कि कला-विद्यालयों मे सुधार करके उन्हे चलते रहने दिया जाय। इनमें सुधार करने के लिये उसने निम्नांकित सुझाव दिये —

१. कला-विद्यालयों का प्रमुख कार्य—भारतीय कलाओं और इन कलाओं से सम्बन्धित उद्योगों को प्रोत्साहित करना होना चाहिये।
२ कला-विद्यालयों को व्यावसायिक रूप नही प्रदान करना चाहिये।
३ इन विद्यालयों का उद्देश्य—छात्रों की ऐसी कलाओं और उद्योग-कलाओं की शिक्षा देना होना चाहिए, जिन्हे विद्यार्थी अपने जीविकोपार्जन का साधन बनाना चाहते है।
४. इन विद्यालयों को दूकानों से परिणत नही किया जाना चाहिये, और न शिक्षाधिकारियों को उनसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने चाहिये।
५. शिक्षण का कार्य ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिये, जो कला-विशेषज्ञ हो और जिन्होंने भारतीय कला-कालिजों तथा विद्यालयों मे शिक्षा ग्रहण की हो।
६. अनेक कलाओं की शिक्षा दिये जाने की अपेक्षा कुछ चुनी हुई कलाओं की विशेष शिक्षा दी जानी चाहिये।
७. विद्यार्थियों से कुछ शुल्क अवश्य लिया जाना चाहिये। नि शुल्क प्रवेश और छात्रवृत्तियाँ देने की प्रथा को समाप्त कर देना चाहिये।
८. ज्यो ही छात्र कला की उत्तम वस्तुएँ बनाने के योग्य हो जायें, उन्हे कुछ पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये।
९. औद्योगिक कलाओं की शिक्षा का सम्बन्ध स्थानीय उद्योग-कलाओं से अवश्य होना चाहिये।

कर्जन के सुझावों के फलस्वरूप कला-विद्यालय उपरोक्त विचारधाराओं के बीच में पिसने से बच गये। उनके उद्देश्यों, विधियों एवं संगठन में परिवर्तन हो गया और उन्होंने एक निश्चित मार्ग पर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। परन्तु कला विद्यालयों और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई।

(३) नैतिक शिक्षा—भारतीय शिक्षा का इतिहास बताता है कि सरकार धार्मिक तटस्थता की नीति में आस्था रखती थी। धार्मिक शिक्षा को सामान्य विद्यालयों में कोई स्थान नहीं दिया गया था। 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने सिफारिश की थी कि कॉलेजों के पाठ्य-क्रम में नैतिक शिक्षा के लिये एक 'प्रारम्भिक नैतिक पुस्तक' (Moral Primer) रखी जाय। 'शिमला-सम्मेलन' में धार्मिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार-विमर्श हुआ। कर्जन का मत था कि नैतिक शिक्षा के लिये पुस्तक को रखा जाना निरर्थक था। उसने कहा—"यदि छात्र युकलिड की पुस्तक को रट सकते हैं, तो वे नैतिक शिक्षा की पुस्तक को भी रट लेंगे।"[1] इससे कोई लाभ नहीं होगा। विद्यार्थियों पर नैतिकता का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पड़ना चाहिये। केवल ऐसी ही दशा में उनकी आध्यात्मिक एवं नैतिक उन्नति हो सकेगी। अतः छात्रों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिये उत्तम अनुशासन, सच्चरित्र अध्यापकों, सुव्यवस्थित छात्रावासों, पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत महान् पुरुषों की जीवनियों और छात्रों तथा शिक्षकों में निकट सम्पर्क की आवश्यकता है। यदि विद्यार्थी इस प्रकार के वातावरण में रहेंगे, तो उनका आध्यात्मिक एवं नैतिक उत्थान स्वाभाविक रूप में होगा। इसके लिये प्रत्यक्ष रूप में शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। अपने विचारों को व्यक्त करते समय कर्जन ने केवल राजकीय विद्यालयों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा था। जहाँ तक गैर-सरकारी स्कूलों का प्रश्न था, वह चाहता था कि उनमें धार्मिक शिक्षा दी जाय। कारण यह था कि वह मिशनरियों को धर्म प्रचार की सुविधा देने के पक्ष में था।

(४) पुरातत्त्व विभाग का निर्माण—कर्जन को भारतीय स्मारकों के प्रति श्रद्धा और प्रेम था। उनकी देख-रेख के लिए उचित व्यवस्था नहीं थी। अतः कर्जन ने 'पुरातत्त्व विभाग' (Department of Archaeology) की स्थापना करके स्मारकों के संरक्षण का कार्य उसे सौंप दिया। १९०४ में उसने 'प्राचीन स्मारक-संरक्षण अधिनियम' भी पारित करा दिया। इस 'अधिनियम' ने प्राचीन स्मारकों को सुरक्षित रखकर भारतीय संस्कृति के अवशेषों को यथावत् बनाये रखने में प्रशंसनीय सहयोग दिया है।

(५) केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना—केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना का श्रेय कर्जन को है। 'वुड के घोषणा-पत्र' के अनुसार प्रान्तों में शिक्षा विभाग का

---

1. "If pupils can cram Euclid, there is nothing to prevent them from cramming ethics."—*Lord Curzon in India*, Vol II pp. 53–4

प्रतिष्ठापन हो गया था। परन्तु अभी तक कोई ऐसी संस्था या पदाधिकारी नही था जो केन्द्रीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी परामर्श दे सके। इस कार्य को कर्जन ने पूरा किया। उसने केन्द्रीय शिक्षा-विभाग का निर्माण करके एक 'डाइरेक्टर जनरल ऑफ एजूकेशन' की नियुक्ति की। इस पद को सर्वप्रथम एच० डब्ल्यू० औरेंज (H. W. Orange) ने सुशोभित किया।

(६) **विदेशों में अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियाँ**—विद्यार्थी-समाज मे कर्जन का नाम कभी विस्मृत न किया जा सकेगा। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने कुशाग्र बुद्धि वाले विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ देकर विदेशो मे प्रौद्योगिक (Technological) शिक्षा ग्रहण करने के लिये भेजा। यद्यपि छात्रवृत्तियो को प्रौद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया, तथापि कर्जन ने एक नवीन प्रथा का प्रारम्भ करके पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। आज उसी प्रथा के आधार पर अनेक भारतीय विद्यार्थी शिक्षा के विभिन्न विषयो का विदेशो मे अध्ययन कर रहे हैं।

भारतीय शिक्षा को कर्ज़न की देन

भारत आने वाले वाइसरायो मे लार्ड कर्जन का नाम प्रथम श्रेणी मे रखा जाता है। वह धुरन्धर विद्वान्, कुशल राजनीतिज्ञ, कर्त्तव्य-परायण शासक और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। "जो कार्य उसने ७ वर्ष मे किये, उन्हे कोई अन्य मनुष्य निश्चित रूप से दुगुने या तिगुने समय मे कर पाता।"[1] परन्तु पाश्चात्य सभ्यता का कट्टर समर्थक और भारतीय संस्कृति को हेय समझने के कारण वह इस देश के निवासियो का स्नेह-भाजन न बन सका। गोखले ने तो उसके प्रशासन की तुलना औरंगजेब के शासन से की थी।[2] किन्तु उदार हृदय भारतीयो ने उसे क्षमा कर दिया है। वस्तुत. शिक्षा के क्षेत्र मे आज उसके अनेक प्रशंसक हैं। वे बलपूर्वक कहते हैं कि कर्जन के शिक्षा-कार्यों के लिये भारत उसका सदैव ऋणी रहेगा। उनके कथन मे सत्य का कितना अंश है, इसी बात पर हमे यहाँ विचार करना है।

विश्वविद्यालयो एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे कर्जन गुणात्मक उन्नति चाहता था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने 'भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग' की नियुक्ति की और 'भारतीय विश्वविद्यालय-अधिनियम' पारित करवाया। कर्जन के इन प्रयासो के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा उठा और छात्रो की योग्यता मे वृद्धि हुई।

---

1. "What Curzon achieved in seven years would certainly have required twice or thrice as much time for any other man." —Nurullah & Naik : *op. cit.*, p. 451.

2. "For a parallel to such an administration we must, I think, go back to the times of Aurangzeb in the history of our own country."—Gokhale's *Speeches*, p. 680.

कर्जन ने माध्यमिक शिक्षा के स्तर को भी ऊँचा उठाने का प्रयास किया। इसी विचार से प्रेरित होकर उसने गैर-सरकारी स्कूलो को अधिक सहायता-अनुदान दिया और उनके निरीक्षण का समुचित प्रबन्ध किया। माध्यमिक शिक्षा को कर्जन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन—शिक्षा का माध्यम था। १९०२ तक हाई स्कूलो और मिडिल स्कूलो मे अंग्रेजी की तूती बोलती थी। उसने यह घोषित कर दिया कि १३ वर्ष की आयु से पूर्व बालको को अंग्रेजी की शिक्षा न दी जाय और माध्यमिक विद्यालयो के पूर्ण शिक्षा-काल मे मातृ-भाषा का अध्ययन अनिवार्य रूप से चले। "यदि शिक्षित वर्ग ही अपनी मातृ-भाषाओ की उपेक्षा करेंगे, तो निश्चय रूप से वे केवल बोलचाल की भाषाएँ रह जायेंगी, जिनका अपना कोई भी साहित्य नही होगा।"[1]

प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे कर्जन ने स्वीकार किया कि सरकार द्वारा उसकी अवहेलना की गई है। उसके मतानुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करके जन-साधारण को शिक्षित करना सरकार का स्पष्ट कर्त्तव्य था। उसने प्राथमिक विद्यालयो की संख्यात्मक वृद्धि और शिक्षा की गुणात्मक उन्नति को अपना ध्येय बनाया। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए कर्जन ने प्राथमिक विद्यालयो को अधिक आर्थिक सहायता दी, अध्यापको के प्रशिक्षण का प्रवन्ध किया और पाठ्यक्रम मे सुधार किया।

कर्जन ने देश की आवश्यकताओ को समझ कर कृषि और कला की शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया। उसने पुरातत्त्व विभाग का निर्माण करके भारतीय संस्कृति के प्राचीन अवशेषो को सुरक्षित रखा और केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना करके भारतीय शिक्षा का महान् कल्याण किया।

इस प्रकार, हम देखते है कि लार्ड कर्जन ने भारतीय शिक्षा के सभी अङ्गो को पुनर्संङ्गठित करने का भागीरथ प्रयास किया। शिक्षा-सुधार के जिस आन्दोलन का उसने इस शताब्दी के प्रारम्भ मे सूत्रपात किया, उसकी गति मे आज तीव्रता दृष्टिगोचर हो रही है। उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत की शिक्षा मे मातृभाषाओ के साथ-साथ, पाश्चात्य विज्ञानो को समाविष्ट करके शिक्षा की संज्ञा को निरूपित करने की अनेकानेक चेष्टायें की जा रही हैं।

अन्त मे, हम कह सकते हैं कि आधुनिक भारत—कर्जन की राष्ट्रीयता विरोधी नीति को विस्मृत करके उसकी शिक्षा-सुधार सम्बन्धी सेवाओं की स्मृति को सावधानी से संजो रहा है। डा० अमरनाथ झा के इस कथन मे पूर्ण सत्य का आभास मिलता है—"आज जब कि अगणित संघर्षों की स्मृति अतीत के गर्त मे विलीन हो चुकी है,

---

1. "If the educated classes neglect the cultivation of their own languages, these will assuredly sink to the level of mere colloquial dialects possessing no literature worthy of the name."
—*Government Resolution on Educational Policy, 1904*

सभी भारतीय उस महान् वायसराय की विवेकपूर्ण राज्य-मर्मज्ञता के प्रति अनुगृहीत हैं, जिसने हमारे प्राचीन स्मारकों के संरक्षण एवं हमारे शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने का इतना प्रयास किया। अपने इन कार्यों के लिये उन्हें आज भी स्मरण किया जाता है और भारतवासियों की अनेक पीढ़ियाँ इन कार्यों के लिये उसका गुणगान करेंगी।"[1]

सारांश

कर्ज़न का भारत में आगमन—जिस समय कर्ज़न भारत आया, उस समय यहाँ राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव हो चुका था। कर्ज़न पाश्चात्य सभ्यता का पुजारी और भारतीय राष्ट्रीयता का प्रबल विरोधी था। शिक्षा में उसकी विशेष अभिरुचि थी। अतः भारतीय शिक्षा की दयनीय दशा की ओर उसका ध्यान जाना स्वाभाविक था।

शिमला शिक्षा-सम्मेलन (१९०१)—इस सम्मेलन में प्रान्तों के शिक्षा-संचालकों और मिशनरियों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। इसमें किसी भारतीय को नहीं बुलाया गया और सम्मेलन की कार्यवाही को बिल्कुल गुप्त रखा गया। अतः भारतीय सशंकित हो उठे।

भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (१९०२)—इस आयोग की नियुक्ति भारतीय विश्वविद्यालयों की जाँच करने और उनमें सुधार करने के लिये सुझाव देने के विचार से की गई। आयोग ने अग्रलिखित सुझाव दिये—(१) विश्वविद्यालय शिक्षण का कार्य करें; (२) अध्यापकों की नियुक्ति करें; (३) सीनेट के सदस्यों की संख्या कम कर दी जाय, (४) सीनेट में अध्यापकों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाय; और (५) मान्यता-प्राप्त कॉलेजों का निरीक्षण किया जाय।

भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (१९०४)—इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों में अग्रलिखित परिवर्तन किये गये—(१) विश्वविद्यालय परीक्षा लेने के अतिरिक्त शिक्षण-कार्य करने लगे, (२) सीनेट के सदस्यों की संख्या ५० से १०० तक निश्चित कर दी गई, (३) बम्बई, कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों की सीनेटों में २० तथा अन्य में १५ सदस्य निर्वाचित किये जायेंगे; (४) सरकार को सीनेट द्वारा बनाये गये नियमों में संशोधन करने का अधिकार होगा; और (५) विश्व-*विद्यालयों के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार की सीमा निश्चित हो गई।*

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९०४)—इस प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों का विवेचन किया गया और शिक्षा के सभी अङ्गों को विकसित करने की नीति निर्धारित की गई।

---

1. "Now that the ashes of the numerous strifes are cold, all Indians are grateful to the wise statesmanship of the great Viceroy who did so much to preserve our ancient monuments and raise our educational standards. By these achievements he still lives, and generations of Indians will bless him for them."—Quoted by Lord Ronaldshay : *The Life of Lord Curzon*, Vol. II, p. 390.

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिये अनेक कार्य किये गये। माध्यमिक विद्यालयो को शिक्षा-विभाग और विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। अमान्य विद्यालयो के छात्रो को मान्यता-प्राप्त विद्यालयो मे प्रवेश पाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मान्यता-प्राप्त विद्यालयो को अधिक आर्थिक सहायता दी गई और उनके निरीक्षण का प्रबन्ध कर दिया गया।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक विद्यालयो की संख्या मे वृद्धि करने और उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने से लिये कर्जन ने सराहनीय कार्य किया। विद्यालयों को अधिक सहायता-अनुदान दिया गया। अध्यापको के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। पाठ्य-क्रम और सहायता-अनुदान प्रणाली मे सुधार किया गया।

अन्य शिक्षा-कार्य—कर्जन ने कृषि, कला और नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया। पुरातत्त्व-विभाग का निर्माण और केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना की। योग्य विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ देकर प्रौद्योगिक शिक्षा का अध्ययन करने के लिये विदेशो को भेजा।

TEST QUESTIONS

1 "The corner-stone of Curzon's educational policy was the complete abandonment of the old policy of *laissez faire* and the extension of state-control over the whole field of education." Elucidate this statement.
"कर्जन की शिक्षा-नीति का अनिवार्य आधार—पुरानी अहस्तक्षेप नीति का पूर्ण परित्याग और शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र पर राज्य-अधिकार का प्रसार था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

2 Write a short essay on 'Curzon's contribution to Indian education'.
"भारतीय शिक्षा को कर्जन की देन" पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

3 What services did Curzon render to the cause of Primary Education in India ?
कर्जन ने भारत मे प्राथमिक शिक्षा की प्रगति के लिये क्या कार्य किये ?

२५

राष्ट्रीय आन्दोलन और शिक्षा की प्रगति

(१९०५–१९२१)

प्रस्तावना

२०वी शताब्दी के उषा-काल मे राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक हिला दिया था। कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण परिस्थिति पहले से अधिक गम्भीर हो गई थी। भारतीयो के प्रति उसके उद्दण्ड एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार ने उनकी क्रोधाग्नि को प्रज्ज्वलित कर दिया था। देश के नेताओ ने अंग्रेजो के अमानुषिक अत्याचारो और उनकी साम्राज्यवादी नीति का भंडाफोड करना प्रारम्भ किया। शिक्षित वर्ग ने अंग्रेजो की उस अर्थनीति की कटु आलोचना की, जिसकी छाया मे—"विदेशी भारत का शोषण कर रहे थे। हमारे प्राकृतिक साधन निरन्तर निचोडे जा रहे थे, देश मे दुर्भिक्षो का तांता लगा था और भारतीय जनता तथा उसके उद्योगो को शासन की रक्षा न प्राप्त होने के कारण निर्धनता तीव्र गति से बढ रही थी।"

भारतीय नवयुवक क्रान्तिकारी भावनाओ से ओत-प्रोत देश के अतीत वैभव की पुनर्स्थापना का स्वप्न देख रहे थे। कुछ कर्मठ समाज-सेवक जनता को सन्देश दे रहे थे कि जब भारतवासी अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझने लगेंगे, तभी देश अपने अतीत गौरव की पुन प्राप्ति कर सकेगा। इन सब बातो के फलस्वरूप १९०४ मे राष्ट्रवाद का आन्दोलन अपने चरम बिन्दु पर था। उस समय के लगभग कुछ ऐसी विदेशी घटनायें हुईं, जिन्होने भारतीय मस्तिष्क को विस्तार देकर जनता की निराशा का अन्त कर दिया। एबीसीनिया मे हब्शियो ने इटली को तथा जापानियो ने रूस को पराजित किया। मिस्र, ईरान, टर्की और रूस मे जन-आन्दोलनो का वेग बढ रहा था। इन सब घटनाओ ने यूरोपीय जातियो की अजेयता के बुलबुले को फोड दिया और एशियाई जातियो मे नव-जीवन तथा नव-साहस का संचार किया।

ऐसे समय मे २० जुलाई, १६०५ को लार्ड कर्ज़न की नौकरशाही ने मूर्खता पूर्ण एव निष्प्रयोजन नीति का पालन करके बगाल-विभाजन की घोषणा की। इसको सुनकर सम्पूर्ण बगाल एव साथ उठ खडा हो गया और काग्रेस ने अपने ७ अगस्त १६०५ के 'कलकत्ता-अधिवेशन' राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन के चार मुख्य अग थे—(अ) स्वराज्य की प्राप्ति, (ब) विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार, (स) स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग, और (द) राष्ट्रीय शिक्षा की माँग। यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल 'राष्ट्रीय शिक्षा' से है। अत हम नीचे इसका अध्ययन करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा का विकास (१६०५-२१)

राष्ट्रीय शिक्षा की भावना का आविर्भाव—राष्ट्रीय शिक्षा की भावना का आविर्भाव वर्तमान शती के प्रथम दशक मे माना जाता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि १६वी शताब्दी मे राष्ट्रीय शिक्षा का विचार अविद्यमान था। १८८२ के 'भारतीय शिक्षा-आयोग' की जाँच ने शिक्षा के क्षेत्र मे जागृति उत्पन्न कर दी थी और शिक्षित भारतीयो ने 'आयोग' के समक्ष तत्कालीन भारतीय शिक्षा के कुछ दोषो की ओर सकेत किया था। उन्होने प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से असन्तुष्ट होकर अनेक व्यक्तिगत शिक्षा सस्थाओ का निर्माण किया था, जिनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था क्योंकि वे कतिपय बातो मे राजकीय तथा मिशन स्कूलो के भिन्न थी। इन विद्यालयो की प्रमुख विशेषताये निम्नलिखित थी —

१ इनका संचालन भारतीयो द्वारा किया जाता था।
२ स्कूल-प्रबन्धको और शिक्षको मे आत्म-त्याग तथा नि स्वार्थ सेवा की भावना थी।
३ धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था थी।
४ भारतीयो की सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये निर्धारित पाठ्य-क्रम मे कुछ और विषय सम्मिलित कर दिये गये थे।
५ प्राचीन परम्पराओ और सभ्यता के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये सस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाता था।
६ आधुनिक भारतीय भाषाओ के शिक्षण का ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।
७ विद्यार्थियो से कम शुल्क लिया जाता था।

इन विद्यालया के सम्बन्ध मे यह बात उल्लेखनीय है कि ये राजकीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत थे। इनका प्रमुख उद्देश्य—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के कुछ दोषो को दूर करना था। इनमे से अधिकाश किसी विशेष सम्प्रदाय के द्वारा स्थापित किये गये थे। अत इनको 'राष्ट्रीय विद्यालयो' की सज्ञा देना उपयुक्त न होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा की माँग—हम ऊपर लिख चुके है कि बग भग के शीघ्र बाद ही राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकडा और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की गई। ज्यो-ज्यो राष्ट्रीय आन्दोलन उग्रता धारण करता गया, त्यो त्यो भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा स्वदेशीकरण की माँग प्रबल होती गई। ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय शिक्षा के आग्लीयकरण की अत्यधिक निन्दा करते हुए कहा कि भारत के राष्ट्रीय जीवन एव राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल बनाने के लिये भारतीय शिक्षा पर विदेशी प्रभुत्व से अधिक उत्तम उपाय और कोई नही हो सकता है।[1]

महात्मा गाधी ने भी जोरदार शब्दो म भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की कटु आलोचना की। उन्होंने प्रचलित शिक्षा पणाली में निम्नाकित दोष बताये —

१ यह अन्यायपूर्ण शासन से सम्बन्धित है।
२ यह विदेशी सस्कृति पर आधारित है और भारतीय सस्कृति को इससे पूर्णतया बहिष्कृत कर दिया गया है।
३ इसका एकमात्र उद्देश्य—मानसिक विकास करना है। इसका हृदय पर कोई प्रभाव नही पडता है, और इसमे हाथ के कार्य का कोई स्थान नही है।
४ इसम शिक्षा का माध्यम अग्रेजी है। वास्तविक शिक्षा, विदेशी माध्यम के द्वारा नही दी जा सकती है।[2]

राष्ट्रीय शिक्षा की रूपरेखा

१९०५ से १९२१ तक भारतीय स्वतन्त्रता सघर्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा की माग पर देश के नेता बल देते रहे। ऐनी बेसेन्ट और महात्मा गाधी के अतिरिक्त अन्य भारतीयो ने भी तत्कालीन शिक्षा प्रणाली के दोषो का विश्लेषण किया। परन्तु जब राष्ट्रीय शिक्षा की रूप-रेखा निश्चित करने का प्रश्न उठता था, तब भारतीय नेता

---

1 "Nothing can more swiftly emasculate national life, nothing can more surely weaken national character, than allowing the education of the young to be controlled by foreign influences, to be dominated by foreign ideals' —Quoted by **Lala Lajpat Rai** in *The Problem of National Education in India*, p 28

2 'The existing system of education is defective, apart from its association with an utterly unjust Govenment, in three most important matters (a) It is based upon forign culture to the almost entire exclusion of indigenous culture, (b) It ignares the culture of the heart and the hand, and confines itself simply to the head and (c) Real education is impossible through a foreign medium''—**Mahatma Gandhi** *Young India* (1919 22), p 451

और शिक्षा-विशेषज्ञ एकमत नही हो पाते थे। प्रारम्भ मे ऐसा होना स्वाभाविक था। परन्तु समय की गति के साथ-साथ उनके विचारो मे स्थिरता आती चली गई और कुछ आधारभूत सिद्धान्तो पर राष्ट्रीय शिक्षा की रूप-रेखा निर्धारित कर दी गई। ये सिद्धान्त अधोलिखित थे :—

(१) **भारतीय नियंत्रण**—राष्ट्रीय नेताओ ने भारतीय शिक्षा पर ब्रिटिश नियन्त्रण का प्रबल विरोध किया। उन्होने माँग की—कि शिक्षा को पूर्णतया भारतीयो के हाथ मे सौप दिया जाय। "भारतीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिये, जो भारतीय धार्मिक भावना से सराबोर होते हुए भी साम्प्रदायिकता से पृथक् रहे और छात्रो के समक्ष भक्ति, ज्ञान एवं नैतिकता के भारतीय आदर्शों को उपस्थित करे।"[1]

(२) **स्वदेश-प्रेम की शिक्षा**—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली मे राजभक्ति की शिक्षा दी जाती थी और भारतीय परम्पराओ तथा संस्कृति का कोई स्थान नही था। ऐसी शिक्षा-प्रणाली को सर्वथा अनुपयुक्त ठहराया गया और कहा गया कि छात्रो को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये, जिससे उनमे स्वदेश-प्रेम की भावना प्रस्फुटित हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पाठ्य-क्रम मे भारतीय साहित्य, इतिहास, विज्ञान, कला-कौशल और राजनीति आदि को सम्मिलित किया जाए।[2]

(३) **दास्य अनुकरण का अन्त**—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य—भारतीयो पर पाश्चात्य आदर्शों को लादना और एक ऐसा वर्ग तैयार करना था, जो भारतीय होते हुए भी पाश्चात्य विचारो का हो। ऐसी शिक्षा-प्रणाली को दोष-युक्त बताया गया। अत. राष्ट्रीय नेताओ ने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो छात्रो के समक्ष भारतीय राष्ट्रीयता की विशेषताओ को रखे। इन्ही विशेषताओ के अनुसार छात्रो का चारित्रिक एवं मानसिक विकास किया जाना चाहिये। "ब्रिटिश आदर्श ब्रिटेन के लिये अच्छे हैं, परन्तु भारतीय आदर्श ही भारत के लिये अच्छे होंगे।

---

1. "It must be controlled by Indians, shaped by Indians, carried on by Indians. It must hold up Indian ideals of devotion, wisdom and morality, and must be permeated by the Indian religious spirit rather than fed on the letter of the creeds."—Annie Besant in *The Problem of National Education in India*, p. 28.

2. "National education must live in an atmosphere of proud and glorious patriotism and this atmosphere must be kept sweet, fresh and bracing by the study of Indian literature, Indian history, Indian triumphs in science, in art, in politics, in war, in colonization, in manufactures, in trade, in commerce."—*Ibid*, p. 29.

भारत की राष्ट्रीयता से अधिक श्रेष्ठ और अधिक उत्तम राष्ट्रीयता का निर्माण ईश्वर ने नही किया है।"[1]

(४) पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानो का अध्ययन—राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थकों ने अनुभव किया कि विज्ञान के इस प्रगतिशील युग मे भारत का बाह्य देशो से सम्पर्क स्थापित होना आवश्यक है। यह उसी दशा मे सम्भव होगा, जब पाठ्य-क्रम मे पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानो को उचित स्थान दिया जाय और भारतीय छात्रो को उनमे विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्राप्त हो। लाला लाजपत राय का मत था कि—"यूरोपियन भाषाओ, साहित्य और विज्ञानो के अध्ययन को भारत मे प्रोत्साहन न देना मूर्खता और पागलपन होगा। अभी हमे उनका यथेष्ट ज्ञान नही प्राप्त हुआ है।"[2]

(५) अंग्रेजी के प्रभुत्व का अन्त—राष्ट्रीय शिक्षा मे अंग्रेजी का प्रभुत्व अवाछनीय है। अग्रेजी को न तो पाठ्य-क्रम मे प्रधानता दी जाय, और न इसे शिक्षा का माध्यम ही रखा जाय। इसके विपरीत, भारतीय भाषाओ को प्रमुखता दी जाय। गाधीजी के मतानुसार—अग्रेजी का अध्ययन केवल व्यावसायिक और राजनैतिक लाभ के लिये किया जाता था। मनुष्य अच्छा राजपद और स्त्रियाँ उत्तम वर प्राप्त करने के विचार से अग्रेजी का अध्ययन करते थे। समाज मे अग्रेजी का घुन लग गया था और यह दासता एवं पतन का प्रतीक था।[3] साहित्य मे रुचि रखने वाले भारतीय अग्रेजी का अध्ययन तो करें, परन्तु एक भी भारतीय को अपनी मातृभाषा की अवहेलना नही करनी चाहिये।[4]

1. "British ideals are good for Britain, but it is India's ideals that are good for India. India is herself, and need not to be justified, for verily, God has evolved no greater, no more exquisite nationality than India's"—**Annie Besant** in *The Problem of National Education in India*, pp. 29–30.

2 "In my judgment it will be a folly and madness to try to discourage the study and dissemination of European languages, European literatures and European sciences in India. The fact is that we have not had enough of them."—**Lala Lajpat Rai** : *op. cit.*, p. 85.

3. "Our boys think that without English they cannot get Government service. Girls are taught English as a passport for marriage. The canker has so eaten into the society that in many cases the only meaning of education is a knowledge of English. All these are for me signs of our slavery and degradation."

—**Mahatma Gandhi** · *op. cit.*, pp. 822-823.

4. "I would have our young men and women with literary tastes to learn as much of English and other world languages as they like. But I would not have a single Indian to forget, neglect or be ashamed of his mother-tongue."—*Ibid* · p. 484.

(६) व्यावसायिक शिक्षा पर बल—तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली ने देश के आर्थिक विकास में योग नही दिया था। अतः उसकी निन्दा की गई। भारतीय जनमत इस पक्ष मे था कि राष्ट्रीय शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा को उचित स्थान दिया जाय। ऐसा करने से ही देश की आर्थिक समस्या का समाधान होगा और जनता को निर्धनता से मुक्ति मिलेगी। भारत की प्रत्यक्ष निर्धनता का आधारभूत कारण—व्यावसायिक शिक्षा का अभाव है। अत राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम उद्देश्य—भारतीयो को ऐसी व्यावसायिक शिक्षा देना होना चाहिये जिससे वे अधिक धनोपार्जन कर सकें।[1]

दुर्भाग्यवश, व्यावसायिक शिक्षा के प्रश्न पर भारतीय नेताओ मे मतैक्य न हो सका। कुछ नेता मशीनो के प्रयोग के पक्ष मे थे और कुछ विपक्ष मे। गाधी जी की बेसिक शिक्षा की अपनी एक अलग योजना थी। इस मत-विभिन्नता के बावजूद भी उपरोक्त सिद्धान्तो के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की एक निश्चित योजना तैयार हो गई। परन्तु उसको प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय की शिक्षा तक कार्यान्वित करना सरल नही था। विद्यालयो के नव-निर्माण के लिये धन, विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापको और नवीन पाठ्य-क्रम आदि की आवश्यकता थी। किन्तु इन कठिनाइयो ने कर्म-क्षेत्र मे अवतरित नि स्वार्थ देश-सेवको को हतोत्साहित न किया और वे राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था करने मे जुट गये।

राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण

राष्ट्रीय विद्यालयो के निर्माण की दिशा मे जो प्रयास किये गये, उन्हे निम्नलिखित दो कालो मे विभाजित किया जा सकता है :—

१. (१९०५-१९११)—१९०५ मे बंगाल-विभाजन की घोषणा के फलस्वरूप सम्पूर्ण देश मे विरोध की लहर दौड गई। भारतीयों और विद्यार्थियो ने अपना विरोध व्यक्त करने के लिये सभायें की और जलूस निकाले। इस पर सरकार का दमन-चक्र प्रारम्भ हुआ। छात्रो को राजनीति से पृथक् रहने के लिये आदेश दिया गया, और इस आज्ञा का पालन न करने पर उनको विद्यालय से निकाल दिये जाने की धमकी दी गई। इन नवयुवको की छात्रो के इसका उत्तर स्वयं ही विद्यालयो का आविष्कार करके दिया। इन नवयुवको की शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझा गया। अत, बंगाल मे गुरदास बनर्जी की अध्यक्षता से 'राष्ट्रीय शिक्षा-समिति'[2] का संगठन किया गया। इस समिति ने पश्चिमी बंगाल मे ११, और पूर्वी बंगाल मे ४० राष्ट्रीय हाई स्कूलो का निर्माण किया।[3]

1. "India's phenomenal poverty is one of the tragic facts of its life, and it is mainly due to the lack of means of education Under the circumstances, the first aim of all publicly imparted education in India should be to increase the productive capacity of its citizens."—**Lala Lajpat Rai** : *op. cit.*, p. 209.

2. "Society for the Promotion of National Education in Bengal."

3. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India* (1907-12), para 670

वंगाल के बाहर इस प्रकार के स्कूलों की स्थापना नही हुई। केवल पूना के निकट तालेगांव स्थान पर 'समर्थ विद्यालय' निर्मित किया गया।

वंगाल मे गुरुदास वनर्जी के अतिरिक्त, रासविहारी घोष तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार में सराहनीय योग दिया। इनके संयुक्त प्रयास से कलकत्ता मे 'नेशनल कॉलेज' स्थापित किया गया और श्री अरविन्द इसके प्रथम प्रिंसिपल नियुक्त हुए। कलकत्ता मे एक 'टैकनिकल इंस्टीट्यूशन' का भी निर्माण किया गया, जिसने आगे चलकर 'जादवपुर कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड टेकनॉलॉजी' का रूप धारण किया।

'राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन' एक अन्य रूप में भी दृष्टिगोचर हुआ। १९०१ में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्तिनिकेतन में एक 'ब्रह्मचर्य आश्रम' खोला, जो आज 'विश्व-भारती' के रूप में विकसित दिखाई देता है। इसी समय के लगभग 'आर्य-प्रतिनिधि सभा' ने वृन्दावन और हरिद्वार में गुरुकुल स्थापित किये। उनमे वैदिक मन्त्रों की मधुर ध्वनियाँ भारत के अतीत की गौरव-गाथा गुंजरित करने लगीं।

इस काल में भारत का बच्चा-बच्चा राष्ट्रीय शिक्षा की भावनाओं से सराबोर हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो नवनिर्मित राष्ट्रीय विद्यालयों में प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का पुनरुत्थान अनिवार्य रूप से होगा। परन्तु दुर्भाग्य-वश, राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन धीरे-धीरे शिथिल पड़ता गया और १९११ में बंगाल-विभाजन के अन्त के साथ वह भी समाप्त हो गया। कलकत्ता का 'नेशनल कॉलेज' वन्द हो गया और अन्य विद्यालय भी विलीन हो गये।

२. (१९२०-१९२२)—१९२० में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन फिर प्रारम्भ हुआ। मॉटेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना (Montagu-Chelmsford Reform : १९१९) के सुधारो से असंतुष्ट और जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड (१९१९) से आतंकित भारतीयों ने १ अगस्त, १९२० को महात्मा गांधी ने नेतृत्व मे 'असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ किया। १९२० में कांग्रेस के 'नागपुर अधिवेशन' में महात्मा गांधी ने जनता से अपने बच्चों को स्कूलो और कॉलिजो से हटा लेने की ओर विभिन्न प्रान्तों मे राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलिजो को स्थापित करने की अपील की।[1] गांधी जी की अपील व्यर्थ न गई। सहस्रों विद्यार्थियों ने विद्यालयो का वहिष्कार कर दिया। इस कार्य में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्र अग्रणी रहे। उन्होंने विश्वविद्यालय के राष्ट्रीयकरण की माँग की, पर उन्हे सफलता न प्राप्त हुई। इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये जिन छात्रों ने विश्वविद्यालय का वहिष्कार किया था, उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये मौलाना मुहम्मद अली ने अलीगढ़ में 'जामिया मिलिया इस्लामिया' नामक विश्व-विद्यालय स्थापित किया। यह विश्वविद्यालय १९२५ में उठकर दिल्ली चला गया। भारत के अन्य भागों मे भी अलीगढ़ का अनुकरण किया गया और ४ माह से कम में ही

1. Dr. Pattabhi Sitaramayya : *History of the Indian National Congress*, Vol. I, p. 203.

'विहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ' और अन्य प्रकार के अनेक राष्ट्रीय स्कूलो तथा कॉलेजों की स्थापना हो गई।

१९२० का राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन का एक अङ्ग था। ५ फरवरी, १९२२ को चौरीचौरा नामक स्थान के गाधी जी को हिंसा के प्रयोग का दु खद समाचार प्राप्त हुआ। फलस्वरूप, उन्होने असहयोग आन्दोलन सहसा स्थगित कर दिया। इसका प्रभाव राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन पर भी पडा, और उसमे शैथिल्य आ गया। परन्तु प्रथम काल के आन्दोलन से अधिक व्यापक और सक्रिय होने के कारण यह चलता रहा और राष्ट्रीय शिक्षा-प्रसार की दिशा मे लाभप्रद कार्य करता रहा। इससे अग्रेज शासको को यह विश्वास हो गया कि तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली और उसके उद्देश्यो मे परिवर्तन करना आवश्यक था। राष्ट्रीय विद्यालयो के निर्माण ने शिक्षा-सुधारका को सशक्त बना दिया और उन्होने राष्ट्रीय विद्यालयो मे राष्ट्रीय शक्ति को एकत्रित तथा सगठित करने के लिए सक्रिय आन्दोलन की राह पकड ली।

१९२१-२२ तक विभिन्न प्रान्तो मे स्थापित किये गये राष्ट्रीय स्कूलो तथा कालेजो की सख्या का ज्ञान नीचे दी गई तालिका से हो जाता है —

राष्ट्रीय स्कूल तथा कॉलेज (१९२१–२२)[1]

प्रान्त	शिक्षा-सस्थायें	विद्यार्थी
असम	३८	१,६०८
वगाल	१९०	१४,८१९
विहार व उडीसा	४४२	१७,३३०
सयुक्त प्रान्त	१३७	८,४७६
पजाव	१९९	८,०४६
मध्य-प्रान्त	८६	६,३३८
वम्वई	१८९	१७,१००
मद्रास	९२	५,०७२
अन्यत्र	१४	१,३७५

राजकीय शिक्षा प्रयास (१९०५–२१)

लार्ड कर्जन की विदा से पूर्व ही भारत मे राजनैतिक तथा सामाजिक हलचल प्रारम्भ हो गई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओ ने राष्ट्रीय शिक्षा की मॉग

1. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India* (1917-22), p 5

की। १९१० में शिक्षा का विषय भारत-सरकार ने गृह-विभाग के अन्तर्गत न रखा जाकर शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि-सम्बन्धी नए विभाग को हस्तान्तरित कर दिया गया। उसी वर्ष गोपाल कृष्ण गोखले ने नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अपना ऐतिहासिक विधेयक केन्द्रीय धारा-सभा के समक्ष प्रस्तुत किया। जिस समय विधेयक पर तीसरी वार वाद-विवाद चल रहा था, उस समय सम्राट् जार्ज पचम् १२ दिसम्बर, १९११ को भारत मे भ्रमणार्थ पधारे। दिल्ली-दरबार मे उन्होने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने के लिए ५० लाख रुपये की अतिरिक्त धन-राशि देने का आदेश दिया। ६ जनवरी, १९१२ को उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे जनता को अपना सन्देश देते हुए कहा—"मेरी यह इच्छा है कि सम्पूर्ण देश में स्कूलो और कॉलेजो का एक ताना-बाना फैल जाय, जहाँ से उद्योगो तथा कृषि और जीवन के समस्त व्यवसायो मे कुछ कर दिखाने वाले योग्य, उपयोगी, विश्वसनीय एव साहसी नागरिक शिक्षा प्राप्त करके निकला करें।"[1]

उपरिकथित परिस्थितियो से बाध्य होकर सरकार को अपनी शिक्षा-नीति पर पुनर्विचार करना पडा। फलस्वरूप, २१ फरवरी, १९१३ को नवीन 'शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' प्रकाशित किया गया।

'शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' (१९१३)[2]

इस प्रस्ताव मे शिक्षा-नीति के आधारभूत सिद्धान्तो को निर्धारित किया गया और शिक्षा के विभिन्न अंगो के विस्तार तथा उन्नति के लिए सिफारिशें की गईं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नाङ्कित है :—

१. आधारभूत सिद्धान्त

१. शिक्षा-संस्थाओ की संख्या मे वृद्धि करने की अपेक्षा उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाया जाय।

२. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को जीवनोपयोगी तथा व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय।

३. भारत मे उच्च शिक्षा तथा अनुसन्धान की व्यवस्था की जाय, जिससे छात्रो को विदेश जाये बिना यहीं पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध हो जायँ।

---

1. "It is my wish that there may be spread over the land a network of schools and colleges, from which will go forth loyal and manly and useful citizens, able to hold their own in industries and agriculture and all the vocations in life."—*Government Resolution on Educational Policy*, 1913, p. 1.

2. Government Resolution on Educational Policy, 1913.

२ प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें

१ पूर्व-प्राथमिक (Lower Primary) स्कूलो का अधिक विस्तार किया जाय और उनमे लिखने-पढने और गणित के अतिरिक्त ड्राइंग, गाँव का नक्शा, प्रकृति-निरीक्षण एवं शारीरिक व्यायाम की शिक्षा दी जाय।

२ उपयुक्त स्थानो पर उत्तर-प्राथमिक (Upper Primary) स्कूलो की स्थापना की जाय, और आवश्यकतानुसार लोअर प्राइमरी स्कूलो को अपर प्राइमरी स्कूलो मे परिवर्तित कर दिया जाय।

३ जिला-परिषदो एव स्थानीय सस्थाओ द्वारा अधिक स्कूल खोले जायें। जहाँ यह सम्भव न हो सके, वहाँ व्यक्तिगत स्कूलो की स्थापना को प्रोत्साहित किया जाय।

४ मकतबो तथा पाठशालाओ को उदारतापूर्वक सहायता-अनुदान किया जाय।

५. व्यक्तिगत स्कूलो के उत्तम प्रबन्ध तथा नियमित निरीक्षण की व्यवस्था की जाय।

६ भारत के अधिकाश भागो मे ग्रामो एवं नगरो के विद्यालयो के लिए विभिन्न पाठ्य-क्रम निश्चित करना असम्भव है। फिर भी नगर विद्यालयो मे भूगोल और पर्यटन आदि विषयो को बढाया जा सकता है।

७ जिस वर्ग के छात्र हो, उसी वर्ग के शिक्षक नियुक्त किये जायें।

८ शिक्षक मिडिल पास और एक वर्ष प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हो।

९. शिक्षको को ग्रीष्मावकाश मे अपने ज्ञान को नवीन करने के लिए अल्प कालीन दीक्षा की सुविधा दी जाय।

१० प्रशिक्षित अध्यापको को १२ रुपये मासिक से कम वेतन न दिया जाय और उनकी पदोन्नति, पेंशन अथवा प्रॉविडेण्ट फण्ड की व्यवस्था की जाय।

११ किसी भी अध्यापक से ५० से अधिक छात्रो को शिक्षा देने के लिए न कहा जाय। साधारणतया कक्षा मे ३० से ४० तक विद्यार्थी हो।

१२ मिडिल एवं वर्नाक्यूलर स्कूलो मे सुधार किया जाय और उनकी सख्या मे वृद्धि की जाय।

१३ विद्यालयो मे काफी स्थान हो। साथ ही वे स्वच्छ एव सस्ते हो।

३. माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें

१ माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र से सरकार का पूर्ण पलायन उचित नहीं है।

२. राजकीय स्कूलो की संख्या मे वृद्धि न की जाय, अपितु उनको आदर्श बनाने का प्रयास किया जाय।

३ राजकीय स्कूलो मे केवल प्रशिक्षित स्नातक ही अध्यापक नियुक्त किय जायें।

४ इन शिक्षको का निश्चित ग्रेड एव वेतन हो। न्यूनतम वेतन ८०) रुपया मासिक एव उच्चतम ४००) रुपया मासिक हो।

५ राजकीय स्कूलो के छात्रो के लिये छात्रावासो की उचित व्यवस्था की जाय।

६ गैर-सरकारी स्कूलो को उदारतापूर्वक सहायता अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाय।

७ हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम म इस प्रकार सुधार किया जाय कि वह स्वत एक पूर्ण इकाई हो जाय।

८ पाठ्य क्रम म मनुअल ट्रेनिंग एव विज्ञान ऐसे आधुनिकतम विषयो का सम्मिलित किया जाय।

९ छात्रो को स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनके 'स्वास्थ्य निरीक्षण' (Medical Examination) की व्यवस्था की जाय।

१० माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रशिक्षण-महाविद्यालय स्थापित किये जायें।

११ माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो के लिये 'स्कूल फाइनल' परीक्षा की व्यवस्था की जाय और इसका प्रबन्ध विश्वविद्यालय द्वारा न किया जाकर, किसी अन्य सस्था द्वारा किया जाय।

१२ इन विद्यालयो पर कडा नियन्त्रण रखा जाय, जिससे वे अपनी कार्य-क्षमता मे वृद्धि करें।

४ विश्वविद्यालय एव उच्च शिक्षा

१ विश्वविद्यालयो ने अनेक कठिनाइयो का सामना करके भी उत्तम कार्य किया है, परन्तु विश्वविद्यालयो की दशा अच्छी नही है। अत उनम सुधार की आवश्यकता है।

२ भारत म अभी बहुत समय तक परीक्षक विश्वविद्यालयो की आवश्यकता रहेगी, परन्तु उनकी प्रादेशिक सीमाओ को निश्चित कर देना आवश्यक है।

३ इस समय देश म ५ विश्वविद्यालय और १८५ कालिज है। य देश की आवश्यकताओ को पूर्ण करने म असमर्थ हैं। अत विश्वविद्यालयो की सख्या म वृद्धि की जाए और प्रत्येक प्रान्त म एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।

४ विश्वविद्यालयो का कार्य बहुत बढ गया है। अत उन्ह हाई स्कूलो को मान्यता प्रदान करने के कार्य से मुक्त कर दिया जाय। यह कार्य प्रान्तीय सरकारो और देशी राज्यो को सौंप दिया जाय।

५ विश्वविद्यालयो में औद्योगिक विषयों की शिक्षा और अनुसन्धान कार्य की व्यवस्था की जाय।

६ ऐसे विश्वविद्यालयो की स्थापना पर जोर दिया जाय, जो शिक्षण-कार्य करना चाहते है।

७. विश्वविद्यालयो मे पुस्तकालयो, छात्रावासो और प्रयोगशालाओ की व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

८ विश्वविद्यालयो मे विद्यार्थियो के चरित्र-निर्माण और सामाजिक, नैतिक एव बौद्धिक शक्तियो के विकास का वातावरण उपस्थित किया जाय।

टिप्पणी

१९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' मे प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय एव उच्च शिक्षा की उन्नति तथा विस्तार के लिये महत्त्वपूर्ण सिफारिशे की गईं। परन्तु इन सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिये शिक्षा-मर्मज्ञो की सम्मति आवश्यक थी। अत एक अन्य शिक्षा-आयोग की नियुक्ति का प्रस्ताव किया गया। किन्तु १९१४ मे प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ होने से आयोग की नियुक्ति की न जा सकी और समस्त शिक्षा-सुधार कुछ समय के लिये केवल कागज पर ही लिखे रह गये। महायुद्ध के उपरान्त भारत-सरकार ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की शिक्षा की जाँच और उसकी दशा मे सुधार करने के लिये एक आयोग नियुक्त किया।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग (१९१७)[1]

नियुक्ति का कारण—१९१६ मे कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे सर आसुतोष मुकर्जी के प्रयास से 'स्नातकोत्तर विभाग' (Post-Graduate Department) खोला गया। इस विभाग की स्थापना द्वारा सर आसुतोष एक नवीन प्रयोग का उद्घाटन करने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे। वे चाहते थे कि स्नातकोत्तर शिक्षण का कार्य विश्वविद्यालय मे ही किया जाय। जब सरकार का ध्यान इस ओर गया, तब उसने विश्वविद्यालय की जाँच के लिये १४ सितम्बर, १९१७ को एक आयोग की नियुक्ति की।

सदस्य—इस 'आयोग' के अध्यक्ष 'लीड्स (Leeds) विश्वविद्यालय' के उप-कुलपति, डा० माइकेल सैडलर (Michael Sadler) थे। अध्यक्ष के नाम पर इस 'आयोग' को 'सैडलर आयोग' भी कहा जाता है। 'आयोग' के अन्य सदस्यो मे डा० ग्रेगरी (Gregory), सर फिलिप हरटॉग (Sir Philip Hartog) प्रोफेसर रैमज़ म्योर (Ramsy Muir), बंगाल के शिक्षा-संचालक, सर आसुतोष मुकर्जी और उत्तर प्रदेश बोर्ड के सदस्य, डा० ज़ियाउद्दीन अहमद थे।

---

1. The Calcutta University Commission *(Sadler Commission)*.

जांच का विषय—'आयोग' द्वारा जाँच का विषय था—'कलकत्ता विश्वविद्यालय की अवस्था एव आवश्यकता की जाँच करना और उससे सम्बन्धित समस्याओं का रचनात्मक ढग से समाधान करने का सुझाव देना।'[1]

अधिकार-क्षेत्र—यह 'आयोग' केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाच करने के लिय नियुक्त किया गया था। परन्तु तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इसको अन्य विश्वविद्यालयों की भी जाँच करने का अधिकार दे दिया गया।

रिपोर्ट—'आयोग' ने लगभग १७ माह के अथक परिश्रम के उपरान्त मार्च, १९१९ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट बहुत विस्तृत है और १३ भागों म विभाजित है। इसके अन्तर्गत माध्यमिक, कॉलजीय एव विश्वविद्यालय शिक्षा का पूर्ण विवेचन किया गया और उन पर रचनात्मक सिफारिशें की गई हैं। 'आयोग' ने माध्यमिक शिक्षा को विश्वविद्यालय की शिक्षा का आधार मानकर उसका सूक्ष्म परीक्षण किया है।

सुझाव—'आयोग' न माध्यमिक एव उच्च शिक्षा के अतिरिक्त स्त्री शिक्षा, अध्यापकों के प्रशिक्षण, प्रौद्योगिक शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध म भी सुझाव दिय। हम इनका विस्तृत वर्णन नीचे दे रहे है —

आयोग के सुझाव

'आयोग' ने माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा का आधार माना। अत उसका विचार था कि जब तक माध्यमिक शिक्षा के दोषों का दूर करके उसकी कायापलट नही की जायगी, तब तक विश्वविद्यालय की शिक्षा म किसी प्रकार का सुधार करना सम्भव नही होगा।

(१) माध्यमिक शिक्षा के दोष—'आयोग' के मतानुसार माध्यमिक शिक्षा के निम्नाकित दोष थे —

१ माध्यमिक शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हुआ है, पर उसम गुणात्मक उन्नति नही हुई है।

२ माध्यमिक विद्यालयों की निम्नकोटि की शिक्षा का प्रमुख कारण—सुयोग्य अध्यापकों का अभाव है। उन्हे इतना कम वेतन मिलता है कि वे इस व्यवसाय की ओर आकर्षित नही होते हैं।

३ माध्यमिक विद्यालयों में उचित शिक्षण-सामग्री एव उपयोगी साधन उपस्थित नही हैं।

---

1 "To enquire into the condition and prospects of the University of Calcutta and to consider the question of a constructive policy in relation to the question it presents'—Quoted by S N Mukerji *op cit*, p 216

४. माध्यमिक शिक्षा का दृष्टिकोण संकुचित है, क्योंकि उस पर सार्वजनिक परीक्षाओ का दूषित प्रभाव है।

५. ऐसे अनेक विषय हैं, जो माध्यमिक विद्यालयों के लिये महत्वपूर्ण तथा उपयोगी सिद्ध हो सकते है। परन्तु उन विषयों को माध्यमिक विद्यालयों मे न पढाया जाकर इन्टरमीडियेट कॉलेजो मे पढाया जाता है।

६. अधिकाश माध्यमिक विद्यालयो मे धन का अभाव है। अत उनकी कार्य-क्षमता न्यून है।

(२) **माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव**—'आयोग' का कथन था कि विश्व-विद्यालय की शिक्षा के सुधारार्थ माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संङ्गठन आवश्यक था। इस सम्बन्ध मे 'आयोग' के सुझाव अधोलिखित थे :—

१. विश्वविद्यालयो मे उन्ही छात्रों को प्रवेश दिया जाय, जो इन्टरमीडिएट परीक्षा मे उत्तीर्ण हो चुके हो, और बी० ए० का कोर्स ३ वर्ष का कर दिया जाय।

२. इन्टरमीडिएट कक्षाओ को विश्वविद्यालयों से पृथक् कर दिया जाय। इन कक्षाओं की शिक्षा देने के लिये इन्टरमीडिएट कॉलेज स्थापित किये जायें।

३ इन्टरमीडिएट कॉलिजों मे इंजीनियरिंग, चिकित्सा, वाणिज्य, अध्यापन, विज्ञान, कला और कृषि आदि विषयो की शिक्षा दी जाय।

४. इन कॉलेजो मे शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाये हो।

५. प्रत्येक प्रान्त मे माध्यमिक शिक्षा-परिषद, (Board of Secondary & Intermediate Education) की स्थापना की जाय। माध्यमिक विद्यालयो और इन्टरमीडिएट कॉलेजो के निरीक्षण एवं नियन्त्रण का भार इन परिषदो को सौंप दिया जाय।

६. ये परिषद, शिक्षा-विभाग के नियन्त्रण से मुक्त रखे जायें। इनकी प्रबन्ध-कारिणी मे सरकार, विश्वविद्यालय, इन्टरमीडिएट कॉलिजो तथा हाई स्कूलो के प्रतिनिधि हो।

इन परिषदो के निर्माण का सुझाव 'आयोग' ने इस उद्देश्य से दिया था कि विश्वविद्यालय, माध्यमिक शिक्षा के भार से मुक्त हो जायें और अपने ध्यान को पूर्णतः उच्च शिक्षा पर केन्द्रित कर सकें।

(३) **कलकत्ता-विश्वविद्यालय-सम्बन्धी सुझाव**—माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त 'आयोग' ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की समस्याओ का गहन अध्ययन किया, और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कॉलेजो और उनमे शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियो की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि विश्वविद्यालय उनका समुचित प्रबन्ध करने मे असमर्थ था। इस सम्बन्ध मे 'आयोग' ने अग्रांकित ३ सुझाव दिये :—

१ ढाका मे शीघ्र ही एक 'सावास एव शिक्षण-विश्वविद्यालय' (Residential & Teaching University) की स्थापना की जाय।

२ कलकत्ता नगर की शिक्षा-सस्थाओ को इस प्रकार सगठित किया जाय कि एक वास्तविक शिक्षण विश्वविद्यालय का निर्माण हो जाय।

३ नगर के समीपवर्ती कॉलेजो का सगठन इस दृष्टि से किया जाय कि उपयुक्त स्थान पर नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाए।

(४) भारतीय विश्वविद्यालयो के सम्बन्ध मे सामान्य सुझाव—'आयोग' ने भारतीय विश्वविद्यालयो के कार्यो, सगठन तथा आन्तरिक शासन के सम्बन्ध मे सुझाव दिये। हम इनका विवरण नीचे दे रहे है —

१ विश्वविद्यालयो पर सरकार का नियन्त्रण बहुत कठोर है, और उन्हे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता नही है। अत यह वाछनीय है कि उन्हे आर्थिक स्वतन्त्रता दी जाय।

२ विश्वविद्यालयो के अध्यापको को अधिक अधिकार प्रदान किये जायँ।

३ 'पास कोर्स' (Pass Course) के अतिरिक्त 'आनर्स' (Honours Course) का भी प्रबन्ध किया जाय। बी० ए० के कोर्स की अवधि ३ वर्ष कर दी जाय।

४ विश्वविद्यालयो के लिये सरकारी नौकरी प्रणाली का पालन करना उपयुक्त नही है। अत प्रोफेसर और रीडरो की नियुक्ति एक समिति द्वारा की जाय, जिसमे शिक्षा के विशेषज्ञ भी रखे जायँ।

५ विश्वविद्यालयो के आन्तरिक प्रशासन के लिये 'सीनेट' के स्थान पर 'कोर्ट' और 'सिडीकेट' के स्थान पर 'कार्यकारिणी समिति' स्थापित की जाय।

६ परीक्षा, पाठ्य-क्रम, उपाधि वितरण और अनुसन्धान आदि शैक्षणिक कार्यो को करने के लिये 'एकेडेमिक समिति' (Academic Council) की स्थापना की जाय।

७ विश्वविद्यालयो मे विभिन्न विषयो की उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय यथा—व्यावसायिक, इजीनियरिंग, अध्यापन, डाक्टरी, कानून, कृषि—आदि।

८ उप कुलपति का पद वैतनिक कर दिया जाय।

९ विद्यार्थियो के स्वास्थ्य की देख भाल करने के लिये विश्वविद्यालय मे एक 'डाइरेक्टर ऑफ फिजिकल ट्रेनिंग', नियुक्त किया जाय।

१० मुस्लिम-शिक्षा पिछडी हुई अवस्था मे है। अत मुसलमान छात्रो को विशेष सुविधा देकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

(५) **स्त्री-शिक्षा**—स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार करने के लिये 'आयोग' ने नीचे लिखे सुझाव दिये —

१. जो लडकियाँ १५-१६ वर्ष की आयु तक शिक्षा का लाभ उठाना चाहती हैं, उनके लिये सरकार द्वारा-पर्दा-स्कूलो की व्यवस्था की जाय।
२. कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे 'स्पेशल बोर्ड ऑफ वीमेन्स एजूकेशन' का निर्माण किया जाय। यह बोर्ड—स्त्रियो के लिये विशेष पाठ्यक्रम तैयार करे और उन्हे अध्यापिका-प्रशिक्षण तथा चिकित्सा-शिक्षा की सुविधा दे।
३. सह-शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय।

(६) **अध्यापक-प्रशिक्षण**—'आयोग' की दृष्टि मे माध्यमिक विद्यालयो मे प्रशिक्षित अध्यापको का अभाव था। अतः उसने दीक्षित अध्यापको की संख्या मे वृद्धि करने के लिये कुछ सुझाव दिये, जैसे—

१. बी० ए० एवं इन्टरमीडिएट कक्षाओ के पाठ्य-क्रमों मे 'शिक्षा' के विषय को स्थान दिया जाय।
२. कलकत्ता एवं ढाका-विश्वविद्यालयो मे शिक्षा-विभाग की स्थापना की जाय।

(७) **प्रौद्योगिक शिक्षा**—'आयोग' ने भारतीयो के लिये प्रौद्योगिक (Technological) शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया। अत. उसने सुझाव दिया कि—

१. विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रम मे प्रौद्योगिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाय।
२. इस शिक्षा की परीक्षा की व्यवस्था की जाय और सफल छात्रो को उपाधियाँ प्रदान की जायें।

(८) **व्यावसायिक शिक्षा**—अपनी जाँच के आधार पर 'आयोग' इस परिणाम पर पहुँचा कि भारतीय छात्रो की साहित्यिक शिक्षा मे अधिक अभिरुचि थी। इसका कारण 'आयोग' के विचार मे 'व्यावसायिक' (Professional & Vocational) शिक्षा का अभाव था। अत., व्यावसायिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिये 'आयोग' ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. विश्वविद्यालयो मे व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
२. इन्टरमीडिएट कक्षाओ के पाठ्य-क्रम को दोहराया जाय और उनमे आवश्यकतानुसार व्यवसाय की सामान्य शिक्षा सम्मिलित की जाय।

आयोग का मूल्यांकन—'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग' ने इस देश की उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे स्तुत्य-कार्य किया। यद्यपि इसकी नियुक्ति केवल कलकत्ता-विश्वविद्यालय की जाँच करने के लिये हुई थी, तथापि इसने समस्त भारतीय विश्वविद्यालयो के सुधार के लिये सामान्य सुझाव दिये। सौभाग्यवश, सरकार ने उनको स्वीकृत किया और उन्ही के आधार पर सभी विश्वविद्यालयों मे सुधार किये गये।

यही कारण है कि इस 'आयोग' की रिपोर्ट का महत्त्व अखिल भारत के लिये है। इसके सुझावों ने भारतीय विश्वविद्यालयों को अवाछनीय दोषों से मुक्त करके उन्हें एक नया जामा पहिना दिया। वे परीक्षा सस्थायें न रहकर, अध्यापन तथा अनुसंधान के केन्द्र बन गये। 'आयोग' ने औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव देकर विश्वविद्यालयों पर जीवनोपयोगी शिक्षा देने का उत्तरदायित्व रखा, और इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर दिया।

उपर्युक्त गुणों के बावजूद, यह कहने में सकोच नहीं होना चाहिये कि 'आयोग' के कुछ सुझाव दोष-पूर्ण और समय से बहुत पूर्व थे। उदाहरणत —भारत ऐसे निर्धन देश के लिये सावास (Residential) विश्वविद्यालयों की स्थापना का सुझाव बिल्कुल उपयुक्त नहीं था। इस दरिद्र देश में केवल कुछ ही सरक्षक ऐसी शिक्षा का व्यय-भार वहन करने में समर्थ होते। लन्दन और बर्लिन विश्वविद्यालय भी तो सावास नहीं हैं और उनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा किसी प्रकार ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के सावास-विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा से निम्नतर नहीं है। यदि उन देशों में सावास विश्वविद्यालयों के अभाव में उच्च कोटि की शिक्षा देना सम्भव था, तो भारत में भी यह बात असम्भव नहीं थी। 'आयोग' का एक अन्य दोषपूर्ण सुझाव था—'माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा विभाग के अधिकार-क्षेत्र से निकाल कर 'बोर्ड' के नियन्त्रण में रखा देना। सैडलर कमीशन और उत्तर प्रदेश बोर्ड के सदस्य डा० जिया-उद्दीन अहमद का मत है कि—इस हस्तान्तरण का परिणाम अच्छा नहीं निकला। इण्टरमीडिएट कालेजों का परीक्षण भी असफल रहा है। किन्तु इन दोषों के होते हुए भी विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में 'आयोग' की सेवायें सराहनीय हैं। इसके सुझावों के फलस्वरूप ही १९२१ तक अनेक विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। वस्तुत आयोग ने विश्वविद्यालय का जो आदर्श उपस्थित किया, उसी को युग का प्रतिनिधि आदर्श स्वीकार किया गया और उसी को कुछ सशोधनों के साथ आज भी मान्यता दी जाती है।

शिक्षा की प्रगति (१९०५-१९२१)

उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय व कॉलेज)

(१) **नवीन विश्वविद्यालयों का निर्माण**—१८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्माण के उपरान्त ३० वर्ष तक कोई भी विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया गया। परन्तु इस अवधि में कॉलेजों की सख्या १८५ हो गई। यह अनुभव किया जाने लगा था कि इतने कॉलेजों का भार ५ विश्वविद्यालय—कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, पजाब और इलाहाबाद सँभालने में असमर्थ थे, अत उनकी सख्या में वृद्धि की जानी आवश्यक थी। १९१३ में 'सरकारी प्रस्ताव' ने विश्वविद्यालयों के नव निर्माण पर जोर दिया। 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' ने भी इस दिशा में कार्य करने के लिए परामर्श दिया। फलस्वरूप, १९१६ से १९२१ तक अग्रलिखित ७ नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये —

१. मैसूर विश्वविद्यालय—इसकी स्थापना १९१६ मे हुई। यह कॉलेजो को केवल सम्बद्धता प्रदान करता था। इसके निर्माण से मद्रास विश्वविद्यालय का कार्य भार कुछ कम हो गया।

२. पटना विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय का निर्माण १९१७ मे बिहार और उड़ीसा की आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिए किया गया।

३. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए १९१५ मे केन्द्रीय धारा-सभा मे 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी अधिनियम' पारित किया गया। इसकी स्थापना का श्रेय पं० मदनमोहन मालवीय को है। इसने १९१७ से 'आवास एव शिक्षण-विश्वविद्यालय' के रूप मे कार्य करना प्रारम्भ किया।

४. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय—बनारस विश्वविद्यालय के समान इस विश्वविद्यालय का भी निर्माण केन्द्रीय धारा-सभा के एक विशेष अधिनियम द्वारा १९२० मे किया गया। यह विश्वविद्यालय—'मोहमडन ऐंग्लो-ओरिएन्टल कॉलेज' (Mohamedan Anglo-Oriental College) का विकसित स्वरूप है, जिससे सर सैयद अहमद खाँ का नाम सम्बन्धित है। बनारस विश्वविद्यालय की भाँति यह भी आवास एव शिक्षण-विश्वविद्यालय है, और उसी के समान केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत है।

५. ढाका विश्वविद्यालय—इसकी स्थापना १९२० मे की गई। यह भी आवास एवं शिक्षण-विश्वविद्यालय है।

६. लखनऊ विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास १९२० मे अवध के राजाओ तथा तालुक्केदारो के सम्मिलित प्रयासो के फलस्वरूप हुआ। यह भी आवास एवं शिक्षण-विश्वविद्यालय है।

७. उसमानिया विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय की स्थापना १९१८ मे हैदराबाद के निजाम ने अपने राज्य की आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिये की। यह विश्वविद्यालय अपने ढग का निराला है, क्योकि इसमे उर्दू भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाती है।

(२) विश्वविद्यालयों को सहायता-अनुदान—भारत-सरकार ने विश्वविद्यालय-शिक्षा को प्रोत्साहित करने और उसके स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी। १९०० मे केवल पंजाब विश्वविद्यालय को २९,३८०) रुपये का वार्षिक अनुदान दिया जाता था। १९२१ मे इस धन-राशि को बढ़ाकर २०,५४,०००) रुपया कर दिया गया और सभी विश्वविद्यालयो को सहायता-अनुदान दिया जाने लगा। १९०१ मे विश्वविद्यालयो का व्यय ७,२१,०००) रुपये था, परन्तु १९२१ मे यह व्यय ७४,१२,०००) रुपया हो गया।

(३) विश्वविद्यालयों का शिक्षण-कार्य—सरकारी सहायता-अनुदान एवं व्यक्तिगत साधनों से आर्थिक सहायता प्राप्त करके विश्वविद्यालय दत्त-चित्त होकर शिक्षण का कार्य करने लगे। इस काल के १२ विश्वविद्यालयों में से १ विश्वविद्यालय—शिक्षण और सम्बद्धीकरण (Affiliation) का कार्य करता था, ५ केवल शिक्षण का, और ६ सम्बद्धीकरण का। अन्तिम प्रकार के विश्वविद्यालय कुछ शिक्षण कार्य भी करते थे, जो निम्नांकित में से एक या उससे अधिक होता था :—

१. विश्वविद्यालय में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के भाषणों की व्यवस्था करना।
२. विश्वविद्यालय में कुछ विशिष्ट विषयों के शिक्षण का प्रबन्ध करना।
३. विश्वविद्यालय में ऑनर्स तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं को चलाना।

(४) कॉलिजों का प्रसार—१९०४ के 'विश्वविद्यालय-अधिनियम' के अनुसार–कॉलिजों को मान्यता प्रदान करने के नियम कठोर बना दिये गये। परिणामतः कॉलिजों का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो गया। इतना ही नहीं, वरन् जर्जरित दशा में चलने वाले कॉलिजों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। १९०२ में कॉलिजों की संख्या १४५ थी, परन्तु १९०५ में वह घटकर १३८ रह गई। यहाँ एक विशेष बात उल्लेखनीय है। जब कि कॉलिजों की संख्या में उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा था, विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। अतः कुछ समय उपरान्त ऐसी स्थिति आ गई, जब नये कॉलिजों की स्थापना अनिवार्य हो गयी। यह कार्य १९११ में प्रारम्भ हुआ और १९२१ तक ६९ कॉलिजों का नव-निर्माण हुआ। इस प्रकार १९२१ में २०७ कॉलिज थे और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की संख्या ५४,४७३ थी, जब कि १९०५ में १३८ कॉलिजों में १७,००० छात्र थे।

इस प्रकार १९०५ से १९२१ तक कॉलिजीय शिक्षा का प्रशंसनीय विस्तार हुआ, परन्तु यह शिक्षा देश के नवयुवकों की माँग की पूर्ति न कर सकी। १९०५ से पूर्व उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की संख्या कम और राजकीय पदों की संख्या अधिक थी। परन्तु शनैः-शनैः इस स्थिति में परिवर्तन होता चला गया और कॉलिजों की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त सरकारी नौकरी प्राप्त करना सरल नहीं रह गया। फिर भी कॉलिजों में छात्रों की संख्या में वृद्धि होती गई। कारण यह था कि विद्यार्थियों के समक्ष कॉलिजों की उच्च शिक्षा के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। देश में औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के कॉलिजों की संख्या अपर्याप्त थी। अतः 'मैट्रीकुलेशन' परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र सामान्य शिक्षा के कॉलिजों में प्रवेश ले लेते थे। इस प्रकार सामान्य शिक्षा के कॉलिजों में विद्यार्थियों की संख्या में यह निरुद्देश्य वृद्धि शुभ प्रगति का चिह्न न होकर रोग का लक्षण बनती जा रही थी।[1]

1. "This aimless increase in the number of student in colleges of general education was, therefore, more a sign of disease than of robust growth."—**Nurullah & Naik** : *op cit.*, p. 512.

(५) **कॉलेजों को सहायता-अनुदान**—इस अवधि मे सरकार ने कॉलेजीय शिक्षा मे सुधार करने के लिये उदार आर्थिक सहायता दी। फलस्वरूप, कॉलेजो में छात्रावासो, पुस्तकालयो, प्रयोगशालाओ आदि की समुचित व्यवस्था हो गई और शिक्षण-स्तर भी ऊँचा उठ गया। १९०७ तक केन्द्रीय सरकार कॉलेजो को ३,६५,०००) रुपया आवर्त्तक सहायता-अनुदान (Recurring Grant-in-Aid) के रूप मे देती थी। १९०७ से १९१२ तक इस धन-राशि मे २,४५,०००) रुपये की वृद्धि कर दी गई। १९१२ के पश्चात् इसमे २,८४,०००) रुपये और बढा दिये गये। इसके अतिरिक्त, कॉलेजो को अनावर्त्तक सहायता-अनुदान भी उदारतापूर्वक दिया गया। १९२१-२२ मे सरकार द्वारा कॉलेजीय शिक्षा पर ४६,२६,०००) रुपया व्यय किया गया। इस धन मे गैर-सरकारी कॉलेजो का भाग १५,२८,०००) रुपया था।

(६) **कॉलेजो का शिक्षण-कार्य**—इस अवधि मे कॉलेजो के शिक्षण-कार्य मे पूर्व की अपेक्षा अधिक उन्नति हो गई थी और उनकी शिक्षा का स्तर भी ऊँचा हो गया था। कारण यह था कि अधिक सहायता-अनुदान प्राप्त होने से कॉलेजो ने सुयोग्य शिक्षको की नियुक्ति कर ली थी। साथ ही उत्तम भवन, प्रचुर शिक्षण-सामग्री आदि की व्यवस्था हो गई थी।

माध्यमिक शिक्षा (१९०५-१९२१)

पिछले अध्याय मे बताया जा चुका है कि लार्ड कर्जन की नवीन शिक्षा नीति मे माध्यमिक विद्यालयो की गुणात्मक उन्नति पर बल दिया गया था, न कि संख्यात्मक वृद्धि पर। फलस्वरूप, माध्यमिक स्कूलो पर सरकारी नियन्त्रण कड़ा कर दिया गया था। इस कठिनाई के होते हुए भी १९०५ से १९२१ तक माध्यमिक विद्यालयो की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई। इसका प्रमुख कारण यह था कि सरकारी नौकरियो के द्वार अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो के लिये खुले हुए थे। ऐसी दशा मे छात्रो की संख्या मे वृद्धि होना और तदनुसार विद्यालयो की संख्या बढना स्वाभाविक था। १९०५ मे माध्यमिक स्कूलो की संख्या ५,१२४, और उनमे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की संख्या ५,९०,१२९ थी। १९२१ मे ये संख्यायें क्रमशः ७,५३० और ११,०६,८०३ थी।

माध्यमिक विद्यालयो की संख्या मे इस अभिवृद्धि का श्रेय १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' को प्राप्त था। इस 'प्रस्ताव' मे माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिये अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये गये थे। इनका वर्णन पहले किया जा चुका है। परन्तु इस कथन मे भी औचित्य है कि 'सरकारी प्रस्ताव' से अधिक श्रेय भारतीय समाज-सेवको को दिया जाना चाहिए। इस काल मे होने वाली सामाजिक तथा राजनैतिक जागृति ने उनको शिक्षा-प्रसार के कार्य मे संलग्न होने के लिये अनुप्राणित किया। अतः हमे स्वीकार करना पड़ेगा कि माध्यमिक विद्यालयों की संख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि भारत के कर्तव्य-परायण नेताओ के प्रयासो के कारण ही हुई।

(१) व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था—'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश को स्वीकार करके विभिन्न प्रान्तो मे हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयो को स्थान दिया गया था और 'स्कूल-लीविंग सर्टिफिकेट' परीक्षा प्रारम्भ की गई थी। यह व्यवस्था इस अवधि मे भी यथावत् रखी गई। यद्यपि अधिकाश विद्यार्थी अब भी 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे सम्मिलित होते थे, तथापि 'स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट' प्राप्त करने वाले छात्रो की सख्या उनसे अधिक कम नही थी। १६१०-११ मे सम्पूर्ण भारत मे 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा म १६,६३२ और 'सर्टिफिकेट' परीक्षा मे १०,१६१ छात्र बैठे।

इन आँकडो से सिद्ध होता है कि 'सर्टिफिकेट' परीक्षा की लोकप्रियता बढ रही थी। इसके तीन प्रमुख कारण थे प्रथम—इस परीक्षा मे किसी विद्यार्थी को अनुत्तीर्ण नही घोषित किया जाता था। द्वितीय—इस परीक्षा का सर्टिफिकेट प्राप्त करने वाले छात्र, विश्वविद्यालय मे प्रवेश ले सकते थे। तृतीय—ये छात्र, सरकारी नौकरी के लिये प्रार्थी हो सकते थे।

उपर्युक्त गुणो की उपस्थिति म 'सर्टिफिकेट' परीक्षा का पाठ्य-क्रम उस आदर्श पर नही पहुँच सका जिसको १८५४ के 'घोषणा-पत्र' मे अङ्कित किया गया था। इसके अनुसार, भारतीयो को ऐसी शिक्षा प्रदान की जाती थी, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म उन्हे समाज का लाभप्रद सदस्य बना सके। यह आदर्श केवल कल्पना मात्र रह गया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि हाई स्कूल का पाठ्य क्रम थोडा विस्तृत हो गया और उसम कुछ औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयो का समावेश हो गया।

(२) अंग्रेजी शिक्षण में सुधार—पहले बताया जा चुका है कि माध्यमिक स्कूलो का प्रमुख ध्येय—अग्रजी की शिक्षा देना हो गया था। इस काल म भी इस ध्येय म कोई परिवर्तन नही हुआ। अत अग्रेजी के शिक्षण को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के विचार से विभिन्न विधियो का प्रयोग किया गया। इनमे से प्रमुख थी—(१) 'डाइरेक्ट मथड (Direct Method) की नवीन प्रणाली, (२) प्रशिक्षित अध्यापको द्वारा अग्रजी का शिक्षण, पाठ्य पुस्तको की स्वीकृति और परीक्षा मे कठोरता। परन्तु ये सभी प्रयास असफल रहे और अग्रेजी का स्तर अधिक ऊँचा न उठ सका।

(३) शिक्षा का माध्यम—अग्रेजी को अत्यधिक महत्त्व देने से भारतीय भाषाओ को शिक्षा का माध्यम न बनाया जा सका। यद्यपि कर्जन की शिक्षा नीति का अनुसरण करके अब भी मिडिल स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी, परन्तु हाई स्कूल म माध्यम अग्रेजी ही था।

(४) अध्यापको का प्रशिक्षण—लार्ड कर्जन ने प्रशिक्षण महाविद्यालयो के नवनिर्माण की घोषणा करके माध्यमिक विद्यालयो के अध्यापको के प्रशिक्षण मे एक नवीन युग का आह्वान किया था। १६१२ तक १५ शिक्षण महाविद्यालयो की स्थापना

हो चुकी थी, जो लगभग १,४०० छात्राध्यापको को दीक्षित कर रहे थे। १६१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' ने प्रशिक्षण-कार्य को और आगे बढाया। इस 'प्रस्ताव' मे घोषित किया गया कि किसी भी अदीक्षित अध्यापक को स्कूल मे अध्यापन-कार्य की अनुमति नही दी जायगी। फलस्वरूप, प्रशिक्षण-विद्यालयो की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई। १६२१ मे १३ प्रशिक्षण-महाविद्यालय इस प्रकार के थे, जो माध्यमिक स्कूलो के शिक्षको को अंग्रेजी पढाने की शिक्षा दे रहे थे। १६०४ मे ऐसे प्रशिक्षण-महाविद्यालयो की कुल संख्या ४ थी।

टिप्पणी

इस अवधि मे माध्यमिक शिक्षा की सराहनीय प्रगति हुई। साथ ही उसकी गुणात्मक उन्नति भी हुई। छात्रो की संख्या मे भी आशातीत वृद्धि हुई। परन्तु माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी प्रमुख समस्याओ का समाधान न हो सका। हाई स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो रहा और व्यावसायिक शिक्षा की संतोषजनक व्यवस्था नही की गई।

प्राथमिक शिक्षा (१६०५–१६२१)

इस अवधि की प्राथमिक शिक्षा को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं — (१) १६०५ से १६१७ तक, और (२) १६१७ से १६२१ तक। प्रथम काल में प्राथमिक शिक्षा का रूप पूर्ववत् ही रहा। द्वितीय काल मे उसका रूप तो वही रहा, परन्तु उसको अनिवार्य बनाने का प्रयास किया गया। हम इन दोनो कालो पर नीचे विहंगम दृष्टि डाल रहे है :—

प्राथमिक शिक्षा (१६०५–१६१७)

लार्ड कर्जन से पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये भारत-सरकार ने समय-समय पर योजनायें बनाई थी। परन्तु फिर भी इस दिशा मे कोई संतोषजनक कार्य नही किया गया था। कर्जन प्रथम वाइसराय था, जिसने १६०४ के 'सरकारी-प्रस्ताव' मे प्राथमिक शिक्षा का विकास करना सरकार का एक प्रमुख कर्तव्य बताया। उसने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ, उसकी गुणात्मक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया। फलस्वरूप, १६११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति मे बहुत तीव्रता रही। दिसम्बर, १६११ मे सम्राट् जार्ज पंचम भारत पधारे और उन्होंने दिल्ली दरबार मे प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने के लिये ५० लाख रुपये की धन-राशि प्रदान करने की घोषणा की। ६ जनवरी, १६१२ को कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे भाषण देते समय उन्होने भारत मे विद्यालयो का जाल बिछा हुआ देखने की आशा व्यक्त की। सम्राट् के भारत-आगमन से कुछ ही समय पूर्व १६ मार्च, १६११ को गोपाल कृष्ण गोखले ने केन्द्रीय धारा-सभा मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु १६ मार्च, १६१२ को विधेयक को गिरा दिया गया और गोखले को पराजय स्वीकार करनी पडी।

इस समय भारत-सरकार बड़े धर्म-सकट म थी। एक ओर तो उसे सम्राट द्वारा ५० लाख रुपया प्राथमिक शिक्षा के विकास पर व्यय करने का आदेश दिया गया था। दूसरी ओर इस आदेश के कुछ समय उपरान्त ही सरकार ने गोखले के अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विधेयक का विरोध करके उसे गिरा दिया था। ऐसी स्थिति मे सरकार के लिये यह आवश्यक हो गया कि वह गोखले के विधेयक का विरोध करने का कुछ कारण दे, और साथ ही अपनी शिक्षा नीति की स्पष्ट व्याख्या करे। यह काय १६१३ मे 'शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' को प्रकाशित करके किया गया।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, १६१३

इस प्रस्ताव म प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध म अनेक सिफारिशें तथा आदेश दिये गये। इनका विस्तृत वर्णन पहले किया जा चुका है। इस प्रस्ताव के सूक्ष्म अध्ययन से विदित होता है कि सरकार का ध्यान प्राथमिक विद्यालयो की सख्यात्मक वृद्धि की अपेक्षाकृत गुणात्मक उन्नति की ओर अधिक था। वस्तुत 'प्रस्ताव' मे प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे कोई नया सुझाव नही दिया गया। अत प्राथमिक शिक्षा मे कोई प्रगति दृष्टिगोचर नही हुई। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि 'प्रस्ताव' के सुझावो के परिणामस्वरूप १६१७ के अन्त तक सयुक्त प्रान्त, बिहार, पजाब और पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्तो म जिला-परिषदो और स्थानीय सस्थाओ द्वारा प्राथमिक स्कूलो का निर्माण किया गया। किन्तु इस प्रकार के विद्यालयो की स्थापना बगाल उडीसा और मद्रास म न हो सकी। कारण यह था कि वहाँ व्यक्तिगत रूप से स्थापित किये गये विद्यालयो का जोर था। बगाल सरकार ने 'पचायती आदर्श स्कूलो की योजना बनाई। इसके अनुसार लगभग १० ४ वर्ग मील मे एक आदर्श प्राइमरी स्कूल स्थापित किया गया। यद्यपि इन स्कूलो का निर्माण सरकार द्वारा किया गया था, परन्तु इनका कार्य भार जिला-परिषदो को सौंप दिया गया था।[1]

इन प्रयासो के बावजूद भी परिणाम अच्छे नही निकले। १६१७ तक विद्यालयो का जाने योग्य बालको मे से केवल ⅓ प्राथमिक स्कूलो मे शिक्षा पा रहे थे और लगभग ८ ३ वर्ग मील के क्षेत्रफल म बालको का एक प्रारम्भिक स्कूल था।[2]

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयास (१६१७–१६२१)

२०वी शताब्दी के प्रथम दशक मे राजनैतिक एव सामाजिक जागृति की लहर देश के कोने-कोने म फैल चुकी थी। राष्ट्रीय चेतना न भारतीयो के हृदय म

1 S N Mukerji *op cit*, p. 213

2 *Ibid*, p 214

आकुलता का समावेश कर दिया था । वे अपने अधिकारो के प्रति जागरुक हो चुके थे । अन्य अधिकारा के साथ-साथ, उन्होने विदेशी सरकार से शिक्षा प्राप्त करने क अधिकार की वलपूर्वक शब्दा मे माँग की । देश-भक्त नेताआ ने शिक्षा के प्रसार एव प्रचार के लिये तन मन से आन्दोलन करना प्रारम्भ किया । इनम सर्वश्रेष्ठ स्थान गोपाल कृष्ण गोखले को प्राप्त है । उन्होने १६१० मे केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य के रूप मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एव नि शुल्क बनाने के लिये आकाश-पाताल एक कर दिया । परन्तु उनसे भी पूर्व भारत के एक देशी राज्य के उदार एव बुद्धिमान शासक इस दिशा मे सक्रिय एव सफल प्रयास कर चुके थे । वे थे—बडौदा-नरेश सायाजीराव गायकवाड ।

बडौदा-नरेश का प्रथम प्रयास

महाराज सायाजीराव गायकवाड को अपनी प्रजा की शिक्षा मे बहुत रुचि थी । अत उन्होने उसके हितार्थ प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करने का सकल्प किया । क्योकि बडौदा राज्य मे शिक्षा की दशा बहुत पिछडी हुई थी, अत सिंहासनारूढ होने के पश्चात् उन्होने अपने राज्य के विभिन्न भागो मे प्राथमिक विद्यालयो के निर्माण की आज्ञा दी । १८६१ मे इन स्कूलो की सख्या ५५८ हो गई, जबकि १८८१ मे इनकी सख्या १८० थी ।

मार्च, १८६२ मे उन्होने रचनात्मक कदम उठाया । एक राजाज्ञा द्वारा घोषित किया गया कि अमरेली नगर के एक ताल्लुका के ६ ग्रामो मे प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी । ७ से १२ वर्ष की आयु तक के बालको और ७ से १० वर्ष की आयु तक की सब बालिकाओ को प्राथमिक विद्यालयो मे अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करनी पडेगी । नवम्बर १८६३ मे अनिवार्य शिक्षा का यह कार्य प्रारम्भ किया गया और इसमे इतनी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई कि उपरोक्त ताल्लुका के ५२ ग्रामो म शिक्षा अनिवार्य कर दी गई । अमरेली मे १५ वर्ष तक किये जाने वाले इस नवीन प्रयोग ने सिद्ध कर दिया कि सम्पूर्ण बडौदा राज्य के लिये प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य किया जाना उपयुक्त और वाछनीय होगा । अत १६०६ मे एक अधिनियम बनाकर राज्य के सभी बच्चो के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई ।[1]

गोखले का प्रयास

राष्ट्रीय भावनाओ से सराबोर, शिक्षा के मर्मज्ञ गोपाल कृष्ण गोखले बडौदा नरेश के उत्कृष्ट उदाहरण से अनुप्राणित हुए । उन्होंने विचार किया कि जिस कार्य को आय के सीमित साधनो वाला एक छोटा-सा देशी राज्य सफलतापूर्वक कर चुका है, उस कार्य को ब्रिटिश भारत मे भी, जिसके पास धन का अभाव नही है अवश्य सम्पादित किया जा सकता है । अत उन्होने भारत-सरकार को इस दिशा म क्रियाशील करने का दृढ निश्चय किया ।

1 *The Gazetteer of the Baroda State*, pp 310-12

गोखले का प्रस्ताव—केन्द्रीय धारा-सभा (Imperial Legislative Council) के सदस्य के रूप में १६ मार्च, १९१० को गोखले ने यह प्रस्ताव (Resolution) रखा—"यह सभा सिफारिश करती है कि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जाय और इस सम्बन्ध में निश्चित प्रस्तावों को उपस्थित करने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त आयोग शीघ्र ही नियुक्त किया जाय।"[1]

इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने का प्रमुख कारण यह था कि भारत में प्राथमिक शिक्षा की दयनीय दशा देखकर गोखले का हृदय द्रवित हो गया था। उनका विश्वास था—"यह बात स्पष्ट है कि अशिक्षित तथा अज्ञानी राष्ट्र कदापि वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता है और जीवन की दौड़ में अवश्य पीछे रह जायेगा।"[2] तत्कालीन प्राथमिक विद्यालय जनता की शिक्षा की माँग की पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ थे। उस समय देश में केवल ६ प्रतिशत साक्षरता थी और प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने योग्य बच्चों में से केवल २३·८ प्रतिशत बालक और २·७ प्रतिशत बालिकायें इस शिक्षा से लाभ उठा रहे थे। अत. गोखले ने अपने प्रस्ताव में निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. जिन क्षेत्रों में ३३ प्रतिशत बालक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उनमें ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए शिक्षा नि.शुल्क एवं अनिवार्य कर दी जाय।
२. इस शिक्षा का व्यय स्थानीय संस्थायें और सरकार १ : २ के अनुपात में वहन करें।
३. प्राथमिक शिक्षा की देख-भाल के लिए एक मन्त्री की नियुक्ति की जाय।
४. बजट में प्रतिवर्ष शिक्षा की प्रगति का स्पष्ट वर्णन किया जाय।
५. केन्द्र में प्राथमिक शिक्षा के लिए एक पृथक् विभाग स्थापित किया जाय, जो प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए योजना बनाये।

सरकार द्वारा प्रस्ताव पर विचार करने का आश्वासन प्राप्त होने पर गोखले ने उसे वापिस ले लिया। सरकार ने १९१० में केन्द्र के अधीन एक शिक्षा-विभाग

---

1. "This Council recommends that a beginning should be made in the direction of making elementary education free and compulsory throughout the country, and a mixed commission of officials and non-officials be appointed at an early date to frame definite proposals."—**Gokhale's** *Speeches*, p. 609.

2. "It is obvious that an illiterate and ignorant nation can never make any solid progress and must fall back in the race of life."—*Ibid*, p. 659.

स्थापित कर दिया, मत्री की नियुक्ति कर दी और प्रतिवर्ष शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध मे रिपोर्ट प्रकाशित करने लगी। परन्तु प्राथमिक शिक्षा को नि शुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए कुछ नही किया। गोखले और जनता को सरकार से बडी-बडी आशायें थी, परन्तु वे पूर्ण न हुई।

गोखले का विधेयक—प्राथमिक शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता देख कर गोखले ने १६ मार्च, १६११ को केन्द्रीय धारा-सभा मे प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अपना विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया। "इस विधेयक का उद्देश्य-देश की प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली मे अनिवार्यता के सिद्धान्त को क्रमश लागू करना था।"[1] यह विधेयक गोखले के प्रस्ताव पर आधारित था और उसकी मुख्य-मुख्य बातें अधोलिखित थी —

१. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम को उन स्थानीय बोर्डों के क्षेत्रो मे लागू किया जाय, जहाँ के बच्चो का एक निश्चित प्रतिशत प्रारम्भिक विद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त कर रहा है। इस प्रतिशत को निश्चित करने का अधिकार गवर्नर-जनरल की परिषद् को होगा।

२ स्थानीय बोर्ड—सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करके इस अधिनियम को लागू कर सकते हैं।

३ प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिए स्थानीय बोर्ड 'शिक्षा-कर' (Education Cess) लगा सकते हैं।

४ अभिभावको के लिए ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालको को प्राथमिक विद्यालयो मे भेजना अनिवार्य हो। यदि वे इस नियम का उल्लघन करें, तो उन्हे दण्ड दिया जाय।

५ कालान्तर मे बालिकाओ के लिये भी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय।

६. जिस अभिभावक की आय १० रुपये मासिक से कम हो, उससे शिक्षा शुल्क न लिया जाय।

७. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का व्यय-भार स्थानीय बोर्डों और सरकार द्वारा वहन किया जाय। सरकार सम्पूर्ण व्यय का $\frac{2}{3}$ भाग दे।

उपरिकथित सुझावो को देखने से ज्ञात होता है कि गोखले का विधेयक अत्यन्त साधारण था। इसको प्रस्तुत करते हुए उन्होने अति विनम्र भाव से गवर्नर-

---

1. "The object of this Bill is to provide for the gradual introduction of the principle of compulsion into the elementary education system of the country."—Gokhale's *Speeches*, p. 618

जनरल को सम्बोधित करते हुए कहा—"श्रीमान् जी ! साराश मे, मेरा विधेयक यह है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश करने का यह लघु एव तुच्छ प्रयास है।"[1]

विधेयक को जनमत-सग्रह के लिए स्थानीय सरकारो, विश्वविद्यालयो एव कुछ व्यक्तिगत सस्थाओ के पास भेजा गया। १७ मार्च, १६१२ को धारा-सभा म विधेयक पर वाद विवाद प्रारम्भ हुआ। दो दिन के भीषण सघर्ष के पश्चात् १६ मार्च १६१२ को इसे १३ वोटो के विरुद्ध ३८ वोटो से गिरा दिया गया। दु ख की बात यह है कि सरकारी सदस्यो ने तो इसके विपक्ष मे मत प्रदान किया ही परन्तु उनके साथ-साथ जमीदार सदस्यो ने भी अपने गोरे शासको को प्रसन्न करने के लिये ऐसा ही किया। इस प्रकार भारत के कतिपय व्यक्तियो की स्वार्थ-सिद्धि इस देश की जन-शिक्षा म बाधक हुई।

सरकारी प्रवक्ता की हैसियत से सर हारकोर्ट बटलर (Harcourt Butler) ने गोखले के प्रस्तावित विधेयक का विरोध करते हुए कहा कि स्वय जनता इस प्रकार की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये अभी तैयार नही है। यही कारण है कि उसने कभी ऐसी शिक्षा की माँग नही की। अत अनिवार्यता का प्रश्न ही नही उठता। गोखले ने इन सभी तर्कों के अकाट्य उत्तर दिये, परन्तु उन्ह सफलता नही मिली। सरकार ने विधेयक को असामयिक कहकर ठुकरा दिया।

गोखले, प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की चेष्टा मे असफल हुए। परन्तु उनकी असफलता मे सफलता निहित थी। यद्यपि वे सरकार को प्राथमिक शिक्षा की दिशा मे क्रियाशील न कर सके, तथापि उन्होने जनता के समक्ष एक नवीन योजना प्रस्तुत की। सभी राजनैतिक दलो ने इसका समर्थन किया और सभी क्षेत्रो मे इसने हलचल मचा दी।

बम्बई प्राथमिक शिक्षा अधिनियम (१६१८)[2]

गोखले के कार्य से प्रेरणा प्राप्त करके भारत के एक अन्य महान् नेता विट्ठल भाई पटेल ने बम्बई की प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा मे एक विधेयक प्रस्तुत किया। इसका उद्देश्य—प्रान्त के नगरपालिका क्षेत्रो मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना था। विधेयक ने १६१८ मे 'बम्बई प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' का रूप धारण किया इसको 'पटेल-अधिनियम' (Patel Act) भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख धारायें निम्नलिखित हैं —

१ बम्बई के अतिरिक्त अन्य सभी नगरपालिका क्षेत्रो म अधिनियम लागू होगा।

---

1 "This, my Lord, is briefly the whole of my Bill It is a small and humble attempt to suggest the first steps of a journey" —Gokhale's *Speeches*, p 619

2 The Bombay Primary Education Act, 1918

२ ७ से ११ वर्ष तक की आयु के बच्चो के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी।

३ प्राथमिक शिक्षा नि शुल्क होगी।

४ नगरपालिका-क्षेत्रो मे निवास करने वाले प्रत्येक अभिभावक को अपने बच्चो को मान्यता-प्राप्त प्राथमिक विद्यालय मे भेजना पडेगा। यदि कोई अभिभावक इस नियम का उल्लघन करेगा, तो उसे ५ रुपय आर्थिक दण्ड देना होगा।

५ जो व्यक्ति अनिवार्य शिक्षा से लाभ उठा सकने वाले बच्चों को नौकर रखेगा, उसे २५ रुपये आर्थिक दण्ड देना पडेगा।

६ अनिवार्य शिक्षा के कारण होने वाले अधिक व्यय की पूर्ति के लिये नगरपालिकाओ को पुराने करा को बढाने और नये करो को लगाने का अधिकार होगा।

७. अनिवार्य शिक्षा के लिये सरकार अधिक सहायता-अनुदान देने के लिए बाध्य नही होगी। परन्तु सरकार स्वेच्छा से व्यय का कुछ भाग दे सकती है।

८ यह नगरपालिकाओ की इच्छा पर निर्भर होगा कि वे बालका और बालिकाओ—दोनो के लिये या इनमे से किसी एक के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करें।

'पटेल-अधिनियम' मे सरकार के ऊपर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का दायित्व नही रखा गया। इतने बडे प्रान्त मे इस शिक्षा के व्यय के लिये निश्चित साधनो का भी स्पष्टीकरण नही किया गया। परन्तु इन दोषो के होते हुए भी इस अधिनियम ने प्राथमिक शिक्षा के इतिहास मे एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। ब्रिटिश भारत मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एव नि शुल्क बनाने का यह प्रथम प्रयास था। इस सुन्दर उदाहरण का अन्य प्रान्तो मे अनुकरण किया गया और वहाँ भी अनिवाय प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अधिनियम पारित किये गये।

पजाब—पजाब मे १९१९ मे 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' (Primary Education Act) पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे बालको के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

सयुक्त प्रान्त—यहां १९१९ म 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' बना। इसके अनुसार नगरपालिका-क्षेत्रा म बालका तथा बालिकाओ के लिये प्राथमिक शि ा का अनिवार्य कर दिया गया।

बगाल—इस प्रान्त मे १९१९ के 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' के द्वार' नगरपालिका-क्षेत्रो मे बालका के लिय प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। १९३२

मे इस अधिनियम मे संशोधन करके बालिकाओ को भी इस शिक्षा का लाभ दिया गया।

बिहार व उडीसा—यहाँ १६१६ मे 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' पास करके नागरिक एव ग्रामीण क्षेत्रो मे बालको के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया।

बम्बई—'पटेल-अधिनियम' बम्बई के अतिरिक्त अन्य सभी नगरपालिका-क्षेत्रो के लिये था। अत १६२० मे 'बम्बई नगर के लिये 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' (City of Bombay Primary Education Act) बनाया गया। इसके द्वारा बम्बई नगर के बालको तथा बालिकाओ के लिये अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई।

मध्य-प्रान्त—इस प्रान्त मे नागरिक और ग्रामीण क्षेत्रो मे बालको एवं बालिकाओ के लिये १६२० मे अनिवार्य 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' पारित किया गया।

मद्रास—यहाँ १६२० मे 'प्रारम्भिक शिक्षा-अधिनियम' (Elementary Education Act) पास किया गया। इसके अनुसार, नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रो मे बालको और बालिकाओ के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया गया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत के सभी बडे प्रान्तो मे अधिनियम बनाकर प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। २ वर्ष की अवधि मे ७ प्रान्तो मे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियमो का पारित होना—इस बात का प्रतीक है कि भारतीय, शिक्षा के महत्त्व को समझ चुके थे और इसके प्रसार के लिये क्रियाशील हो गये थे। लगभग ४० वर्ष के अविराम संघर्ष के उपरान्त उन्होंने सरकार को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का सिद्धान्त स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। अपने महान् कार्य के लिये इस काल के नेता हमारी प्रशंसा के पात्र हैं।

प्राथमिक शिक्षा की स्थिति (१६०५–१६२१)

हम इसी अध्याय मे 'प्राथमिक शिक्षा (१६०५-१७)' शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख कर चुके हैं कि १६११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अबाध गति से हुई। परन्तु उसके उपरान्त इसमे शैथिल्य आ गया। इसके दो प्रमुख कारण थे :—

१. प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य न होना।
२. सरकारी अधिकारियो द्वारा प्राथमिक शिक्षा की सख्यात्मक वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक उन्नति पर अधिक बल दिया जाना।

(१) प्राथमिक शिक्षा की संख्यात्मक वृद्धि—"१८८२ मे १८६२ तक भारत मे पाँच वर्ष और उससे अधिक आयु के पुरुषो की साक्षरता मे १·४ प्रतिशत

(१३ प्रतिशत से १४·४ प्रतिशत) और स्त्रियों की साक्षरता में १·३ प्रतिशत (·७ प्रतिशत से २ प्रतिशत) वृद्धि हुई। १६२१ में पुरुषों और स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत केवल ७·२ था। प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अत्यधिक मन्द रही है।"[1]

(२) प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति—जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, सरकार ने प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति पर बहुत जोर दिया और इस दिशा में निम्नलिखित कार्य किये :—

१. अध्यापक प्रशिक्षण—'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। फलत. राजकीय प्रशिक्षण-विद्यालय निर्मित किये गये और गैर-सरकारी शिक्षण-संस्थाओं को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी गई। १६२१ में भारत में (बर्मा को सम्मिलित करके) ६२६ प्रशिक्षण-विद्यालय पुरुषों के लिये, और १४६ स्त्रियों के लिये थे। इनमें क्रमश २२,७७४ और ४,१५७ व्यक्तियों को दीक्षित किया जा रहा था। इस वर्ष प्राथमिक विद्यालयों में १८१,२८६ अध्यापक कार्य कर रहे थे, जिनमें से ६७,६१३ दीक्षित और शेष अदीक्षित थे।

२. अध्यापकों का वेतन—अध्यापकों की वेतन-वृद्धि के सम्बन्ध में कुछ प्रान्तों में उदारता की नीति का अनुसरण किया गया। इस कार्य में बम्बई अग्रणी रहा। वहाँ १६०१-०२ में अध्यापकों का वेतन लगभग ८ रुपया मासिक था। १६२१-२२ में इसे बढ़ाकर ३३ रुपये कर दिया गया। पंजाब और मध्य प्रान्त में भी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की गई, परन्तु वह बम्बई से कम थी। बंगाल, बिहार और मद्रास में इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया। उदाहरणत बंगाल में शिक्षकों का औसत मासिक वेतन ८ रुपये था।

३. पाठ्यक्रम—इस अवधि की एक विशेषता यह है कि समय-समय पर प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को दोहरा कर और उसमें अधिक विषयों को स्थान देकर उसे जटिल बना दिया गया, एवं अधिकाश प्रान्तों में पाठ्यक्रम में प्रकृति-अध्ययन और बागवानी को सम्मिलित कर दिया गया।

४. भवन और शिक्षण-सामग्री—इस काल में प्राथमिक विद्यालयों के भवनों और उनकी शिक्षण-सामग्री में सुधार करने की चेष्टा की गई। परन्तु जिस तीव्रता से प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा था, उस अनुपात में इन कार्यों को नहीं किया गया। फलस्वरूप, समग्र रूप में विद्यालयों के भवन और उनकी शिक्षण-सामग्री को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

समीक्षा

यद्यपि में इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए उपरिवर्णित

---

1. *Report of the Hartog Committee*, p. 45.

कार्य किये गये, तथापि उनके परिणाम सुन्दर न निकले। वस्तुत प्राथमिक शिक्षा की यथार्थ उन्नति नही हुई, और न शिक्षण का स्तर ही ऊँचा उठा। कारण यह था कि अदीक्षित अध्यापको की संख्या प्रशिक्षित शिक्षका से कही अधिक थी। पाठ्य-क्रम जटिल था और नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रो के पाठ्य-क्रमो मे कोई विशेष अन्तर नही था। विद्यालयो के लिए उपयुक्त भवनो तथा शिक्षण-सामग्री का अभाव था। कुछ प्रान्तो मे शिक्षको के वेतन मे वृद्धि अवश्य कर दी गई थी, परन्तु प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् वस्तुओ के मूल्य इतने अधिक हो गये थे कि अधिक वेतन प्राप्त होने पर भी शिक्षको को अपने जीवन का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन था। जिन प्रान्तो मे उनके वेतन मे वृद्धि नही की गई थी, वहाँ तो उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक थी। अत यह कहना उपयुक्त ही होगा कि इस काल मे प्राथमिक शिक्षा की न तो संख्यात्मक वृद्धि हुई और न गुणात्मक उन्नति।

स्त्रियों की शिक्षा (१९०५-१९२१)

भारत मे स्त्री-शिक्षा की सदैव से उपेक्षा की गई है। कॉटन (Cotton) का कथन था कि स्त्री-शिक्षा की अप्रगतिशील अवस्था इस देश की शिक्षा प्रणाली को कलंकित कर रही है।[1] कर्जन ने स्वीकार किया था कि भारत मे स्त्री-शिक्षा बहुत पिछडी हुई दशा मे है। उसके समय मे सम्पूर्ण भारत मे केवल ४२५,००० लडकियाँ विभिन्न प्रकार के स्कूलो मे शिक्षा ग्रहण कर रही थी। इनमे लगभग ½ ऐंग्लो-इण्डियन और भारतीय ईसाई थी। कर्जन ने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने का निश्चय किया परन्तु भारतीयो की रूढिवादिता, पर्दा-प्रथा और बाल-विवाह प्रथा की कठिनाइयाँ उसके समक्ष आईं। अत उसने बालिकाओ के लिए कुछ आदर्श विद्यालयो की स्थापना, और उनमे सुयोग्य अध्यापिकाओ की नियुक्ति करके स्त्री-शिक्षा को विस्तृत करने का मार्ग अपनाया। इन कार्यो के परिणाम सन्तोषजनक नही निकले और स्त्री-शिक्षा अपनी पूर्व स्थिति मे ही रही।

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी 'सरकारी प्रस्ताव' (१९१३)

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी 'सरकारी प्रस्ताव' मे स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। इसमे स्वीकार किया गया कि भारतीयो की सामाजिक प्रथायें स्त्रियो की शिक्षा मे अवरोध डालती है। समाज के इन बन्धनो को तिरस्कृत करके स्त्री शिक्षा का प्रसार किया जाना सम्भव नही है। अत प्रान्तीय सरकारो को लिखा गया कि वे स्थानीय सामाजिक परिस्थितियो को अपने दृष्टिकोण मे रखकर स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये अपनी योजनायें भेजें। इसके साथ ही 'सरकारी प्रस्ताव' मे स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये अग्रांकित सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये गये :—

---

1. "The most conspicuous blot on the educational · of India."

१. बालिकाओं को जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाय और वह ऐसी हो, जिससे वे सामाजिक जीवन मे अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकें।
२. बालिकाओ को बालको से भिन्न शिक्षा दी जाय और इसमे परीक्षाओं को कोई महत्त्व न दिया जाय।
३. बालिकाओ की शिक्षा मे स्वास्थ्य-विज्ञान को विशेष स्थान दिया जाय और स्थानीय सामाजिक वातावरण को ध्यान मे रखा जाय।
४. बालिका-विद्यालयो मे शिक्षण तथा निरीक्षण का कार्य करने के लिये स्त्रियाँ ही नियुक्त की जायँ।
५. योग्य भारतीय अध्यापिकाओ के अभाव मे यह वाछनीय होगा कि भारत मे जो विदेशी स्त्रियाँ निवास कर रही हैं, उनको शिक्षण-कार्य के लिये प्रशिक्षित किया जाय।

इस नवीन शिक्षा-नीति के फलस्वरूप लडकियो की शिक्षा को प्रेरणा मिली और उसके प्रत्येक स्तर पर प्रगति के चिह्न दिखाई देने लगे। हम इन विभिन्न स्तरों की ओर नीचे संकेत कर रहे है :—

१. उच्च शिक्षा—इस अवधि मे उच्च शिक्षा के सम्बन्ध मे चार बातें उल्लेखनीय हैं : **प्रथम**—कॉलेजो मे शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओ की संख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हुई। १९२१ मे १,२६३ लडकियाँ, कॉलेजो मे शिक्षा प्राप्त कर रही थी, जब कि १९०२ और १८८२ मे उनकी संख्या क्रमशः १७७ और ६ थी। **द्वितीय**—हिन्दू लडकियाँ अधिक संख्या मे कॉलेजो मे प्रवेश करने लगी और मुस्लिम लडकियो ने भी उच्च शिक्षा से लाभ उठाना प्रारम्भ किया। आर्ट्स कॉलेजो मे पढने वाली १,२६३ लडकियो मे से ३६८ हिन्दू और २५ मुसलमान थी। **तृतीय**—लडकियो ने परीक्षाओ मे अपनी अपूर्व बुद्धि का परिचय दिया और लडको से किसी प्रकार पीछे नही रही। **चतुर्थ**—१९१६ मे पूना मे 'एस० एन० डी० टी० इण्डियन वीमेन्स यूनीवर्सिटी' की स्थापना की गई। इसका श्रेय भारत के सुविख्यात समाज-सेवक महर्षि अन्नासाहब कार्वे को है। उन्होंने अनुभव किया कि स्त्रियो तथा पुरुषो के लिये पाठ्य-क्रम तो भिन्न होना ही चाहिये, साथ ही स्त्रियों के निमित्त ऐसा पाठ्य-क्रम होना चाहिये जो उनके जीवन-कर्त्तव्य के अनुकूल हो। अतः इस विद्यालय का उद्देश्य—स्त्रियों को 'सुमाता' तथा 'सुगृहिणी' बनने की शिक्षा प्रदान करना था।

२. माध्यमिक शिक्षा—इस काल मे स्त्रियो की माध्यमिक शिक्षा मे प्रशंसनीय उन्नति हुई। १९२१ मे हाई स्कूलो और मिडिल स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने वाली लडकियों की संख्या क्रमशः ३६,६९८ और ९२,४६६ थी, जब कि १९०१ में यह संख्या क्रमशः ६,२७४ और ३२,३०८ थी। माध्यमिक विद्यालयों मे शिक्षा ग्रहण करने वाली लडकियो की संख्या मे वृद्धि होने के चार मुख्य कारण थे : **प्रथम**—प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की संख्या मे वृद्धि हो गई थी। उनमें से

अनेक माध्यमिक शिक्षा की इच्छा रखती थी। अत वे माध्यमिक विद्यालयो मे प्रवेश लेने लगी। द्वितीय—शिक्षा-प्रसार के कारण भारतीयो का दृष्टिकोण बहुत कुछ परिवर्तित हो गया था और वे बाल-विवाह की हानियो से परिचित हो गये थे। ऐसी दशा मे अनेक लडकियो के लिये माध्यमिक शिक्षा सुलभ हो गई थी। तृतीय—भारतीयो का दृष्टिकोण व्यापक हो गया था और वे स्त्री-शिक्षा के लाभ से अवगत हो गये थे। अन्तिम—पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ, लडकियो को अंग्रेजी शिक्षा देने का विरोध समाप्त होता जा रहा था। भारतीयो को लडकियो को अंग्रेजी शिक्षा देने के आर्थिक लाभ का अनुभव हो चुका था। ऐसी लडकियो के विवाह मे कठिनाई का सामना नही करना पडता था और साथ ही विवाह मे कम धन भी व्यय करना पडता था। अत अधिकाश अभिभावक अपनी पुत्रियो को अंग्रेजी की शिक्षा देने लगे थे।

२. प्राथमिक शिक्षा—शिक्षा के इस क्षेत्र मे सबसे अधिक प्रगति हुई। १९२१ मे प्राथमिक विद्यालयो मे पढने वाली बालिकाओ की सख्या १,९८,५५० थी, जब कि १९०१ में यह संख्या ३,४८,५१० थी। इस काल मे शिक्षण-विद्यालयो मे दीक्षा लेने वाली छात्राओ की संख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। १८८१ मे इस प्रकार की छात्राओ की संख्या ५१५, १९०१ मे १,४१२ और १९२१ मे ४,३९१ थी। बंगाल मे स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये १९०७ मे 'स्त्री-शिक्षा समिति' की स्थापना की गई। पर्दानशीन स्त्रियो की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

३. व्यावसायिक शिक्षा—इस अवधि मे पूर्व के समान स्त्रियो ने व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education) मे अपनी रुचि व्यक्त नही की। अधिकाश लडकियो ने शिक्षण-विद्यालयो और मेडिकल स्कूलो मे ही प्रवेश लिया। इनमे ऐंग्लो-इण्डियन और भारतीय-ईसाई छात्राओ की सख्या अधिक थी। स्त्रियों को चिकित्सा-शिक्षा की विशेष सुविधा देने के लिये १९१६ मे 'लेडी हार्डिंग्ज कॉलेज' का दिल्ली मे निर्माण किया गया।

मुसलमानो की शिक्षा (१९०५–१९२१)

'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने मुस्लिम-शिक्षा की [illegible] प्रकट किया था और इसकी ओर सरकार का ध्यान [illegible] किया था। सरकार—मुसलमानो को शिक्षित कर और इस [illegible] के लिए उन्हें हिन्दुओ का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर अपने राजनैतिक [illegible] चाहती थी। [illegible] मुसलमानो को शिक्षा की विशेष सुविधायें [illegible] १९२१ [illegible] मुस्लिम-शिक्षा का अद्भुत विस्तार हुआ। [illegible] पहलुओ का अध्ययन नीचे करेंगे —

१. मुस्लिम छात्र—[illegible]

मुसलमानो की सख्या १,७५६,६६१ थी। इनमे १,४६१,५३८ लडके और २६८,४२३ लडकियाँ थी।

२. **मुस्लिम-शिक्षा की विशेषताएँ**—इस काल की मुस्लिम-शिक्षा की चार प्रमुख विशेषतायें थी —(१) मुसलमान छात्रो की संख्या लगभग उतनी ही थी, जितनी कि अन्य जातियो के छात्रो की, (२) जिन प्रान्तों मे मुसलमान अल्प संख्या मे थे, वहाँ उनकी शिक्षा मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई थी; (३) मुस्लिम स्त्रियाँ भी उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने लगी थी, और (४) माध्यमिक स्कूलो एवं कॉलेजो मे अन्य जातियों की अपेक्षाकृत मुस्लिम छात्रो की संख्या कम थी।

३. **विशिष्ट एवं पृथक् स्कूल**—अधिकाश मुस्लिम छात्र सार्वजनिक शिक्षालयो मे पढते थे। परन्तु वे उनसे सन्तुष्ट नही थे—क्योंकि उनमे धार्मिक शिक्षा एवं मुस्लिम अध्यापको का अभाव था, अरबी और फारसी के अध्ययन की सुविधा नहीं थी और शिक्षा का माध्यम 'उर्दू' नही था। अतः मुसलमानो ने विशिष्ट एवं पृथक् स्कूलो की माँग की, जिसे सरकार ने पूर्ण किया। इस काल के मुस्लिम स्कूलो को तीन स्पष्ट समूहो मे विभाजित किया जा सकता है :—

१. प्रथम समूह मे **मकतब, मुल्ला** और **कुरान स्कूल** थे। इनमे प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ, धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी।
२. द्वितीय समूह मे **मदरसे** थे, जिनमे उर्दू, अरबी और फारसी की शिक्षा दी जाती थी।
३. तृतीय समूह मे आधुनिक ढंग के स्कूल और कॉलेज थे। इनमे उर्दू, अरबी और फारसी के साथ-साथ, अंग्रेजी की भी शिक्षा दी जाती थी।

टिप्पणी

मुसलमानो की शिक्षा के लिए विशिष्ट एवं पृथक् स्कूलो की स्थापना का सिद्धान्त आधारभूत रूप से गलत था। इस प्रकार के स्कूलो का निर्माण करके मुसलमान छात्रो को छोटी आयु से ही अन्य जातियो के छात्रो से पृथक् कर दिया जाता था। इसके बडे भयंकर परिणाम निकले। अल्प आयु मे ही मुस्लिम छात्रो के अपरिपक्व मस्तिष्क मे साम्प्रदायिकता की विषाक्त भावना अंकुरित होने लगती थी और वे हिन्दुओं तथा अन्य जातियो को अपने से पृथक् समझने लगते थे। जिस साम्प्रदायिकता का बीज-वपन इस काल मे किया गया, उसका उग्रतम रूप अगस्त, १९४७ मे देश-विभाजन के रूप मे देखने को मिला।

हरिजनों की शिक्षा (१९०५-१९२१)

इस अवधि मे हरिजनो की शिक्षा मे आशातीत प्रगति हुई। हरिजन छात्रों की सबसे अधिक संख्या प्राथमिक विद्यालयो मे थी, परन्तु माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा-

शालाओ मे भी हरिजन छात्र अध्ययन कर रहे थे। १९२१ मे भारत के विभिन्न प्रान्ता मे हरिजन छात्रो की सख्या निम्नाकित तालिका से स्पष्ट हो जाती है[1] —

प्रान्त	हरिजनो की जनसख्या (हजारो मे)	मान्यता प्राप्त विद्यालयो मे हरिजन-छात्र
मद्रास	६,५३०	१,५७,११३
बम्बई	१,४६०	३६,५४३
बगाल	६,६४०	६६,५५२
सयुक्त प्रान्त	७,६८०	३६,८७३
पजाब	१,७००	३,७३२
बिहार व उडीसा	२,५३०	१५,०६६
मध्य प्रान्त	३,०१०	२८,६६६

इस काल मे हरिजनो की शिक्षा की प्रगति के कुछ विशेष कारण थे, जिन पर हम नीचे प्रकाश डाल रहे हैं —

(१) राजकीय प्रयास—हरिजनो की शिक्षा को सरकार से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सरकार ने विविध विधियो द्वारा हरिजनो को शिक्षा ग्रहण करने के लिये आकर्षित किया, यथा—(१) नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था, (२) छात्रवृत्तियाँ तथा अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता, (३) छात्रावासो का प्रबन्ध, (४) हरिजनो को शिक्षा देने वाले विद्यालयो को उदार सहायता-अनुदान, और (५) हरिजन शिक्षको के प्रशिक्षण की व्यवस्था।

(२) व्यक्तिगत प्रयास—इस अवधि मे सवर्ण हिन्दुओ मे जागृति प्रारम्भ हो गई थी और उन्होने भारतीय समाज पर लगी अस्पृश्यता की कलक-कालिमा को धो डालने का दृढ सकल्प कर लिया था। आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज और प्रार्थना-समाज पहले ही अछूतोद्धार के पुनीत कार्य मे अपनी सेवाआ को अर्पित कर चुके थे। गोपाल कृष्ण गोखले ने अस्पृश्यता को समूल नष्ट करने के लिये १९०५ से 'भारत-सेवक समाज' (Servants of India Society) की स्थापना की थी और वह सराहनीय कार्य कर रहा था। १९१४ मे अमृतलाल ठक्कर ने इस 'समाज' के सदस्य बनकर हरिजनोद्धार के कार्य मे अपने जीवन के शेष वर्ष व्यतीत किये। हरिजनो के उत्थान के लिए १९०६ से विट्ठलराम जी शिंदे ने पूना मे 'दलित वर्ग उद्धार सभा' (Depressed Class Mission) स्थापित की। हरिजनोद्धार के कार्य मे सबसे अधिक योग महात्मा गाँधी ने दिया। उन्होने अपने लेखो द्वारा जनता का ध्यान हरिजनो की पतित दशा की ओर आकर्षित किया। उनके नेतृत्व मे काग्रेस ने अपने कार्यक्रम मे हरिजन-समाज-सुधार को प्रमुख स्थान दिया। काग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने

1 *Report of the Hartog Committee*, p. 218.

१६२२ मे वारदौली मे हरिजनो की सामाजिक स्थिति मे सुधार करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया। उसमे कहा गया कि—(क) हरिजनों के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सगठित रूप मे प्रयत्न किया जाय, (ख) उनको मानसिक तथा नैतिक उन्नति करने मे सहायता दी जाय, (ग) उनको अपने बच्चो को शिक्षा देने का लाभ बताया जाय, और (घ) उनके लिये नागरिकों को प्राप्त होने वाली प्रत्येक सुविधा प्रदान की जाय।

उपरिकथित समाज-सेवको तथा सस्थाओ के अतिरिक्त, बडौदा और कोल्हापुर के राजाओ ने हरिजनो के सामाजिक उत्थान के लिये भागीरथ प्रयास किये। बडौदा नरेश, सायाजीराव गायकवाड ने १८८३ मे हरिजनो के लिये १८ विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना की। उन्होने हरिजन विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ देकर, उनके लिये छात्रावासो का निर्माण कर, और उन्हे आर्थिक सहायता देकर शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहन दिया। हरिजनों के नेता डा० अम्बेदकर को बडौदा-नरेश ने अपने व्यय से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अमेरिका भेजा और अपने राज्य मे उच्च पद पर नियुक्त किया। कोल्हापुर-नरेश, शाहू क्षत्रपति ने अपने राज्य के सभी विद्यालयो के द्वार हरिजनो के लिये खोल दिये और शिक्षित हरिजनो की राज-पद पर नियुक्तियाँ की।

(३) **हरिजनो का प्रयास**—उपरोक्त प्रयासो के परिणामस्वरूप, हरिजन अपने राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारो के प्रति जागरूक हुए। कुछ समय से शिक्षा प्राप्त करने के कारण वे इसके लाभ को पूर्णत समझने लगे थे। उनमे ज्ञान पिपासा की वृद्धि हुई और वे शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की माँग करने लगे। इस कार्य मे उन्हे अपने नेताओ—डा० बी० आर० अम्बेदकर और एम० सी० राजा मे विशेष सहायता प्राप्त हुई। उनके नेतृत्व मे हरिजनो ने भारतीय नागरिक के रूप म अन्य व्यक्तियो को प्राप्त—सभी अधिकारो के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किया। वस्तुत हरिजनो की जागृति ने ही उनके शिक्षा-कार्य को आगे बढाया।

टिप्पणी

हरिजन-आन्दोलन से प्रभावित होकर प्रान्तीय सरकारो ने हरिजन छात्रो को शिक्षा ग्रहण करने के लिये सभी सुविधायें प्रदान की। मद्रास सरकार ने १६१६, १६२० और १६२२ मे आदेश देकर सभी सार्वजनिक विद्यालयो के द्वार दलित वर्ग के विद्यार्थियो के लिये खोल दिये। मध्य प्रान्त, सयुक्त प्रान्त और बम्बई मे भी इसी नीति का अनुसरण किया गया। केन्द्रीय सरकार के एक आदेश द्वारा उन विद्यालयो का सहायता-अनुदान कम करने की आज्ञा दी गई, जो हरिजन छात्रो के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगायें। फलस्वरूप, हरिजनो की शिक्षा की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

आदिवासियो एवं पहाडी जातियों की शिक्षा

पूर्व के समान इस काल मे भी आदिवासियो एवं पहाडी जातियो की शिक्षा

का विस्तार नही हुआ। इन जातियो की शिक्षा की व्यवस्था मुख्य रूप से मिशनरियो के हाथ मे ही रही। सरकार ने भी इस दिशा मे कुछ प्रयास किय और थोडे से मिशन स्कूलो का सचालन स्वय करने लगी।

अपराधी जातियो[1] की शिक्षा

इस काल की एक प्रमुख वशेषता—अपराधी जातियो को शिक्षित करना और उन्हे लाभप्रद व्यवसायो म लगाना था। इस दिशा म सरकार का यह सर्वप्रथम प्रयास था। य जातियाँ खानाबदोश थी और अपनी उदर-पूर्ति के लिये चोरी करती थी या दूसरो के पशुओ को चुपचाप ले जाती थी। मद्रास प्रान्त मे इन जातियो के लिए १० बस्तियाँ बनाई गई। प्रत्येक बस्ती मे एक स्कूल था, जिनमे बालको के लिये शिक्षा अनिवार्य थी। १९२१ मे इन विद्यालयो मे १,४४३ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनको व्यावसायिक शिक्षा देने के विचार से सरकार ने औद्योगिक स्कूलो का भी निर्माण किया। पजाब मे अपराधी जातियो के लिये ३३ स्कूल थे—२० लडको के लिए और १३ लडकियो के लिए। इनमे क्रमश ७३० लडके और ४३१ लडकियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी। कुछ औद्योगिक स्कूल भी थे, जिनकी यौगिक छात्र सख्या ११६ थी। सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयो मे १,८५५ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। बम्बई प्रान्त मे अपराधी जातियो की शिक्षा के लिये ३६ स्कूल थे, जिनकी छात्र सख्या १,४७७ थी। सामान्य और मिशन स्कूलो मे इन जातियो के ४,००० विद्यार्थी पढ रहे थे।[2]

व्यावसायिक शिक्षा (१९०५–१९२१)

इस काल म सामान्य शिक्षा की अपेक्षा व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति बहुत ही कम हुई। इस समय तक जो भी व्यावसायिक शिक्षा सस्थायें थी, उनका एकमात्र उद्देश्य—राजकीय विभागो के लिये भारतीयो को किसी उद्योग या व्यवसाय की शिक्षा देना था। देश की औद्योगिक एव व्यावसायिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए शिक्षा सस्थाओ का निर्माण नही किया गया। १९२१ मे व्यावसायिक शिक्षा-सस्थाओ और उनमे पढने वाले छात्रो की सख्या आगे की तालिका से स्पष्ट हो जाती है —

---

1 Criminal Tribes

2 *Quinquennial Review of the Progress of Education in India* (1917-22), p 211

व्यावसायिक शिक्षा-संस्थायें	संस्थाओ की संख्या	छात्रो की संख्या
शिक्षण-महाविद्यालय	१२	५१६
चिकित्सा-शिक्षा के कॉलेज	७	३,८६३
कानून के कॉलेज	१३	५,८६५
इजीनियरिंग कॉलेज	५	८०३
वाणिज्य के कॉलेज	५	४७६
कृषि-कॉलेज	२	३२६
योग	४४	११,८८५

सारांश

२०वी शताब्दी के प्रारम्भ मे राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड रहा था। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत देश के नेताओ ने राष्ट्रीय शिक्षा की मांग की।

राष्ट्रीय शिक्षा का विकास—यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा की मांग वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक मे की गई थी, तथापि १६वी शती मे भी राष्ट्रीय शिक्षा का विचार विद्यमान था। तत्कालीन शिक्षा-प्रणाणी से असन्तुप्ट होकर भारतीयो ने व्यक्तिगत रूप से विद्यालयो का निर्माण किया था, जिनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था। २०वी शती मे राष्ट्रीय आन्दोलन की उग्रता के साथ-साथ, भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की मांग प्रबल होती गई। गांधी जी ने भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की कटु आलोचना की। राष्ट्रीय-शिक्षा को ६ सिद्धान्तो पर आधारित किया गया—(१) भारतीय नियन्त्रण, (२) स्वदेश-प्रेम की शिक्षा, (३) दास्य अनुकरण का अन्त, (४) पाश्चात्य ज्ञान एव विज्ञानो का अध्ययन, (५) अंग्रेजी प्रभुत्व का अन्त, एव (६) व्यावसायिक शिक्षा पर बल। इस सिद्धान्तो के आधार पर १६०५ से १६११ तक बंगाल मे अनेक राष्ट्रीय विद्यालयो का निर्माण किया गया। १६११ मे बंगाल विभाजन के अन्त के साथ-साथ, राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन का भी अन्त हो गया। १६२० मे यह आन्दोलन फिर प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप, ४ माह से कम मे ही 'जामिया मिलिया इस्लामिया, बिहार-विद्यापीठ, काशी-विद्यापीठ, गुजरात-विद्यापीठ' आदि का निर्माण हुआ। लगभग सभी प्रान्तो मे राष्ट्रीय स्कूलो और कॉलेजो की स्थापना हुई।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी 'सरकारी प्रस्ताव'—१६१३ के इस प्रस्ताव मे प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के सुधार के लिए अनेक सुझाव दिये गये। परन्तु प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण इन सुझावो को कार्यान्वित न किया जा सका। फलस्वरूप, भारतीय शिक्षा के विकास के लिये कुछ नही किया गया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग—इस आयोग की नियुक्ति १९१७ में की गई। इसका उद्देश्य—कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाँच करना था, परन्तु इसने भारत के समस्त विश्वविद्यालयों के सुधार के लिये सुझाव दिये। इसीलिए इस आयोग का अत्यधिक महत्त्व है। 'आयोग' ने माध्यमिक शिक्षा के दोष बताये और उनको दूर करने के लिए सुझाव दिये। कलकत्ता विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में भी उत्तम सुझाव रखे। 'आयोग' ने भारतीय विश्वविद्यालयों के कार्यों, संगठन तथा आन्तरिक प्रशासन के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें बताईं, जिनके आधार पर उनमें सुधार किया जा सकता था। 'आयोग' ने स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए कुछ उत्तम सुझाव दिये; यथा—पर्दा-स्कूलों की व्यवस्था और अध्यापिका-प्रशिक्षण तथा चिकित्सा-शिक्षा की सुविधा। 'आयोग' ने अध्यापक-प्रशिक्षण, प्रौद्योगिक शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी सिफारिशें कीं।

उच्च शिक्षा—१९१६ से १९२१ तक भारत में ७ नये विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। सरकार ने इनको उदार आर्थिक सहायता दी। फलस्वरूप, ये शिक्षण-कार्य में कुशलता प्राप्त करने लगे। १९११ से १९२१ तक ६६ कॉलेजों की स्थापना हुई। सरकार से पर्याप्त सहायता अनुदान मिलने के कारण इनका शिक्षण-स्तर उच्च हो गया।

माध्यमिक शिक्षा—इस काल में माध्यमिक शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। १९२१ में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या ५,१२४ थी। इन विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। अंग्रेजी के शिक्षण में सुधार हुआ। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से भारतीय भाषाओं का विकास रुक गया।

प्राथमिक शिक्षा—१९११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में बहुत तीव्रता रही। दिल्ली-दरबार में सम्राट् ने प्राथमिक शिक्षा पर ५० लाख रुपया व्यय किये जाने की आज्ञा दी। १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' के फलस्वरूप लगभग सभी प्रान्तों में जिला-परिषदों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्राथमिक स्कूलों का निर्माण किया गया। परन्तु फिर भी प्राथमिक शिक्षा की संतोषजनक प्रगति नहीं हुई।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा—सर्वप्रथम बड़ौदा-नरेश ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया। १९०६ के अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण बड़ौदा राज्य के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। गोखले ने १६ मार्च, १९११ को केन्द्रीय धारा-सभा में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया, पर वह पास न हो सका। १९१८ के 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' के द्वारा बम्बई नगर के अतिरिक्त सभी नगरपालिका-क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया। १९१९ में पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल और बिहार व उड़ीसा में अधिनियम बनाकर प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। १९२० में इस प्रकार के अधिनियम मध्य प्रान्त, मद्रास और बम्बई नगर के लिये भी बनाये गये।

स्त्रियों की शिक्षा—१९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' के सुझावों के फलस्वरूप प्रत्येक स्तर पर स्त्री-शिक्षा की प्रगति हुई। १९२१ में १,२६३ लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थी। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे भी अच्छी प्रगति हुई। प्राथमिक शिक्षा का सबसे अधिक विस्तार हुआ।

मुसलमानों की शिक्षा—मुसलमान. की शिक्षा की ओर सरकार ने विशेष ध्यान दिया। उनके लिये विशिष्ट एवं पृथक् स्कूलों की स्थापना की गई। मुस्लिम-स्त्रियों ने भी उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया।

हरिजनों की शिक्षा—हरिजनों के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये तिलक, अमृतलाल ठक्कर, शिंदे, बड़ौदा-नरेश और कोल्हापुर के राजा ने अथक् प्रयास किये। इन सब से अधिक कार्य महात्मा गांधी और उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने किये। सरकार ने हरिजनो की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष रूप से चेष्टा की। स्वयं हरिजनो ने भी शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की माँग की। इन सभी बातों के कारण हरिजनो की शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई।

अन्य जातियों की शिक्षा—आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा मे विस्तार नही हुआ। अपराधी जातियों के बच्चो को शिक्षित करने के लिये मद्रास, पंजाब और बम्बई मे स्कूल खोले गये।

व्यावसायिक शिक्षा—इस काल मे सामान्य शिक्षा की अपेक्षा व्यावसायिक शिक्षा की बहुत ही कम प्रगति हुई।

TEST QUESTIONS

1. Give a historical review of the attempts for Compulsory Primary Education in India from 1906 to 1920. How far did these attempts succeed ?
   भारत मे १९०६ से १९२० तक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये किये गये प्रयासो का ऐतिहासिक सर्वेक्षण कीजिये। ये प्रयास कहाँ तक सफल हुए ?
2. "In spite of some defects, it is universally admitted that the Calcutta University Commission wielded the greatest influence on university education in this country." Comment.
   "कुछ दोषो के बावजूद यह बात सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है कि 'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग' ने इस देश की विश्वविद्यालय-शिक्षा पर सबसे अधिक प्रभाव डाला।" विवेचना कीजिये।
3. What defects in the Secondary Education were pointed out by the Sadler Commission ? What suggestions were offered by the Commission to remedy them ?

"सैडलर कमीशन' द्वारा माध्यमिक शिक्षा मे कौन-से दोष बताये गये ? उनको दूर करने के लिये आयोग के द्वारा क्या सुझाव दिये गये ?

4 "Between 1905 and 1921 we find a great ferment of educational thought within the fold of Indian struggle for freedom." Elucidate the statement.

"१९०५ से १९२१ के बीच स्वतन्त्रता के लिये भारतीय सघर्ष के अन्तर्गत हमे शैक्षिक विचार की बहुत हलचल मिलती है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये ।

5 What were the main recommendations of the Sadler Commission ? How did these recommendations affect the course of University Education in India ?

"सैडलर आयोग' की प्रमुख सिफारिशो पर प्रकाश डालिये । इन सिफारिशो ने भारत मे विश्वविद्यालयी शिक्षा की यात्रा तथा प्रगति को किस प्रकार प्रभावित किया ?

१६

द्वैध-शासन में शिक्षा की प्रगति

(१९२१-१९३७)

प्रस्तावना

१९१४ मे प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ। अन्य मित्र-राष्ट्रो के साथ इगलैण्ड ने भी यह घोषित किया कि युद्ध—"ससार को जनतंत्रवाद के लिये सुरक्षित बनाने के उद्देश्य से" लडा जा रहा है। इस घोषणा के पश्चात् महात्मा गाधी के नेतृत्व मे भारतीयो ने धन-जन से इंगलैण्ड की सहायता की। १९१८ मे युद्ध-विराम की घोषणा हुई। उस समय भारत मे गहरी अशान्ति का साम्राज्य था। भारतीय उद्योग धन्धो की दशा दयनीय थी। बेकारी बढती जा रही थी। कृपक, श्रमिक एव मध्य श्रेणी के व्यक्ति क्षुब्ध हो रहे थे। किन्तु सरकार की ओर से जनता के कष्टो को दूर करने के लिये कोई कदम नही उठाया गया। "साम्राज्य की आवश्यकता" पूर्ण हो जाने पर भारतवर्ष के साथ विश्वासघात किया गया।

मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट

इस बीच मे भारत-मंत्री लार्ड मॉन्टेग्यू (Montagu) ने भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड (Chelmsford) के साथ भारत का दौरा करके देश की राजनीतिक एव वैधानिक परिस्थितियो का अध्ययन किया और जुलाई, १९१८ मे 'मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट' (Montagu-Chelmsford Report) प्रकाशित की। इसके अनुसार भारतीयो को थोडी मात्रा मे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन देने का आश्वासन दिया गया। इसने भारतीय वातावरण को निराशा के बादलो से आच्छादित कर दिया। युद्ध से पूर्व की गई घोषणा मे कहा कुछ गया था और अब किया कुछ और जा रहा था। अगस्त, १९१८ के 'बम्बई अधिवेशन' मे कांग्रेस ने 'रिपोर्ट' को "निराशाजनक एवं असन्तोषप्रद" बताया।

द्वैध-शासन की स्थापना

उपर्युक्त 'रिपोर्ट' के आधार पर ब्रिटिश संसद ने १९१९ का 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) पारित किया, और १९२१ मे उसे कार्यान्वित कर दिया गया। इस अधिनियम के अनुसार भारत मे द्वैध-शासन-प्रणाली (Dyarchy), अर्थात् दोहरे शासन की व्यवस्था की गई। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तो के विषयो को दो भागो मे विभाजित किया गया—(१) संरक्षित (Reserved), और (२) हस्तान्तरित (Transferred)। संरक्षित विषयो को प्रशासन कर्मचारी वर्ग के हाथो मे सौपा गया। ये कर्मचारी गवर्नर-जनरल एवं भारत-मन्त्री के माध्यम से ब्रिटिश लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी थे। हस्तान्तरित विषयो के प्रशासक जन-प्रिय मंत्रीगण, प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। शिक्षा को हस्तातरित विषयो मे स्थान दिया गया और उसे लोकप्रिय मंत्रियो को सौंप दिया गया। इस प्रकार, प्रातीय शिक्षा हस्तान्तरित विषय हो गया। परन्तु यूरोपियनो की शिक्षा एवं केन्द्र-प्रशासित प्रदेशों—पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त, अजमेर-मेरवाड, कुर्ग, दिल्ली, बंगलौर, बिलोचिस्तान एव सिकन्दराबाद—की शिक्षा पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण यथावत् बना रहा। इसके अतिरिक्त बनारस, अलीगढ और दिल्ली विश्वविद्यालयों, राजकुमारो के कॉलिजो तथा अखिल भारतीय गवेषणा-शालाओ पर केन्द्रीय सरकार ने अपना आधिपत्य रखा।

शिक्षा-मंत्रियों की कठिनाइयाँ

भारतीय शिक्षा के इतिहास मे प्रथम बार शिक्षा पर प्रान्तो के जन-प्रिय भारतीय मंत्रियो का अधिकार स्थापित हुआ। परन्तु इन मन्त्रियो को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

१. शिक्षा हस्तान्तरित विषय था, परन्तु वित्त-विभाग पर अंग्रेज मंत्रियो का अधिकार था, जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी न होकर केवल गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे। शिक्षा की कोई भी योजना वित्त-विभाग के प्रशासको के सक्रिय सहयोग और सहायता के बिना आगे नही बढ सकती थी। शिक्षा-मंत्रियो को अपनी आवश्यकताओ के अनुसार धन नही मिलता था। अत. उनकी शिक्षा-योजनाये अपूर्ण रह जाती थी।

२. केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा के व्यय का सम्पूर्ण भार प्रान्तो पर डाल दिया और आर्थिक सहायता बन्द कर दी। ऐसी स्थिति मे प्रान्तीय सरकारो के पास धन का अभाव रहने लगा और शिक्षा पर समुचित धन-राशि व्यय करना असम्भव हो गया।

३. प्रान्त की समस्त शक्तियाँ—गवर्नरो के हाथो मे केन्द्रित थी और वे हस्तातरित विषयो (जिनमे शिक्षा भी थी) के क्षेत्र मे नीति-विषयक एवं विस्तार-सम्बन्धी—दोनो प्रकार के प्रश्नो मे हस्तक्षेप करते थे। ऐसी

परिस्थितिया मे शिक्षा-मन्त्री तथा अन्य मन्त्रिया के समस्त अधिकार नाम-मात्र के ही थे।

४ शिक्षा-मन्त्रिया को 'भारतीय शिक्षा सेवा' (Indian Educational Service) के कर्मचारी वर्ग पर किसी प्रकार का प्रभुत्व तथा नियन्त्रण प्राप्त नही था। कर्मचारीगण अपने आप को अनुभवहीन मन्त्रिया से अधिक कार्य-कुशल समझ कर मन्त्रिया का निर्देशन करना चाहते थे। ऐसी स्थिति मे वे मन्त्रिया की शिक्षा योजना को तिरस्कार की दृष्टि से दखते थे और उन्हे पूर्ण नही होने दते थे।

५ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १६१६ के अधिनियम से असतुष्ट थी। उसन द्वैध-शासन एव विभाजित उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की अवहेलना की, प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ का बहिष्कार किया और 'असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलस्वरूप, जनता का ध्यान शिक्षा की अपेक्षा राजनैतिक समस्याओ पर अधिक केन्द्रित रहा।

उपयु क्त पृष्ठभूमि मे भारतीय शिक्षा मन्त्रियो ने अपने प्रान्तो की शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। अनेक कठिनाइयो के बीच से गुजरते हुए भी उन्होने शिक्षा के क्षेत्र मे थोडा-बहुत रचनात्मक कार्य अवश्य किया। कुछ प्रान्तो मे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम पारित किये गये, औद्योगिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया गया, वयस्क साक्षरता की दिशा मे रचनात्मक कदम उठाया गया एव शिक्षा सम्बन्धी अन्य कार्य भी किये गये। शिक्षा मन्त्रियो को अपनी शिक्षा-योजनाओ को पूर्ण करने मे 'राष्ट्रीय आन्दोलन' और शिक्षा के प्रति जनता के अदम्य उत्साह से बहुत प्रेरणा मिली। फलस्वरूप, १६२१ से १६३७ तक शिक्षा का विस्तार अत्यन्त तीव्र गति से हुआ।

हर्टाग समिति[1]

द्वैध शासन-प्रणाली "एक असगत आधार वाली, बोझिल, दुरूह तथा अस्त व्यस्त प्रणाली सिद्ध हुई। भारतीय जनमत के सभी पक्ष उससे असतुष्ट रहे। कांग्रेस ने उसका घोर विरोध किया और पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की। भारतीय आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश लोकसभा ने ८ नवम्बर, १६२७ को 'साइमन कमीशन' (Simon Commission) की नियुक्ति की, जिसका उद्देश्य—१६१६ की सुधार-योजना के अनुभवा की विवेचना करना था। इस कमीशन की नियुक्ति के समय भारत म राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन चल रहा था और भारतीय, शिक्षा-पद्धति की तीक्ष्ण आलोचना कर रहे थे। अत कमीशन ने भारतीय शिक्षा की जाँच करना आवश्यक समझा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिय कमीशन ने एक 'सहायक समिति (Auxiliary Committee) की नियुक्ति की। इसके सभापति कमीशन के एक सम्य

1. Hartog Committee

सर फिलिप हर्टाग (Philip Hartog) थे। उन्ही के नाम से यह समिति 'हर्टाग-समिति' (Hartog Committee) के नाम से विख्यात है। समिति ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के सभी अङ्गों का अध्ययन किया और सितम्बर, १९२९ मे अपनी रिपोर्ट कमीशन के समक्ष प्रस्तुत की।

समिति की रिपोर्ट

समिति ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा कि १९१७ से १९२७ तक शिक्षा के सभी अंगो की तीव्र गति से प्रगति हुई है और संख्यात्मक वृद्धि के साथ-साथ, गुणात्मक उन्नति भी हुई है। समिति का कथन था—"प्राथमिक विद्यालयों में छात्रो की अत्यधिक संख्या व्यक्त करती है कि शिक्षा के प्रति जनता की उदासीनता का अन्त हो रहा है। भारत की स्त्रियो मे सामाजिक एवं राजनैतिक जागृति प्रारम्भ हो गई है और वे शिक्षा तथा सामाजिक सुधार की बलपूर्वक माँग कर रही है। शिक्षा प्राप्त करने वाले मुसलमानो की संख्या मे तीव्र वृद्धि हुई है। दलित वर्गों की दशा सुधारने के लिये प्रयास किये गये हैं, और इन प्रयत्नो के फलस्वरूप वे शिक्षा के अपने अधिकार की माँग करने लगे हैं। सार्वजनिक नेताओ मे शिक्षा की जटिल एवं कठिन समस्या को समझने और सुलझाने की इच्छा है एवं शिक्षा-मन्त्रियों ने शिक्षा पर पर्याप्त अतिरिक्त धन व्यय करने का प्रस्ताव किया है और व्यवस्थापिकाओ ने उनके कार्य का अनुमोदन किया है।"[1]

भारतीय शिक्षा के इस सुन्दर पहलू का चित्रण करने के उपरान्त समिति ने दूसरे पहलू का भी चित्र प्रस्तुत किया। उसने लिखा कि सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था मे अपव्यय एवं प्रभावहीनता के प्रमुख दोष दृष्टिगोचर होते है। प्राथमिक शिक्षा मे अपव्यय सबसे अधिक है। प्राथमिक विद्यालयो मे छात्रो की संख्या मे अवश्य वृद्धि हुई है। माध्यमिक शिक्षा के संगठन मे महान् दोष परिलक्षित होते है। विश्वविद्यालयो मे शिक्षण से अधिक महत्व परीक्षाओं को दिया जाता है।[2] इस प्रकार शिक्षा के सभी अंगो की विशद व्याख्या करने के पश्चात् समिति ने लिखा—"हमसे शिक्षा के संगठन के सम्बन्ध मे रिपोर्ट देने के लिए कहा गया था। उस संगठन के प्रत्येक पहलू पर पुनः विचार करने और उसको सशक्त बनाने की आवश्यकता है, और शिक्षा के संगठन के लिये जो संस्थायें उत्तरदायी है, उनके पारस्परिक सम्बन्धो को पुन. निर्धारित करना अनिवार्य है।"[3]

1. *Report of the Hartog Committee*, p. 345.
2. *Ibid*, pp. 345-46.
3. "We were asked to report on the organization of education At almost every point that organization needs reconsideration and strengthening; and the relations of the bodies responsible for the organization of education need re-adjustment." —*Ibid*, p. 346.

शिक्षा के विभिन्न अवयवो के सम्बन्ध मे 'हर्टाग समिति' ने जो विचार व्यक्त किये, उनका वर्णन आगे यथास्थान किया जायगा ।

उच्च शिक्षा (१६२१–१६३७)

विश्वविद्यालयो का निर्माण

१६१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' मे कहा गया था कि प्रत्येक प्रान्त मे एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय, और अधिक से अधिक सम्भव स्थानो पर शिक्षण-विश्वविद्यालयो का निर्माण किया जाय । फलस्वरूप, इस काल मे ५ नवीन विश्वविद्यालयो का शिलान्यास किया गया । इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है —

१. दिल्ली विश्वविद्यालय—इसकी स्थापना १६२२ मे परीक्षा लेने और सम्बद्धीकरण करने के लिये की गई । इसके अन्तर्गत 'रामजस कॉलिज, हिन्दू कॉलिज और सेन्ट स्टीफेन्स कॉलेज' थे । १६३७ तक यह विश्वविद्यालय इसी स्थिति मे रहा ।

२. नागपुर विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय का निर्माण १६२३ में मध्य-प्रान्त एवं बरार की आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिये किया गया । प्रारम्भ म यह केवल सम्बद्धीकरण की व्यवस्था करता था, परन्तु शीघ्र ही इसने अपने प्रबन्ध मे कानून का एक कॉलेज स्थापित किया ।

३ आन्ध्र विश्वविद्यालय—इसकी स्थापना १६२६ मे मद्रास प्रान्त के तेलगू भाषा के क्षेत्रो मे उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए की गई । यह शिक्षण एवं सम्बद्धीकरण विश्वविद्यालय था । १६३३ मे इसने विज्ञान और औद्योगिक शिक्षा तथा १६३७ मे आर्ट्स के शिक्षण का प्रबन्ध किया ।

४. आगरा विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास १६२७ में किया गया । यह सम्बद्धक विश्वविद्यालय था । इसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार में उत्तर-प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, ग्वालियर तथा राजस्थान थे ।

५. अन्नमलई विश्वविद्यालय—यह एकात्मक (Unitary) शिक्षण एवं सम्बद्धक विश्वविद्यालय था । इसकी आधारशिला १६२६ मे महाराजा अन्नमलई से २० लाख रुपए की दानस्वरूप प्राप्त धन-राशि से रखी गई । इसमे अंग्रेजी, तमिल और संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी । तमिल भाषा के लिये इसमे एक अनुसन्धान-विभाग भी था ।

पुराने विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन

इस काल मे पुराने विश्वविद्यालयो मे सुधार करके उनका पुनर्गठन किया गया । मद्रास विश्वविद्यालय ने विज्ञान के विभिन्न विषयो की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की और अनुसन्धान-कार्य भी प्रारम्भ किया । बम्बई विश्वविद्यालय ने स्न-तकोत्तर एवं औद्योगिक शिक्षा प्रदान करने के कार्य का श्रीगणेश किया । आगरा

विश्वविद्यालय की स्थापना के उपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने सम्बद्धीकरण करने का कार्य समाप्त कर दिया और पूर्ण रूप से शैक्षणिक बन गया। पंजाब विश्वविद्यालय ने विज्ञान के 'ऑनर्स कोर्स' को अधिक व्यापक बनाया। इन विश्वविद्यालयो के अतिरिक्त, पटना और कलकत्ता विश्वविद्यालयो को भी पुनर्संङ्गठित करके उनकी कार्य-क्षमता मे उन्नति की गई।

विश्वविद्यालय-शिक्षा

इस अवधि मे नवीन विश्वविद्यालयो के निर्माण एवं पुरानो के पुनर्गठन तथा विस्तार के कारण उच्च शिक्षा की अधिक सुविधायें हो गईं। फलस्वरूप, छात्रो की संख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। १९२१-२२ मे विश्वविद्यालयो और उनसे सम्बद्ध कॉलिजो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो की यौगिक संख्या लगभग ६६,२५८ थी। १९३६-३७ मे यह संख्या बढ़कर १,२६,२२८ हो गई। अनुसन्धान-कार्य करने वाले छात्रो को छात्रवृत्तियो, प्रयोगशालाओ, उत्तम पुस्तकालयो एवं अन्य सुविधाओ द्वारा प्रोत्साहित किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रायः सभी विश्वविद्यालयो मे सैनिक शिक्षा की व्यवस्था एवं यू० टी० सी० (University Training Corps) की स्थापना की गई। कलकत्ता, ढाका और कुछ अन्य विश्वविद्यालयो मे सैनिक शिक्षा (Military Science) को पाठ्यक्रम मे सम्मिलित किया गया। इस शिक्षा के फलस्वरूप विद्यार्थियो का शारीरिक एवं चारित्रिक विकास हुआ और वे अनुशासन के महत्त्व को समझने लगे। इस काल की विश्वविद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि विद्यार्थियो के लिये छात्रावासो का प्रबन्ध किया गया और उनके स्वास्थ्य की देख-भाल के लिये चिकित्सक नियुक्त किये गये।

'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग' ने सुझाव दिया था कि इन्टरमीडिएट कक्षाओ को विश्वविद्यालयो से पृथक् कर दिया जाए और प्रान्तो मे शिक्षा-परिषदो की स्थापना की जाय, जो इन्टरमीडिएट और हाई स्कूल कक्षाओ के शिक्षण का प्रबन्ध करें। इस सुझाव के अनुसार ढाका विश्वविद्यालय ने इन्टरमीडिएट की कक्षाएँ पृथक् कर दी। अलीगढ, लखनऊ, इलाहाबाद, दिल्ली और मद्रास विश्वविद्यालयों ने भी इन्टरमीडिएट कक्षाओ से अपना कोई सम्बन्ध नही रखा। अब ये कक्षाएँ प्रान्तों में स्थापित की गई परिषदो की अध्यक्षता मे आ गईं। इस परिवर्तन पर १९२२ में विवाद प्रारम्भ हो गया, जो १९२९ तक चलता रहा। शिक्षा-विशेषज्ञों का कहना था कि इन्टरमीडिएट कॉलिजो मे शिक्षा का इतना उत्तम प्रबंध नहीं हो सकेगा जितना कि विश्वविद्यालयो मे था। फिर इन्टरमीडिएट कक्षाओ मे विश्वविद्यालयों को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। इन कक्षाओ के पृथक् हो जाने मे उनकी आय के एक उत्तम साधन का अन्त हो गया। इस विवाद के फलस्वरूप आगरा, बम्बई, अन्नामलई और पटना विश्वविद्यालयो के अधिनियमो मे इन्टरमीडिएट कक्षाओं को रखने की छूट प्रदान की गई। मद्रास एवं दिल्ली विश्वविद्यालयों ने इन्टरमीडिएट कक्षाओं के

नही किया। उत्तर प्रदेश मे शिक्षा-परिषद् की स्थापना हो गई थी, फिर भी 'आगरा विश्वविद्यालय-अधिनियम' मे इण्टरमीडिएट कक्षायें रखने की व्यवस्था की गई। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त, केवल ढाका, पंजाब और बिहार मे शिक्षा-परिषदो का निर्माण हुआ।

हर्टाग समिति और विश्वविद्यालय-शिक्षा

हर्टाग समिति ने विश्वविद्यालय-शिक्षा की जाँच की, और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उसमे निम्नलिखित दोष थे —

१. विश्वविद्यालयो की सख्या मे सराहनीय वृद्धि हुई है, परन्तु शिक्षण का स्तर गिर गया है।
२ विश्वविद्यालय की शिक्षा मे छात्रो मे बौद्धिक रुचि उत्पन्न करने, उन्हें जीवन का अनुभव प्रदान करने तथा देश के नेता बनाने की क्षमता नही।
३ विश्वविद्यालयो मे पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता है। फलस्वरूप, उनका ध्यान शिक्षण-कार्य पर केन्द्रित न रहकर, छात्रो की सख्यात्मक वृद्धि पर केन्द्रित रहता है।
४ विश्वविद्यालयो और उनसे सम्बन्धित कॉलेजो के कार्य मे सामजस्य नही है एव उनका वातावरण उचित रूप से विकसित नही किया गया है।
५ विश्वविद्यालयो द्वारा किया गया अनुसन्धान का कार्य सन्तोषजनक है परन्तु 'ऑनर्स कोर्स' का समुचित सगठन नही किया गया है।
६ विश्वविद्यालयो मे सुसमृद्ध पुस्तकालयो का अभाव है।
७. विश्वविद्यालयो के छात्रो मे सामूहिक जीवन का अभाव है और उनमें बेरोजगारी की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।
८ विद्यार्थियो को अंग्रेजी का इतना अल्प ज्ञान है कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दिये हुए व्याख्यानो को नही समझ पाते हैं। फलस्वरूप न केवल विश्वविद्यालयो का, अपितु माध्यमिक विद्यालयो का भी शिक्षण स्तर निम्नतर हो गया है।

विश्वविद्यालयो के इन दोषो को दूर करने के लिये समिति ने निम्नांकित सुझाव दिये —

१ शिक्षा की दृष्टि से एकात्मक विश्वविद्यालय सर्वोत्तम होते हैं। परन्तु भारत की परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए सम्बद्ध विश्वविद्यालयो की आवश्यकता अभी पर्याप्त समय तक रहेगी। अत दोनो प्रकार के विश्वविद्यालयो को प्रोत्साहित किया जाय।

२. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाना आवश्यक है। इससे न केवल विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले, अपितु माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों का भी कल्याण होगा।
३. विश्वविद्यालयों के प्रवेश-नियमों में कड़ाई की जाय। केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाय, जिनमें उच्च शिक्षा का लाभ उठाने की योग्यता हो।
४. विश्वविद्यालयों का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे सुसमृद्ध पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं और अनुसन्धान-कार्यों की उत्तम व्यवस्था करें।
५. 'ऑनर्स कोर्स' के शिक्षण का प्रबन्ध किया जाय और इसको 'पास-कोर्स' से पृथक् रखा जाय। 'ऑनर्स-कोर्स' को सफल बनाने के लिये विश्वविद्यालय और उनसे सम्बन्धित कॉलिजों के प्राध्यापकों पर सम्मिलित रूप से उत्तरदायित्व रखा जाय।
६. स्नातकों में बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिये विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया जाय। औद्योगिक शिक्षा-प्राप्त छात्रों को सरकार द्वारा नौकरी दी जाय।
७. स्नातकों को नौकरी प्राप्त करने की सुविधा देने के विचार के विश्वविद्यालयों में 'रोजगार-कार्यालय' (Employment Bureaus) स्थापित किये जायँ।
८. विश्वविद्यालयों का एक प्रमुख कर्त्तव्य—जन-साधारण में ज्ञान का प्रसार करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विश्वविद्यालयों द्वारा व्याख्यान-मालाओं की योजना का सूत्रपात किया जाय।

माध्यमिक शिक्षा (१९२१–१९३७)

१९२१ से १९३७ तक उच्चशिक्षा के क्षेत्र में जितनी अनेकमुखी उन्नति परिलक्षित होती है, उतनी माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अवलोकित नहीं होती है। निस्सन्देह, माध्यमिक विद्यालयों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में, कॉलिजों और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई, परन्तु माध्यमिक शिक्षा के कुछ आधारभूत दोषों (यथा—शिक्षा का माध्यम और अध्यापकों का प्रशिक्षण) का निवारण न हो सका।

माध्यमिक शिक्षा का विस्तार

१९२१-२२ में मान्यता-प्राप्त स्कूलों की संख्या ७,५३०; और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या ११,०६,८०३ थी। १९३६-३७ में यह संख्या क्रमशः १३,०५६ और २२,८७,८७२ थी। इन आँकड़ों को देखने से माध्यमिक शिक्षा का विस्तार असाधारण ज्ञात होता है। इस आश्चर्यजनक वृद्धि के अग्रलिखित कारण थे :—

१. राजनैतिक चेतना एवं राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन के फलस्वरूप भारत वासी शिक्षा के महत्त्व से अवगत हो गये थे और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विद्यालयों का नवनिर्माण किया जा रहा था।

२. पिछड़ी जातियों, निम्न वर्गों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी जागरूकता थी और परिणामस्वरूप माध्यमिक शिक्षा को सुलभ बनाने के लिये स्कूलों की स्थापना हो रही थी।

३ कुछ उदार व्यक्तियों ने स्कूलों के निर्माण के लिये धन दिया। कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जो अपनी लोकप्रियता में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से इस दिशा में कार्यरत हुए।

४. एक क्षेत्र के निवासी अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्ति के लिये अन्य क्षेत्रों में स्थापित विद्यालयों में नहीं भेजना चाहते थे। अत. उन्होंने सामूहिक प्रयास से अपने क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना की।

५ कुछ विद्यालयों का निर्माण समीपवर्ती क्षेत्रों के निवासियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता एवं कलह के कारण हुआ।

६ कतिपय विद्यालयों के शिक्षकों ने प्रबन्धकों के व्यवहार से असंतुष्ट होकर पृथक् विद्यालय निर्मित किये।

७. शिक्षित व्यक्तियों में बेकारी बढ़ रही थी। अत. उनमें से कुछ उत्साही एवं बुद्धिमान मनुष्यों ने विद्यालयों की स्थापना करके अपने जीविकोपार्जन का साधन खोज लिया।

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप १९३७ तक सम्पूर्ण देश में माध्यमिक विद्यालयों का एक ताना-बाना बुन गया। प्राय. प्रत्येक बड़े ग्राम और कस्बे में एक स्कूल भवन दिखाई देने लगा। अध्ययन की सुविधा होने के कारण उस क्षेत्र के बच्चे उनमें प्रवेश करने लगे और शीघ्र ही छात्रों की बाढ़ दिखाई देने लगी।

शिक्षा का माध्यम

इस काल की माध्यमिक शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। परन्तु फिर भी कुछ स्कूल ऐसे थे जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा ही रही। इसके कारण थे—(१) उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। अत. कुछ विद्यालयों के प्रबन्धकों ने माध्यम के स्थान पर अंग्रेजी को ही प्रतिष्ठित रखा। (२) कुछ अभिभावक चाहते थे कि उनके बच्चे अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त करें। अतः वे उनको ऐसे ही स्कूलों में भेजते थे, जहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। (३) कुछ क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाता था। अत: वहाँ अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देना अनिवार्य था। (४) भारतीय भाषाओं में विज्ञान

आदि की उत्तम पुस्तको एवं शब्दावली का अभाव होने के कारण अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाना पडता था।

उपरोक्त कठिनाइयो पर १६३७ तक विजय प्राप्त कर ली गई, और भारतीय भाषाओ को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठापन कर दिया गया।

माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षक

इस काल मे माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापको के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। १६३७ मे १५ शिक्षण-विद्यालय थे, जिनमे १,३४१ पुरुष और १४७ स्त्रियाँ थी। माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षको की दशा मे सुधार करने के प्रयास किये गये। उनके लिये 'प्राविडेण्ड फण्ड' की योजना कार्यान्वित की गई। प्रबन्धको द्वारा निकाले जाने वाले गैर-सरकारी स्कूलो के शिक्षको को विद्यालय-निरीक्षक से अपील करने का अधिकार दिया गया। सहायता-अनुदान पाने वाले विद्यालयो के लिये विद्यालय-निरीक्षक का निर्णय स्वीकार करना अनिवार्य कर दिया गया।

हर्टाग समिति और माध्यमिक शिक्षा

हर्टाग समिति ने उच्च शिक्षा के समान माध्यमिक शिक्षा की सूक्ष्म जाँच नही की। फिर भी 'समिति' ने माध्यमिक शिक्षा के प्रधान गुण-दोषो की ओर संकेत किया और शिक्षा का स्तर उच्च करने के लिये सुझाव दिये। समिति ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा कि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यापको की दशा, उनकी शिक्षण-योग्यता और स्कूलो के सामाजिक जीवन को व्यापक बनाने मे उन्नति हुई है। परन्तु उच्च शिक्षा के समान माध्यमिक शिक्षा मे भी संगठन के दोष हैं। "माध्यमिक शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली मे आज भी उसी आदर्श की प्रधानता है कि प्रत्येक बालक जो माध्यमिक विद्यालय मे प्रवेश करता है, उसे विश्वविद्यालय मे पढने के लिये अपने आप को तैयार करना चाहिये, और 'मेट्रीकुलेशन' एवं विश्वविद्यालय परीक्षाओ मे एक विशाल संख्या मे बालको का असफल होना—प्रयास के एक महान् अपव्यय का द्योतक है।"[1]

इस प्रकार 'समिति' के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के दो प्रमुख दोष थे—(अ) मेट्रीकुलेशन परीक्षा की प्रधानता, (ब) अनुत्तीर्ण छात्रो की विशाल संख्या। इन दोषो के निवारण एवं माध्यमिक शिक्षा मे सुधार करने के लिये समिति ने अग्रलिखित सुझाव दिये—

1. "The whole system of secondary education is still dominated by the ideal that every boy who enters a secondary school should prepare himself for the university, and the immense numbers of failures at the Matriculation and in the university examinations indicate a great waste of effort."—*Hartog Committee Report*, pp 345-346.

१. मिडिल स्कूलों का पाठ्यक्रम इतना संकुचित है कि उनके अध्ययन के उपरान्त छात्र कोई जीवनोपयोगी कार्य नहीं कर सकते हैं। अतः पाठ्यक्रम को विस्तृत किया जाय और उसमें ऐसे विषयों को स्थान दिया जाय जो छात्रों को धनोपार्जन में सहायता दें।
२. हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक एवं व्यापारिक विषयों को सम्मिलित किया जाय और विद्यार्थियों को इन विषयों का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।
३. हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में ऐसे वैकल्पिक विषयों को स्थान दिया जाय, जो विद्यार्थियों के लिये लाभप्रद सिद्ध हों, और जिन्हें वे अपनी रुचि के अनुसार चुन सकें।
४. मिडिल स्कूलों का कोर्स समाप्त करने के पश्चात् परीक्षा लेने का व्यवस्था की जाय और उसमें उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उन उद्योगों एवं व्यवसायों की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया जाय जिनके लिये वे उपयुक्त समझे जायें।
५. शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय। इसके साथ ही प्रशिक्षण-विद्यालयों की दशा में सुधार किया जाय और उनमें शिक्षण की आधुनिकतम पद्धतियों को अपनाया जाय।
६. प्रशिक्षण-विद्यालयों में अध्यापकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम (Refresher Course) की व्यवस्था की जाय।
७. अध्यापकों के वेतन एवं सेवा-प्रतिबन्धों (Conditions of Service) में सुधार किया जाय। जब तक ऐसा नहीं किया जायगा, तब तक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति नहीं हो सकेगी।
८. गैर-सरकारी स्कूलों में अध्यापकों को ९ माह के लिये नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार प्रबन्धक, ग्रीष्मावकाश का वेतन बचा लेते हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षकों से किसी प्रकार का लिखित संविदा (Agreement) नहीं भरवाया जाता है और उन्हें थोड़े समय का नोटिस देकर पद से पृथक् कर दिया जाता है। इन सब बातों में सुधार करके शिक्षक को अपने पद की सुरक्षा प्रदान की जानी आवश्यक है।

समीक्षा

'समिति' ने माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में प्रशंसनीय सुझाव दिये। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यापारिक विषयों को रखने की सिफ़ारिश करके 'समिति' ने छात्रों को विभिन्न जीवनोपयोगी विषयों का अध्ययन करने की व्यवस्था की। इससे विद्यार्थी—निरुद्देश्य साहित्यिक शिक्षा के अध्ययन से अपना सम्बन्ध-विच्छेद

कर सकते थे, जीवन मे प्रवेश कर सकते थे और प्रवेश करने पर कोई लाभप्रद कार्य भी कर सकते थे। अध्यापको की दशा मे सुधार करने के लिये 'समिति' ने जो सुझाव दिये, उनके विषय मे किसी प्रकार का मतभेद नही हो सकता है। परन्तु खेद की बात है कि इस दिशा मे कोई क्रियाशील कदम नही उठाया गया और वर्षो तक गैर-सरकारी स्कूलो के अध्यापको की दशा करुणाजनक रही। इसकी प्रतिक्रिया शिक्षा पर हुई और उसके स्तर मे क्रमिक ह्रास होता चला गया।

प्राथमिक शिक्षा (१९२१–१९३७)

भारतीय शिक्षा के इतिहास मे इस अवधि की सर्वप्रथम घटना प्राथमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति है। भारतीय अति दीर्घकाल से जन-शिक्षा की तीव्र माँग कर रहे थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसकी सदैव अवहेलना की थी। शिक्षा-विभागो के जन-प्रिय मन्त्रियो की अध्यक्षता मे आ जाने से भारतीयो को आशा होने लगी थी कि जन-साधारण मे शिक्षा का प्रसार होगा और वह नि शुल्क एवं अनिवार्य हो जायगी। हुआ भी ऐसा ही, जैसा कि नीचे दिये हुए विवरण से स्पष्ट हो जायगा।

प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम

१९२० तक भारत के अनेक प्रान्तो मे अधिनियमो द्वारा प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया था। १९३७ तक विभिन्न प्रान्तो मे भी ऐसे ही अधिनियम पारित किये गये, यथा—

बम्बई—१९२३ मे बम्बई मे 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' पास किया गया, जिसके द्वारा बम्बई नगर के अतिरिक्त, सम्पूर्ण प्रान्त के बालको तथा बालिकाओ के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

आसाम—इस प्रान्त मे १९२६ मे 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' बनाकर ग्रामीण क्षेत्रो के बालको एव बालिकाओ के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

सयुक्त-प्रान्त—यहाँ १९२६ मे 'जिला-परिषद् प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' (District Board Primary Education Act) बनाया गया और देहातो मे निवास करने वाले बालको तथा बालिकाओ के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

बगाल—इस प्रान्त मे १९३० मे 'बङ्गाल ग्रामीण प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' (Bengal Rural Primary Education Act) पारित करके ग्रामीण क्षेत्रो के बालको और बालिकाओ पर लागू कर दिया गया।

उपर्युक्त अधिनियमो के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओ को सौप दिया गया। अधिनियमो को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व भी उन्ही पर रखा गया। शिक्षा के व्यय की पूर्ति के लिये उन्हे 'शिक्षा-कर' (Education Cess) लगाने का अधिकार दे दिया गया। प्रान्तीय सरकारो ने इस व्यय के लिये आर्थिक

सहायता देने का वचन दिया। अनिवार्य शिक्षा का लाभ वे ही बालक और बालिकायें उठा सकते थे, जिनकी आयु साधारणत ६ वर्ष से १० वर्ष की थी। अपने बच्चा को स्कूल न भेजने वाले अभिभावको को दण्डित किया जा सकता था।

हर्टाग समिति और प्राथमिक शिक्षा

'हर्टाग समिति' ने प्राथमिक शिक्षा की समस्या का गहन अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्राथमिक शिक्षा की स्थिति सन्तोपजनक नही थी। 'समिति' के अनुसार—इसका प्रमुख कारण यह था कि पिछले समय मे उच्च शिक्षा की ओर विशेप ध्यान दिया गया था और प्राथमिक शिक्षा की समस्याओ की अवहेलना की गई थी।[1]

'समिति' ने कहा कि यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा था, तथापि वह सन्तोपजनक नही था, क्योकि उसके मार्ग मे अधोलिखित विशेप कठिनाइयाँ थी —

१. भारत की एक अति विशाल जनसख्या ग्रामो मे निवास करती है। अत प्राथमिक शिक्षा—एक ग्रामीण समस्या है। नगरो मे प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था सरलतापूर्वक की जा सकती है, परन्तु ग्रामो मे यह कार्य अति दुष्कर है।

२ ग्रामो के स्कूल छोटे होते है। उनके लिये शिक्षक प्राप्त करना कठिन होता है, क्योकि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण वातावरण मे निवास करना पसन्द नही करते है। ग्रामीण विद्यालयो के निरीक्षण मे असुविधा का सामना करना पडता है।

३ ग्राम-निवासी अशिक्षित, निर्धन और रूढिवादी हैं। अत वे शिक्षा की उपादेयता को नही समझते हैं। इसीलिए वे अपने बच्चा को विद्यालय नही भेजना चाहते है। फिर बच्चो को शिक्षा देने मे उन्हें आर्थिक हानि भी होती है, क्योकि उन्हे कृपि-कार्य के लिये अन्य व्यक्तियों को रखना पडता है।

४ प्रत्येक ग्राम मे प्राथमिक विद्यालय नही है। बच्चो के लिये दूसरे ग्रामो के स्कूलो मे शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाना कठिन होता है, क्या प्राकृतिक बाधायें, आवागमन के साधनो का अभाव एव मौसमी बीमारियाँ उनके मार्ग मे अवरोध डालती हैं।

1. "While much attention has been paid in the past to consideration of higher forms of education, the problems of primary education have been comparatively neglected."—*Hartog Committee Report*, pp. 3-4.

५. बहुत से पिछडे हुए क्षेत्र ऐसे है, जहाँ प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित नही किया गया है ।

६ बालको को अपने माता-पिता के साथ कृषि-कार्य करना पडता है । अत. कार्य की अधिकता हो जाने पर वे विद्यालयो मे नियमित रूप से उपस्थित नहीं हो पाते है ।

७. जातीय, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक भेद-भाव प्राथमिक शिक्षा के विकास मे बाधक है ।

८. कुछ क्षेत्रो मे विभिन्न भाषाओ का प्रयोग किया जाता है । अत' वहाँ प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना एक दुरूह कार्य हो जाता है ।

अपव्यय एवं अवरोधन[1]—'समिति' ने कहा कि यद्यपि प्राथमिक विद्यालयो और छात्रों की संख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि प्राथमिक शिक्षा की प्रगति हो रही है । कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा मे 'अपव्यय' एवं 'अवरोधन' अत्यधिक है । प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व बालको को किसी कक्षा मे से हटा लेना—'अपव्यय' है ।[2] इस दशा मे बालक जो कुछ थोडा-बहुत पढना-लिखना सीख लेता है, उसे वह भूल जाता है और निरक्षर हो जाता है । साक्षरता का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब बालक कम से कम प्राथमिक शिक्षा को समाप्त कर लें । 'अवरोधन' का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'समिति' ने लिखा कि एक बच्चे का एक ही कक्षा मे एक वर्ष से अधिक रहना—'अवरोधन' है ।[3]

'समिति' के मतानुसार 'अपव्यय' एवं 'अवरोधन' के कारण निम्नलिखित थे :—

१. जो छात्र प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विद्यालयो को छोड देते है, उन्हे उचित वातावरण नही मिलता है । उसके माता-पिता अशिक्षित होते हैं । वे धनाभाव के कारण पुस्तकें और मासिक पत्रिकायें आदि नही खरीद सकते है । अत थोडे समय के उपरान्त वे निरक्षर बन जाते है ।

२ अधिकाश स्कूलो मे एक ही शिक्षक है और सभी विद्यार्थियो को सभी विषयो की शिक्षा उसी के द्वारा दी जाती है । ऐसी दशा मे स्तर निम्न हो गया है ।

1. Wastage and Stagnation.

2. "By 'wastage' we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before the completion of the primary course"—*Hartog Committee Report*, p. 47.

3. "By 'stagnation' we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year."—*Ibid.*

३ प्राथमिक विद्यालयों की संख्या के अनुपात मे निरीक्षकों की संख्या अति अल्प है। परिणामत. विद्यालयों का निरीक्षण नियमित रूप से नही हो पाता है।

४. शिक्षण-पद्धति प्राचीन तथा अमनोवैज्ञानिक है। ऐसे शिक्षण से छात्रों को लाभ नही होता है।

५. प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षक उपलब्ध नही हैं, और जो शिक्षक अध्यापन-कार्य कर रहे हैं, उनमे आवश्यक योग्यता तथा प्रशिक्षण का अभाव है।

६. पाठ्य-क्रम दोषपूर्ण है, और उससे छात्रों का उचित हित नही होता है।

७ विद्यालयो मे उचित शिक्षण-सामग्री का अभाव है। साथ ही उनमें स्थान की कमी है।

८. प्राथमिक विद्यालयो का वितरण अनियमित एवं अवैज्ञानिक है।

९. अनेक विद्यालय ऐसे हैं, जिनको 'विद्यालय' की संज्ञा नही दी जा सकती है। फिर भी वे अपने अस्तित्व को बनाये हुए हैं।

१०. कुछ प्राथमिक स्कूल नियमित रूप से नही चलते हैं, और असमय ही टूट जाते है।

११. ग्रामीण जनता इतनी निर्धन है कि वह बच्चो को अल्प आयु मे ही कार्य मे लगा देती है।

१२. धार्मिक एवं जातीय भेदो के कारण विभिन्न स्कूलो की माँग की जाती है।

१३. रूढिवादी अभिभावक बालिकाओ को बालको के विद्यालयो म शिक्षा नही देना चाहते हैं। अत. वे पृथक् स्कूलो की स्थापना चाहते हैं।

१४. निरक्षर होने के कारण जनता अपने क्षेत्र मे स्थित विद्यालय का पूर्ण लाभ अपने बच्चो को नही उठाने देती है।

१५. 'प्राथमिक-शिक्षा-अधिनियम' त्रुटिपूर्ण हैं, क्योंकि उन्होंने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ करने का कार्य स्थानीय सस्थाओ की इच्छा पर छोड दिया है।

शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव

प्राथमिक शिक्षा के दोषो का विवेचन करने के उपरान्त 'समिति' ने उनके निवारण के लिये निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. प्राथमिक विद्यालयो की संख्यात्मक वृद्धि पर जोर न देकर, गुणात्मक उन्नति पर बल दिया जाय।

२ शिक्षा को ठोस (Consolidation) बनाने की नीति का अनुसरण किया जाय ।
३ जो विद्यालय छोटे हैं, जिनमे छात्रो की सख्या अति न्यून है और जिनमे शिक्षण की व्यवस्था उपयुक्त नही है, उन्ह तोड दिया जाय ।
४ प्राथमिक विद्यालयो की न्यूनतम शिक्षा-अवधि ४ वर्ष रखी जाय और उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाया जाय ।
५ विद्यालयो के पाठ्य-क्रम को वातावरण एव परिस्थिति के अनुसार अधिक उदार तथा उपयुक्त बनाया जाय और उसे व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित किया जाय ।
६ विद्यालयो का समय, अवकाश एव कार्य-क्रम स्थानीय ऋतुओ एव आवश्यकताओ के अनुसार रखा जाय ।
७ विद्यालय की निम्नतम कक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय और उसम होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को समाप्त करने के लिए दृढ प्रयास किया जाय ।
८ विद्यालयो मे ग्राम-सुधार का कार्य रखा जाय । उनमे सफाई, स्वास्थ्य, आत्म विश्वास, सहकारिता आदि गुणो का विकास किया जाय और उन्हे सामान्य चिकित्सा, मनोरंजन तथा प्रौढ-शिक्षा का केन्द्र बनाया जाय ।
९ अध्यापको के शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाया जाय । उनके प्रशिक्षण की अवधि म वृद्धि की जाय । प्रशिक्षण-विद्यालयो की दशा मे सुधार किया जाय । उनमे अभिनवन पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किये जायँ ।
१० शिक्षको की वेतन वृद्धि की जाय और उनके सेवा-प्रतिबन्धो मे सुधार किया जाय, जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षण-कार्य के प्रति आकर्षित हो ।
११ विद्यालयो का नियमित रूप से निरीक्षण करने के लिये निरीक्षको की सख्या मे वृद्धि की जाय ।
१२ प्राथमिक शिक्षा को सगठित एव विस्तृत करने का उत्तरदायित्व सरकार का है । अत उसे पूर्णत स्थानीय सस्थाओ पर नही छोड देना चाहिए, जैसा कि किया गया है ।
१३ प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने मे शीघ्रता न की जाय । जिस क्षेत्र मे अनिवार्य शिक्षा लागू की जानी है, उसका पहले अध्ययन किया जाय और वहाँ के लिए एक उपयुक्त योजना तैयार की जाय ।

समीक्षा

'समिति' ने प्राथमिक शिक्षा के सुधार के लिये जो सुझाव दिये, वे वस्तुत अति विवेकपूर्ण एव दूरदर्शी थे । शिक्षा का उचित लाभ उठाने के लिये उसको सग-ठित किया जाना और उसकी गुणात्मक उन्नति की जानी वाछनीय थी । र अधिकारियो ने 'समिति' के इस सुझाव का स्वागत किया, क्योंकि उनका नि

कि शिक्षा को ठोस बनाने की नीति ही भारतीयो के लिये कल्याणकारी होगी और बिना ऐसा किये, केवल शिक्षा का विस्तार करना निरर्थक होगा। इसके विपरीत, भारतीय, प्राथमिक शिक्षा का तीव्र विस्तार चाहते थे। अत- उन्होने हर्टाग समिति के सुझावो की अत्यन्त निन्दा की। उन्होने कहा कि शिक्षा का विस्तार किया जाना अति आवश्यक है, क्योकि इस नीति के अभाव मे न तो जन-शिक्षा का प्रसार होगा और न देश की निरक्षरता का अन्त होगा। भारतीयो ने यह भी कहा कि 'समिति' ने अपव्यय तथा अवरोधन का जो चित्र उपस्थित किया है, वह अतिरजित है और यथार्थ आँकडो पर आधारित नही है। साराश मे, हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा पर वज्र प्रहार किया और उसकी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। यही भाग्य अनिवार्य शिक्षा का भी हुआ। इसे हम नीचे दी हुई तालिकाओ से स्पष्ट कर रहे है :—

प्राथमिक शिक्षा का प्रसार (१९२१-१९३७)

	१९२१–२२	१९२६–२७	१९३१–३२	१९३६–३७
प्राथमिक स्कूल	१,५५,०१७	१,८४,८२९	१,९६,७०८	१,९२,२४४
छात्र-संख्या	६१,०९,७५२	८०,१७,९२३	९१,६२,४५०	१,०२,२४,२८८
व्यय (रुपयो मे)	४,९४,६९,०८०	६,७५,१४,८०२	७,८७,९५,२३६	८,१३,३८,०१५

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र (१९२६–१९३७)

प्रान्त	नागरिक क्षेत्र		ग्रामीण क्षेत्र	
	१९२६-२७	१९३६-३७	१९२६-२७	१९३६-३७
मद्रास	२१	२७	३	१
बम्बई	६	९	—	—
बंगाल	—	१	—	२५
संयुक्त प्रान्त	२५	३६	—	२,९८१
पंजाब	५७	६३	१,४९९	२
बिहार व उडीसा	१	२	३	[illegible]
मध्य प्रान्त	३	२६	६६	१
सिन्ध	—	१	—	६
दिल्ली	१	१	—	
योग	११४	१६७	१,५७१	३,०१५

व्यावसायिक शिक्षा (१९२१-१९३७)

राष्ट्रीय चेतना के इस युग मे देश के विवेकी जन कोरे पुस्तकीय ज्ञान के विरुद्ध नारे लगा रहे थे और भारतीयो के समक्ष व्यावसायिक शिक्षा का आदर्श उपस्थित कर रहे थे। उनका यह सन्देश भारत के कोने कोने मे गूँज उठा था—'अव्यावहारिक साहित्यिक ज्ञान का बहिष्कार करके और प्राविधिक तथा औद्योगिक ज्ञान को उपलब्ध करके ही प्रचुर प्राकृतिक पदार्थों से युक्त इस देश की औद्योगिक उन्नति हो सकेगी।' केवल तभी भारत का सर्वतोमुखी विकास सम्भव होगा और हृदय-विदारक दरिद्रता की दाह-क्रिया होगी। इस आन्दोलन के फलस्वरूप १९२१ से १९३७ तक व्यावसायिक शिक्षा का प्रवाह निर्बाध रहा और उसका प्रत्येक अवयव संशोधित तथा परिष्कृत होकर सुसंगठित बना। हम इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे है —

(१) **कानून की शिक्षा**—इस अवधि मे कानून की शिक्षा की सबसे अधिक प्रगति हुई। कानून का व्यवसाय स्वतन्त्र था और साथ ही कानून के अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई—जिससे कि भारतीय, वैधानिक जटिलताओ से अवगत हो जायँ। परिणामत देश के नवयुवकों का झुकाव कानून की शिक्षा की ओर अधिक हुआ। १९३७ तक भारत मे १४ कानून-कॉलेजो का निर्माण हो चुका था। इनके अतिरिक्त, ६ विश्वविद्यालयो मे कानून-विभाग थे और ६ सामान्य कॉलेज ऐसे थे, जिनम कानून की शिक्षा की व्यवस्था थी।

(२) **चिकित्सा**—कानून की शिक्षा की अपेक्षा चिकित्सा-शिक्षा की उन्नति कम हुई। फिर भी यह पर्याप्त रूप से सतोषजनक थी। १९०२ मे केवल ४ मेडिकल कॉलेज थे और उनमे शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की सख्या १,४६२ थी। १९३७ मे यह सख्या क्रमश ११ और ४,९३६ हो गई। इसी प्रकार १९०२ मे मेडिकल स्कूलो की संख्या ३० और छात्रो को ६,६९९ हो गई। इस काल मे दो विशेष प्रकार के चिकित्सा-शिक्षालयो की स्थापना हुई, जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है, यथा—

१. **स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसन, कलकत्ता**—इसकी स्थापना १९३१ मे की गई। यह अपने ढंग का अकेला चिकित्सा-विद्यालय है। इसमे उष्ण कटिबन्धीय (Tropical) रोगो की स्नातकोत्तर शिक्षा दी जाती है।
२. **ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ हाइजीन एण्ड पब्लिक हेल्थ, कलकत्ता**—इसका निर्माण १९३२ मे किया गया। इसमे सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्नातकोत्तर शिक्षा और जन-स्वास्थ्य-समस्याओ पर अनुसधान करने की सुन्दर व्यवस्था है।

(३) **इंजीनियरिंग-शिक्षा**—इस अवधि मे इंजीनियरिंग-शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। १९०२ मे इजीनियरिंग कॉलेजो की संख्या ४ और उनमे शिक्षा ग्रहण

करने वाले छात्रो की संख्या ८६५ थी। १९३७ मे यह सख्या बढकर क्रमश ८ और २,१९९ हो गई।

(४) पशु-चिकित्सा शिक्षा—भारत ऐसे कृषि-प्रधान देश में 'पशु' कृषकों की अमूल्य सम्पत्ति है। अत स्वस्थ और उत्तम नस्ल के पशुओ की आवश्यकता है। भारत की विदेशी सरकार ने १९०२ तक इस दिशा मे कोई ठोस कदम नही उठाया। केवल यत्रतत्र नाम-मात्र के लिये थोडी-सी पशु-चिकित्सा शिक्षा-संस्थायें स्थापित कर दी थी। किन्तु इस काल मे पशु-चिकित्सा-शिक्षा को विस्तृत करने का प्रयास किया गया। सयुक्त प्रान्त मे १९२२ तक मुक्तेश्वर में 'इम्पीरियल वेटेरिनरी रिसर्च इस्टीट्यूट' (Imperial Veterinary Research Institute बनाकर तैयार कर दिया गया। इसमे पशु-चिकित्सा की स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान की जाती है। १९३० में पटना मे 'वेटेरिनरी कॉलेज' स्थापित किया गया। इन संस्थाओ के निर्माण से पशु-चिकित्सा-शिक्षा की आवश्यक्ता पूर्ण न हो सकी और जनता अधिक कॉलेजो की स्थापना की माँग करती रही।

(५) वन-विज्ञान-शिक्षा—भारतीय वनो की सम्पत्ति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हो चुका था और उनसे लाभ उठाने के विचार से वन-विभाग के लिये कर्मचारियो को प्रशिक्षित करना प्रारम्भ कर दिया गया था। १९३७ मे वन-विज्ञान की शिक्षा देने के लिये तीन कॉलिज थे—(१) इडियन फारेस्ट रेंजर्स कॉलिज (Indian Forest Rangers' College), देहरादून, (२) फारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट, देहरादून, और (३) फारेस्ट कॉलिज, कोयम्बटूर। द्वितीय कॉलेज मे शिक्षा के साथ-साथ, अनुसंधान कार्य भी किया जाता था।

(६) कला की शिक्षा—लार्ड कर्जन ने १९०४ के 'सरकारी-प्रस्ताव' मे कला-विद्यालयो के सुधार के लिये कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे। इस अवधि मे उन्ही सुझावो के अनुसार कला विद्यालयो का पुनर्गठन किया गया। यद्यपि इस कार्य मे अधिक सफलता नही प्राप्त हुई, परन्तु कला-विद्यालयो की सख्या म वृद्धि अवश्य हुई। १९०२ मे ४ कला विद्यालय थे, पर १९३७ में उनकी संख्या १४ हो गई थी, जिनमे २,१०६ छात्र पढते थे।

(७) वाणिज्य-शिक्षा—इस काल मे वाणिज्य की शिक्षा देने के लिये प्रशसनीय कार्य किया गया। १९३७ मे वाणिज्य की शिक्षा देने के लिये ८ कॉलेज थे। इनम १,३३६ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन कॉलेजो के अतिरिक्त, वाणिज्य की शिक्षा प्रदान करने के लिये ३५७ स्कूल थे, जिनमे १२,५८६ विद्यार्थी थे।

(८) कृषि की शिक्षा—लार्ड कर्जन ने कृषि की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया था। १९०१ मे भारतीय कृषि की उन्नति करने के लिए एक 'इंसपेक्टर-जनरल ऑफ एग्रीकल्चर' की नियुक्ति की गई थी। कृषि-विभाग का विस्तार किया गया था, और १९०५ मे कृषि-शिक्षा तथा अनुसन्धान के लिए २० लाख रुपया प्रति वर्ष राजकोष

से दिया जाने लगा था। फलस्वरूप, भारत मे कृषि की शिक्षा का कुछ प्रबन्ध हो गया और थोड़े से विद्यालय भी निर्मित कर दिये गये। दुर्भाग्यवश, कृषि-शिक्षा को प्रोत्साहित करने वाली कर्जन की नीति का अनुसरण नही किया गया। १९०२ मे ३ कृषि-कॉलेज थे, पर १९३७ मे उनकी संख्या बढकर कुल ६ तक पहुँची। ये कॉलेज कोयम्बटूर, पूना, कानपुर, नैनी, लायलपुर और नागपुर मे थे। इन कॉलेजों के स्थापना-स्थानो को देखने से ज्ञात होता है कि कुछ महत्वपूर्ण प्रान्तो में कृषि-शिक्षा के कॉलेज नहीं थे; यथा—बंगाल, बिहार, उड़ीसा, सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त।

उपरिकथित कॉलेजो के अतिरिक्त, १९२३ मे बंगलौर से 'इम्पीरियल इंस्टीट्यूट ऑफ एनिमल हस्बेन्ड्री एण्ड डेयरिंग' (Imperial Institute of Animal Husbandry & Dairying) की स्थापना की गई। १९३४ के भूकम्प के उपरान्त पूसा (बिहार) के 'सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट' को उठाकर दिल्ली मे लाया गया। यद्यपि इन कॉलिजो ने कुशल कृषक उत्पन्न नही किये, तथापि इन्हे कृषि-विशेषज्ञो को प्रशिक्षित करने मे कुछ सफलता अवश्य प्राप्त हुई। इतना निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि इन कालेजो ने भारत में कृषि की उच्च शिक्षा छात्रो के लिए सुलभ कर दी।

कृषि-शिक्षा के प्रसंग मे 'रॉयल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर' (Royal Commission on Agriculture) द्वारा इस शिक्षा की प्रगति के लिए दिये गये सुझावो पर दृष्टिपात कर लेना अनुपयुक्त न होगा। साराश मे, ये सुझाव अधोलिखित थे :—

१. हाई-स्कूलों मे कृषि की शिक्षा 'सैद्धान्तिक' (Theoretical) और 'व्यावहारिक' (Practical)—दोनो प्रकार की होनी चाहिए।
२. कृषि-शिक्षा नगर के विद्यालयो मे न दी जाकर, ग्राम के विद्यालयों मे दी जानी चाहिए, क्योंकि इस शिक्षा से ग्रामीण छात्र ही लाभ उठा सकते हैं।
३. ग्रामीण क्षेत्रों मे कृषि-शिक्षा का प्रसार करने के लिए 'कृषि मिडिल स्कूलों' की स्थापना की जाय।
४. प्रत्येक ग्राम-विद्यालय के पास ३ एकड़ का फार्म होना चाहिए। यदि यह सम्भव नही है, तो कम से कम ½ एकड़ का फार्म अवश्य हो।

भारत का दुर्भाग्य था कि कमीशन की सिफारिशो को कार्यान्वित नही किया गया और फलस्वरूप इस अवधि मे कृषि-शिक्षा की समस्या का समाधान न किया जा सका।

(६) **प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा**—पिछले अध्याय मे हम लिख चुके हैं कि 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' सरकार से प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा की निरन्तर माँग करती रही, परन्तु सरकार ने इस माँग का स्वागत नही किया। हाँ, इतना अवश्य किया

गया कि विदेशों में प्रौद्योगिक (Technological) शिक्षा प्राप्त करने के लिए कुछ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ मिलने लगी थीं। १९०५ से १९१७ तक ११३ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं। सरकार के इस कार्य से जनता को सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि प्रौद्योगिक शिक्षा के अभिलाषी सभी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ नहीं प्राप्त हो पाती थीं। इसके अतिरिक्त, वे बहुत कम थीं और उनमें व्यय भी अधिक होता था। १९१७ में 'मॉरिसन समिति' (Morrison Committee) ने इन छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये, परन्तु उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। १९२१ में प्रान्तों में द्वैध-शासन की स्थापना के उपरान्त जनता ने प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा की माँग को प्रबल किया। यह कहा गया कि इस शिक्षा की व्यवस्था भारत में ही की जाय। सरकार ने इसका निर्णय करने का कार्य लार्ड लिटन (Lytton) की अध्यक्षता में एक विशिष्ट समिति[1] को सौंप दिया। इसने विदेशों में अध्ययन करने वाले भारतीय छात्रों की कठिनाइयों का अध्ययन किया और उन्हें दूर करने के लिए अनेक सुझाव दिये। 'समिति' का सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव[2] यह था कि भारत में प्रौद्योगिक, प्राविधिक और औद्योगिक संस्थाओं का निर्माण किया जाय और उनमें उच्च शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। भारतीयों को अपने देश में ही यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के विभिन्न अंगों का शीघ्र-अतिशीघ्र विकास किया जाय। इस सिफारिश के फलस्वरूप भारत में जिन संस्थाओं का निर्माण किया गया, उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है :—

(i) **बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता**—इसकी स्थापना भारत के सुविख्यात वैज्ञानिक, सर जगदीशचन्द्र बोस द्वारा की गई थी। इसमें वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायन-शास्त्र तथा कृषि की शिक्षा एवं अनुसंधान की व्यवस्था है।

(ii) ***हारकोर्ट बटलर टेक्नॉलॉजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर***—इसकी स्थापना १९२१ में प्रौद्योगिक शिक्षा देने के लिये की गई।

(iii) ***इम्पीरियल एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली***—इसमें कृषि की उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान-कार्य का प्रबन्ध है।

(iv) ***इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बंगलौर***—इसकी स्थापना का

---

1. Committee on Indian Students in England, 1921-22.

2. "India has now been set on the road to self-government and autonomy, and it must be obvious that her sons and daughters ought to be able to receive their education within their own borders. We believe, therefore, that the only permanent solution of the problem is the development of education in India in all its branches as early as possible."—*The Report of the Committee on Indian Students in England*, Para 84.

श्रेय टाटा परिवार को है। इसम विज्ञान की प्राय सभी शाखाओ की शिक्षा की सुविधा है।

(v) इण्डियन स्कूल ऑफ माइ स, धनबाद—इसका निर्माण १९२६ मे खान-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिये किया गया।

(vi) अन्य सस्थाएँ—उपर्युक्त के अतिरिक्त, कुछ अन्य सस्थायें भी उल्लेखनीय है यथा—टेकनिकल इस्टीट्यूट ऑफ कलकत्ता, गवर्नमेट स्कूल आफ टेकनॉलॉजी, मद्रास, जमशेदपुर टेकनिकल इस्टीटयूट, टाटा नगर टेकनिकल इस्टीट्यूट, राची विक्टोरिया जुबली टेकनिकल इस्टीट्यूट, बम्बई, और आर० सी० टेकनिकल इस्टीट्यूट, अहमदाबाद। १९३७ म सम्पूर्ण भारत मे ५३५ प्रौद्योगिक, प्राविधिक और औद्योगिक विद्यालय थे, जिनमे ३०,५०९ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

स्त्रियो की शिक्षा (१९२१–१९३७)

इस अवधि मे नारी-जगत् के प्रत्येक क्षेत्र मे विलक्षण क्रान्ति परिलक्षित हुई। देश के कर्मठ नेताओ, नि स्वार्थ समाज सेवको और स्वय स्त्रियो ने अपनी सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति मे सुधार करने के लिये जो प्रयास किये, वे भारतीय इतिहास म बेजोड है। १९२९ मे अजमेर के हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तावित 'बाल विवाह निषेध विधेयक' को 'शारदा एक्ट' का रूप देकर १४ वर्ष से कम आयु वाली लडकी का विवाह दण्डनीय अपराध कर दिया गया। राजनैतिक क्षेत्र मे स्त्रियो को मतदान देने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस प्रकार सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति मे परिवतन हो जाने के कारण स्त्रियो मे अपूव बल का सचार हुआ और वे स्त्री-समाज के सगठन तथा उसके उत्कष के लिये पूर्ण तन्मयता से लीन हो गई। अपने इस कार्य क्रम मे उन्हें महात्मा गाधी का शुभ आशीर्वाद प्राप्त हुआ और उनके प्रगतिशील चरणो का अनुगमन करके स्त्रियो ने रूढिवाद की ऊँची दीवारो को, जो उनको घेरे हुए खडी थी, विध्वस कर दिया। राष्ट्रपिता के पथ प्रदर्शन मे उन्होने स्वतन्त्रता सग्राम के रणस्थल मे प्रवेश करके अपनी विच्छेद तथा पृथकता की प्रवृत्ति का अन्त कर दिया। इतना ही नही, स्त्रियो ने १९२६ मे 'अखिल भारतीय महिला सघ' का निर्माण किया और १९२७ मे 'अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा सम्मेलन' आयोजित किया, जिसम उन्होने पुरुषो के अनुरूप विविध प्रकार की शिक्षा की अधिकारिणी होने की माँग का नारा बुलन्द किया।

उपर्युक्त सभी कारणो के फलस्वरूप १९२१ से १९३१ तक स्त्री शिक्षा की प्रगति का बहुमुखी स्वरूप दिखाई देने लगा। इस काल म स्त्री शिक्षा की विशेषता यह थी कि सह शिक्षा (Co education) के प्रति किसी प्रकार का विरोध नही रह गया था। १९३२-३७ म लगभग सभी प्रान्तो मे सह शिक्षा का प्रचलन हो गया। लडको के विद्यालयो मे शिक्षा पाने वाली लडकियो का प्रतिशत ४३ ४ था। इसके अतिरिक्त कितने ही बालिका विद्यालयो का निर्माण हुआ, और शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर और

प्रत्येक प्रकार की शिक्षाशाला मे लडकियो की उपस्थिति एक सामान्य बात हो गई। अपने कथन की पुष्टि मे हम नीचे एक तालिका दे रहे हैं —

बालिका-विद्यालयो एव छात्राओ की सख्या (१९२१-१९३७)[1]

शिक्षा-सस्थाये	१९२१-२१		१९३६-३७	
	विद्यालय	छात्रायें	विद्यालय	छात्रायें
प्राथमिक	२२,५७९	१,१९५,८९२	३२,२७३	२,६०७,०८६
मिडिल	५४८	८५,०७९	६७८	२१६,६६५
हाई स्कूल	१२०	२५,१३०	२८७	११४,४८१
आर्ट्स कॉलेज	१२	९३८	३१	६,०३९
विशिष्ट सस्थाये	२५८	११,१८४	४०४	२३,०२७
योग	२३,५१७	१,३१८,२२३	३३,६७३	२,९६७,५६८

उपर्युक्त आँकडे भ्रमोत्पादक हो सकते हैं और प्रथम दृष्टि मे यह स्वाभाविक विचार उत्पन्न हो सकता है कि इस अवधि मे स्त्री-शिक्षा की प्रशसनीय प्रगति हुई। प्रगति अवश्य प्रशसनीय थी, परन्तु फिर भी स्त्रियो की शिक्षा अत्यन्त पिछडी हुई दशा मे थी। वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण जनसख्या मे से केवल ० ३८ प्रतिशत लडकियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी और स्त्रियो की साक्षरता केवल ३ प्रतिशत थी।

हर्टाग समिति और स्त्री-शिक्षा

'हर्टाग समिति' के प्रखर बुद्धि सदस्यो से स्त्री शिक्षा की वास्तविकता छिपी न रह सकी, और उन्होने स्त्री-शिक्षा का विस्तार करने के लिये निम्नलिखित सिफारिशें की —

१ बालिकाओ की शिक्षा को उतना ही महत्त्व दिया जाय, जितना कि बालको की शिक्षा को दिया जाता है। अत दोनो की शिक्षा पर समान धन-राशि व्यय की जाय, जो इस समय नही की जा रही है।

२ प्रत्येक प्रान्त मे एक सुशिक्षित एव अनुभवी महिला की नियुक्ति की जाय और उसे स्त्री-शिक्षा के प्रसार की योजनायें बनाने का कार्य सौंप दिया जाय।

३ समस्त स्थानीय सस्थाओ एव शिक्षा-समितियो मे स्त्रियो को प्रतिनिधित्व दिया जाय।

४ बालिका-विद्यालयो के नियमित निरीक्षण के लिये निरीक्षिकाओ की सख्या मे अभिवृद्धि की जाय।

---

1 *Quinquennial Review of the Progress of Education in India* (1932-37), Chapter VI.

५ स्त्रियो को उच्च व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

६ छोटे नगरो और ग्रामीण क्षेत्रो मे स्त्रियो की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

७. ग्रामीण क्षेत्रो मे बालिकाओ के लिये अधिक प्राथमिक विद्यालयो का निर्माण किया जाय।

८. लडकियो के स्कूलो मे अपव्यय तथा अवरोधन अत्यधिक है। अत उन्हे रोकने का प्रयास किया जाय।

९. बालिकाओ को बालको के विद्यालयो मे प्राथमिक शिक्षा दी जाय।

१०. बालिकाओ को शिक्षा प्राप्त करने मे आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। अत. उनके लिये शिक्षा को धीरे-धीरे अनिवार्य बनाया जाय।

११. हाई स्कूल मे बालिकाओ के लिये बालको से भिन्न पाठ्य-क्रम की व्यवस्था की जाय।

१२. बालिकाओ को गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य, सगीत आदि विषयो की शिक्षा दी जाय।

१३. बालिकाओ के प्राथमिक विद्यालयों मे अध्यापिकाओ का अभाव है। यह बात ग्रामीण विद्यालयो के सम्बन्ध मे विशेष रूप से सत्य है। अतः अध्यापिकाओ को अधिक वेतन और कार्य करने की उत्तम सुविधायें देकर ग्रामो मे जाने के लिये प्रलोभित किया जाय।

१४ अध्यापिकाओ के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

अन्त मे, '**समिति**' ने बलपूर्वक सिफारिश करते हुए लिखा—"शिक्षा प्राप्त करना केवल पुरुष का ही विशेषाधिकार नही है, अपितु पुरुष और स्त्री—दोनो का समान अधिकार है। सामाजिक एव राष्ट्रीय व्यवस्था को एवं स्वय अपने को क्षति पहुँचाये बिना स्त्री और पुरुष मे से कोई भी अकेला प्रगति नही कर सकता है। दोनो को शिक्षा मे सन्तुलन करने का समय आ गया है। हमारा यह निश्चित मत है कि समग्र रूप से भारतीय शिक्षा की प्रगति के हित मे शिक्षा-प्रसार की प्रत्येक योजना मे स्त्री-शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।"[1]

---

1. "The whole case of women's education rests on the claim that education is not the privilege of one sex, but equally the right of both, and that neither one sex nor the other can advance by itself without a strain on the social and nationl system and injury to itself. The time has come to redress the balance We are definitely of opinion that, in the interest of the advance of Indian education as a whole, priority should now be given to the claims of girls' education in every scheme of expansion."—*Hartog Committee Report*, p. 183.

मुसलमानों की शिक्षा (१९२१-१९३७)

'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने मुसलमानो की शिक्षा को विस्तृत करने के लिये अनेक सुझाव दिये थे। सरकार ने हिन्दुओ का एक प्रतिद्वन्द्वी वर्ग निर्मित करने के उद्देश्य से उन सभी सुझावो को कार्यरूप मे परिणत किया था। परिणामत. १९२१ तक मुस्लिम-शिक्षा की निर्बाध प्रगति हुई। १९२१ से १९३७ तक की अवधि मे इतना अधिक प्रसार हुआ कि समग्र रूप मे मुसलमानो मे हिन्दुओ से अधिक साक्षरता थी। १९३७ मे ३६,८८,८३९ मुसलमान शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, जिनमे से २८,८५,५५५ लडके और ८,०३,२८४ लडकियाँ थी।

हर्टाग समिति और मुस्लिम-शिक्षा

'हर्टाग समिति' ने मुस्लिम-शिक्षा का विशेष रूप से अध्ययन किया और इस सम्बन्ध मे अपने विचार निम्नाकित प्रकार से व्यक्त किये :—

१ **मुस्लिम-शिक्षा की स्थिति**—मुस्लिम-शिक्षा अब भी पिछडी हुई दशा मे है और सरकार ने मुसलमानो को विविध प्रकार की सुविधायें प्रदान करके उनकी शिक्षा को विकसित करने की चेष्टा की है।

२ **पृथक् एवं विशिष्ट स्कूल**—मुसलमानो की शिक्षा के लिये लगभग प्रत्येक स्तर पर पृथक् स्कूल और कॉलेज है। इनके अतिरिक्त, विशिष्ट स्कूल भी हैं। इन स्कूलो से मुसलमानो की शिक्षा मे विस्तार अवश्य हुआ है, परन्तु यह बात भी निर्विवाद है कि इन स्कूलो के कारण अन्य जातियो की अपेक्षा मुसलमानो की शिक्षा का स्तर निम्नतर हो गया है। इससे मुस्लिम छात्रो का अत्यधिक अहित हो रहा है, क्योकि वे शिक्षा-जगत् मे अन्य जातियो के समकक्ष योग्यता नही प्राप्त कर पाते हैं। पृथक् एवं विशिष्ट स्कूल भारत के लिये घातक सिद्ध हो रहे हैं, क्योकि वे साम्प्रदायिकता तथा वैमनस्य के बीज बो रहे है। अतः यह वाछनीय होगा कि मुसलमानो को सामान्य स्कूलो मे शिक्षा दी जाय।

दुर्भाग्यवश, सरकार द्वारा 'समिति' के सुझावो की उपेक्षा की गई और मुसलमानो के पृथक् एवं विशिष्ट स्कूल बन्द नही किये गये। इन स्कूलो ने मुसलमानो और हिन्दुओ के मध्य एक गहरी खाई निर्मित कर दी, जिसके भावी परिणाम अति घातक सिद्ध हुए।

हरिजनों की शिक्षा (१९२१-१९३७)

देश के नेताओ, समाज-सुधारको, दलित वर्गों के पथ-प्रदर्शको और स्वय हरिजनो के आन्दोलनो के परिणामस्वरूप युगो से पद-दलित अछूत वर्गों मे जागरण प्रारम्भ हो गया था। १९२१ मे प्रान्तीय शिक्षा का संचालन-सूत्र भारतीय मंत्रियो के हाथ मे आ जाने के कारण हरिजन-शिक्षा की प्रगति मे तेजी आ गई। इस बात मे

हरिजनो की शिक्षा का विकास करने के लिये जो चेष्टायें की गई, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है :—

१. **राजकीय प्रयास**—विभिन्न प्रान्तो मे हरिजन-शिक्षा का विस्तार करने के लिये विभिन्न कार्य-क्रम अपनाया गया। कुछ प्रान्तो के विभिन्न भागो मे पृथक् नीति का अनुसरण किया गया, पर इन सबका ध्येय समान था। हरिजनो को शिक्षा प्राप्त करने की प्रत्येक सम्भव सुविधा दी गई और विविध विधियो द्वारा उनको शिक्षा से लाभ उठाने के लिये आकृष्ट किया गया। १९३७ तक हरिजनो के लिये स्थापित किये गये सभी विशिष्ट स्कूलो को बन्द कर दिया गया, क्योकि अनुभव ने बताया कि उन स्कूलो की उपस्थिति हिन्दुओ तथा हरिजनो के मध्य एक ऊँची दीवार खडी करती जा रही थी। १९३७ तक लगभग सभी प्रान्तो मे हरिजन बालक सामान्य विद्यालयो मे बिना किसी कठिनाई के अध्ययन करने लगे थे।

२. **महात्मा गांधी के प्रयास**—अस्पृश्यता के निवारण तथा हरिजन-शिक्षा की प्रगति मे सर्वमान्य योग महात्मा गाधी ने दिया। अपने समस्त जीवन-पर्यन्त गाधी जी ने हरिजनोत्थान के लिये अनवरत परिश्रम किया। १९२० मे गांधी जी ने अति दृढतापूर्वक लिखा :—"किसी भी कार्य-क्रम मे अस्पृश्यता को गौण स्थान प्रदान नही किया जा सकता है। इस कलंक को धोये बिना 'स्वराज्य' एक निरर्थक शब्द है।"[1] "जब तक हम निर्बलो एवं असहायो की रक्षा नही करेंगे, तब तक स्वराज्य की बात करना व्यर्थ है।"[2] महात्मा गाधी के इन विचारो का सवर्ण हिन्दुओ पर १९३२ तक कोई व्यापक प्रभाव न पडा। उस वर्ष 'साम्प्रदायिक परिनिर्णय' (Communal Award) के विरोध मे गाधी जी ने उपवास प्रारम्भ किया। ७ दिन के इस उपवास ने दलित-वर्गों के विरुद्ध प्रवाहित होने वाली दूषित विचारधारा मे आमूल परिवर्तन कर दिया और सम्पूर्ण भारत महात्मा जी के निश्चय के समक्ष नतमस्तक होकर अस्पृश्यता को हिन्दू-समाज से समूल नष्ट करने के लिये तत्पर हो गया। १९३३ से गाधी जी ने 'हरिजन' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह लिखना अनावश्यक है कि गाधीजी के समस्त परिश्रम के फलस्वरूप न केवल हरिजनो का कायाकल्प हुआ, अपितु उनमे शिक्षा का भी प्रचार हुआ।

३. **अम्बेदकर का प्रयास**—जो कार्य गाधी जी ने अखिल भारतीय पैमाने पर किया, उसी को डा० अम्बेदकर ने दलित-वर्गों के क्षेत्र मे किया। अपने जातीय

---

1. "Untouchability cannot be given a secondary place in the programme. Without the removal of that taint, Swaraj is a meaningless term."—B. R. Ambedkar : *What Gandhi and His Congress have done to the Untouchables*, p 195

2. "It is idle to talk of Swaraj so long as we do not protect the weak and the helpless."—D. G. Tendulkar & Others : *Gandhiji, His Life & Work*, p. 352.

नेता अम्बेदकर की अध्यक्षता मे हरिजनो ने अपनी राजनैतिक, सामाजिक एव आर्थिक माँगो को सरकार तथा जनता के समक्ष रखा और उनको उपलब्ध किया। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि हरिजनो म जागरण का सूत्रपात करने का श्रेय महात्मा गांधी के पश्चात् अम्बेदकर को ही प्राप्त है।

उपरिकथित प्रयासो के फलस्वरूप हरिजन-शिक्षा दिन-दूनी, रात चौगुनी उन्नति करने लगी।

अन्य पिछडी जातियों की शिक्षा

१ आदिवासी एवं पहाडी जातियाँ—खेद का विषय है कि भारतीय मन्त्रियो ने आदिवासियो एव पहाडी जातियो की शिक्षा के प्रति ध्यान नही दिया। फलस्वरूप इस काल म उनकी शिक्षा की प्रगति बहुत मन्द रही। मिशनरियो ने अवश्य अपने शिक्षा-कार्य को जारी रखा। परिणामत छात्रों की सख्या मे वृद्धि तो हुई, परन्तु यथार्थ आँकडे उपलब्ध न होने के कारण यह निश्चय रूप से नही कहा जा सकता है कि वृद्धि किस अनुपात मे हुई।

२ अपराधी जातियाँ—पूर्वकाल के समान इस अवधि मे भी अपराधी जातियो को शिक्षित करने के लिये विशेष प्रयास किये गये। मद्रास प्रान्त म १९३७ म १,१०३ बालक एवं बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और शिक्षा उनके लिये अनिवार्य थी। बम्बई प्रान्त मे अपराधी जातियो की शिक्षा की देखभाल के लिये एक विशेष शिक्षा-अधिकारी नियुक्त किया गया। बालको और बालिकाओ के लिये दिन और रात्रि—दोनो मे चलने वाले विद्यालय थे। बगाल मे अपराधी जातियो की शिक्षा के लिये मिशनरी लोग क्रियाशील थे और उन्होंने विद्यालय तथा छात्रावास निर्मित किये। सयुक्त प्रान्त मे अपराधी जातियो की शिक्षा की व्यवस्था सतोषजनक थी, परन्तु पजाब मे उनके विद्यालयो की सख्या कम हो गई थी। बिहार और उडीसा मे भी अपराधी जातियो के बालको एव बालिकाओ के लिए विशिष्ट स्कूलो का प्रबन्ध था।

राष्ट्रीय शिक्षा (१९२१-१९३७)

पिछले अध्याय मे उल्लेख किया जा चुका है कि 'असहयोग आन्दोलन' की समाप्ति के साथ साथ, राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन का भी १९२२ मे अन्त हो गया। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा की जिस विचारधारा को 'आन्दोलन' ने जन्म दिया था, वह निरन्तर प्रवाहित होती रही। उससे प्रभावित होकर कुछ दूरदर्शी एव विवेकी भारतीयो ने ऐसी राष्ट्रीय सस्थाओ का निर्माण किया, जिसमे नवयुवको का मानसिक विकास तथा चारित्रिक उत्थान करना सम्भव हो गया। इन राष्ट्रीय विद्यालयो पर हम नीचे विहगम दृष्टिपात कर रहे है —

१. जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली—इसकी स्थापना के कारणो पर पिछले अध्याय मे प्रकाश डाला जा चुका है। १९२५ मे इसे अलीगढ से उठाकर दिल्ली ले आया गया। यह सस्था अपने स्थापन-काल से ही राष्ट्रीय शिक्षा का

विकास करने का अनुपम कार्य कर रही है और सरकार से आर्थिक सहायता नही लेती है। यह अपने अन्तर्गत निम्नाङ्कित संस्थाओ का संचालन कर रही है :—

(अ) एक सावास कॉलेज—इसमे साहित्यिक विषयो तथा समाज-विज्ञानो की उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है।

(ब) एक सावास हाई स्कूल—यह बिल्कुल आधुनिक ढङ्ग का है, और इसमे कला-कौशल की कुशलता को समुन्नत करने के लिये विद्यार्थियो को प्रत्येक प्रकार की सुविधा उपलब्ध है।

(स) एक सावास प्राथमिक स्कूल—इसका सचालन 'प्रोजेक्ट पद्धति' (Project Method) के अनुसार किया जाता है।

(द) उर्दू अकादमी—यह अकादमी (Acadamy) उर्दू का साहित्य प्रकाशित करती है।

२. विश्व-भारती—यह अखिल भारतीय संस्था भी आर्थिक सहायता के लिये सरकार की कृपा पर निर्भर नही है। इसकी स्थापना ९ मई, १९२२ को कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर ने की थी। इस संस्था के प्रमुख उद्देश्य हैं—(१) प्राच्य-सस्कृतियों मे सामंजस्य स्थापित करके उनमे घनिष्ठता उत्पन्न करना, (२) पाश्चात्य विज्ञान तथा सस्कृति का समरूप अध्ययन करना, और (३) पूर्व तथा पश्चिम मे निकट सम्पर्क स्थापित करके विश्व-शान्ति की दशाओ को जन्म देना।

विश्व-भारती सावास एवं सह-शिक्षा की संस्था है, और यहाँ न केवल भारत के, अपितु सुदूर एशिया तथा यूरोप से भी छात्र एव छात्रायें अध्ययन करने आते है। इस सस्था मे अग्रलिखित विभाग है (१) विद्या-भवन—इसमे भारतीय भाषाओ, भारतीय दर्शन आदि का अनुसन्धान-कार्य किया जाता है, (२) शिक्षा-भवन—यह कॉलेज है, जिसमे उच्च शिक्षा दी जाती है, (३) चीन-भवन—इसमे भारतीय छात्रो को चीनी सस्कृति, और चीनी छात्रो को भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है, (४) शिल्प-भवन—इसमे कुटीर-उद्योग-धन्धो की शिक्षा दी जाती है, (५) श्री निकेतन—यहाँ छात्रो मे ग्रामो के पुनर्संगठन करने के कार्य मे अभिरुचि उत्पन्न की जाती है, (६) कला-भवन—इसमे ललित-कलाओ और विशेष रूप से चित्रकला की शिक्षा की व्यवस्था है, और (७) सगीत-भवन—इसमे सगीत और नृत्य की शिक्षा दी जाती है।

३. गुरुकुल विश्वविद्यालय—इसकी स्थापना १९०२ मे पंजाब की आर्य-प्रतिनिधि सभा ने की थी। १९२४ मे इसको उठाकर कागडी ले आया गया। यह सरकार से सहायता-अनुदान नही लेता है। इसमे शिक्षा की अवधि १४ वर्ष की है। यहाँ 'स्नातक' (Graduate) और 'वाचस्पत्ति' (M. A.) की उपाधियाँ दी जाती हैं। केवल लडके इस विश्वविद्यालय मे प्रवेश ले सकते हैं और उनको प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार शिक्षा दी जाती है।

३. दारुल-उलूम, देवबन्द—इसे विश्व का चतुर्थ मुस्लिम विश्वविद्यालय माना जाता है। यह सावास संस्था है और इसमे अध्ययन करने के लिये ससार के विभिन्न भागो से विद्यार्थी आते है। यहाँ अरबी, फारसी और यूनानी चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा प्रदान की जाती है।

५. दारुल-उलूम नदवत्तुल उलेमा—यह भी सावास विद्यालय है। इसकी रूप-रेखा बहुत कुछ आधुनिक ढंग के विश्वविद्यालय की सी है। परन्तु इसके साथ ही मुस्लिम परम्पराओ का परित्याग नही किया गया है।

प्रौढ़-शिक्षा[1] (१६२१-१६३७)

इस काल की एक प्रमुख विशेषता थी—प्रौढ-शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना। इसका श्रेय भारतीय मन्त्रियो को है, जिन्होने भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। यद्यपि उनके प्रयास अनियमित एव अपर्याप्त थे, फिर भी उन्होने अपने देशवासियो और सरकार को ऐसे क्षेत्र मे कार्य करने के लिये अनुप्राणित किया, जहाँ शिक्षा-प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता थी, क्योकि १६४१ मे भी उस वर्ष की 'जन-गणना रिपोर्ट' के अनुसार भारत मे ८८ प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर थे। सुविधा की दृष्टि से हम प्रौढ-शिक्षा का अध्ययन दो कालो के अन्तर्गत करेंगे — (१) १६२१ से पूर्व, और (२) १६२१ से १६३७ तक।

प्रौढ-शिक्षा : १६२१ से पूर्व

१६१७ से पूर्व प्रौढ-शिक्षा के लिये किये गये प्रयास प्राय नगण्य थे। निस्सन्देह कुछ रात्रि-विद्यालयो का निर्माण देश के विभिन्न भागो मे किया गया था, परन्तु उनका उद्देश्य—फैक्ट्रियो आदि मे कार्य करने वाले उन बच्चो को प्राथमिक शिक्षा देना था, जिन्हे दिन मे अध्ययन करने के लिये समय नही मिलता था। कुछ वयस्क भी उनमे शिक्षा ग्रहण करते थे, परन्तु विद्यालयो का प्रमुख ध्येय उन्हे शिक्षा देना नही था।

'भारतीय शिक्षा-आयोग' की रिपोर्ट के अनुसार बम्बई प्रान्त मे १८८१-८२ मे १३४ वर्नाक्यूलर रात्रि-विद्यालय थे, जिनमे ३,६१६ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इनके अतिरिक्त, दिवा-विद्यालयो से सम्बद्ध २२३ रात्रि-विद्यालय थे, जिनमे ४,६६२ वयस्क उपस्थित होते थे। इन वयस्क-विद्यालयो मे साधारण लिखना, पढना और अङ्कगणित की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयो की लोकप्रियता एव माँग मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। इनकी सफलता देखकर 'आयोग' ने सिफारिश की, कि देश मे सभी सम्भव स्थानो पर रात्रि-विद्यालयो का संचालन किया जाय। परन्तु दुर्भाग्यवश, इस ओर रंच-मात्र भी ध्यान नही दिया गया और वयस्क-साक्षरता की प्रगति न हो सकी। यदि सरकार ने 'आयोग' के सुझाव स्वीकार करके अनिवार्य रात्रि-विद्यालय स्थापित कर दिये होते, तो आज यह देश निरक्षरता की कालिमा से मुक्त होता।

1. Adult Education.

१६०१-०२ मे केवल मद्रास, बम्बई और बंगाल मे रात्रि-विद्यालय संचालित थे, जिनमे प्रौढ-शिक्षा का प्रबन्ध था। परन्तु सरकार की उपेक्षा के फलस्वरूप ये परिपल्लवित न हो सके, और १६१७ तक इनकी संख्या मे निरन्तर ह्रास होता चला गया।

१६१६ के अधिनियम द्वारा भारतीयो को अति विशाल सख्या मे मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया। अत: प्रौढ-शिक्षा मे जन-साधारण की रुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था, क्योकि यह अनुभव किया गया कि शिक्षा के अभाव मे भारतीय अपने मताधिकार का उचित उपयोग नही कर सकेंगे। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप देश मे वयस्क-साक्षरता के लिये क्रियात्मक पग उठाये गये। सरकार ने भी आर्थिक सहायता देकर इस पुनीत कार्य मे योग दिया। परिणामतः सयुक्त प्रान्त, पंजाब, बम्बई, मध्य प्रान्त, बगाल और मद्रास में रात्रि-विद्यालयों तथा रात्रि-कक्षाओं का आयोजन किया गया।

प्रौढ़-शिक्षा : १६२१-३७

१६२१ मे भारतीय मन्त्रियो ने प्रौढ-शिक्षा की समस्या मे अत्यधिक रुचि व्यक्त की। फलस्वरूप, १६२७ तक भारत के विभिन्न प्रान्तो मे वयस्क-साक्षरता को लोकप्रिय बनाने के लिये अनवरत परिश्रम किया गया। १६१७ तक सम्पूर्ण भारत मे ११,१५८ स्कूल और कक्षायें पुरुषों के लिये तथा ४७ स्त्रियो के लिये संचालित की जा चुकी थी। इनमे पुरुषो एवं स्त्रियो की सख्या क्रमशः २८६,००१ और १,३५१ थी। परन्तु प्रौढ-शिक्षा ने समतल धरातल पर अपना अभियान प्रारम्भ किया ही था कि १६२७ के विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने उसके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। धनाभाव मे वयस्क-साक्षरता की ओर से सरकार और जनता—दोनो ने मुख मोड लिया। फलतः प्रौढ-विद्यालयो की सख्या क्षीण होती चली गई। १६३७ मे इस प्रकार के पुरुष-विद्यालयो की संख्या २,०१६ और स्त्री-विद्यालयो की ११ रह गई। उनमे क्रमशः ६२,६६१ पुरुषो तथा ६४६ स्त्रियो को साक्षर बनाया जा रहा था।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १६३७ तक प्रौढ-शिक्षा के लिये जो चेष्टायें की गईं, उनका कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम नही निकला। परन्तु यह बात सर्वमान्य है कि उन चेष्टाओ ने वयस्क-शिक्षा की नीव डाल दी और उसी नीव पर उपयुक्त परिस्थितियो के उत्पन्न हो जाने पर प्रौढ-शिक्षा के भवन का निर्माण किया गया, जिसकी छाया मे असख्यो निरक्षर वयस्क साक्षर बनकर देश के बुद्धिमान नागरिक और समाज के लाभप्रद सदस्य बन सके।

सारांश

द्वैध-शासन की स्थापना—१६१६ के अधिनियम के अनुसार भारत मे द्वैध-शासन-प्रणाली की व्यवस्था की गई। प्रान्तो मे दोहरा शासन स्थापित हो गया।

शिक्षा विभाग को भारतीय मन्त्रिया की अध्यक्षता मे हस्तान्तरित कर दिया गया। मन्त्रियो ने शिक्षा प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया। परन्तु उन्हे अनेक कठिनाइया का सामना करना पडा। सबसे वडी कठिनाई यह थी कि उन्हे पर्याप्त धन नही मिलता था, क्योकि वित्त विभाग पर अग्रज मन्त्रिया का अधिकार था। फिर भी भारतीय मन्त्रियो की चेष्टाओ के फलस्वरूप शिक्षा का सराहनीय विस्तार हुआ।

हर्टाग समिति—१६२७ मे हर्टाग समिति की नियुक्ति हुई। इस समिति ने भारतीय शिक्षा के सभी अगा का अध्ययन किया और उनकी उन्नति के लिए अमूल्य सुझाव दिये।

उच्च शिक्षा—इस काल मे उच्च शिक्षा की आशाजनक उन्नति हुई। दिल्ली नागपुर आध्र, आगरा और अन्नमलई विश्वविद्यालयो का निर्माण हुआ और पुराने विश्वविद्यालयो का पुनगठन किया गया। विश्वविद्यालया मे अनुसधान-काय को प्रोत्साहित किया गया, सैनिक शिक्षा की व्यवस्था की गई और छात्रो के स्वास्थ्य की देख भाल के लिये चिकित्सक नियुक्त विये गये। हर्टाग समिति ने विश्वविद्यालयो के सुधार के लिये अनेक सुझाव दिये।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा की उतनी प्रगति नही हुई, जितनी विश्वविद्यालय शिक्षा की। फिर भी माध्यमिक शिक्षा की आश्चयजनक उन्नति हुई। अधिकाश स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें थी। शिक्षको की दशा म सुधार किया गया। हर्टाग समिति ने सिफारिश की कि हाई स्कूल के पाठयक्रम म औद्योगिक एव व्यापारिक विपयो को स्थान दिया जाय।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा की अति तीव्र प्रगति हुई। वम्बई आसाम सयुक्त प्रान्त और वगाल मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य वनाने के लिये अधि नियम पारित किये गए। हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति पर जोर दिया और कहा कि इस शिक्षा मे होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को रोकना आवश्यक है।

व्यावसायिक शिक्षा—इस कान मे व्यावसायिक शिक्षा का प्रवाह निर्बाध रहा। सबसे अधिक प्रगति कानून की शिक्षा की हुई। चिकित्सा शिक्षा के लिय कालिज एव स्कूल खोले गये। इजीनियरिंग, पशु चिकित्सा, वन विज्ञान, वाणिज्य, कला, कृषि और प्राविधिक एव औद्योगिक शिक्षा की भी व्यवस्था की गई।

स्त्रियो की शिक्षा—स्त्रियो की शिक्षा का अपूव प्रसार हुआ। इसम शारदा एक्ट' और गाधी जी ने विशेष याग दिया। स्वय स्त्रियो ने अपनी शिक्षा के लिये आन्दोलन किये। सह शिक्षा के प्रति विरोध समाप्त हा गया। हर्टाग समिति न स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष रूप से सिफारिश की।

मुसलमानो की शिक्षा—मुसलमानो की शिक्षा का इतना विस्तार हुआ कि हिन्दुओ की अपेक्षा उनम अधिक साक्षरता हो गई। हर्टाग समिति न मुसलमानो क

लिये पृथक एव विशिष्ट स्कूलो की निन्दा की और उनको बन्द करने का सुझाव दिया।

हरिजनो की शिक्षा—हरिजनो मे शिक्षा का प्रसार करने का श्रेय गाधी जी और डा० अम्बेदकर को है। सरकार ने भी हरिजनो की शिक्षा को प्रोत्साहित किया।

अन्य जातियों की शिक्षा—आदिवासियो एव पहाडी जातियो की शिक्षा की ओर सरकार न विशेष ध्यान नही दिया। अपराधी जातियो के बालको तथा बालिकाओ की शिक्षा के लिये मद्रास बम्बई, बगाल सयुक्त प्रान्त बिहार और उडीसा म उचित व्यवस्था थी।

राष्ट्रीय शिक्षा—राष्ट्रीय शिक्षा के लिये कुछ कमठ भारतीयो ने विशिष्ट शिक्षा सस्थायें स्थापित की। इनमे प्रमुख थी —जामिया मिलिया इस्लामिया, विश्व-भारती गुरुकुल विश्वविद्यालय दारुल-उलूम और दारुन उलूम नदवतुल उलेमा।

प्रौढ शिक्षा—प्रौढ शिक्षा इस काल की एक प्रमुख विशेषता थी। १९१७ से पूव प्रौढ शिक्षा के लिये प्राय कुछ भी नही किया गया था। १९२० तक केवल मद्रास बम्बई और बगाल मे रात्रि विद्यालय सचालित थे। १९२१ के पश्चात् प्रौढ शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके लिये भारतीय मन्त्री प्रशसा के पात्र है।

TEST QUESTIONS

1 Examine critically the main recommendations of the Hartog Committee regarding the improvements necessary in Primary Education
प्राथमिक शिक्षा के लिये आवश्यक सुधारो के बारे मे हर्टाग समिति की मुख्य सिफारिशो का विवेचनात्मक वणन कीजिये।

2 What were the views of the Hartog Committee on wastage and stagnation in Primary Education ? What measures did it suggest to overcome them ?
प्राथमिक शिक्षा म 'अपव्यय और अवरोधन के बारे में हर्टाग समिति के क्या विचार थे ? उनके समाधान के लिये समिति ने क्या सुझाव दिये ?

3 Trace in brief the development of Women s Education from 1921 to 1937 What in your opinion is the contribution of the Hartog Committee to Women s Education ?
१९२१ से १९३७ तक स्त्री शिक्षा क विकास का सक्षेप में वणन कीजिये। आपके विचारानुसार हर्टाग समिति का स्त्री शिक्षा के लिये क्या योग है ?

१७

प्रान्तीय स्वशासन में शिक्षा की प्रगति

(१६३७–१६४७)

प्रस्तावना

अपने स्वभावगत दोषो एवं भारतीय कांग्रेस के विरोध के परिणामस्वरूप द्वैध-शासन-प्रणाली असफल सिद्ध हुई। वह न तो निर्वाचक-मण्डल को राजनैतिक जागरण का प्रकाश ही दे सकी, और न उत्तरदायी शासन की वास्तविक शिक्षा ही। अत कांग्रेस ने यह राष्ट्रीय मॉंग बुलन्द की—'भारत के लिये शीघ्र ही पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर संविधान बनाने के लिये 'गोलमेज सम्मेलन' बुलाया जाय।' १६३० से १६३२ तक 'गोलमेज सम्मेलन' के तीन अधिवेशन लन्दन मे हुए। 'सम्मेलन' ने जो भी निश्चय किये, वे भारतीय राष्ट्रीयता की दृष्टि से अत्यन्त असन्तोषप्रद थे। परन्तु इन्ही निर्णयो के आधार पर १६३५ का 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) बनाया गया और अप्रैल, १६३७ मे कार्यान्वित कर दिया गया।

प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना

१६३५ के 'अधिनियम' ने द्वैध-शासन को समाप्त कर दिया और प्रान्तीय प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र मे उत्तरदायी शासन की स्थापना की। प्रान्तो मे संरक्षित एव हस्तान्तरित विषयो का भेद मिटा दिया गया और समस्त प्रान्तीय विषय लोकप्रिय भारतीय मन्त्रियो के उत्तरदायित्व के क्षेत्र मे समाविष्ट कर दिये गये। शिक्षा भी इन्ही विषयो मे से एक थी। नये संविधान के अन्तर्गत १६३७ मे ११ प्रान्तो म से ६ मे कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बने। अत यह आशा की जाने लगी कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो की अध्यक्षता मे शिक्षा का पुनर्गठन करने का कार्य दृढता, सुचारुता एव

कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जायगा। पर दैव को कुछ और ही मंजूर था। भारतीयो की इच्छा के विरुद्ध देश को द्वितीय विश्व-युद्ध मे फँसा देने के प्रश्न को लेकर काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने नवम्बर १९३९ मे अपने पदो से त्याग-पत्र दे दिये। युद्ध के आवरण मे ब्रिटिश भारत मे निरंकुश शासन प्रारम्भ हो गया और प्रान्तीय सरकारो पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। फलस्वरूप, देश मे शिक्षा-विकास की जो आशा व्याप्त थी, उस पर असमय ही तुषार-पात हो गया। युद्ध के उपरान्त १९४५-४६ के सामान्य निर्वाचन मे काग्रेस को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इस बार अप्रैल, १९४६ मे ६ के स्थान पर ८ प्रान्तो मे काग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने। उस समय से लेकर १५ अगस्त, १९४७ तक काग्रेसी मन्त्रिमण्डल अपने पद पर स्थिर रहे।

इस प्रकार, प्रान्तीय स्वशासन की १० वर्ष की अवधि मे केवल ५ वर्ष प्रान्तीय शासन का सूत्र जन-प्रिय मन्त्रियो के हाथ मे रहा। परन्तु इस अवधि मे भी अग्रेजो के निरकुश शासन के नग्न रूप के विरुद्ध काग्रेस का आन्दोलन चलता रहा और सम्पूर्ण जनता का ध्यान उसी पर केन्द्रित रहा। ऐसी परिस्थिति मे यह आश्चर्य की बात नही है कि राष्ट्रीय नेता शिक्षा के पुनर्गठन के लिए पर्याप्त धन और समय नही दे सके। अत प्रान्तीय स्वशासन मे शिक्षा का वैसा प्रसार एवं विकास न हो सका, जैसा कि होना चाहिए था।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-कार्य (१९३७–४७)

द्वैध-शासन मे केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा से किसी प्रकार का प्रयोजन नही रखा था। १९३५ के अधिनियम ने शिक्षा के कार्यों को दो स्पष्ट भागो मे विभक्त कर दिया—केन्द्रीय एव प्रान्तीय। अत १९३७ से केन्द्रीय सरकार पुन पूर्व के समान शिक्षा मे रुचि लेने लगी। १९४६ मे बनने वाली 'अन्तरिम सरकार' (Interim Government) मे पं० जवाहरलाल नेहरू वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के उपसभापति नियुक्त हुए। फलत केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विभाग पर भारतीयो का अधिकार स्थापित हो गया। उसी समय से पं० नेहरू की अध्यक्षता मे केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना प्रारम्भ किया और विभिन समितियो तथा संस्थाओ का निर्माण किया गया, जिनमे अग्रलिखित प्रमुख थी —

१. केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड[1]

इस बोर्ड की स्थापना १९२० मे हुई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य—प्रान्तीय एव केन्द्रीय शिक्षा-नीतियो मे सामंजस्य स्थापित करना और केन्द्रीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विषयो पर परामर्श देना था। यद्यपि बोर्ड ने अति लाभप्रद कार्य किया, तथापि आर्थिक संकट के कारण इसके अस्तित्व का अन्त कर दिया गया। 'हर्टाग समिति' ने इस केन्द्रीय बोर्ड के भग किये जाने पर दु ख प्रकट किया और इसके

1. Central Advisory Board of Education.

पुनर्निर्माण का सुझाव दिया। फलस्वरूप, १९३५ मे इसको पुनर्जीवित किया गया। १९३७ से १९४७ तक की अवधि मे इसे समुचित रूप से संगठित करके भारतीय शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था करने का कार्य इसको सौप दिया गया। उसी समय से यह वोर्ड, भारतीय शिक्षा के क्षेत्र मे विविध कार्यों का अति कुशलता से संचालन करता चला आ रहा है। इसका अध्यक्ष, केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री, और इसके सदस्य, प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्री एवं शिक्षा-संचालक होते है। अपने वार्षिक अधिवेशन मे बोर्ड, शिक्षा की प्रगति पर पुनर्विचार करता है और प्रान्तीय सरकारो को शिक्षा-प्रसार के सम्बन्ध में परामर्श देता है। समय-समय पर शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने के लिये समितियो की नियुक्ति भी करता है। उदाहरणार्थ—इसी बोर्ड की सिफारिश के फलस्वरूप *'एवट एवं वुड समिति'* की नियुक्ति हुई थी।

२ केन्द्रीय शिक्षा-सचिवालय[1]

इस सचिवालय का निर्माण १९४५ मे हुआ और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त इसको मंत्रालय (Ministry) का रूप प्रदान किया गया। यह भारत-सरकार के शिक्षा-परामर्शदाता की अध्यक्षता मे कार्य करता है। केन्द्रीय सरकार के समस्त शिक्षा-कार्यों पर इसी का नियन्त्रण है और यही उनका नियोजन करता है।

३. केन्द्रीय शिक्षा-सूचना कार्यालय[2]

इस कार्यालय का प्रमुख कार्य —शिक्षा-सम्बन्धी तथ्यो तथा आंकडो को एकत्र करना और प्रान्तीय सरकारो एवं शिक्षा-संस्थाओ की शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओ का समाधान करना है। यह भारतीय शिक्षा का विवरण एव शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें तथा पत्रिकायें भी प्रकाशित करता है।

४. विश्वविद्यालय अनुदान-समिति[3]

'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार वोर्ड' की सिफारिश के अनुसार इस समिति का निर्माण १९४५ मे किया गया। प्रारम्भ मे इसका अधिकार-क्षेत्र केवल बनारस, अलीगढ और दिल्ली विश्वविद्यालयो तक ही सीमित था। परन्तु १९४७ मे इसको पुनर्सङ्गठित करके सभी विश्वविद्यालयो को इसके अन्तर्गत रख दिया गया। यह समिति विभिन्न विश्वविद्यालयो की शिक्षा मे सामंजस्य रखती है, उनके लिये केन्द्रीय सरकार से सहायता-अनुदान की सिफारिश करती है और इस प्रकार दिये गये अनुदान की देख-भाल रखती है।

1. Central Secretariat of Education.
2. Central Bureau of Education.
3. University Grants Committee.

ऐबट एण्ड वुड रिपोर्ट (१९३६—३७)[1]

'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' की सिफारिश के अनुसार 'ऐबट एवं वुड समिति' की नियुक्ति की गई। ए० ऐबट (A. Abbott) इंगलैण्ड के शिक्षा-बोर्ड के टेकनिकल स्कूलो का भूतपूर्व चीफ इंसपेक्टर (Chief Inspector of Technical Schools, Board of Education) था। एस० एच० वुड (S. H. Wood) इंगलैण्ड के शिक्षा-बोर्ड का डाइरेक्टर ऑफ इटैलीजेन्स (Director of Intelligence) था। भारत-सरकार के निमंत्रण पर ये दोनो शिक्षा-विशेषज्ञ १९३६-१९३७ की शरद् ऋतु मे भारत आये। उनके पास समय का अभाव था। अत. उन्होने केवल पजाब, दिल्ली और संयुक्त प्रान्त का परिभ्रमण करके तत्कालीन शिक्षा की जाँच की और जून, १९३७ में सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यही रिपोर्ट 'ऐबट एण्ड वुड रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है। यह रिपोर्ट दो भागो मे विभाजित है—(क) वुड द्वारा लिखी गई 'सामान्य शिक्षा एवं उसके संगठन' पर रिपोर्ट, और (ख) ऐबट द्वारा लिखी गई 'व्यावसायिक शिक्षा' पर रिपोर्ट। शिक्षा के इन अंगो पर दिये गये सुझावो का विवरण निम्नांकित है[2] :—

(क) सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें[3]

१. निम्न कक्षाओ मे शिक्षण का कार्य दीक्षित अध्यापिकाओं द्वारा किया जाय।
२. प्राथमिक कक्षाओ मे शिक्षा को विद्यार्थियो की स्वाभाविक अभिरुचियों तथा क्रियाओ पर आधारित किया जाय, न कि पुस्तको पर।
३. निम्न-माध्यमिक (Lower Secondary) कक्षाओ मे अंग्रेजी के अध्ययन पर बल न दिया जाय।
४. हाई स्कूल तक की शिक्षा भारतीय भाषाओ के माध्यम से दी जाय।
५. अंग्रेजी के शिक्षण को साहित्यिक रूप न दिया जाय, अपितु उसे अधिक व्यावहारिक बनाया जाय।
६. रचनात्मक हस्तकार्य की शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय और उसे सभी स्कूलो के पाठ्य-क्रम मे स्थान दिया जाय।
७. ग्रामीण मिडिल स्कूलो के पाठ्य-क्रम मे ग्रामीण परिस्थितियों एवं आवश्यकताओ के अनुसार विषयो को सम्मिलित किया जाय।
८. अध्यापको के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक कम-से-कम मिडिल पास हो। उनके लिये दीक्षा-काल

1. Abbott & Wood Report.
2. *Abbott & Wood Report*, pp. 100-19.
3. Recommendations on General Education.

३ वर्ष का हो। अध्यापकों के लिये अभिनवन पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाय।

९. शिक्षा का प्रबन्ध करने वाली स्थानीय संस्थाओं पर सरकार अधिक नियन्त्रण रखे।

१०. विद्यालयों के नियमित निरीक्षण के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की जाय और उन्हें कार्य करने की स्वतन्त्रता दी जाय।

(ख) व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें[1]

१. व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार देश के उद्योगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाय।

२. प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा का रूप वहाँ के उद्योगों, व्यापारों तथा परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित किया जाय।

३. व्यावसायिक शिक्षा को उसी पद और स्तर पर रखा जाय, जिस पर साहित्यिक शिक्षा है।

४. सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षाओं को एक-दूसरे से विभिन्न न समझा जाय, अपितु इन्हें एक निरन्तर होने वाली प्रक्रिया का पूर्वकालीन एवं उत्तरकालीन रूप माना जाय।

५. सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षाओं के साधन तथा लक्ष्य विभिन्न हैं। अतः दोनों प्रकार की शिक्षाओं के लिये पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था की जाय।

६. कुटीर उद्योग-धन्धों में लगे हुए व्यक्तियों को उचित व्यावसायिक एवं व्यापारिक प्रशिक्षण दिया जाय।

७. उद्योग एवं व्यापार और उद्योग एवं शिक्षा में निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिये प्रत्येक प्रान्त में 'व्यावसायिक शिक्षा-परामर्शदात्री समिति'[2] का संगठन किया जाय।

८. उद्योगपति—भवन, सामग्री और धन देकर व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करें।

९. पूर्ण सामयिक व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना की जाय। ये विद्यालय दो प्रकार के होने चाहिये - (१) जूनियर वोकेशनल स्कूल, और (२) सीनियर वोकेशनल स्कूल। जूनियर स्कूल में छात्र ८वीं कक्षा पास

1. Recommendations on Vocational Education
2. Advisory Council for Vocational Education

करके प्रवेश करें और उनका पाठ्य-क्रम ३ वर्ष का हो। सीनियर स्कूल मे ११वी कक्षा के उपरान्त २ वर्ष का पाठ्य-क्रम हो।

१०. जो व्यक्ति विभिन्न व्यवसायो मे लगे हुए हैं, उनको शिक्षा देने के लिये 'अंशकालिक व्यावसायिक स्कूल' स्थापित किये जायें। इनमे शिक्षा प्राप्त करने वाले इच्छुक कर्मचारियो को मालिको द्वारा एक सप्ताह में २½ दिन की छुट्टी दी जाय।

११. व्यावसायिक स्कूलो का पाठ्य-क्रम पूर्ण करने वाले छात्रो को प्रमाण-पत्र (Certificates) प्रदान किये जायें।

१२. जिन औद्योगिक क्षेत्रो की जनसंख्या कम से कम ५० हजार हो, वहाँ जूनियर और सीनियर टेकनिकल स्कूलो का निर्माण किया जाए।

१३. कला एवं हस्तकौशल के विद्यालयो की स्थापना एवं संचालन मे सरकार सहयोग प्रदान करे।

१४. व्यावसायिक शिक्षा-प्राप्त छात्रो को जीविकोपार्जन के लिये व्यवसाय निश्चित करने मे सहायता देने के विचार से उचित परामर्श दिया जाय।

रिपोर्ट का मूल्यांकन

ऐबट और वुड अपने समय के प्रसिद्ध शिक्षा-मर्मज्ञ थे। ऐबट तो तत्कालीन व्यावसायिक शिक्षा मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका था। यद्यपि इन शिक्षा-मर्मज्ञो के पास समय का अभाव था और वे सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण नही कर सके, तथापि अपने सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर उन्होने सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध मे जो सुझाव दिये, वे उस समय की परिस्थितियो तथा वास्तविक आवश्यकताओ को देखते हुए बहुमूल्य एवं व्यावहारिक थे। परन्तु भारत का दुर्भाग्य था कि इन सुझावो को क्रियान्वित न किया जा सका, क्योकि शीघ्र ही द्वितीय विश्व-युद्ध के भयङ्कर विस्फोट ने सम्पूर्ण विश्व को आतंकित कर दिया। इस संकटकालीन परिस्थिति का बहाना लेकर भारतीय शिक्षा के प्रति उदासीन ब्रिटिश सरकार ने 'ऐबट एण्ड वुड रिपोर्ट' के विषय मे सोचना ही बन्द कर दिया।

उच्च शिक्षा (१९३७–१९४७)

इस अवधि मे विश्वविद्यालय-शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ और विश्वविद्यालयो मे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की संख्या मे आशातीत वृद्धि हुई। १९३७ मे इन छात्रो की संख्या १२६,२२८ थी, परन्तु १९४७ मे यह संख्या बढकर २४१,७९४ हो गई। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि १९४७ मे भारत के अन्तर्गत वे सभी विश्वविद्यालय नही थे, जो १९३७ मे थे, क्योकि उनमे से कुछ पाकिस्तान के अधिकार-क्षेत्र मे पहुँच गए थे।

शिक्षा-विस्तार के कारण

१९३७ से १९४७ तक विश्वविद्यालय-शिक्षा मे विस्तार होने के अनेक कारण थे, यथा —

१ द्वितीय विश्वयुद्ध एवं 'भारत छोडो' प्रस्ताव के कारण जन साधारण मे आविर्भूत होने वाली सर्वव्यापक जागृति,
२ माध्यमिक शिक्षा का विस्तार,
३ स्त्रियो एव पिछडी जातियो मे उच्च शिक्षा ग्रहण करने की उत्कण्ठा,
४ युद्ध के कारण नागरीयकरण की तीव्र प्रक्रिया,
५. युद्ध-कालीन समय मे व्यवसायी वर्ग को व्यापार मे अत्यधिक लाभ और उनके द्वारा उच्च शिक्षा के लिए दी गई उदार धनराशि,
६ युद्धकाल मे शिक्षित व्यक्तियो की माँग मे अभिवृद्धि।

नवीन विश्वविद्यालयो का निर्माण

इस काल मे अधोलिखित ४ विश्वविद्यालयो का निर्माण हुआ —

१ त्रावणकोर विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास १९३७ मे किया गया। यह शैक्षिक एव सम्बद्धक विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय का एक मुख्य उद्देश्य—मलयालम और तामिल साहित्यो का विकास करना है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए एक 'प्राच्य पाडुलिपि-पुस्तकालय' (Oriental Manuscript Library) और 'पुस्तक प्रकाशन विभाग' (Publication Department) है।

२. उत्कल विश्वविद्यालय—१९३७ मे उडीसा को विहार से पृथक् करके एक नवीन प्रान्त का निर्माण किया गया। इस नवनिर्मित प्रदेश के लिए एक विश्व विद्यालय की स्थापना आवश्यक थी। अत १९४३ मे एक शिक्षण एव सम्बद्धक विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया गया।

३. सागर विश्वविद्यालय—१९४६ मे इस विश्वविद्यालय की स्थापना, सर हरीसिंह गौड से २० लाख रुपये की दान-स्वरूप प्राप्त राशि से की गई। यह शैक्षिक एवं सम्बद्धक विश्वविद्यालय है।

४ राजपूताना विश्वविद्यालय—राजपूताने के देशी नरेशो ने प्रति वर्ष २,६५,००० रुपया देने का निश्चय करके राजपूताना विश्वविद्यालय की आधार-शिला १९४७ मे रखी। प्रारम्भ मे यह सम्बद्ध विश्वविद्यालय था और इसके अन्तर्गत २८ कॉलेज थे।

माध्यमिक शिक्षा (१९३७–१९४७)

इस अवधि मे माध्यमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई, परन्तु वह पूर्व कालो की अपेक्षाकृत मन्द थी। १९३७ मे माध्यमिक विद्यालयो की संख्या १३,०५६ और उनमे शिक्षा का लाभ उठाने वाले छात्रो की सख्या २२,८७,८७२ थी। १९४७ म यह संख्या क्रमश ११,९०७ और २६,८१,९८१ थी। यद्यपि १९४७ मे कुछ माध्यमिक

विद्यालयो के पाकिस्तान राज्य के अन्तर्गत चले जाने से उनकी संख्या मे कमी हो गई थी, परन्तु विद्यार्थियो की संख्या मे वृद्धि ही हुई थी। इस प्रकार माध्यमिक विद्यालयो मे छात्रों की संख्या मे वृद्धि तो अवश्य हुई परन्तु यह उस अनुपात मे नही हुई, जिसमे विश्वविद्यालयो के छात्रो की हुई।

शिक्षा की मन्द प्रगति के कारण

१९३७ से १९४७ तक माध्यमिक शिक्षा की मन्द प्रगति के अनेक कारण दिये जा सकते है; यथा—

१. इस काल की प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति मे शैथिल्य रहा। इसकी प्रतिक्रिया माध्यमिक शिक्षा पर होनी स्वाभाविक थी, क्योंकि प्राथमिक विद्यालयों के छात्र ही माध्यमिक स्कूल मे प्रविष्ट होते थे।

२. यह काल विश्व-युद्ध के कारण आर्थिक संकट का काल था। जीवन की सभी आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि हो गई थी। इस मँहगाई का सबसे बुरा प्रभाव मध्य-वर्ग के व्यक्तियों पर पडा था। क्योंकि उन्ही के बच्चे अधिकाश संख्या मे माध्यमिक विद्यालयो मे पढते थे; और क्योंकि उनके पास धन का अभाव था, अतः उनके लिए इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नही था कि वे अपने बच्चो को विद्यालय जाने से रोक दें।

३. इस काल मे शिक्षको को मँहगाई देने के विचार से शुल्क मे वृद्धि कर दी गई। साथ ही पुस्तकों आदि का भी मूल्य बढ गया। ऐसी दशा में शिक्षा इतनी मँहगी हो गई कि आय के सामान्य साधन वाले व्यक्तियो के बच्चो को शिक्षा से लाभ उठाना स्वप्न की सी बात हो गई।

उपरिकथित कारणो का परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक विद्यालयो मे केवल उन्ही अभिभावको के बच्चे प्रवेश करते थे, जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। जहाँ तक निम्न, मध्य वर्ग या श्रमिक श्रेणी के व्यक्तियो का प्रश्न था, उनके बच्चो के लिये इन स्कूलो के द्वार बन्द हो गये। ऐसी परिस्थिति मे छात्रो की संख्या मे ह्रास होना अनिवार्य था। मँहगाई-जनित आर्थिक कठिनाई का एक दूषित परिणाम यह हुआ कि विद्यालय-प्रवेश का आधार 'योग्यता' के स्थान पर 'धन' हो गया। कितने ही तीव्र-बुद्धि बालक दरिद्रता के शिकंजे के फँसे होने के कारण विद्याध्ययन के लाभ से वंचित रह गये। फलतः माध्यमिक शिक्षा का स्तर गिर गया।

माध्यमिक शिक्षा की अन्य विशेषताएँ

इस अवधि की माध्यमिक शिक्षा की कुछ अन्य विशेषताएँ भी उल्लेखनीय है—(१) प्रायः सभी माध्यमिक विद्यालयो मे शिक्षा का माध्यम भारतीय ।५

गई, (२) पाठ्य-पुस्तको का प्रकाशन किया गया और शब्दावली तैयार की जाने लगी, (३) प्रान्तीय सरकारो ने टेकनिकल और कृषि हाई-स्कूल खोले, (४) वाणिज्य की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया, (५) प्रशिक्षण-विद्यालयो की संख्या मे वृद्धि की गई, और (६) स्त्रियाँ अध्यापन-कार्य की ओर आकृष्ट हुई ।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

पूर्व कालो के समान इस अवधि मे भी माध्यमिक शिक्षा की समस्याओ का समाधान न किया जा सका और उसमे जो दोष उभर आये थे, वे यथावत् बने रहे। साराश मे, ये दोष निम्नाकित थे :—

१ ग्रामीण विद्यालयो तथा लड़कियो के स्कूलो के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम तैयार नही किये गये ।

२ 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रो की विशाल संख्या को कम करने के लिये कोई उपाय नही किया गया ।

३ युद्ध-जनित मँहगाई के कारण जन-साधारण के बच्चो के लिए माध्यमिक विद्यालयो के द्वार बन्द हो गये ।

४. सुयोग्य किन्तु निर्धन छात्रो को विद्यालयो मे प्रवेश न प्राप्त हो सकने के कारण शिक्षा का स्तर गिर गया ।

५. मँहगाई के समय मे भी शिक्षको के वेतन मे वृद्धि नही की गई । फलत उनमे इतना अधिक असन्तोष व्याप्त हुआ कि उनमे से अनेक ने हृदय-हीन शिक्षा-विभाग को ठुकरा कर अन्य विभागो को अपनी सेवाएँ अर्पित कर दी । ऐसी दशा मे विद्यालयो मे प्रशिक्षित एवं सुयोग्य अध्यापको का अभाव हो गया ।

६ प्रशिक्षित अध्यापको का स्थान अदीक्षित शिक्षको ने ग्रहण किया । परिणामत. शिक्षा का स्तर निम्न हो गया ।

७ अल्पवेतन होने के कारण उत्साही नवयुवको ने प्रशिक्षण-विद्यालयो की ओर आँख उठाकर भी देखना बन्द कर दिया । ऐसी परिस्थिति मे निम्न योग्यताओ के व्यक्तियो ने उनमे प्रवेश करना प्रारम्भ किया । इसकी प्रतिक्रिया विद्यालयो पर हुई और उनके अपकर्ष का सूत्रपात हुआ ।

८ सुयोग्य, अनुभवी एव प्रशिक्षित अध्यापको की अनुपस्थिति मे माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो को अपनी किशोरावस्था मे उचित परामर्श एव प्रेरणा का लाभ मिलना बन्द हो गया । फलत. विद्यार्थियो मे अनुशासन-हीनता का श्रीगणेश हुआ । देश की राजनैतिक हलचलो ने इस अनुशासन-हीनता मे योग दिया, और धीरे-धीरे विकृत होकर यह आज

एक ऐसी जटिल गुत्थी बन गई है, जिसे सुलझाने मे देश के प्रख्यात शिक्षा-मर्मज्ञो की बुद्धि भी हैरान है।

प्राथमिक शिक्षा (१९३७–१९४७)

इस काल की महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा की युग-प्रवर्त्तक घटना एवं प्राथमिक शिक्षा की अन्य नवीन योजनाओ पर अध्याय १७ मे प्रकाश डाला जायगा। यहाँ हम पिछले अध्यायो के प्रसङ्ग मे प्राथमिक शिक्षा का विवरण दे रहे हैं :—

जैसी कि आशा थी, कांग्रेसी मंत्रिमंडलो ने प्राथमिक शिक्षा को विस्तृत करने की चेष्टा की। परन्तु अपने पदों पर अल्प-काल तक आसीन रहने के कारण उन्हे विशेष सफलता हस्तगत नही हुई। कांग्रेसी मंत्रिमंडलो द्वारा किये गये प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कार्य-कलापो का अध्ययन हम निम्नांकित दो शीर्षको के अन्तर्गत करेंगे :—

१. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

कांग्रेसी मंत्रिमण्डलो ने भारत के विभिन्न प्रान्तो मे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्रचलित करने के प्रयत्न किये। उनके इस कार्य का स्पष्टीकरण हम नीचे दी हुई तालिका से कर रहे हैं :—

अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र

प्रान्त	शिक्षा पाने वाले बालक		शिक्षा पाने वाली बालिकायें	
	नागरिक क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र	नागरिक क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र
बिहार	१७	....	...	....
बम्बई	९	१३४	११०	५,१००
मध्य प्रदेश	३४	१,०३१	....	....
पूर्वी पंजाब	३७	१,४२०	....	....
मद्रास	१६	३१	१२	१,६०७
उडीसा	१	१	....	....
उत्तर प्रदेश	३६	१,३५१	२	३
पश्चिमी बंगाल	१	....	....	....
दिल्ली	१	७	....	....
योग	१५२	३,९९५	१२५	६,७१०

२. प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अन्य कार्य

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के अतिरिक्त, कांग्रेसी मंत्रिमंडलो ने प्राथमिक शिक्षा को विस्तृत करने के लिये विभिन्न साधनों का प्रयोग किया। उन्होंने उन ग्रामो मे स्कूल खोले, जहाँ प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। स्थानीय संस्थाओं

अतिरिक्त सहायता-अनुदान दिया, जिससे वे प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में होने वाले व्यय का भार वहन कर सकें। जिन स्थानों मे माँग थी, वहाँ बालिका-विद्यालय निर्मित किये। प्राथमिक स्कूलो मे अधिक शिक्षको की नियुक्ति की, जिससे शिक्षण-कार्य दक्षता-पूर्वक सम्पन्न किया जा सके।

प्राथमिक शिक्षा की विशेषताएँ

प्राथमिक शिक्षा के प्रसंग मे इस काल मे उसकी विशेषताओ पर दृष्टिपात कर लेना युक्तियुक्त होगा। ये विशेषताएँ मुख्य रूप से दो थी :—

१. **स्थानीय संस्थाओं के शिक्षाधिकारों मे कमी**—'हर्टांग समिति' की सिफ़ारिश के अनुसार स्थानीय संस्थाओ को प्राथमिक शिक्षा पर जो अधिकार प्राप्त थे, उनमे कमी कर दी गई। इस कार्य मे बम्बई प्रान्त ने पथ-प्रदर्शन का कार्य किया। उसने १९३८ और १९४७ के प्राथमिक शिक्षा-अधिनियमो द्वारा स्थानीय संस्थाओ को दी गई शक्तियो को अत्यधिक मात्रा मे कम कर दिया।

२. **शिक्षकों के वेतन मे वृद्धि**—इस काल की एक अन्य विशेषता यह थी कि प्राथमिक विद्यालयो के अध्यापको के अल्प वेतन की ओर ध्यान दिया गया और निश्चय किया गया कि उनको कम से कम इतना वेतन अवश्य दिया जाय कि वे अपने जीवन का निर्वाह कर सकें। विश्व-युद्धजनित मँहगाई के कारण अध्यापको के जीवन की दर्द-भरी कहानी से द्रवित होकर देश के विवेकी नेताओ ने उनकी आर्थिक दशा मे सुधार करने का बीड़ा उठाया। प्रत्येक प्रान्त मे उनके वेतन मे वृद्धि की गई और साथ ही उन्हे मँहगाई भी दी गई। परन्तु दुर्भाग्यवश, मँहगाई रूपी दानव की क्षुधा को तृप्त करने के लिये अध्यापको की अभिवृद्धित धन-राशि अपर्याप्त रही और उनकी दु:खद स्थिति की करुण-गाथा प्रसारित किये जाने पर भी व्योम मे विलीन हो गई।

व्यावसायिक शिक्षा (१९३७–१९४७)

यद्यपि इस अवधि मे व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे कुछ प्रगति अवश्य हुई, परन्तु उसके विषय मे कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है। व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न अवयवो का विवरण निम्नांकित है :—

१. **कानून की शिक्षा**—१९४७ मे १३ कानून कॉलेज थे, जिनमे ४,३३२ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इस काल मे कानून की शिक्षा के विषय मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि आन्ध्र एवं बम्बई विश्वविद्यालयो ने इण्टरमीडिएट परीक्षा मे उत्तीर्ण होने वाले छात्रो को कानून की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दे दिया। अन्य विश्वविद्यालयो मे केवल बी० ए० पास करने के उपरान्त ही छात्र इस शिक्षा के अधिकारी होते थे। प्राय. सभी विश्वविद्यालयो ने एल-एल० एम० या एल-एल० डी० की शिक्षा की व्यवस्था कर दी।

२. **चिकित्सा-शिक्षा**—१९४७ मे प्राय: प्रत्येक प्रान्त मे एक मेडिकल कॉलेज

या मेडिकल स्कूल था। छात्रों की संख्या मे भी पर्याप्त वृद्धि हो गई थी, परन्तु फिर भी देश के लिये जितने डाक्टरो की आवश्यकता थी, उतने उपलब्ध नही थे। इस काल की चिकित्सा-शिक्षा की दो प्रमुख विशेषतायें थी —(१) चिकित्सा की स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये अधिक सुविधायें उपलब्ध हो गई थी, और (२) काग्रेसी मंत्रिमंडल आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धति को भी प्रोत्साहित कर रहे थे।

३. वाणिज्य-शिक्षा—इस अवधि मे वाणिज्य-शिक्षा की प्रगति हुई। सम्पूर्ण भारत मे १४ वाणिज्य-कॉलेज एवं २९६ वाणिज्य-स्कूल थे, जिनमे क्रमश ७,७८३ और १४,७८४ छात्र थे। आगरा, लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयो मे वाणिज्य की स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई।

४. कला की शिक्षा—१९३७ से १९४७ तक कला के प्रति नवयुवको की रुचि बढने के कारण कला की शिक्षा प्रदान करने के लिये कला-विद्यालयो का नवनिर्माण किया गया। १९४७ मे भारत मे १४ कला-विद्यालय थे, जिसमे १,६९८ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

५. कृषि की शिक्षा—इस काल में कृषि की शिक्षा की आशाजनक उन्नति हुई और १२ नवीन संस्थानो का निर्माण हुआ। १९४७ मे १७ कृषि-कॉलेज थे, जो १,५५१ छात्रो को स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा प्रदान कर रहे थे। कृषि-शिक्षा की इतनी उन्नति के बावजूद भी वह भारत ऐसे खेतिहर देश की आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिये अपर्याप्त थी।

६. इंजीनियरिंग की शिक्षा—कृषि के समान इस अवधि मे इंजीनियरिंग की शिक्षा का भी सराहनीय विस्तार हुआ। १९४७ मे भारत मे १७ इंजीनियरिंग कॉलेज थे, जिनमे २,५०० विद्यार्थी प्रतिवर्ष प्रवेश करते थे। परन्तु अन्य देशो की अपेक्षा और स्वयं अपनी आवश्यकताओं को देखते हुए, हमारा देश (भारत) इंजीनियरिंग की शिक्षा मे बहुत पिछडा हुआ था।

७. प्राविधिक शिक्षा—अब तक प्राविधिक शिक्षा की अवहेलना की गई थी, परन्तु इस अवधि मे इसका अत्यधिक प्रसार हुआ। इसके तीन प्रमुख कारण थे —(१) विश्व-युद्ध के कारण ऐसे व्यक्तियो की माँग बहुत बढ गई थी, जो प्राविधिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हो। (२) युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने के लिये भारत मे नवीन उद्योगो की स्थापना हो गई थी और उनमे प्राविधिक शिक्षा-प्राप्त मनुष्यो की आवश्यकता थी। (३) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारो द्वारा बनाई गई युद्धोत्तर विकास योजनाओ को क्रियान्वित करने के लिये प्राविधिक-शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो की माँग बढी। अत प्राविधिक शिक्षा का विस्तार होना स्वाभाविक था। १९४७ मे ४९० संस्थायें थी, जिनमे २७,९४० छात्र थे।

अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-समिति[1]—भारत सरकार ने 'केन्द्रीय शिक्षा-

1. All India Council of Technical Education.

सलाहकार बोर्ड' के परामर्श के अनुसार १९४६ मे 'अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-समिति' का निर्माण किया। इस 'समिति' का उद्देश्य—केन्द्रीय सरकार को उच्च प्राविधिक शिक्षा के संगठन एवं नियोजन मे परामर्श देना था। इस 'समिति' का एक अन्य कार्य—प्राविधिक शिक्षा-सस्थाओ मे सामंजस्य स्थापित करना था। 'समिति' ने भारत मे उच्च प्राविधिक शिक्षा की सस्थाओ को विस्तृत एवं समुन्नत करने के लिय सरकार के समक्ष एक योजना प्रस्तुत की। इसको क्रियान्वित करने मे १५४ लाख रुपया व्यय होना था, और तत्पश्चात् ३० लाख रुपये का वार्षिक व्यय था।

स्त्रियो की शिक्षा (१९३७-१९४७)

१९३७ से १९४७ तक स्त्री-शिक्षा की, विशेष रूप से उच्च शिक्षा की अति तीव्र प्रगति हुई। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान, भारत के विभिन्न सरकारी विभागो एव व्यापारिक कार्यालयो मे शिक्षित व्यक्तियो की माँग बढी। फलस्वरूप, अनेक स्त्रियाँ उनमे कार्य करने लगी। नौकरी करने से स्त्रियो ने जिस आर्थिक स्वतन्त्रता के आनन्द का उपभोग किया, उससे उन्हे शिक्षा ग्रहण करने की अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। युद्ध-काल मे मँहगाई अधिक हो जाने के कारण मध्य वर्ग के व्यक्ति आर्थिक सकट मे थे। अत उनमे से जो उदार विचार के थे, उन्होने अपनी स्त्रियो को घर से बाहर जाकर नौकरी करने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही की। इस परिवर्तित दृष्टिकोण ने स्त्री शिक्षा के उन्नयन मे अतिशय योग दिया। १९४७ मे स्त्रियो के लिय सामान्य तथा विशिष्ट शिक्षा के लिये १६,९५१ सस्थायें थी, जिनमे ३,५५०,५०३ लडकियाँ शिक्षा का लाभ उठा रही थी।[1]

मुसलमानो की शिक्षा (१९३७-१९४७)

हम पिछले अध्याय मे देख चुके हैं कि १९३७ तक मुस्लिम-शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हो चुका था और जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न था, मुसलमान अन्य जातियो से पीछे नही थे। अत सरकार के लिए मुसलमानो की शिक्षा एक समस्या न रह गई। ऐसी परिस्थिति मे सरकार ने मुसलमानो मे शिक्षा का प्रसार करने के भार से अपने आपको मुक्त पाया। इस काल मे मुस्लिम-शिक्षा के सम्बन्ध मे एक विशेष बात यह है कि 'अखिल भारतीय मुस्लिम-शिक्षा सम्मेलन'[2] ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें मुस्लिम-शिक्षा के सम्बन्ध मे निम्नांकित माँगें सरकार के समक्ष रखी गई —

१ मुसलमानो के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य हो, परन्तु उन्हें धेमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य न किया जाय।

२ साम्प्रदायिक स्कूलो को भग न किया जाय और उन्हे मान्यता प्रदान की जाय।

---

1. *Seven Years of Freedom*, p. 25.
2. All India Muslim Educational Conference

३. शिक्षा का माध्यम 'उर्दू' रखा जाय।
४. धर्म को शिक्षा का आधार बनाया जाय।
५. मुस्लिम प्राथमिक विद्यालयो के लिए विभिन्न पाठ्य-क्रम हो।
६. मुस्लिम बालको तथा बालिकाओ के लिये पृथक् स्कूलो की स्थापना की जाय।
७. विद्यालयो मे मुस्लिम अध्यापको एवं अध्यापिकाओं की संख्या निश्चित की जाय।
८. स्थानीय जनसंख्या के अनुपात मे हाई स्कूलो, विश्वविद्यालयो तथा प्राविधिक संस्थाओ मे मुस्लिम छात्रो के लिये स्थान सुरक्षित रखे जायँ।

हरिजनों की शिक्षा (१९३७–१९४७)

कांग्रेस बहुत समय से हरिजनोत्थान एवं अस्पृश्यता के निवारण के लिये आन्दोलन कर रही थी। १९३७ मे विभिन्न प्रान्तो मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के हाथ मे प्रशासकीय शक्तियाँ आ जाने से उन्हे ऐसा स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ, जब वे वास्तव मे दलित वर्गों की पतनोन्मुख दशा मे सुधार करके कुछ ठोस कार्य कर सकते थे। इस भावना से अनुप्राणित होकर कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने विभिन्न प्रान्तो मे अस्पृश्यता का अन्त करने के उद्देश्य से अधिनियम बनाये। इसके अतिरिक्त, उन्होने हरिजनो को शिक्षा प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के अवसर प्रदान किये। हरिजनो के लिए स्थापित किये गये विशिष्ट स्कूलो को समाप्त कर दिया गया और सभी सार्वजनिक विद्यालयो के द्वार उनके लिए खोल दिये गये। साथ ही, उनकी आर्थिक कठिनाइयो को देखते हुए, उन्हे विशेष सुविधायें भी प्रदान की गईं ; यथा —छात्रवृत्तियो, पुस्तको आदि के लिए अनुदान, परीक्षा-शुल्क से आंशिक या पूर्ण मुक्ति, नि शुल्क शिक्षा, मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि संस्थाओ मे स्थानो की सुरक्षा, छात्रावासो की सुविधा, हरिजन शिक्षको को विशेष सुविधायें, चमडे आदि के कार्य की व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध, इत्यादि।

हरिजनो के सौभाग्य से १९४२ मे डा० अम्बेदकर गवर्नर-जनरल् की कार्य-कारिणी समिति के कानून-सदस्य बने। उनके प्रयास के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने पिछडी जातियो के छात्रो को छात्रवृत्तियाँ देने की योजना स्वीकृत की। इस योजना का उद्देश्य—उन हरिजन विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ देना था, जो 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के पश्चात् वैज्ञानिक अथवा औद्योगिक विषयो का भारत मे अध्ययन करना चाहते थे। यह योजना १९४४-४५ मे क्रियान्वित की गई और ३ लाख रुपया छात्रवृत्तियो के लिए दिया गया।

यहाँ यह बात लिखनी युक्तिसंगत होगी कि जिस प्रकार कांग्रेसी मंत्रिमण्डलो ने हरिजनो को शिक्षा प्राप्त करने के लिये विशेष सुविधायें दीं, उसी प्रकार आदिवासियों, पहाडी जातियो तथा अन्य पिछडे हुए वर्गो को भी दीं।

प्रौढ-शिक्षा (१९३७–१९४७)

१९३७ मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के हाथ मे प्रान्तीय स्वायत्त शासन की बाग डोर आ जाने से जन शिक्षा के भाग्य ने पलटा खाया। शिक्षा प्रसार के अपने काय क्रम के अन्तर्गत कांग्रेसी मन्त्रिमडलो ने अनिवाय प्राथमिक शिक्षा एव हरिजन शिक्षा के साथ प्रौढ शिक्षा को भी वरासन पर प्रतिष्ठित किया। आधुनिक प्रगतिशील युग मे वयस्क निरक्षरता भारत के लिए लज्जा एव अपमान की बात थी। अत कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने निरक्षरता की इस कलक-कालिमा को धो डालने के लिए क्रियात्मक पग उठाये। अपने अधीनस्थ प्रान्तो की प्रौढ शिक्षा मे यह अभिरुचि देखकर केन्द्रीय सरकार ने उनसे पीछे रहने मे अपनी मान-हानि समझी। अत केन्द्रीय सरकार ने १९३९ मे बिहार के शिक्षा मन्त्री डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता मे वयस्क साक्षरता के सम्बन्ध मे व्यावहारिक सुझाव देने के लिए 'वयस्क शिक्षा-समिति'[1] की नियुक्ति की।

प्रौढ-शिक्षा के उद्देश्य एव महत्त्व

डा० सैयद महमूद ने सभापति के पद से भाषण देते हुए वयस्क निरक्षरता के व्यपरोपण पर बल दिया। डा० महमूद ने लेनिन (Lenin) का एक वाक्य उद्धृत करते हुए कहा— निरक्षरता का व्यपरोपण एक राजनैतिक समस्या नही है। यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसके बिना राजनीति की चर्चा करना असम्भव है।[2] इस प्रकार प्रौढ शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालने के उपरान्त डा० महमूद ने भारत मे इस शिक्षा के निम्नलिखित तीन उद्देश्य प्रतिपादित किये —

१ निरक्षर वयस्क को लिखना पढना और अकगणित सिखाना।
२ वयस्क को उसके जीवन से सम्बन्धित उपयोगी शिक्षा देना।
३ वयस्क को उत्तम नागरिक बनने की शिक्षा देना।

डा० महमूद ने अपने वक्तव्य मे जनता से अपील की, कि इस पुनीत काय मे सरकार का हाथ बँटाए, क्योंकि निरक्षरता को दूर करने के इस दुष्काय को केवल सरकार सम्पन्न नही कर सकती थी। अपने भाषण मे इस काय के महत्त्व का उल्लेख करते हुए डा० महमूद ने कहा— आज कोई भी सरकार प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की महान् आवश्यकता की अवहेलना नही कर सकती है परन्तु बालको तथा बालिकाओ की शिक्षा का प्रसार करने के लिये सहानुभूतिपूर्ण वातावरण एव अभिभावको

---

1 Adult Education Committee

2 'The liquidation of illiteracy is not a political problem it is a condition without which it is impossible to speak of politics" —Lenin Quoted by Syed Mahmud in the *Report of the Adult Education Committee* (1939), p 54

का हितकर सहयोग अति आवश्यक है, और यह सहयोग उस समय तक प्राप्त नही हो सकता है, जब तक कि स्वयं अभिभावक शिक्षा के महत्त्व का अनुभव न करने लगें।"[1]

प्रान्तों में प्रौढ़-शिक्षा-कार्य

१९३७ से प्रान्तो मे जन-प्रिय मंत्रिमण्डलो की स्थापना के समय से ही प्रौढो को साक्षर बनाने की योजनायें क्रियान्वित कर दी गईं। विभिन्न प्रान्तो मे प्रौढ-शिक्षा के लिये किये गये कार्यों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :—

आसाम—इस प्रान्त मे प्रौढ़-शिक्षा के लिये १९३७ तक जो कार्य किये गये, वे प्राय: नगण्य थे। आसाम मे कांग्रेस का संयुक्त मंत्रिमण्डल बना। अतः वयस्को को साक्षर बनाने का कार्य उत्साह से प्रारम्भ किया गया। शिक्षा-विभाग को साक्षरता का कार्य सौंपा गया। इस विभाग ने अपने अधीनस्थ कार्यालयो के सहयोग से साक्षरता एवं साक्षरता के उपरान्त भी शिक्षा की व्यवस्था की। एक वर्ष की अल्प अवधि में ही १,८४० प्रौढ-शिक्षा केन्द्र खोले गये और आगामी दो वर्षों मे २,१६,७११ प्रौढो को साक्षर बनाया गया।

बंगाल—बंगाल मे १९३७ से पहले से ही ग्राम-सभायें अपनी प्रौढ-पाठशालायें चला रही थी। प्रान्तीय सरकार ने इन्ही पाठशालाओ को विकसित करके तथा आर्थिक सहायता देकर प्रौढ-शिक्षा की व्यवस्था की। बंगाल मे १९३९ मे प्रौढ-शिक्षा के लिये १०,००० विद्यालय थे, १९४२ मे यह संख्या बढकर २२,५७४ हो गई। इन मे क्रमश: १,५०,००० और ५,३०, १७८ प्रौढ साक्षर बनाये जा रहे थे।

बिहार—बिहार मे कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के शिक्षा-मन्त्री डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता मे प्रौढ-शिक्षा का सबसे अधिक विस्तार हुआ। वहाँ एक ही वर्ष मे ४,१०,००० वयस्क साक्षरता की परीक्षा मे सम्मिलित हुए। प्रान्तीय सरकार ने प्रौढो को साक्षर बनाने के लिये निम्नलिखित कार्य किये :—

१. सभी लोअर प्राइमरी, अपर प्राइमरी एवं मिडिल स्कूलो मे प्रौढ-शिक्षा-केन्द्र खोले गये। प्रत्येक वयस्क को साक्षर बनाने के लिये सरकार की ओर से ५ आना आर्थिक सहायता दी जाती थी।

---

1. "No Government can afford today to be blind to the imperative need of the expansion of primary education, but for the speeding up of the tempo of the progress of education of boys and girls, sympathetic atmosphere and helpful co-operation of the parents is an urgent necessity, and this cannot be achieved unless and until the parents themselves realize the importance of education."—*Report of the Adult Education Committee* (1939), p. 54.

२. स्थान-स्थान पर साक्षरता केन्द्र खोले गये और उन्हे १५ रुपये वार्षिक सहायता दी गई।
३. कॉलेजो और हाई स्कूलो मे साक्षरता-कक्षाओ का संगठन किया गया।
४. जेलो मे सभी वन्दियो को साक्षर बनाने का प्रयास किया गया।
५. पुलिस के सिपाहियो और चौकीदारो को साक्षर बनाने की आज्ञा दी गई।
६ "अपना गृह साक्षर बनाओ" (Make your home literate.) नामक आन्दोलन प्रारम्भ किया गया और प्रत्येक परिवार के एक शिक्षित व्यक्ति को अन्य सदस्यो को साक्षर बनाने का कार्य सौंप दिया गया।
७. उद्योगपतियो एवं मिल-मालिको को अपने श्रमिको को साक्षर बनाने के लिये आदेश दिया गया।
८. हजारो ग्रामो मे पुस्कालय एव वाचनालय खोले गये।

बम्बई—इस प्रान्त के कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने १९३७ मे डा० क्लिफर्ड मॉनशार्ट Clifford Manshardt) की अध्यक्षता मे प्रौढ-शिक्षा की समस्या की जाँच करने के लिये एक समिति नियुक्त की। इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर एक 'प्रान्तीय प्रौढ-शिक्षा परिषद्'[1] संगठित की गई। इस परिषद् की एक समिति की अध्यक्षता मे वम्बई नगर मे प्रौढ-शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया गया। कॉलेजो एवं स्कूलो के छात्रो को ग्रीष्मावकाश मे नगर के प्रौढो को साक्षर बनाने के लिये अनुप्राणित किया गया। यह योजना इतनी अधिक सफल हुई कि वम्बई नगर के वयस्को को साक्षर बनाने के उद्देश्य से 'वम्बई नगर वयस्क-शिक्षा-समिति'[2] का निर्माण किया गया और इसको वयस्क साक्षरता का कार्य सम्पन्न करने के लिये ५० हजार रुपया वार्षिक अनुदान दिया गया। परन्तु सरकार का ध्यान विशेष रूप से वम्बई नगर पर ही केन्द्रित रहा, और ग्रामीण क्षेत्रो मे वयस्को को साक्षर बनाने का कार्य अधिक लगन के साथ नही किया गया।

१९३८ मे वम्बई सरकार ने एक 'एड-हॉक एजूकेशन एडवाइजरी बोर्ड'[3] नियुक्त किया। इसके अधिकाश सदस्य गैर-सरकारी कर्मचारी थे। इस बोर्ड ने एस० आर० भगत (S. R. Bhagat) की अध्यक्षता मे निरक्षरता-निवारण का प्रशसनीय कार्य किया। १९३९ मे सरकार ने नए पुस्तकालयो की स्थापना एवं पुराने पुस्तकालयों को अधिक सुसमृद्ध बनाने की योजना क्रियान्वित की। १९४१-४२ मे सरकार ने प्रौढ-शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने का कार्य प्रारम्भ किया।

---

1. Provincial Board for Adult Education.
2. Bombay City Adult Education Committee.
3. Ad-Hoc Education Advisory Board.

सरकार के इन सभी कार्यों के फलस्वरूप प्रौढ-शिक्षा के कार्य को एक नवीन प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त हुई।

उडीसा—इस प्रान्त के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने निरक्षरता-निवारण के निमित्त १५,००० रुपये का अनुदान दिया। मन्त्रिमण्डल के कार्य-काल मे वयस्क शिक्षा का कार्य अति तीव्र गति से आगे बढा, परन्तु मन्त्रियो के पद-त्याग करते ही इस कार्य का प्रभाव मन्द होकर क्षीण होता चला गया।

पजाब—इस प्रान्त मे सर सिकन्दर हयात खाँ का गैर-कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कार्य कर रहा था। अत अन्य प्रान्तो के समान यहाँ प्रौढ-साक्षरता का कार्य न किया गया। परन्तु फिर भी सरकार ने वयस्को मे हजारो पुस्तको का बिना कोई मूल्य लिये वितरण किया। १६३८-३६ मे ४२,००० प्राइमर एव ५०,००० अन्य उपयोगी पुस्तकें वितरित की गई।

इस प्रान्त मे प्रौढ-शिक्षा का प्रसार करने का श्रेय डा० लॉबक् (Laubach) को है, जिसने मिशन स्कूलो को वयस्क-शिक्षा का केन्द्र बनाया। उसके प्रयास के परिणामस्वरूप पंजाब मे प्रौढ-शिक्षा का अच्छा प्रसार हुआ।

उत्तर-प्रदेश—इस प्रान्त के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने प्रौढ-शिक्षा के प्रसार मे स्तुत्य योग प्रदान किया। स्थान-स्थान पर प्रौढ-शिक्षा के केन्द्र स्थापित किये गये और वयस्को के लिये पुस्तको का प्रबन्ध किया गया। १६३६ से १६४२ तक इस प्रान्त मे ७,२५,००० वयस्को को साक्षर बनाया गया।

मैसूर—भारत के कुछ देशी राज्यो मे भी वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य किया गया। इनमे मैसूर, हैदराबाद, जम्मू और कश्मीर उल्लेखनीय हैं, परन्तु इन सब मे मैसूर सर्वोपरि था। उस समय से लेकर आज तक यह राज्य प्रौढ-शिक्षा के कार्य मे संलग्न है।

१६४० मे मैसूर विश्वविद्यालय के छात्र-संघ (Students' Union) ने मैसूर नगर मे निरक्षरता के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। १६४१ मे 'मैसूर राज्य साक्षरता समिति'[1] का निर्माण हुआ। इस समिति द्वारा मैसूर राज्य मे प्रौढ-शिक्षा के निमित्त निम्नांकित कार्य किये गये —

१. वयस्को को शिक्षा देने के लिये साक्षरता-कक्षायें खोली गई। जो वयस्क इन कक्षाओ की शिक्षा समाप्त कर लेते थे, उनकी परीक्षा ली जाती थी और सफल वयस्को को प्रमाण-पत्र दिये जाते थे।

२ साक्षर वयस्को के लिये कुछ ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये, जहाँ पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं आदि की व्यवस्था की गई। यह प्रबन्ध इसलिए किया गया, जिससे साक्षर प्रौढ फिर निरक्षर न बन जायें।

---

1. Mysore State Literacy Council.

३ राज्य की ओर से उन ग्रामो को—जो ३० रुपये एकत्र कर लेते थे, ७० रुपये का अनुदान दिया जाता था। इस सम्मिलित धन राशि से ग्राम मे एक छोटा-सा पुस्तकालय स्थापित कर दिया जाता था।

४ मैसूर राज्य ने नजनगढ नामक स्थान पर डेन्मार्क के 'फोक हाईस्कूल'[1] के सिद्धान्त पर वयस्को के लिए एक विद्यापीठ निर्मित की। इसमे वयस्को को विभिन्न जीवनोपयोगी विषयो की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा का काल ५ माह तक है। विद्यापीठ मे प्रौढ-शिक्षा के कार्यकर्ताओ के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध है।

निष्कर्ष

उपरिकथित विवरण के आधार पर यह बात स्वीकार करनी पडेगी कि इस अवधि मे पूर्व कालो की अपेक्षा प्रौढ-शिक्षा के लिए कही अधिक और रचनात्मक कार्य किया गया। इसके लिए प्रान्तो के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल हमारी प्रशसा के भाजन है। यदि १९३७ से १९४७ तक की १० वर्ष की अवधि मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल अपने पद पर आसीन रहते, तो वयस्क-शिक्षा का कार्य और भी सफल होता। परन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने अपने पदो का त्याग कर दिया और फलस्वरूप उनकी प्रौढ-शिक्षा सम्बन्धी योजनाओ को व्यर्थ समझ कर या मितव्ययता की नीति का अनुसरण करने के कारण सरकार ने बन्द कर दिया। सरकार की इस अनुदारता एव सकीर्ण हृदयता से प्रौढ-शिक्षा को बडा धक्का लगा और अकारण ही उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई। परन्तु निरक्षरता-निवारण के उच्चादर्श से अभिप्रेरित कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने विश्व-युद्ध के उपरान्त एक बार फिर प्रशासकीय शक्ति को हस्तगत करके प्रौढ-शिक्षा के जीर्ण कलेवर मे प्राण फूँक दिये।

साराश

प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना—१९३५ के 'भारत सरकार अधिनियम' को अप्रैल, १८३७ मे कार्यान्वित किया गया। सरक्षित एव हस्तान्तरित विषयो का भेद समाप्त हो गया। ६ प्रान्तो मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने और उन्होने शिक्षा की प्रगति मे योग दिया।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-कार्य—केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया और 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड', 'केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय', 'केन्द्रीय सूचना कार्यालय' तथा 'विश्वविद्यालय-अनुदान समिति' का सगठन किया।

ऐबट एण्ड वुड रिपोर्ट—यह रिपोर्ट जून, १९३७ मे प्रस्तुत की गई। इसमे सामान्य शिक्षा एव उसके सगठन के सम्बन्ध मे वुड द्वारा अनेक उत्तम सुझाव दिये

1 Folk High School

गये । ऐबट ने व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार के लिय सुझाव दिये । द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण सरकार ने इन सुझावो की ओर रचमात्र भी ध्यान नही दिया ।

उच्च शिक्षा—इस काल मे विश्वविद्यालय-शिक्षा का अत्यधिक विस्तार हुआ । त्रावणकोर, उत्कल, सागर और राजपूताना विश्वविद्यालयो का शिलान्यास किया गया ।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा की प्रगति विश्वविद्यालय शिक्षा की अपेक्षा कम हुई । मॅहगाई के कारण साधारण स्थिति के योग्य बालक विद्यालयो म प्रवेश न कर सके, अत शिक्षा का स्तर गिर गया । प्राय सभी माध्यमिक विद्यालया मे शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें हो गई । प्राविधिक, कृषि और वाणिज्य की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया ।

प्राथमिक शिक्षा—काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार मे योग दिया । विभिन्न प्रान्तो मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए अधिनियम पारित किये गये । स्थानीय सस्थाओ के शिक्षाधिकारो मे कमी कर दी गई । शिक्षको के वेतन मे वृद्धि हुई ।

व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति तो अवश्य हुई परन्तु उसके सम्बन्ध मे कोई विशेष बात नही है । पूर्व के समान कानून, चिकित्सा शास्त्र, वाणिज्य, कला, कृषि, प्रौद्योगिक और इञ्जीनियरिंग की शिक्षा चलती रही ।

स्त्रियो की शिक्षा—आर्थिक कठिनाइयो के कारण मध्य वर्ग की अनेक स्त्रिया नौकरी करने लगी । युद्ध के कारण शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो की माँग बढी और स्त्रियो को दफ्तरो आदि मे कार्य मिला । इन कारणो से स्त्री शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया ।

मुसलमानों की शिक्षा—शिक्षा-क्षेत्र मे मुसलमान अन्य जातियो से पीछे नही थे । अत सरकार के लिय मुस्लिम शिक्षा के प्रसार की कोई समस्या नही रह गई ।

हरिजनो की शिक्षा—काग्रसी मन्त्रिमण्डलो न हरिजनो के लिये सभी विद्यालयो के द्वार खोल दिये । छात्रवृत्तियाँ पुस्तक-अनुदान, छात्रावास आदि की सुविधा देकर हरिजनो की शिक्षा को प्रोत्साहित किया । डा० अम्बेदकर के प्रयास से केन्द्रीय सरकार ने वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक विषयो की शिक्षा प्राप्त करने वाले हरिजन छात्रो को छात्रवृत्तियाँ देनी प्रारम्भ की ।

प्रौढ़ शिक्षा—काग्रसी मन्त्रिमण्डलों ने प्रौढ शिक्षा की ओर ध्यान दिया । केन्द्रीय सरकार ने डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता म वयस्क-साक्षरता के सम्बन्ध म सुझाव देने के लिये एक समिति नियुक्त की । विभिन्न प्रान्तो मे प्रौढ शिक्षा के लिये अनेक काय किये गये यथा—आसाम म प्रौढ शिक्षा का काय शिक्षा विभाग को सौंपा

गया। बंगाल मे ग्राम-सभाओं द्वारा प्रौढ-पाठशालाओ का प्रबन्ध किया गया। बिहार मे प्रौढ-शिक्षा के लिए सबसे अधिक कार्य किया गया। स्कूलो और कॉलेजा मे प्रौढ-शिक्षा केन्द्र खोले गये। पुलिस के सिपाहियो, जेलो के बन्दियो और चौकीदारो को साक्षर बनाया गया। बम्बई नगर के प्रौढो को साक्षर बनाने के लिये विशेष रूप से प्रयास किया गया, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रो मे अधिक कार्य न किया गया। उड़ीसा सरकार ने वयस्क-शिक्षा-कार्य के लिए १५,००० रुपये का अनुदान दिया। पंजाब मे बिना मूल्य लिये प्रौढो को पुस्तकें बाँटी गईं। इस प्रान्त मे मिशनरियो ने वयस्क-शिक्षा की प्रगति मे योग दिया। उत्तर प्रदेश मे ७,७५,००० वयस्को को साक्षर बनाया गया। मैसूर राज्य के विश्वविद्यालय के छात्रसंघ ने निरक्षरता के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। राज्य की ओर से एक समिति नियुक्त की गई, जिसने साक्षरता-कक्षायें खोली, प्रौढ-शिक्षा केन्द्र स्थापित किये, पुस्तकालयो का संगठन किया और एक विद्यापीठ का निर्माण किया।

TEST QUESTIONS

1. Summarize the views expressed by Messrs Abbott and Wood on the development of the vocational education in this country. How far were they put into practice in Indian schools and colleges ?
   इस देश मे व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिये ऐबट और वुड द्वारा व्यक्त किये गये विचारो को सक्षेप मे लिखिये। उनको भारतीय स्कूलो और कॉलेजो मे कहाँ तक कार्यान्वित किया गया था ?
2. Give a brief account of the educational activities of the Central Government and the Congress Ministries from 1937 to 1947.
   १९३७ से १९४७ तक केन्द्रीय सरकार और काग्रेस मन्त्रिमण्डलो के कार्यों का संक्षेप मे वर्णन कीजिए।

१८

प्राथमिक शिक्षा की नवीन योजनाएँ

[विद्या-मन्दिर, वालंटरी-स्कूल व बेसिक शिक्षा]

(१९३७–१९४७)

प्रस्तावना

'शिक्षा' एक राष्ट्र की प्रगति का प्रतीक है। यदि आप किसी देश के उन्नयन एवं अवनयन का कारण जानना चाहते है, तो इसे उस देश की शिक्षा के इतिहास मे खोजिये। स्वामी विवेकानन्द के इन लोकप्रसिद्ध शब्दो मे सत्य का पूर्ण आभास मिलता है—"हमारा देश उन्नति क्यो नही कर रहा है? इसमे शिक्षा का अभाव है। अत. यदि देश को समुन्नत बनाना है तो सर्वप्रथम जन-साधारण को शिक्षित करना है।"[1] स्वामी जी के इस सारगर्भित सन्देश ने नवाभ्युत्थान के युग मे कार्य-रत राष्ट्र-निर्माताओं मे एक नई जान डाल दी। ज्यो-ज्यो राष्ट्रीय आन्दोलन बढता गया, स्वामी जी के इन शब्दो का अर्थ-विस्तार होता गया। जिस देश मे केवल ७ प्रतिशत साक्षरता थी[2], उसके उत्थान की कल्पना भी निर्मूल थी। अत:, जब दैवयोग से १९३७ मे राष्ट्रीय नेताओ ने भारत के विभिन्न प्रान्तो मे उत्तरदायी शासन का सूत्र सम्हाला, तो उन्होने सार्वजनिक कल्याण के कार्य-क्रम मे प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करके जन-शिक्षा-प्रसार कार्य को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया। प्राथमिक शिक्षा के विकास की पुरातन विधियो मे उन्हे कोई आकर्षण नही मिला और वे अपनी नवीन योजनाओ का परीक्षण करने के लिये उत्कण्ठित हो उठे। ये योजनायें अग्रांकित थीं—

---

1. **Swami Vivekananda** : *Lectures from Colombo to Alm...* p. 127.
2. *Census Report*, 1931.

१ विद्यामन्दिर-योजना (Vidaya Mandir Scheme)
२ वालटरी स्कूलो की योजना (Scheme of Voluntary Schools)
३ बेसिक शिक्षा की योजना (Scheme of Basic Education)

१–विद्यामन्दिर योजना

इस योजना को प्रतिपादित करने वाले मध्य प्रान्त के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री प० रविशकर शुक्ल थे। १९३७ ३८ की इस योजना का उद्देश्य—नाममात्र को सरकारी व्यय पर मध्य प्रान्त के छोटे ग्रामो मे प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करना था। इस योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थी[1] —

१ प्रत्येक ग्राम मे जहाँ स्कूल नही हैं और जहाँ लगभग ४० बालक एव बालिकायें शिक्षा प्राप्त करने योग्य है, वहाँ एक विद्यामन्दिर की स्थापना की जायगी।
२ अन्य प्राथमिक विद्यालयो के समान विद्यामन्दिर मे भी लिखने-पढने, अकगणित तथा प्राथमिक स्कूलो के अन्य साधारण विषयो की शिक्षा दी जायगी।
३ विद्यामन्दिर, सामान्य प्राथमिक विद्यालयो से कुछ बातो के कारण भिन्न होगा। विद्यामन्दिर मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास किया जायगा। विद्यामन्दिर एव स्थानीय ग्रामीण समाज मे निकट सम्पर्क स्थापित किया जायगा। विद्यामन्दिर ग्रामोत्थान के लिये कार्य करेगा।
४ प्रत्येक विद्यामन्दिर को भवन तथा अन्य सामग्री दी जायगी। विद्यामन्दिर के व्यय के लिये इतनी भूमि दी जायगी, जिससे २०० रुपया वार्षिक आय होगी। इसी आय से विद्यामन्दिर के व्यय की पूर्ति होगी।
५ विद्यामन्दिर की देख भाल कृषि विभाग करेगा। परन्तु यदि किसी गाँव मे ग्राम-पचायत होगी, तो विद्यामन्दिर का सचालन एक स्थानीय समिति के द्वारा किया जायगा।
६ विद्यामन्दिर की आय का प्रमुख साधन—दी हुई भूमि होगी। अत्यधिक आवश्यकता के समय सरकार आर्थिक सहायता देगी। ग्रामीण जनता दान इत्यादि के रूप मे धन देकर विद्यामन्दिर की सहायता कर सकेगी।
७ एक विद्यामन्दिर मे केवल एक शिक्षक होगा। वह कम-से-कम मिडिल पास और विशेष रूप से प्रशिक्षित होगा। उसे कम-से-कम १५ रुपए मासिक वेतन मिलेगा। उसकी सेवायें स्थायी हो जाने के पश्चात् उसका लगभग ५०० रुपये का जीवन बीमा (Life Insurance) करा दिया जायगा।

---

1 Pamphlet on the '*Vidya Mandir Scheme*' published by the Goverrment of Central Provinces in 1938

८. विद्यामन्दिर मे शिक्षा-काल ४ से ७ वर्ष का होगा। अध्ययन के विषय ग्रामीण वातावरण से सम्बन्धित होगे। औद्योगिक एवं कृषि-शिक्षा की व्यवस्था होगी।

विद्यामन्दिर योजना की प्रगति

१६३८-३६ मे विद्यामन्दिर-योजना को अति उत्साह से क्रियान्वित किया गया और लगभग ८० विद्यामन्दिरो की स्थापना की गई। दुर्भाग्य से, कुछ ही समय पश्चात् १६३६ मे कांग्रेसी मन्त्रिमंडल ने त्याग-पत्र दे दिया। इससे योजना को बड़ा आघात पहुँचा। प्रान्तीय सरकार ने उसमे तनिक भी रुचि नही ली। फलतः उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई।

२—वालंटरी स्कूलों की योजना

थोड़े से सरकारी व्यय पर प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिये 'वालंटरी-स्कूल' नामक एक अन्य योजना थी। इसको १६३८ मे कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने बम्बई प्रान्त मे क्रियान्वित किया। इस योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे—(१) शिक्षा के लिये व्यक्तिगत प्रयास को प्रोत्साहन देना और इस प्रकार शिक्षा के व्यय को कम करना; (२) ऐसे ग्रामो में स्कूलो की स्थापना करना, जहाँ सरकार या स्थानीय संस्थाओं द्वारा स्कूलो के स्थापित करने मे अत्यधिक व्यय होगा। 'वालंटरी स्कूलो' की इस योजना का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

कुछ स्थानो मे ऐसे स्कूल थे, जो किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा संचालित किये जा रहे थे। क्योकि उन क्षेत्रो मे सरकारी स्कूलो की स्थापना मे अत्यधिक व्यय होता, अत. राज्य की ओर से इन ग़ैर-सरकारी विद्यालयो को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी गई। इन स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रति बालक के लिये ४ रुपया, और प्रति बालिका के लिये ६ रुपया वार्षिक अनुदान दिया जाता था। पिछड़ी जातियो के बालको एवं बालिकाओ के लिये प्रति बच्चा ३ रुपया प्रतिवर्ष के हिसाब से आर्थिक सहायता दी जाती थी। इसके अतिरिक्त, स्कूलो की अन्य सामग्री के लिये भी धन दिया जाता था।

वालंटरी स्कूलो की इस योजना को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई और बम्बई सरकार ने अल्प धनराशि व्यय करके प्राथमिक शिक्षा का पर्याप्त प्रसार किया। विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने और कांग्रेसी मंत्रिमंडल के त्याग-पत्र देने से इस योजना को बड़ा आघात पहुँचा। कुछ वर्षों तक ये स्कूल ज्यो-त्यो करके चलते रहे। इनमे से थोड़े से बन्द भी हो गये। युद्ध के उपरान्त जब कांग्रेसी मन्त्रिमडल को पुन. शक्ति प्राप्त हुई, तब इस योजना के अनुसार स्कूलो का पुनर्संङ्गठन किया गया। फलस्वरूप, १६४७ तक ६,६८४ वालंटरी-स्कूलों का सचालन किया जा रहा था। इनमे ३,४८,७६० छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। लगभग सभी छोटे ग्रामो मे वालंटरी स्कूल शिक्षा प्रदान करने का कार्य करने लगे थे।

३—बेसिक शिक्षा की योजना

जब १९३७ मे काग्रेसी मंत्रिमंडलो ने प्रान्तीय स्वशासन का कार्य-भार सम्हाला, तब उन्होने अपने को एक विचित्र दुविधा मे पाया। एक ओर, वे कम-से-कम समय मे सर्वव्यापी, नि शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना चाहते थे, क्योकि वे जनता की इस उचित माँग को पूर्ण करने के लिये वचन-बद्ध थे। दूसरी ओर, वे राष्ट्र-पिता महात्मा गाधी की 'पूर्ण मद्य-निषेध' (Total Prohibition) की नीति को कार्यान्वित करना चाहते थे। शिक्षा-प्रसार के कार्य के लिये विशाल धन-राशि की आवश्यकता थी। परन्तु मद्य-निषेध की नीति का अनुसरण करने से—प्रान्तीय आय के एक उत्तम साधन को खो देना था। इन दोनो विरोधी कार्यों को एक साथ किस प्रकार सम्पन्न किया जाय? काग्रेसी मन्त्रिमडलो के समक्ष यह विषम समस्या थी। वे एक ही कार्य कर सकते थे—प्राथमिक शिक्षा का प्रसार या मद्य-निषेध। काग्रेसी मन्त्रिमडलो का इस सकट से, उनके नेता महात्मा गाधी ने अपनी 'बेसिक शिक्षा' की योजना प्रस्तुत करके, उद्धार किया।

महात्मा गाधी के शिक्षा-विषयक विचार

महात्मा गाधी न केवल एक उच्च-कोटि के राजनीतिज्ञ, अपितु एक महान् समाज-सुधारक भी थे। समाज की विभिन्न समस्याओ—शिक्षा, अस्पृश्यता, धर्म आदि के विषय मे उनके अपने मौलिक विचार थे। वे राष्ट्रीय-पुनर्निर्माण के लिये शिक्षा के महत्त्व से भली प्रकार अवगत थे। अत १९३७ मे भारत के अनेक प्रान्तो मे काग्रेसी मन्त्रिमडलो की स्थापना होते ही उन्होने भारतीयो का ध्यान जन-शिक्षा की ओर आकर्षित करने के विचार से अपने समाचार-पत्र 'हरिजन' मे शिक्षा-सम्बन्धी लेख लिखने प्रारम्भ किये। यही लेख 'बेसिक शिक्षा-योजना' के आधार बने। एक लेख मे गाधी जी ने अपने शिक्षा-विषयक विचारो को अधोलिखित शब्दो मे व्यक्त किया :—

"राष्ट्र के रूप मे हम शिक्षा मे इतने पिछडे हुए हैं कि यदि हमने शिक्षा का यह कार्य-क्रम धन पर आधारित किया, तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के अपने उत्तरदायित्वो को इस पीढी मे थोडे समय मे निर्वाह करने की आशा नही कर सकते हैं। अत मैंने अपनी रचनात्मक योग्यता की ख्याति को सकट मे डालकर यह प्रस्ताव करने का साहस किया है कि शिक्षा—आत्म-निर्भर होनी चाहिये। शिक्षा से मेरा अर्थ है—'बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियो का सर्वतोमुखी विकास।' साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न आदि। यह तो अनेक साधनो मे से एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एवं स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता स्वय शिक्षा नही है। अत मैं बच्चे की शिक्षा—उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है, उसी समय

से उसे उत्पादन करने योग्य बनाकर प्रारम्भ करना चाहता हूँ। इस प्रकार यदि राज्य, विद्यालयों में निर्मित वस्तुओं को लेने का उत्तरदायित्व ले ले, तो प्रत्येक विद्यालय आत्म-निर्भर बनाया जा सकता है।"[1]

अखिल-भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन[2]

गांधी जी के शिक्षा-विषयक विचारों ने देश में हलचल मचा दी। उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा-योजना के उभय पक्षों को लेकर विचारकों में असाधारण वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया। अतः गांधी जी ने देश के शिक्षा-मर्मज्ञों द्वारा अपनी योजना की जाँच कराना निश्चित किया। उस समय महात्मा जी वर्धा में थे। वहाँ २२ और २३ अक्टूबर, १९३७ को मारवाड़ी हाई-स्कूल की रजत-जयन्ती का समारोह होने वाला था। इस अवसर पर भारत के विभिन्न भागों से शिक्षा-विशेषज्ञों, राष्ट्रीय नेताओं एवं समाज-सुधारकों को आमंत्रित किया गया और 'अखिल-भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन', जिसे 'वर्धा-शिक्षा-सम्मेलन' भी कहते हैं, का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में गांधी जी ने सभापति का स्थान ग्रहण किया। उन्होंने सम्मेलन में भाग लेने वाले शिक्षा-विशारदों के समक्ष अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचार व्यक्त किये। गम्भीर विचार-विमर्श के उपरान्त सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये, जो बेसिक शिक्षा-योजना के आधार हैं :—

१. राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को ७ वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाय।
२. शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो।
३. इस सम्पूर्ण अवधि में शिक्षा किसी हस्त एवं उत्पादक कार्य के माध्यम से दी जाय। अन्य विषय इस केन्द्रीय कार्य से सम्बन्धित किये जायें। बच्चों की अन्य सभी योग्यताओं का विकास, या उनको दिया जाने वाला शिक्षण, उनके वातावरण से पूर्णतः सम्बन्धित हो।
४. सम्मेलन को आशा है कि शनैः-शनैः शिक्षा की इस प्रणाली से अध्यापकों का वेतन निकलने लगेगा।[3]

जाकिर हुसेन समिति[4]

उपरिलिखित प्रस्तावों को पारित करने के उपरान्त सम्मेलन ने जामिया-मिलिया इस्लामिया, दिल्ली, के उपकुलपति डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक

1. *Harijan*, July 31, 1937.
2. All-India National Education Conference.
3. Hindustani Talimi Sangh : *Educational Reconstruction*, p. 82.
4. Zakir Husain Committee.

समिति नियुक्त की। इसे 'जाकिर हुसेन समिति' के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति का उद्देश्य—वर्धा-शिक्षा-सम्मेलन मे पारित प्रस्तावो के अनुसार एक विस्तृत पाठ्य-क्रम तैयार करना था। इस समिति ने दिसम्बर १९३७ और अप्रैल १९३८ मे दो रिपोर्टें प्रस्तुत की। **प्रथम रिपोर्ट** मे वर्धा-शिक्षा-योजना के आधारभूत सिद्धान्तो, उद्देश्यो, शिक्षको तथा उनके प्रशिक्षण, विद्यालयो मे संगठन, प्रशासन एव निरीक्षण और कताई-बुनाई के विस्तृत पाठ्य-क्रम इत्यादि का विशद वर्णन किया। **द्वितीय रिपोर्ट** मे समस्त विषयो के पाठ्य-क्रम एव उनको आधारभूत हस्त एव उत्पादक कार्य से सम्बन्धित करने के उपायो पर अपना मत प्रकट किया।

इसी बीच 'जाकिर हुसेन समिति' की प्रथम रिपोर्ट फरवरी १९३८ मे हरिपुरा मे होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन मे विचार-विनिमय के लिये रखी गई और भारतीय शिक्षा को पुनर्संङ्गठित करने के लिये उसे कांग्रेस की योजना स्वीकार कर लिया गया। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये अप्रैल १९३८ मे सेवाग्राम मे 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्'[1] की स्थापना की गई। इस परिषद् को 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' भी कहा जाता है। कारण यह है कि गांधी जी इस नवीन शिक्षा को 'नई तालीम' के नाम से पुकारते थे।

योजना की रूपरेखा

बेसिक शिक्षा की योजना की रूपरेखा निम्नलिखित प्रकार से है :—

१. बेसिक शिक्षा की अवधि ७ वर्ष की है। यह शिक्षा ७ से १४ वर्ष तक की आयु के बालको और बालिकाओं के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य है।
२. शिक्षा का माध्यम 'मातृ-भाषा' है और अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती है।
३. सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प (Basic Craft) से होता है, जिसे बच्चो की योग्यता तथा स्थान की आवश्यकताओं को देखकर चुना जाता है।
४. चुने हुए शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि वह बच्चो को उत्तम शिल्पी बना देती है और जो वस्तुयें वे बनाते है, ऐसी होती हैं जिनका प्रयोग किया जा सकता है या जिनको बेचकर विद्यालय के व्यय के कुछ भाग की पूर्ति की जा सकती है।
५. इस शिल्प की शिक्षा, यान्त्रिक विधि से न दी जाकर इस प्रकार दी जाती है कि छात्र उसके सामाजिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व से परिचित हो जाते हैं।[2]

---

1. All-India National Education Board.
2. K. G Saiyidain in *Year-Book of Education* (E[illegible] Bros), 1940, p 503

पाठ्य-क्रम

बेसिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम मे निम्नलिखित विषय होते हैं —

१. आधारभूत शिल्प—अग्रलिखित आधारभूत शिल्पो मे से कोई १ चुना जाता है—(क) कृषि, (ख) कताई-बुनाई, (ग) लकडी का काम, (घ) मिट्टी का काम, (ङ) चमडे का काम, (च) मछली पालना, (छ) फल एवं शाक उद्यान-कर्म, (ज) बालिकाओ के लिए गृह-विज्ञान, (झ) कोई अन्य शिल्प, जिसके लिये स्थानीय तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हो।

२. मातृ-भाषा।

३ गणित।

४ सामाजिक अध्ययन—इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र।

५ सामान्य विज्ञान—(अ) प्रकृति अध्ययन, (ब) वनस्पति विज्ञान, (स) प्राणि-शास्त्र, (द) रसायन शास्त्र, (र) स्वास्थ्य विज्ञान, (ल) [illegible] का ज्ञान, (व) महान् वैज्ञानिको एवं अन्वेषको की कहानियाँ।

६ कला—रेखा-चित्रण एव सगीत आदि।

७. हिन्दी (जहाँ मातृ-भाषा नही है)।

८. शारीरिक शिक्षा (व्यायाम एव खेल-कूद)।

पाँचवी कक्षा तक सह-शिक्षा है और बालको [illegible] पाठ्य-क्रम है। उसके उपरान्त, दोनो के लिये पृथक् [illegible]। ६ठी और ७वी कक्षाओ मे बालिकाएँ आधारभूत [illegible] उच्च पाठ्य-विषय ले सकती हैं। शिक्षा का माध्यम [illegible] अर्थात् हिन्दी का अध्ययन सब छात्रो के लिए [illegible] पढाई जाती है। जिन प्रान्तो की भाषा 'हिन्दी' [illegible] भाषा पाठ्य-क्रम मे प्रमुख भाषा के [illegible] को कोई स्थान नही दिया गया है।

अध्यापन-विधि

बेसिक शिक्षा मे अध्यापन [illegible] बेसिक शिक्षण प्रणाली मे [illegible] किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, [illegible] विभिन्न विषयो का ज्ञान [illegible] अल्प समय मे ही [illegible] प्रकार से शिक्षा प्रदान [illegible]

प्रथम कक्षा मे [illegible] है। तदनन्तर, [illegible]

सीखते है, उस समय किसी आधारभूत शिल्प की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ज्यो-ज्यो बच्चे आगे की कक्षाओ मे पहुंचते हैं, वे विभिन्न विषयो के ज्ञान का अर्जन करते है। परन्तु उनको इन विषयो की शिक्षा स्वतन्त्र रूप से प्रदान न की जाकर किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जाती है। गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान आदि के शिक्षण मे इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी विषय का कोई भाग आधारभूत शिल्प के माध्यम से नही पढाया जा सकता है, तो उसे किसी अन्य विधि से पढा दिया जाता है। पाठ्य-क्रम के समस्त विषय परस्पर सम्बन्धित ज्ञान-क्षेत्रो के रूप मे बच्चो के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार ७ वर्ष के अन्त मे बच्चो को सभी विषयो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साथ ही उन्हे आधारभूत शिल्प की इतनी अच्छी जानकारी हो जाती है कि उसकी सहायता से वे धनोपार्जन करने लगते है।

अध्यापक

बेसिक शिक्षा-प्रणाली मे अध्यापको का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विद्यालयो के लिये उनका चुनाव करते समय उन अध्यापको को वरीयता दी जाती है, जो उस क्षेत्र के निवासी होते है, जहाँ विद्यालय स्थित है। शिक्षण कार्य के लिये पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिमान (Preference) दिया जाता है।

बेसिक विद्यालयो मे प्रशिक्षित अध्यापक ही नियुक्त किये जाते हैं। प्रशिक्षण विद्यालयो मे वे ही व्यक्ति प्रवेश कर सकते हैं, जो या तो 'मैट्रीकुलेशन' परीक्षा म उत्तीर्ण हो चुके हो या वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा पास करने के उपरान्त कम-से-कम २ वर्ष तक किसी विद्यालय मे अध्यापन कार्य कर चुके हो। प्रशिक्षण विद्यालयो मे दो प्रकार का पाठ्य-क्रम होता है —(१) दीर्घकालीन प्रशिक्षण, और (२) अल्प कालीन प्रशिक्षण। प्रथम मे प्रशिक्षण की अवधि ३ वर्ष है, और द्वितीय मे १ वर्ष। इस अवधि मे छात्राध्यापको को बेसिक विद्यालयो के सभी विषयो की शिक्षण विधि का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

नामकरण के कारण

यहाँ यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शिक्षा का नाम 'बेसिक शिक्षा' क्यो रखा गया है। 'बेसिक' (Basic) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है—'आधार भूत'। इसी प्रसङ्ग मे 'बेसिक शिक्षा' के नामकरण के निम्नाङ्कित कारणो को समझा जा सकता है —

१ यह शिक्षा भारत की राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति एव शिक्षा-सङ्गठन का आधार है।

२ प्रत्येक भारतीय बच्चे को, यदि वह शारीरिक एव मानसिक रूप से अस्वस्थ नही है, यह आधारभूत शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती है।

३. यह आधारभूत शिक्षा प्रत्येक भारतीय—पुरुष अथवा स्त्री, धनी अथवा

निर्धन, हिन्दू अथवा मुसलमान, हरिजन अथवा ब्राह्मण—की सामान्य सम्पत्ति है।

४. इस शिक्षा का बच्चो की आधारभूत आवश्यकताओ एवं अभिरुचियो से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

५. यह शिक्षा सामुदायिक जीवन के आधारमूत व्यवसायो से सम्बन्धित है।

६ यह शिक्षा सभी भारतीयो को ऐसा आधारभूत ज्ञान प्रदान करती है, जो उनको अपने वातावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने एवं प्रयोग करने मे सहायक सिद्ध होती है।

७. इस शिक्षा का आधार कोई शिल्प होता है, जिसका प्रयोग व्यक्तियो द्वारा अपने जीवन-निर्वाह के लिये किया जा सकता है।

[त]क शिक्षा के उद्देश्य

१. नागरिकता के गुणो का विकास—प्रजातन्त्र-शासन-व्यवस्था मे प्रत्येक [व्यक्ति] शासन के प्रति उत्तरदायी होता है। राज्य के प्रति उसके कर्त्तव्य बढ जाते [हैं], साथ ही उसे अनेक अधिकार भी प्राप्त है। वह इन कर्त्तव्यो तथा अधिकारो का [निर्वा]हि तभी कर सकता है, जब वह इनके प्रति सजग हो। इसके लिये ऐसी शिक्षा [की] आवश्यकता है, जो उसमे नागरिकता के गुणो का विकास करे। बेसिक शिक्षा मे [इस] बात की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। 'ज़ाकिर हुसेन समिति' ने इस विषय [मे अ]पने विचारो को व्यक्त करते हुए लिखा है :—"आधुनिक भारत मे नागरिकता—[...] के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एव सास्कृतिक जीवन मे विस्तार से प्रजा-[...]क होनी है। नई पीढी को कम-से-कम इस बात का अवसर अवश्य मिलना [चाहि]ये कि वह अपनी समस्याओ, अधिकारो एवं कर्तव्यो को समझे।"

२. नैतिक विकास—आधुनिक समाज का उत्तरोत्तर नैतिक पतन होता जा [रहा] है। लौकिक जीवन को प्रमुखता देने वाले व्यक्ति अपने स्वार्थों की दौड मे अपने [...]यो, सिद्धान्तो तथा आदर्शों को विस्मृत कर चुके है। समाज की इस पतनोन्मुख [दशा] को देखकर गाधी जी ने शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य—व्यक्ति मे नैतिकता को [प्रवि]ष्ट करना, बताया। गांधी जी के अनुसार—"मैंने सबसे ऊँचा स्थान हृदय की [...]ति या चारित्रिक निर्माण को दिया है, और मुझे अनुभव हुआ है कि सबको [...] रूप से नैतिक शिक्षा दी जा सकती है। इस बात से कोई प्रयोजन नही है कि [...] आयु और पालन-पोषण मे कितना अन्तर है।"

बेसिक शिक्षा मे नैतिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है। बच्चो [को क]र्त्तव्यपरायणता, दूसरो के अधिकारो के प्रति सम्मान, पारस्परिक सहयोग और [...] एवं सत्यता के मार्ग का अनुसरण करने की शिक्षा दी जाती है।

३. सांस्कृतिक उद्देश्य—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का एक मुख्य दोष यह है कि भारतीय संस्कृति का पाठ न पढाया जाकर, बच्चो को पाश्चात्य रंग मे रँगा

जाता है। वे अपनी परम्परागत सस्कृति से दूर हो जाते हैं। इससे होने वाली हानि के सम्बन्ध मे गाधीजी ने लिखा है —"यदि किसी स्थिति पर जाकर एक पीढ़ी अपने पूर्वजो के प्रयत्नो से बिल्कुल अचेत हो जाती है या अपनी सस्कृति पर लज्जा करने लगती है, तो वह नष्ट हो जाती है।"[1] अत गाधी जी ने अक्षर ज्ञान से अधिक महत्त्व शिक्षा के सास्कृतिक पहलू को दिया। इसीलिये बेसिक शिक्षा म भारतीय शिल्पो को स्थान दिया गया है और शिक्षा को सामाजिक परिस्थितिया के अनुकूल बनाया गया है।

४ **त्रिविध विकास**—प्रचलित शिक्षा प्रणाली मे केवल बुद्धि के विकास पर बल दिया जाता है और शारीरिक तथा आत्मिक विकास की पूर्णत उपेक्षा की जाती है। अत इस प्रकार व्यक्ति का केवल एकागी विकास होता है, पूर्ण विकास नही। बेसिक शिक्षा मे मानसिक, शारीरिक एव आत्मिक विकास की ओर पूरा ध्यान दिया गया है। पाठ्य-क्रम के लिये इस प्रकार के विषय चुने गये है, जिनसे तीनो प्रकार का विकास होना निश्चित हो जाता है।

५ **आर्थिक उद्देश्य**—बेसिक शिक्षा मे आर्थिक उद्देश्य के दो अभिप्राय हैं —

प्रथम—बच्चो द्वारा बनाई गई वस्तुओ से विद्यालय के व्यय की आशिक पूर्ति करना

द्वितीय—बेसिक शिक्षा समाप्त करन के पश्चात् बालको को बडे होकर किसी उद्यो[ग] द्वारा अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करना।

६ **सर्वोदय समाज**—आज का भौतिकवादी समाज स्वार्थसिद्धि की नीति [की] नीव पर खडा है। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों मे विभाजित है—'धनपति' औ[र] 'धनहीन'। दोनो ही वर्ग विकृत है। एक की विकृति का कारण 'धन की अधिक[ता]' है और दूसरे की विकृति का कारण—'धन का अभाव। धनपति, शोषण की चिता प[र] खडे होकर जीवन का आनन्द लूट रहे हैं। धनहीन व्यक्तियो को भर पेट भोजन औ[र] तन ढकने के लिए कपडे भी नसीब नही होते है।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य—इस विकृत समाज के स्थान पर सर्वोदय समा[ज] की स्थापना करना है। सर्वोदय समाज मे स्वार्थ का स्थान परमार्थ सग्रह की वृ[त्ति] का स्थान त्याग की वृत्ति और शोषण का स्थान सेवा लेगी। इस समाज म श्रम [की] महत्ता होगी, पैसे की नही, और सहयोग तथा स्नेह की भावनायें हागी, ईर्ष्या औ[र] द्वेष की नही। इस समाज के निर्माण के लिये बेसिक शिक्षा इस बात पर बल देती [है] कि बच्चे सामूहिक तथा सहयोगी जीवन व्यतीत करें। इसीलिये बेसिक शिक्षा ब[च्चों] मे त्याग, आत्मविश्वास, समाज सेवा, प्रम आदि की उच्च भावनाओ को कूट-कूट[कर] भरने का प्रयत्न करती है।

---

1 "If at any stage one generation goes completely out of touch with the efforts of its predecessors or in any wise ge[ts] ashamed of itself or its culture, it is lost"—*Young India*, Marc[h] 20, 1924.

बेसिक शिक्षा की विशेषताएँ

'वर्धा-शिक्षा-योजना' की विशेषताओ के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किये गये है, उन्हे हम संक्षेप मे नीचे दे रहे है —

१. जाकिर हुसेन समिति के अनुसार[1]—(अ) एक शिल्प का विषय-प्रवेश, (ब) पाठ्य-क्रम के विषयो का समन्वय तथा सहसम्बन्ध, (स) जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध, (द) क्रिया द्वारा सीखने की विधि, (य) वैयक्तिक रुचि, और (र) वास्तविक उत्तरदायित्व की भावना।

२. बेसिक विद्यालयो के पाठ्य-क्रम के अनुसार[2]—(अ) क्रिया का केन्द्रीकरण (ब) विषयो का सहसम्बन्ध, (स) अध्यापक को स्वतन्त्रता, (द) उत्पादन पर बल, (य) हस्तकार्य के लिये आदर, और (र) नागरिकता का आदर्श।

३. डा० पटेल के अनुसार[3]—(अ) नि शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, (ब) शिक्षण-केन्द्र के रूप मे एक शिल्प, (स) योजना मे आत्म-निर्भरता पर बल, (द) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, (य) नागरिकता का आदर्श, (र) एक सहकारी समुदाय का आदर्श, और (ल) अहिंसा का आदर्श।

४. हंसराज भाटिया के अनुसार[4]—(अ) शिक्षण का केन्द्र बालक, (ब) ज्ञान को एक "एकीकृत सम्पूर्ण" समझा जाना, (स) बच्चो का क्रिया अथवा आत्मचेष्टा द्वारा सीखना, (द) क्रिया का प्रयोजन एवं उत्पादक होना, (य) शिक्षण किसी शिल्प-कार्य द्वारा किया जाना, (र) अध्यापको एवं बालकों को कार्य करने की अधिक स्वतन्त्रता, (ल) बच्चो द्वारा हस्तकार्य का सम्मान किया जाना, (व) अध्यापको एवं बच्चो द्वारा सामाजिक प्रगति के लिये कार्य किया जाना, और (श) अध्यापको और बच्चो द्वारा सत्य और अहिंसा के आदर्श को दृष्टि मे रखते हुए, विश्व-शान्ति मे योग देना।

उपर्युक्त सूचियो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि 'वर्धा-शिक्षा-योजना' की विभिन्न विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु उनमे से अनेक विशेषतायें सामान्य हैं। इन विशेषताओं मे अन्य अनेक विशेषताएँ जोडी जा सकती है, किन्तु स्थानाभाव के कारण हम ऐसा न करके केवल दो अन्य प्रमुख विशेषताओ की ओर विद्यार्थियो का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं —

---

1. *Educational Reconstruction*, p 122.

2. *Syllabus for Basic Schools*, Ministry of Education, Government of India, 1956, pp. 5-6.

3. M. S. Patel : *The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi*, pp. 113-119.

4. Hans Raj Bhatia : *What Basic Education Means ?* p. 12.

१. वर्धा-शिक्षा-योजना भारत की भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है।
२. इस योजना मे राष्ट्रीयता, देशभक्ति तथा असाम्प्रदायिकता की भावनायें निहित हैं।

बेसिक शिक्षा के दोष

'वर्धा-शिक्षा-योजना' के जिन दोषों की ओर संकेत किया गया है, वे निम्नलिखित है :—

१. यह योजना विशेष रूप से ग्रामो के लिए है, न कि नगरों के लिये।
२. इस योजना मे 'उत्पादिता-सिद्धान्त' (Principle of Productivity) की अति है। अत: इसका अनुकरण करने से बेसिक विद्यालय कुटीर-उद्योगो मे परिणत हो जाते है।
३ 'उत्पादिता सिद्धान्त' से अध्यापकों का नैतिक पतन हो जाता है, क्योंकि वे विद्यालयों को फँक्ट्रियाँ और विद्यार्थियों को धनोपार्जन करने का साधन समझने लगते है।
४. यह युग वायुयानो एवं बमो का है और विज्ञानो की प्रगति अति तीव्र गति से हो रही है। ऐसे युग मे कताई और बुनाई के समान मध्यकालीन उद्योगो के प्रयोगों का उपदेश करके भारत की औद्योगिक प्रगति अवरुद्ध होती है।
५. आधारभूत शिल्प के द्वारा समस्त विषयों की शिक्षा दी जानी एक असंभव बात है।
६. आधारभूत शिल्प की सहायता से न तो बच्चो का सर्वतोमुखी विकास करना सम्भव है और न उन्हे सामान्य शिक्षा ही दी जा सकती है, क्योंकि 'वर्धा-शिक्षा-योजना' मे व्यावसायिक तथा बौद्धिक शिक्षा मे उचित सन्तुलन का अभाव है।
७. तकली द्वारा कताई पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है। क्योंकि इस कार्य द्वारा अधिक उत्पादन होना सम्भव नहीं है, अत इसमे विद्यार्थियो का समय नष्ट होता है और उनके लिए शिक्षा मँहगी पड़ती है।
८. 'वर्धा-शिक्षा-योजना' मे भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है, पर धर्म को शिक्षा मे कोई स्थान नहीं दिया गया है। अत. धर्म-विहीन बेसिक शिक्षा उसी प्रकार की है, जिस प्रकार कि आत्माविहीन बुद्धि।
९. बेसिक विद्यालय एक वर्ष मे २८८ दिन खुलना है। इतने अधिक कार्य-दिवस रखकर बच्चों को अत्यधिक श्रम करने के लिए बाध्य किया जाता है।

१०. पाठ्य-क्रम के विभिन्न विषयो के लिये समय का विभाजन अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है। शारीरिक शिक्षा के लिए प्रतिदिन केवल १० मिनट दिये हैं, जब कि आधारभूत शिल्प के लिये ३ घण्टे २० मिनट का समय निर्धारित किया गया है।

११. प्राथमिक शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक वल दिया गया है और माध्यमिक तथा उच्चशिक्षा की उपेक्षा की गई है।

अन्त मे, हम कह सकते है कि—"यह योजना काल्पनिक है, एक अनावश्यक विश्वास है, एक मन सृष्टि है, और वास्तविक व्यवहार से परे है। इस योजना मे एक सुव्यवस्थित शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इमे गाधीजी की महानता से प्रभावित व्यक्तियो ने भावुकतावश ही स्वीकार किया है।"[1]

उपसंहार

वेसिक शिक्षा-योजना के उपर्युक्त गुण-दोषो के विवेचन के आधार पर हमे यह स्वीकार करने मे संकोच नही करना चाहिए कि भारत ऐसे निर्धन देश के लिए 'वर्धा शिक्षा-योजना' अत्यधिक कल्याणकारी सिद्ध होगी। वस्तुत हमारे देश के लिए इससे अधिक उत्तम शिक्षा-योजना की कल्पना करना ही असम्भव है। इस योजना की महानतम देन है—'उत्पादक क्रिया का सिद्धान्त'। यह योजना गाधी जी की दूरदर्शिता की प्रतीक और उनकी देश-सेवा तथा तपस्या का अनुपम फल है। हमे दृढ विश्वास है कि जिस प्रकार उनकी राजनैतिक योजनाओ मे इस देश की राजनैतिक समस्याओ का समाधान करने के लिये अद्वितीय शक्ति विद्यमान रहती थी, उसी प्रकार उनकी 'वर्धा-शिक्षा-योजना' मे भारत की समस्त शिक्षा-समस्याओ को हल करने की पूर्ण क्षमता है।

बेसिक शिक्षा का इतिहास (१९३७—१९४७)

हम १९३७ से १९४७ तक वेसिक शिक्षा के इतिहास का अध्ययन तीन विभिन्न कालो के अन्तर्गत करेंगे—(१) १९३७ से १९४० तक, (२) १९४० से १९४५ तक, और (३) १९४५ से १९४७ तक।

१. बेसिक शिक्षा (१९३७–४०)

'ज़ाकिर हुसेन समिति' ने वेसिक शिक्षा के सम्बन्ध मे अपनी रिपोर्ट दिसम्बर, १९३७ मे प्रस्तुत की। १९३८ मे हरिपुरा मे आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन मे वेसिक शिक्षा-योजना को स्वीकृति प्रदान की गई और सरकार द्वारा इसे भारत के उन प्रान्तो मे जहाँ कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल थे, क्रियान्वित कर दिया गया। बेसिक शिक्षा का प्रथम विद्यालय 'विद्यामंदिर प्रशिक्षण विद्यालय' था, जिसकी स्थापना अप्रैल १९३८

---

1. Jhingran & Sharma : *Reports on Indian Edu...* p, 37.

मे वर्धा म की गई थी। इस विद्यालय का उद्देश्य—बेसिक स्कूलो के लिए अध्यापको को प्रशिक्षित करना था। इसके उपरान्त मध्य प्रान्त, उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई और काश्मीर मे बेसिक शिक्षा-योजना को कार्यान्वित किया गया। इन स्थानो म बसिक स्कूलो की स्थापना की गई, प्रशिक्षण विद्यालयो का निर्माण किया गया, शिक्षा अधिकारियो की नियुक्ति की गई, अभिनव पाठ्य-क्रमो का सगठन किया गया और बिहार, बम्बई तथा उडीसा मे विशेष शिक्षाधिकारियो की अध्यक्षता मे 'बेसिक शिक्षा-परिषदो'[1] की स्थापना की गई। काश्मीर राज्य के शिक्षा-सचालक के० जी सैयदेन ने बेसिक शिक्षा-योजना मे विशेष रुचि ली। देश की कतिपय राष्ट्रीय शिक्षा-सस्थाओ ने भी बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित किया, यथा—जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना, गुजरात विद्यापीठ, इत्यादि। परन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने और काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के त्याग-पत्र देने से बेसिक शिक्षा-योजना के प्रसार मे शिथिलता आ गई।

इस काल की एक प्रमुख घटना उल्लेखनीय है। अक्टूबर १९३९ मे पूना मे 'बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन'[2] आयोजित किया गया। इसम देश के विभिन्न भागो से बेसिक शिक्षा के कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुए और उन्होने विचार विमर्श करके बेसिक शिक्षा-योजना को अधिक सफल बनाने के लिए उपाय निश्चय किये।

२ बेसिक शिक्षा (१९४०–४५)

काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के पद-त्याग का वर्धा शिक्षा योजना पर अति विपरीत प्रभाव पडा और अब तक अति उत्साह से चलाई जाने वाली इस योजना की प्रगति धीमी पड गई। १९४० मे वर्धा का विद्यामन्दिर प्रशिक्षण विद्यालय' बन्द कर दिया गया। जैसा कि काग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने निश्चय किया था, मध्य प्रान्त के नार्मल स्कूलो को 'बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालयो' मे परिवर्तित नही किया गया। उडीसा सरकार ने बेसिक शिक्षा योजना को स्थगित कर दिया और 'बोर्ड ऑफ बेसिक एजूकेशन' को भग कर दिया। परन्तु जिस कार्य की ओर से सरकार विमुख हो गई, उसको पूर्ण करने का सकल्प उडीसा के 'उत्कल मौलिक शिक्षा परिषद्' ने किया।

इसके पश्चात् १९४२ से १९४५ तक राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकडा। फलस्वरूप यत्र-तत्र बेसिक शिक्षा की प्रगति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। इस अवधि की दो प्रधान घटनाओ का उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा, यथा—

(क) १९४१ मे दिल्ली मे जामियानगर नामक स्थान पर 'द्वितीय बसिक शिक्षा-सम्मेलन' का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन मे बेसिक शिक्षा की प्रगति पर सन्तोष प्रकट किया गया।

(ख) जनवरी १९४५ मे सेवाग्राम मे 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन

---

1 Board of Basic Education

2 Basic National Education Conference

आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य—बेसिक शिक्षा की प्रगति का पु लोकन करना और भविष्य के लिए कार्य-क्रम तैयार करना था। गांधी जी ने सम्मे मे भाग लेने वाले प्रतिनिधियो को बताया कि बेसिक शिक्षा को केवल प्रार्थ शिक्षा के स्तर तक ही सीमित नही रखना चाहिये, अपितु शिक्षा के सभी स्तरो लागू करना वाछनीय होगा।[1] गाधी जी के प्रस्ताव को स्वीकार करके बेसिक शि को निम्नलिखित चार प्रकार[2] के स्कूलो मे विभाजित किया गया :—

१. पूर्व-बेसिक स्कूल—इन स्कूलो मे ३ वर्ष से ६ वर्ष तक की आयु के ब की शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
२. बेसिक स्कूल—इन स्कूलो मे ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालको व बालिकाओं को शिक्षा दी जाय।
३. उत्तर-बेसिक स्कूल—इस प्रकार के स्कूलो मे १५ वर्ष से १८ वर्ष आयु तक के लडको और लडकियो को शिक्षा प्रदान की जाय।
४. प्रौढ़-स्कूल—इन स्कूलो मे प्रौढो को शिक्षित बनाया जाय और उ स्वस्थ, सुखी और स्वच्छ जीवन व्यतीत करने का पाठ पढाया जाय।

३. बेसिक शिक्षा (१९४५–४७)

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् भारत के ८ प्रान्तो मे काग्रेसी मंत्रिमण्डलो शासन-सूत्र सम्हाला। फलत. बेसिक शिक्षा मे एक बार फिर स्फूर्ति आ गई। स प्रान्तो मे बेसिक शिक्षा-योजना को कार्यान्वित कर दिया गया। बम्बई के तत्काल मुख्य-मन्त्री एवं शिक्षा-मन्त्री, बी० जी० खेर ने प्रान्तो के शिक्षा-मन्त्रियो तथा अ कार्यकर्त्ताओ का एक सम्मेलन किया, जिसमे निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये ·

१. प्रान्तो मे बेसिक योजना को कार्यान्वित किया जाय।
२. यदि एक छात्र की मातृभाषा अंग्रेजी नही है, तो उसको बेसिक शि की ७ वर्ष की अवधि मे अंग्रेजी की शिक्षा न दी जाय।
३. बच्चो की शिक्षा मे उनके स्वास्थ्य, भोजन और अच्छी आदतो निर्माण का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय।

इस सम्मेलन के निश्चय के फलस्वरूप सभी प्रान्तो एवं राज्यो मे बेसि शिक्षा के प्रसार का कार्य उत्साह से आरम्भ किया गया, और यह बात स्पष्ट हो कि राष्ट्रीय शिक्षा के रूप मे बेसिक शिक्षा के भवन का एक दृढ आधार पर भवि मे निरन्तर निर्माण होता रहेगा।

बेसिक शिक्षा और केन्द्रीय सरकार

जब केन्द्रीय सरकार ने बेसिक शिक्षा मे प्रान्तीय सरकारो की अभिरु देखी, तो उसने भी इस शिक्षा के क्षेत्र मे क्रियात्मक पग उठाने का निश्चय किय

1. "Education in all stages of life from cradle to gra through manual work and rural handicrafts."
2. Pre-Basic, Basic, Post-Basic and Adult Schools.

इस उद्देश्य से 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने १९३८ मे बम्बई के तत्कालीन मुख्यमन्त्री, बी० जी० खेर की अध्यक्षता मे 'वर्धा-शिक्षा-योजना' की जाँच करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की। इस समिति को 'खेर समिति' के नाम से पुकारा जाता है।

प्रथम खेर समिति—१९३८ की 'प्रथम खेर समिति' ने 'बेसिक शिक्षा योजना' का गहन अध्ययन करके निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ सर्वप्रथम बेसिक शिक्षा की योजना को ग्रामीण क्षेत्रो मे क्रियान्वित किया जाय।

२ बेसिक शिक्षा ६ वर्ष से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चो के लिये अनिवार्य हो, परन्तु ५ वर्ष की आयु वाले बच्चे भी बेसिक विद्यालयो म प्रवेश ले सकते हैं।

३ बेसिक स्कूलो को छोडकर अन्य प्रकार के विद्यालयो मे प्रवेश की अनुमति बच्चो को तभी दी जाय, जब वे ५वी कक्षा पास कर लें या ११ वर्ष से अधिक आयु के हो।

४ छात्रो को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय।

५ बेसिक विद्यालय का पाठ्य-क्रम समाप्त करने वाले छात्रो के लिये किसी बाह्य परीक्षा की आवश्यकता नही है। इसके लिये विद्यालय की आन्तरिक परीक्षा ही पर्याप्त होगी। उसमे उत्तीर्ण होने वाले छात्रो को प्रमाण-पत्र प्रदान किये जायँ।[1]

द्वितीय खेर समिति—'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने 'प्रथम खेर समिति' की सिफारिशो को स्वीकार कर लिया और १९३९ मे 'द्वितीय खेर समिति' की नियुक्ति की। इस समिति का उद्देश्य—बेसिक शिक्षा प्रणाली और उच्च शिक्षा मे समन्वय स्थापित करना था। इसके लिये समिति ने अधोलिखित सिफारिशें की[2] —

१. बेसिक शिक्षा का शिक्षा-काल ८ वर्ष का हो। ६ वर्ष की आयु स १४ वर्ष की आयु तक बच्चे इस शिक्षा का ग्रहण करें।

२ ८ वर्ष की इस अवधि को प्रक्रमो (Stages) म विभाजित किया जाय—(अ) प्रथम प्रक्रम या जूनियर स्टेज, और (ब) द्वितीय प्रक्रम या सीनियर स्टेज। प्रथम मे ५ वर्ष का, और द्वितीय मे ३ वर्ष का शिक्षा काल हो।

---

1. *Report of the Committee of the C A B E appointed to consider the Wardha Scheme of Education*, p 12

2 *Report of the Second Wardha Education Committee of C A B E 1939, together with the Decisions of the Board Thereon*, p 7.

३ जब विद्यार्थी जूनियर स्टेज की शिक्षा समाप्त कर लें, अर्थात् जब वे ५वीं कक्षा पास कर लें, तभी उनको उत्तर प्राथमिक (Post Primary) शिक्षा के अन्य किसी विद्यालय में प्रविष्ट होने की आज्ञा दी जाय।

'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने उपर्युक्त सिफारिशों को स्वीकृत किया और 'सार्जेन्ट शिक्षा-योजना' को क्रियान्वित किया गया।

साराश

विद्यामन्दिर—इस योजना को १९३८-३९ में मध्य प्रान्त में क्रियान्वित किया गया। इस योजना के अनुसार उन ग्रामों में—जहाँ लगभग ४० बालक एवं बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करने योग्य थे, स्कूल खोले गये। प्रत्येक विद्यामन्दिर को भवन और २०० रुपये वार्षिक आय की भूमि दी गई। सम्पूर्ण प्रान्त में लगभग ८० विद्यामन्दिर स्थापित किये गए।

वालटरी स्कूल—यह योजना १९३८ में बम्बई प्रान्त में कार्यान्वित की गई। इसके अन्तर्गत समितियों या व्यक्तियों द्वारा स्थापित किये गये स्कूलों को प्रोत्साहित किया गया। १९४७ तक पूरे प्रान्त में ६,६८४ वालटरी स्कूलों का सचालन किया जा रहा था।

बेसिक शिक्षा की योजना—शिक्षा के सम्बन्ध में गाधी जी के विचार मौलिक थे। शिक्षा से उनका अर्थ था—बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास। १९३७ में वर्धा में 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन' हुआ और गाधी जी ने उनके समक्ष अपनी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। यही योजना 'बेसिक शिक्षा-योजना' के नाम से विख्यात हुई। 'जाकिर हुसेन समिति' ने इस योजना के लिए पाठ्यक्रम तैयार किया।

बेसिक शिक्षा की रूपरेखा—बेसिक शिक्षा ७ वर्ष की आयु से लेकर १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये अनिवार्य है। शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा है और सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प से होता है। पाठ्य-क्रम में आधारभूत शिल्प के अतिरिक्त मातृभाषा, हिन्दी, गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान और कला सम्मिलित हैं। बेसिक शिक्षा प्रणाली में अध्यापन का कार्य—क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से किया जाता है।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य—(१) नागरिकता के गुणों का विकास, (२) नैतिक विकास, (३) सास्कृतिक उद्देश्य, (४) विविध विकास, (५) आर्थिक उद्देश्य, और (६) सर्वोदय समाज।

बेसिक शिक्षा की विशेषतायें—(१) नि शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, (२) शिक्षण-केन्द्र के रूप में एक शिल्प, (३) शिक्षण का केन्द्र 'बालक' (४) पाठ्य-क्रम के विषयों का समन्वय तथा सहसम्बन्ध, (५) जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध (६) अध्यापक और छात्रों की स्वतन्त्रता, (७) उत्पादन पर बल, (८) हस्तकार्य के लिय आदर, तथा (९) नागरिकता, अहिंसा और सहकारी समुदाय के आदर्श।

बेसिक शिक्षा के दोष—(१) विशेष रूप से ग्रामो के लिये, (२) उत्पादिता सिद्धान्त पर अत्यधिक बल, (३) विज्ञान के आधुनिक युग मे मध्यकालीन उद्योगो के प्रयोग की निरर्थकता, (४) धार्मिक शिक्षा का अभाव, (५) विभिन्न विषयो के लिये समय का विभाजन त्रुटिपूर्ण, और (६) प्राथमिक शिक्षा पर अत्यधिक बल।

बेसिक शिक्षा का इतिहास—१९३८ मे बेसिक शिक्षा-योजना मध्य प्रान्त, उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई, उडीसा और काश्मीर मे कार्यान्वित की गई। काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के पद-त्याग करने पर योजना की प्रगति अवरुद्ध हो गई। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने इस योजना को फिर प्रसारित किया। 'द्वितीय खेर समिति' ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध मे सुझाव दिये, जिन्हे 'सार्जेन्ट-शिक्षा-योजना' ने कार्यान्वित किया।

TEST QUESTIONS

1 Describe, in detail, the fundamental features of the Basic Education, explaining the implications of a basic craft and 'self supporting' aspect of the education
बेसिक शिक्षा की प्रमुख विशेषताओ का सविस्तार वर्णन कीजिये और इस शिक्षा के आधारभूत शिल्प और 'स्वावलम्बी' पहलू की जटिलताओ को स्पष्ट कीजिये।

2. Write a reasoned criticism of the Wardha Scheme
वर्धा-योजना की यथोचित समीक्षा कीजिये।

3 "The present system of education does not meet the requirements of the country in any shape or form." In what respects does the Wardha Scheme meet the requirements of this country ?
"शिक्षा की वर्तमान प्रणाली किसी भी रूप या प्रकार से देश की आवश्यकताओ को पूर्ण नही करती है।" वर्धा-योजना इस देश की आवश्यकताओ को किस प्रकार पूर्ण करती है ?

१९

युद्धोत्तर शिक्षा-प्रगति
(सार्जेन्ट-योजना : १९४४)[1]

प्रस्तावना

ज्यो ही द्वितीय विश्वयुद्ध के दु खान्त अभिनय का अन्त हुआ, लगभग सभी युद्ध-ग्रस्त देशो ने पुर्ननिर्माण की योजनायें बनाना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि भारत ने प्रत्यक्ष रूप से युद्ध मे भाग नही लिया था, तथापि वह उसके प्रभावो से आक्रान्त था। अत भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षो के युद्धोत्तर विकास की योजनाओ के निर्माण-कार्य की ओर रचनात्मक कदम उठाये गये। इन योजनाओ मे शिक्षा को भी स्थान मिला। अत 'वाइसराय की प्रबन्धकारिणी कौसिल की पुर्ननिर्माण समिति'[2] ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा-सलाहकार, सर जॉन सार्जेन्ट (Sir John Sargent) को भारत मे 'युद्धोत्तर शिक्षा-विकास' पर एक स्मृति-पत्र (Memorandum) तैयार करने का आदेश दिया। सार्जेन्ट ने १९४४ मे अपनी रिपोर्ट 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' के समक्ष प्रस्तुत की और बोर्ड द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान की गई। इस रिपोर्ट को 'भारत मे युद्धोत्तर शिक्षा-विकास योजना'[3] अथवा 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट'[4]

---

1. Sargent Scheme
2. Reconstruction Committee of the Viceroy's Executive Council
3. Scheme of Post-War Education Development in India
4. Report of the Central Advisory Board of Education 1944.

अथवा 'सार्जेन्ट-योजना' के नाम से पुकारा जाता है। सार्जेन्ट-योजना को भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है।

सार्जेन्ट-रिपोर्ट मे पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक, शिक्षा की अन्य समस्याओ, उसके संगठन, उसके प्रमुख दोषो, उन दोषो के निवारण के उपाय एवं शिक्षा की भावी रूपरेखा का अति विशद वर्णन किया गया है। रिपोर्ट मे दी हुई सभी सिफारिशो को पूर्णत क्रियान्वित करने मे ४० वर्ष का समय लगता और युद्ध-पूर्व के प्रमापो के अनुसार ३१'२६० लाख रुपये की आवश्यकता होती। इन संख्याओ से 'सार्जेन्ट-रिपोर्ट' की सिफारिशो के महत्त्व का सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है। इन सिफारिशो की एक प्रमुख विशेषता यह है कि आज भी उनका महत्त्व पूर्ववत् है।

'सार्जेन्ट-रिपोर्ट' की सिफारिशें

सार्जेन्ट-रिपोर्ट मे भारत की सम्पूर्ण शिक्षा को १२ अध्यायो मे विभाजित किया गया है। हम इनका सक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे है —

१ पूर्व-प्राथमिक शिक्षा

३ से ६ वर्ष तक की अवस्था वाले शिशुओ के लिये शिक्षा-संस्थायें स्थापित की जायें। ये सस्थायें समस्त शिक्षण-साधनो और सुयोग्य शिक्षको से सम्पन्न हो। शिशु-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—बच्चो को सामाजिक अनुभव एवं शिष्टाचार सिखाना हो, न कि सामान्य शिक्षा प्रदान करना। यह शिक्षा नि.शुल्क हो।[1]

२. प्राथमिक अथवा बेसिक शिक्षा

६ से १४ वर्ष तक की अवस्था के समस्त बच्चो के लिये सार्वभौमिक, नि शुल्क एव अनिवार्य प्राथमिक या बेसिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। अपव्यय रोकने के लिये शिक्षा को अनिवार्य बनाना आवश्यक है और अनिवार्यता को कार्यान्वित करने के लिये 'उपस्थिति निरीक्षक पदाधिकारी' (Attendance Officers) नियुक्त किये जायें।

'रिपोर्ट' मे बेसिक शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तो का समर्थन, परन्तु शिक्षा को आत्म-निर्भर बनाने का विरोध किया गया। उसमे कहा गया कि बच्चो द्वारा उत्पादित वस्तुओ का विक्रय कठिन है। बेसिक शिक्षा के काल को दो भागो मे विभक्त किया गया (क) जूनियर बेसिक (६-११), और (ख) सीनियर बेसिक (११-१४)। जूनियर बेसिक स्कूलो मे सह-शिक्षा को अनुपयुक्त बताया गया। शिक्षा का माध्यम बच्चो की मातृभाषा हो। जूनियर बेसिक स्कूलो मे अंग्रेजी की शिक्षा को कोई स्थान नही

---

1. *Report of the Central Advisory Board of Education on Post-War Educational Development in India* (1944), pp 16–17

दिया गया, पर सीनियर बेसिक स्कूलो मे इसका अन्तिम निर्णय करने का अधिकार प्रान्तीय शिक्षा-विभागो को दे दिया गया। बाह्य परीक्षा के स्थान पर आन्तरिक परीक्षा को उचित बताया गया, जिसकी समाप्ति के उपरान्त प्रमाण-पत्र देना आवश्यक बताया गया।[1]

३ हाई-स्कूल शिक्षा

हाई-स्कूल की शिक्षा ११ वर्ष से १७ वर्ष तक की आयु के छात्रो के लिये हो। इन स्कूलो मे केवल असाधारण योग्यता के छात्र ही प्रवेश पा सके। ११ वर्ष से कम आयु के विद्यार्थियो को इन स्कूलो मे प्रवेश न दिया जाय। प्रत्येक छात्र जो हाई स्कूल मे प्रवेश करे, कम-से-कम १४ वर्ष की आयु पूर्ण करने तक अनिवार्य रूप मे शिक्षा ग्रहण करे। इसके उपरान्त भी यह ध्यान रखना आवश्यक हो कि स्कूल-शिक्षा समाप्त करने से पूर्व छात्र स्कूल न छोड दें।

हाई स्कूल मे छात्रो से शुल्क लिया जाय। परन्तु ५० प्रतिशत छात्रो को नि शुल्क शिक्षा दी जाय और निर्धन विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ, जिससे वे शिक्षा के लाभ से वचित न रह जायें। सभी हाई-स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम छात्रो की मातृभाषा हो और अग्रेजी की शिक्षा द्वितीय अनिवार्य विषय के रूप मे दी जाय।

हाई स्कूल दो मुख्य प्रकार के हो—साहित्यिक और प्राविधिक।[2] दोनो प्रकार के हाई स्कूलो मे कुछ विषयो की शिक्षा सामान्य रूप से दी जाय, यथा—(१) मातृभाषा, (२) अग्रेजी, (३) आधुनिक भाषायें, (४) भारत एवं विश्व का इतिहास, (५) भारत एवं विश्व का भूगोल, (६) गणित, (७) विज्ञान, (८) अर्थशास्त्र, (९) कृषि, (१०) कला, (११) शारीरिक शिक्षा। इन विषयो के अतिरिक्त साहित्यिक हाई स्कूलो मे प्राच्य भाषाओ (Classical Languages) और नागरिक-शास्त्र की शिक्षा भी दी जाय। प्राविधिक हाई स्कूलो मे जिन अन्य विषयो की शिक्षा की व्यवस्था हो, वे हैं—काष्ठकला, धातु-कला, साधारण इजीनियरिंग, ड्राइङ्ग, वाणिज्य-सम्बन्धी (Commercial) विषय, बुक-कीपिंग, शार्ट-हैण्ड, टाइप-राइटिंग, एकाउटेंसी, व्यापार-पद्धति इत्यादि। बालिकाओ को गृह-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा हो।[3]

४ विश्वविद्यालय-शिक्षा

विश्वविद्यालय की बी० ए० की उपाधि पाने के लिये न्यूनतम अवधि ३ वर्ष होनी चाहिये। अत सार्जेन्ट-रिपोर्ट मे यह सिफारिश की गई कि इन्टरमीडिएट कक्षा

---

1. *Report of the Central Advisory Board of Education*, pp 7-8
2. Academic & Technical.
3. *Report*, pp 18-21.

को भंग कर दिया जाय और उसकी १२वी कक्षा को विश्वविद्यालय मे तथा ११वी कक्षा को हाई स्कूल के अन्तर्गत कर दिया जाय। विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के नियमो मे इतनी कठोरता कर दी जाय कि माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के उपरात १५ छात्रो मे से केवल १ छात्र विश्वविद्यालय मे प्रवेश पा सके। विश्वविद्यालयो की शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये योग्य अध्यापको की नियुक्ति की जाय। उनके वेतन मे वृद्धि की जाय तथा उनके सेवा-प्रतिबन्धो मे सुधार किया। शिक्षको एवं छात्रो के पारस्परिक सम्बन्ध में घनिष्ठता उत्पन्न की जाय। भारत के समस्त विश्वविद्यालयो मे साम्य एवं ऐक्य स्थापित करने के लिये 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' का संगठन किया जाय। 'उपकक्षा प्रणाली' (Tutorial System) को और अधिक प्रचलित किया जाय।[1]

५. प्राविधिक, वाणिज्य एवं कला-शिक्षा

प्राविधिक, वाणिज्य, एवं कला-शिक्षा के लिये पूर्ण-कालिक (Full-time) तथा अंशकालिक (Part-time) विद्यालय स्थापित किये जायें। भारतीय कलाओ तथा उद्योगो के लिये निम्नलिखित चार प्रकार के कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता है :—

(१) **उच्च श्रेणी**—इस श्रेणी मे भविष्य के मुख्य कार्याधिकारी (Executives) तथा अनुसन्धानकर्त्ता आते है। इस श्रेणी के लिये शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थी, टेकनिकल हाई स्कूल का पाठ्यक्रम समाप्त करने के उपरान्त किसी विश्वविद्यालय के प्रौद्योगिक (Technological) विभाग या किसी अन्य पूर्ण-कालिक टेकनिकल संस्था मे प्रवेश लेकर शिक्षा ग्रहण करें। ऐसे विद्यार्थियो के प्रवेश पर कडाई रखी जाय, जिससे योग्य छात्र ही प्रवेश पा सकें।

(२) **निम्न श्रेणी**—इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्न कार्याधिकारी, फोरमैन (Foreman) आदि आते है। इस श्रेणी के व्यक्तियो को शिक्षा देना टेकनिकल हाई-स्कूलो का कार्य हो। परन्तु टेकनिकल स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्रो को 'राष्ट्रीय डिप्लोमा'[2] या इसी प्रकार की कोई अन्य उच्च उपाधि अंशकालिक विद्यार्थियो के रूप मे उपलब्ध करनी आवश्यक हो।

(३) **कुशल शिल्पकार**—कुशल शिल्पकारो (Craftsmen) मे उन छात्रो को भर्ती किया जाय जो टेकनिकल हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण हो। परन्तु सीनियर बेसिक स्कूल मे शिक्षा समाप्त करके और २ और ३ वर्ष तक किसी जूनियर टेकनिकल स्कूल या औद्योगिक विद्यालय मे पूर्णकालिक छात्रो के रूप मे शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी भी कुशल शिल्पकारो मे भर्ती हो सकते है।

(४) **अर्द्धकुशल एवं अकुशल कारीगर**—इन कारीगरो मे सीनियर बेसिक

---

1. *Report*, pp. 32-33.
2. National Diploma.

मिडिल स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले वे छात्र भर्ती किये जायँ, जिन्होने किसी शिल्प का अध्ययन किया हो।

६. प्रौढ़-शिक्षा

प्रजातन्त्र के आदर्श को सफल बनाने के लिये प्रौढ-शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। अत: १० वर्ष की आयु से ४० वर्ष की आयु वाले प्रौढो की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। बालको, युवतियो, पुरुषो और स्त्रियो के लिये पृथक् विद्यालयो की व्यवस्था की जाय। प्रौढ-शिक्षा को रोचक तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चित्र, मैजिक लैन्टर्न, सिनेमा, ग्रामोफोन, रेडियो, नृत्य, संगीत एवं अभिनय अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकते है। पुस्तकालयो एवं वाचनालयो का भी आयोजन किया जाय, पर सम्पूर्ण देश मे इनकी स्थापना २० वर्ष मे हो जानी चाहिए। एक कक्षा मे २५ से अधिक वयस्क नही होने चाहिये।[1]

७. अध्यापको का प्रशिक्षण

इस योजना को सफल बनाने तथा विविध प्रकार के स्थापित किये गए विद्यालयो के कुशल संचालन के लिए प्रशिक्षित अध्यापको की एक बहुत बडी संख्या आवश्यक हो जाती है। वर्तमान प्रशिक्षण-विद्यालय इस अभाव की पूर्ति नही कर सकते हैं। कारण यह है कि पूर्व-बेसिक एवं जूनियर बेसिक स्कूलो मे ३० विद्यार्थियो के लिए १ अध्यापक, सीनियर बेसिक स्कूलो मे २५ विद्यार्थियो के लिए १ अध्यापक; और हाई स्कूलो मे २० विद्यार्थियो के लिए १ अध्यापक की आवश्यकता है। अत: योजना को क्रियान्वित करने के लिए एक बडे पैमाने पर अध्यापको के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, पूर्व-प्राथमिक शिक्षको, बेसिक शिक्षको तथा हाई स्कूल शिक्षको की दीक्षा के लिए पृथक् प्रशिक्षण-विद्यालयो का निर्माण करना अनिवार्य है। शिक्षको के लिए अभिनवन पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाय। योग्य व्यक्तियो को शिक्षण-कार्य के प्रति आकर्षित करने के उद्देश्य से अध्यापको के वेतन मे वृद्धि की जाय।

८. छात्रो का स्वास्थ्य

छात्रो के स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए समुचित व्यवस्था की जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ६, ११ एवं १४ वर्ष की आयु मे विद्यार्थियो के स्वास्थ्य का निरीक्षण डाक्टरो के द्वारा किया जाय। छात्रो का स्वास्थ्य-अभिलेख (Medical Record) रखा जाय, जिसमे उनके स्वास्थ्य की दशा, तोल एवं ऊँचाई आदि का विवरण हो। एक विद्यालय से अन्य विद्यालय को जाते समय यह अभिलेख छात्र को दे दिया जाय। यदि शिक्षक किसी छात्र मे किसी प्रकार की अस्वस्थता तथा रोग के लक्षण देखे, तो वह स्कूल हेल्थ-ऑफिसर को इस सम्बन्ध मे तुरन्त सूचना दे। अस्वस्थ

1. *Report*, pp. 48-52.

छात्रो की नि:शुल्क चिकित्सा की जाय। स्कूलो मे साधारण रोगों तथा चोटो की चिकित्सा का प्रवन्ध किया जाय। शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य किया जाय। जो छात्र 'कुपोषण' (Malnutrition) के शिकार हो, उनकी ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। सभी छात्रो के लिये मध्याह्न के समय भोजन का प्रवन्ध हो। वे अपने घरो से भी भोजन ला सकते है। शिक्षार्थियो की कक्षाएँ स्वच्छ, प्रकाश-युक्त एवं हवादार हो और उनका फर्नीचर उपयुक्त हो।[1]

९. विकलांग छात्रो की शिक्षा

शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से विकलाग (Handicapped) छात्रो की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। उनके लिये 'विशिष्ट स्कूलों' की स्थापना की जाय और उन्हे ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे कोई उत्पादक कार्य करके अपने जीवन का निर्वाह कर सकें। विकलाग छात्रो के विशिष्ट विद्यालयो के शिक्षको की दीक्षा के लिये प्रशिक्षण सस्थायें स्थापित की जायें।

१०. विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें[2]

प्रत्येक विद्यालयो मे छात्रो के लिये विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियाओ की व्यवस्था की जाय। आयु के अनुसार अग्रलिखित क्रियाओ मे से जो उचित हो, उनका चयन किया जा सकता है—बागवानी, लोकनृत्य, शारीरिक व्यायाम, जूनियर रेड-क्रास ग्रूप, अभिनय, बालचर, व्यासंग (Hobbies), वाद-विवाद, अन्तर्विद्यालय-प्रतियोगितायें, तरुण-कृपक-गोष्ठियाँ, (Young Farmer's Clubs), स्काउटिंग, युवक आन्दोलन (Youth Movement)।

११. सेवा-योजनालय[3]

सेवा-योजनालयो की स्थापना की जाय, जो सीनियर बेसिक, जूनियर-टेकनिकल और हाई स्कूलो के छात्रो को व्यवसाय चुनने मे सहायता दें। विश्व-विद्यालयो के अपने स्वयं के सेवा-योजनालय होने चाहिये। इन योजनालयो के पदाधिकारी, शिक्षा एवं उद्योग का व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले दीक्षित विशेपज्ञ होने चाहिये।

१२. शिक्षा का प्रशासन

शिक्षा के प्रशासन की व्यवस्था के लिये मुख्य इकाई 'प्रान्त' हो। परन्तु विश्वविद्यालय तथा उच्च टेकनिकल शिक्षा का प्रवन्ध तथा समन्वय अखिल भारतीय पैमाने पर किया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की स्थापना के लिये केन्द्रीय एवं

---

1. *Report*, pp. 64-73.
2. Recreational & Social Activities.
3. Employment Bureaus.

प्रान्तीय सरकारो के बीच अधिक निकट सहयोग होना चाहिये। इस ध्येय मे सफलता प्राप्त करने के लिये केन्द्र मे एक प्रबल शिक्षा-विभाग का सर्जन किया जाय और इस दृष्टिकोण से 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' के कर्त्तव्यो तथा कार्यक्षेत्र मे अभिवृद्धि करनी आवश्यक है।

'सार्जेन्ट-योजना' का मूल्यांकन

१८५४ के 'वुड के घोषणा-पत्र' के पश्चात् अनेक समितियो एव आयोगो की नियुक्ति की गई थी और भारतीय शिक्षा के विकास तथा विस्तार के लिये बहुत से 'सरकारी प्रस्ताव' प्रकाशित किये जा चुके थे, परन्तु न तो उनका दृष्टिकोण ही व्यापक था, और न उनके विचार ही स्पष्ट थे। इनके विपरीत, सार्जेन्ट-शिक्षा-योजना' एक ऐसा व्यापक प्रयास था, जिसमे शिक्षा के सभी पक्षो का सूक्ष्म परिवेक्षण करके उनको समुन्नत करने के लिये बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये गये थे। परन्तु इस विषय मे शिक्षाविदो मे मतैक्यता नही है। अतः 'सार्जेन्ट-योजना' के गुण-दोषो की विवेचना करना आवश्यक प्रतीत होता है।

गुण :—

१. यह योजना भारतीय शिक्षा के इतिहास मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करने की दृष्टि से सर्वप्रथम राजकीय प्रयास है।[1]

२. भगवान दयाल के अनुसार—इस योजना की मुख्य विशेषता—इसकी व्यापकता है। यह समग्र रूप मे भारतीय शिक्षा का चित्र उपस्थित करती है। यह केवल उन विभिन्न प्रकार की शिक्षा-संस्थाओ का ही वर्णन नही करती है, जिनकी इस देश मे आवश्यकता है, अपितु शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओ का भी उल्लेख करती है; यथा—स्कूल-स्वास्थ्य-सेवा, विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें, सेवा-योजनालय आदि।[2]

३. यह बात उल्लेखनीय है कि इस योजना की अभिधारणायें अत्यन्त निर्भीक है। इसमे यह बात बडी निर्भीकता के साथ कही गई है कि वर्तमान प्रणाली पर शिक्षा की प्रभावोत्पादक संरचना का निर्माण नही किया जा सकता है।[3]

---

1. "As the first official attempt to plan a national system of education for India, it deserves a careful study."—Nurullah & Naik : *op. cit.*, p. 834.

2. Bhagwan Dayal : *op. cit.*, p. 164.

3. "It may be noted that the Report is rather bold in its admissions and some of its remarks are noteworthy, e. g., "The present system does not provide the foundations on which an effective structure could be erected."—S. N. Mukerji : *op. cit.*, (1951), p. 253.

४. इस योजना ने भारतीय शिक्षा-प्रणाली के प्रमुख दोषो पर ही प्रकाश नही डाला है, अपितु उनमे सुधार करने के उपाय भी बताती है।[1]

५. के० जी० सैयदेन के अनुसार—राष्ट्रीय शिक्षा की यह प्रथम व्यापक योजना है। यह इस बात को स्वीकार नही करती है कि भारत, शिक्षा के क्षेत्र मे अन्य राष्ट्रो से पिछडा हुआ रहेगा। यह योजना इस विश्वास पर आधारित है कि अन्य देशो के समान इस देश मे भी शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति करने की क्षमता है।[2]

६ के० जी० सैयदेन के अनुसार—इस योजना मे शिक्षा के विभिन्न प्रक्रमो पर सभी छात्रो को शिक्षा के लिये समान अवसर देने की इच्छा व्यक्त की गई है। निर्धन छात्रो को प्राथमिक शिक्षा से पूर्ण लाभ उठाने के उद्देश्य से केवल नि:शुल्क शिक्षा की, अपितु अन्य सुविधाओ की भी व्यवस्था की गई है, यथा—मध्याह्न का भोजन, पुस्तकें, छात्रवृत्तियाँ, स्वास्थ्य-निरीक्षण एवं चिकित्सा। उच्चतर प्रक्रमो पर योग्य एवं प्रखर-बुद्धि छात्रो के लिये नि शुल्क शिक्षा एवं छात्रवृत्तियो का प्रस्ताव किया गया है।[3]

७. यह योजना शिक्षण व्यवसाय के महत्व पर स्पष्ट शब्दो मे बल देती है और अध्यापको के निम्न वेतन तथा सेवा-प्रतिबन्धो मे सुधार करने का प्रस्ताव करती है।[4]

दोष :—

उपर्युक्त गुणो के होते हुए भी सार्जेन्ट-योजना पर अनेक आक्षेपो किये गये हैं। हम इन आक्षेपो के आधार पर योजना के दोषो की व्याख्या नीचे कर रहे हैं :—

१ भगवान दयाल के अनुसार—सार्जेन्ट योजना एक मौलिक लेख नही है। इसको पूर्व प्रतिवेदनो एव योजनाओ द्वारा, जिनमे वर्धा-योजना सम्मिलित है, दिये गये लाभप्रद सुझावो का केवल उत्तम संक्षेप-मात्र कहा जा सकता है।[5]

---

1 "It not only pointed out the main defects but suggested remedies too"—S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 254.

2. K. G. Saiyidain · *Education, Culture, and Social Order*, p. 507.

3 *Ibid.*

4. "It stresses in clear terms the importance of the teaching profession and makes proposals for increasing its miserable standard of salaries and poor conditions of service."—*Ibid.*

5. Bhagwan Dayal · *op. cit.*, p. 164.

२ एस० एन० मुकर्जी के अनुसार—भारतीय शिक्षा की समस्याओ के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने के लिये समय-समय पर केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड द्वारा प्रकाशित किये गये प्रतिवेदनो को जोड-गाँठकर 'सार्जेन्ट योजना' को तैयार किया गया है।[1]

३. यह योजना केवल प्राप्त किये जाने वाले आदर्श को प्रस्तुत करती है और शिक्षा-विकास के पूर्ण कार्य-क्रम का वर्णन नही करती है।[2]

४ भारत के समक्ष इङ्गलैण्ड की शिक्षा-प्रणाली का आदर्श उपस्थित किया गया है। परन्तु वास्तविकता यह है कि भारत के लिये इंगलैंड आदर्श नही हो सकता है, क्योकि दोनो देशो की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक दशायें एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं।

५ सार्जेन्ट-रिपोर्ट मे शिक्षा-योजना की केवल रूपरेखा ही प्रस्तुत की गई है। इसमे पाठ्य-क्रम, शिक्षण-विधियो, धार्मिक शिक्षा, स्त्री-शिक्षा और परीक्षाओ—जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नो का उल्लेख भी नही मिलता है।

६. इस योजना को राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की अपूर्ण रूपरेखा माना गया है, क्योकि इसमे ग्रामीण-शिक्षा के महत्त्वपूर्ण प्रश्न कर किसी प्रकार का विचार नही किया गया है।

७. यह योजना बहुत खर्चीली है। इसको क्रियान्वित करने मे लगभग ३१३ करोड रुपये व्यय होगे। भारत जैसे निर्धन देश के लिये इतना धन व्यय करना सम्भव नही है। इसीलिए इस योजना को काल्पनिक कहा गया है।

८. इस योजना को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिए ४० वर्ष की अवधि निर्धारित की गई है। भारत की स्थिति तथा आवश्यकता का विचार करते हुए, यह योजना बहुत ही लम्बी है। स्वतन्त्र भारत के राष्ट्र-निर्माता इतना समय इस प्रतीक्षा मे नही व्यतीत कर सकते हैं कि ४० वर्ष के उपरात भारतीयो की शिक्षा का स्तर ऊँचा हो जायगा। तब तक तो सम्भवत: अन्य देश कही आगे निकल जायेंगे।

निष्कर्ष

जब हम 'सार्जेन्ट-योजना' के उपरिलिखित गुण-दोषो पर विचार करते हैं तो गुण की अपेक्षा दोष ही अधिक दिखाई देते हैं। इसी आधार पर योजना पर भारी आरोप लगाये गये हैं और उसको काल्पनिक, अराष्ट्रीय, विलम्बकारी, और खर्चीली

---

1. S. N. Mukerji : *op. cit.* (1951), p. 250.

2. "It is pointed out that the scheme merely describes the ideal to be reached and does not give a detailed programme of development "—Nurullah & Naik : *op. cit.*, p. 847.

कहकर भारत ऐसे निर्धन देश के लिये अनुपयुक्त ठहराया गया है। पर वास्तविकता यह है कि योजना-निर्माण के समय से लेकर अब तक की २४ वर्ष की अवधि मे भारतीय शिक्षा-प्रणाली को न तो उन दोषो से मुक्त किया जा सका है, जिनका उल्लेख योजना मे किया गया है और न उन गुणा से युक्त किया गया है, जो योजना मे विद्यमान है। आज भी हमारी शिक्षा प्रणाली अपने पूर्व रूप मे चली आ रही है। यदि हमने योजना का छिद्रान्वेषण न करके और आलोचना करने के अपने अभ्यास का परित्याग करके योजना को २७ वर्ष पूर्व क्रियान्वित कर दिया होता तो आज भारतीय शिक्षा की रूप-रेखा ही कुछ और होती।

'सार्जेन्ट-योजना' और केन्द्रीय सरकार

केन्द्रीय सरकार ने 'सार्जेन्ट-रिपोर्ट' मे वर्णित योजना को अति दीर्घकालीन एव अव्यावहारिक समझ कर क्रियान्वित नही किया, परन्तु रिपोट मे प्रतिपादित सिद्धान्तो को देश की शिक्षा के लिये हितकर अवश्य समझा। अत उनको दृष्टिकोण मे रखकर केन्द्रीय सरकार ने निम्नलिखित कार्य किये —

१ १९४५ मे केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय शिक्षा-विभाग को अपने अन्तर्गत रखते हुए भी एक स्वतन्त्र इकाई का रूप प्रदान किया।

२ केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारो को आदेश दिया कि वे 'सार्जेन्ट-योजना' के सुझावो के आधार पर पचवर्षीय योजनायें वनायें। अत १९४७-५२ के लिये पचवर्षीय योजनाओ का निर्माण किया गया। इनमे से कुछ प्रथम पचवर्षीय योजनाओ को १९४६ मे ही क्रियान्वित कर दिया गया था।

३ १९४७ ४८ मे केन्द्र ने प्रान्तीय सरकारो को ४० करोड रुपये की आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया, जिससे कि प्रान्तीय शिक्षा-योजनाओ को सुचारु रूप से चलाया जा सके।

४ इस 'योजना' के सुझाव के अनुसार 'अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा समिति' की स्थापना की गई और दिल्ली मे एक 'पॉलीटेकनीक कॉलेज' (Polytechnic College) का निर्माण किया गया।

५ 'योजना' के सुझाव को स्वीकार करके १९४५ मे 'शिक्षा-योजनालय' (Educational Bureau) एव 'विश्वविद्यालय अनुदान-समिति' का सगठन किया गया।

६. 'योजना के सुझावो के अनुसार शिक्षका की वेतन-वृद्धि, ६ से ११ वर्ष तक के बच्चा के लिये नि शुल्क एव अनिवार्य वेसिक शिक्षा, विश्व विद्यालया मे सुधार, वैज्ञानिक अनुसधान एव प्राविधिक और वयस्क शिक्षा के लिये क्रियात्मक पग उठाये गये।

७ 'योजना' की ४० वर्ष की अवधि को घटाकर १६ वर्ष कर दिया गया था।

सारांश

द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त तत्कालीन भारतीय शिक्षा-सलाहकार, सर जॉन सार्जेन्ट ने सरकार के आदेशानुसार भारत मे युद्धोत्तर शिक्षा-विकास के लिये एक योजना तैयार की। इस योजना मे पूर्व-प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय-शिक्षा तक, शिक्षा की अन्य समस्याओ, उसके संगठन, उसके प्रमुख दोषो, उन दोषो को दूर करने के उपाय एवं शिक्षा की भावी रूप-रेखा का अति विशद वर्णन किया गया है।

योजना के विषय—यह योजना १२ अध्यायो मे विभाजित की गई है. (१) पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा, (२) प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा, (३) हाई स्कूल शिक्षा, (४) विश्वविद्यालय-शिक्षा, (५) प्राविधिक, वाणिज्य एवं कला-शिक्षा, (६) प्रौढ-शिक्षा (७) अध्यापको का प्रशिक्षण, (८) छात्रो का स्वास्थ्य, (९) विकलाग छात्रो की शिक्षा, (१०) विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें, (११) सेवा-योजनालय, और (१२) शिक्षा का प्रशासन।

योजना का मूल्याकन—भारतीय शिक्षा के इतिहास मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करती है। इसकी मुख्य विशेषता—इसकी व्यापकता है। इसकी अभिधारणायें अत्यन्त निर्भीक है। भारतीय शिक्षा-प्रणाली के दोषो पर प्रकाश डालती है। शिक्षा के विभिन्न प्रक्रमो पर सभी छात्रो को शिक्षा का समान अवसर देती है। शिक्षको की दशा मे सुधार करने का सुझाव देती है। परन्तु इन गुणो के साथ-साथ, योजना मे कुछ दोष भी है—मौलिक लेख नही हैं, केवल प्राप्त किये जाने वाले आदर्श को प्रस्तुत करती है, शिक्षा-योजना की केवल रूपरेखा प्रस्तुत करती है, अराष्ट्रीय, विलम्बकारी, काल्पनिक और खर्चीली है।

TEST QUESTIONS

1. Explain the importance of the Sargent Report and summarise its main recommendations.
   सार्जेन्ट रिपोर्ट के महत्त्व को बताइये और उसकी मुख्य सिफारिशो को सक्षेप मे लिखिये।
2. Write a reasoned criticism of the Sargent Plan as a Scheme of National Education.
   राष्ट्रीय शिक्षा की योजना के रूप मे सार्जेन्ट-योजना की तार्किक आलोचना कीजिये।
3. Discuss the present position of compulsory education with reference to the recommendations contained in the Sargent Report on the subject.
   सार्जेन्ट-रिपोर्ट मे उल्लिखित प्राथमिक शिक्षा की सिफारिशो के सदर्भ मे अनिवार्य शिक्षा की वर्तमान स्थिति की समीक्षा कीजिये।

२०

अंग्रेज़ी शासन-काल में शिक्षा

(सिंहावलोकन)

प्रस्तावना

१५ अगस्त, १९४७ को एक लम्बे संघर्ष के बाद भारत ने परतन्त्रता की बेडियों से मुक्त होकर, विश्व के स्वतन्त्र राष्ट्रों में अपना स्थान ग्रहण किया। हम पिछले अध्याय में पराधीन भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रचलित की गई शिक्षा-प्रणाली का वर्णन समाप्त कर चुके हैं। परन्तु इससे पूर्व कि हम स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विवरण प्रारम्भ करें, यह युक्ति-संगत प्रतीत होता है कि हम अंग्रेजी शासन-काल में शिक्षा का सिंहावलोकन कर लें। भारतीय नेताओं एवं शिक्षा-विशारदों का मत है कि अंग्रेजों की शिक्षा-नीति तथा अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति भारत के लिये सर्वथा अनुपयुक्त, अहितकर एवं अराष्ट्रीय थी। इसके विपरीत, भारत के अंग्रेज शासकों का कथन है कि अंग्रेजी शिक्षा तथा अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था भारत के लिये एक ऐसा श्रेष्ठ वरदान है, जो इस देश की शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ है। समस्त ब्रिटिश-कालीन शिक्षा के अध्ययन के पश्चात् यदि हम उस शिक्षा के गुणावगुण का तटस्थतापूर्वक विवेचन करें तो हम जान सकते हैं कि दोनों दृष्टिकोणों में सत्य का कितना अंश है।

अंग्रेज़ी शिक्षा के लाभ

अंग्रेजों की नवीन शिक्षा एवं उसका प्रसार करने के लिये अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति की अनेक भारतीयों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे निस्संकोच रूप से स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में युग-परिवर्तन का कार्य किया। इसी शिक्षा के फलस्वरूप अन्तर्प्रान्तीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध घनिष्ठ हुए, भारतीयों के सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोणों में परिवर्तन हुआ, शिक्षा पर एक विशेष जाति का एका

धिकार समाप्त होकर, वह सभी भारतीयों की सामान्य सम्पत्ति हो गई, भारतीय वैज्ञानिकों, कलाकारों, कवियों तथा राजनीतिज्ञों को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई और भारत में नवजागरण तथा नवाभ्युत्थान का युग प्रारम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप उसने शताब्दियों तक पदाक्रान्त होने के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपना प्राचीन एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। अतः अंग्रेजी शिक्षा एवं तत्सम्बन्धित शिक्षा-व्यवस्था भारत के लिये एक अनुपम देन है। जिन कारणों पर यह विचारधारा आधारित है, उनकी ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं :—

(१) पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क—अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीयों का पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क स्थापित हो गया। यह सम्पर्क ऐसे समय में स्थापित हुआ, जब भारतीय अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को विस्मृत करके पतनोन्मुख हो रहे थे। ऐसे समय अंग्रेजी की नवीन शिक्षा ने इस देश के निवासियों का पथ आलोकित किया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को अपनाकर पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों से परिचय प्राप्त किया और उन्नति के पथ पर अग्रसर हुए।

(२) भारतीय समाज का आधुनीकरण—अंग्रेजी शिक्षा की एक अन्य महान् देन—भारतीय समाज का आधुनीकरण है। जिस समय भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई, उस समय यहाँ के समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इसमें सती प्रथा, शिशु हत्या, बाल विवाह, अस्पृश्यता एवं जाति भेद की हानिप्रद कुरीतियाँ प्रचलित थीं और उनसे देश का अधःपतन हो रहा था। अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित होकर भारतीयों ने इन सामाजिक दूषणों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ करके उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की, और भारतीय समाज को एक नवीन रूप प्रदान किया।

(३) साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति—भारत में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति करने का श्रेय अंग्रेजी शिक्षा को प्राप्त है। अंग्रेज विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन किया और संस्कृत की पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस प्रकार, उन्होंने भारत के लुप्त गौरव का प्रामाणिक परिचय हमारे समक्ष उपस्थित किया। अपने साहित्य तथा संस्कृति की जिन बातों को हम विस्मृत कर चुके थे, उनको हमने अंग्रेजी भाषा के द्वारा समझा। फलस्वरूप, देश में बौद्धिक जागरण प्रारम्भ हुआ और हमें अपने साहित्य तथा संस्कृति में पुनः अभिरुचि उत्पन्न हुई। इसका सबसे बड़ा एवं विलक्षण परिणाम—प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का विकास है।

(४) वैज्ञानिक उन्नति—ब्रिटिश शासन की स्थापना के उपरान्त जब अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारत में नवजागरण प्रारम्भ हुआ, तब राजा राममोहन राय आदि नेताओं ने यह अनुभव किया कि पश्चिम की अभूतपूर्व प्रगति का एक प्रमुख कारण—विज्ञान की उन्नति है। अतः उन्होंने अंग्रेजी के द्वारा भारतीयों को वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा दिये जाने की माँग की। प्रारम्भ में तो सरकार इस ओर उदासीन रही, पर वह बहुत समय तक इस माँग को न टाल सकी। १८९७ में जगदीशचन्द्र बोस ने भौतिक विज्ञान विषयक अपनी खोजों से यूरोप के विद्वानों को

आश्चर्यचकित कर दिया। फलत भारतीयो मे यह आत्म-विश्वास जाग्रत हुआ कि वे वैज्ञानिक क्षेत्र मे भी प्रगति कर सकते है। उसी समय से वे विज्ञान के अध्ययन मे जुट गये और अनेक भारतीयो ने व्यक्तिगत रूप से विज्ञान के अध्ययन के लिये सस्थाओ का निर्माण किया। अध्ययन की इस सुविधा के कारण ही अनेक भारतीय वैज्ञानिको को विश्व म उच्चतम वैज्ञानिक सम्मान प्राप्त हुआ। इनमे श्रीनिवास रामानुजम्, जगदीशचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर वेंकटरमण आदि विशेष रूप के उल्लेख नीय है।

(५) **ललित कलाओ का पुनरुत्थान**—भारत की ललित कलाओ के पुनरुत्थान का श्रेय अग्रेजो को प्राप्त है। फर्गुसन ने अपने चिरस्मरणीय ग्रन्थ म भारत की वास्तुकला के भव्य स्मारको का विशद वर्णन करके ललित कलाओ के प्रति भारतीयो की रुचि को पुन जाग्रत किया। भारत सरकार ने बम्बई मद्रास, कलकत्ता और लाहौर मे कला-विद्यालय स्थापित करके भारतीय कलाओ को पुनर्जीवित किया। उसी समय से भारतीय, कला के क्षेत्र मे उन्नति करने लगे। आज भी अवनीन्द्रनाथ टैगोर, नन्दलाल बोस, असितकुमार हालदार आदि के नाम गर्व से लिये जाते है।

(६) **लोकप्रिय राजनैतिक सस्थाओ का विकास**—अग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप ही भारत मे लोकप्रिय राजनैतिक सस्थाओ की वृद्धि एव विकास हुआ। उदाहरणार्थ—अग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके ही भारतीयो के हृदय मे लोकतन्त्रवाद की विचारधारायें दृढ होती गई एव प्रजातन्त्र की सस्थाओ का क्रमश विकास होता गया।

(७) **शिक्षा प्रसार के नवीन साधन**—शिक्षा प्रसार के नवीन साधन भी अग्रेजो की देन है। उन्होने अपनी शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत मुद्रणालयो, पुस्तकालयो, वाचनालयो, रडियो, चलचित्रो आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। स्वतन्त्र भारत ने इनको शिक्षा प्रसार के साधनो मे स्थान दिया है और इनकी सहायता से शिक्षण तथा निरक्षरता के निवारण का कार्य किया जा रहा है।

(८) **भारतीय पुनर्जागरण**—भारतीय पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण—अग्रेजी की शिक्षा है। स्कूलो एव कालेजो मे प्रदान की जाने वाली अग्रेजी शिक्षा ने भारतीयो के विचारो तथा दृष्टिकोणो मे आमूल परिवर्तन कर दिया। अग्रेजी की शिक्षा ने भारतीय मस्तिष्क के बौद्धिक पृथकत्व का अन्त कर दिया तथा पाश्चात्य साहित्य, इतिहास एव विज्ञान से उसका सम्पर्क स्थापित कर दिया। परिणामस्वरूप, इस देश मे उसी प्रकार की विशाल मानसिक प्रगति हुई, जैसी कि यूरोप म १५वी तथा १६वी शताब्दियो मे पुनर्जागरण के समय हुई थी। वास्तव मे, भारतीय पुनर्जागरण का सूत्रपात—अग्रेजी साहित्य, विज्ञान तथा आधुनिक दर्शन के अध्ययन से हुआ।

अग्रेजी शिक्षा की हानियाँ

अग्रेजी शिक्षा एव उसकी व्यवस्था के सम्बन्ध म जो विचार ऊपर व्यक्त किय गय है, उनसे अनेक भारतीय सहमत नही हैं। उनके मतानुसार विदेशियो द्वारा

भारत पर लादी गई शिक्षा-प्रणाली ने यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा सामाजिक एवं नैतिक उच्चादर्शों पर कुठाराघात करके उनको मरणासन्न कर दिया। अंग्रेजी शिक्षा एवं उसकी व्यवस्था पर जो दोषारोपण किये गये है, हम उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दे रहे हैं —

(१) **अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली—देश के वातावरण के प्रतिकूल**—विदेशियो द्वारा आयोजित की जाने के कारण अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली इस देश के वातावरण के प्रतिकूल थी। यह एक विदेशी वृक्ष था, जो भारत-भूमि मे उचित प्रकार से पल्लवित नही हो सकता था। इसीलिये इसका अनियमित रूप मे विकास हुआ।[1]

(२) **राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश**—अंग्रेजी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश करना और यहाँ के निवासियों को भारतीय होते हुए भी पसन्द, व्यवहार तथा विचार मे अंग्रेज बनाना था। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारत को एक ईसाई देश बनाने की चेष्टा की गई।[2]

(३) **अंग्रेजी शिक्षा का निकृष्ट ध्येय**—अंग्रेजो द्वारा १८३५ मे जिस शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया गया, जिसका १८५४ मे अनुसरण किया गया और जिस पर १८८२ मे बल दिया गया, उसका एक मात्र ध्येय—अंग्रेजी दफ्तरो के लिये 'बाबू वर्ग' को तैयार करना था।

(४) **अंग्रेजी माध्यम के दुष्परिणाम**—भारतवासियो को अंग्रेजी माध्यम के द्वारा शिक्षा दी गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उनको अपने साहित्य तथा भाषाओ का समुचित ज्ञान न प्राप्त हो सका। साथ ही, भारतीय भाषाओ एव भारतीय मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो गया।[3]

(५) **धर्महीनता एवं नैतिक पतन**—अंग्रेजी विद्यालयो मे भारतीयो के धर्म की शिक्षा की कोई व्यवस्था नही की गई। शिक्षा को पूर्णतया लौकिक बना दिया गया। धार्मिक शिक्षा के अभाव मे व्यक्तियो मे न केवल धर्महीनता की वृद्धि हुई, अपितु धर्म के अभाव मे उनका नैतिक पतन भी होना प्रारम्भ हो गया। इसका स्पष्ट

---

1. "Indian Educational Policy is described as a foreign plant, not suited to the Indian soil, and therefore, showing an unseemly growth." M. R. Paranjpe : *op. cit.*, p. v.

2. "It is described as an attempt to make India lose her national characteristics and make the people, Indian by birth but English in taste, manners and outlook. It is believed to have been an attempt to make India a Christian nation."—*Ibid.*

3. "By enforcing a foreign medium of instruction, it is believed to have arrested the development of Indian languages and Indian intellect."—*Ibid.*

परिणाम यह हुआ कि नवयुवको मे अनुशासनहीनता तथा भक्तिहीनता की भावनाओ का समावेश हुआ।[1]

(६) *शिक्षा का मन्द विकास*—अंग्रेजो पर एक दोषारोपण यह भी किया जाता है कि यद्यपि उन्होने अपनी शिक्षा और उसकी पद्धति को इस देश मे प्रचलित किया, परन्तु उन्होने अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नही किया। फलतः शिक्षा के विकास की गति अत्यन्त मन्द रही। लगभग १५० वर्षों मे अग्रेजी शिक्षा-प्रणाली द्वारा केवल १५ प्रतिशत भारतीयो को शिक्षित बनाया जा सका। इसका प्रमुख कारण यह था कि अंग्रेजी शिक्षा-नीति का आधार 'निस्यन्दन-सिद्धान्त' (Downward Filtration Theory) था। अंग्रेजो ने अपना ध्यान केवल उच्च वर्ग की शिक्षा पर ही केन्द्रित रखा और जनसाधारण की शिक्षा की सर्वथा अवहेलना की।

राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास में असफलता

भारत के अंग्रेज शासको पर सर्वमहान् दोषारोपण यह किया जाता है कि वे भारत मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं विकास नही कर सके। इस आक्षेप को निर्मूल नही कहा जा सकता है। १९१९ के 'भारत-सरकार-अधिनियम' के अनुसार भारतीय शिक्षा को लोकप्रिय मंत्रियो को हस्तान्तरित करके अंग्रेजो ने इस देश की शिक्षा से अपना हाथ खीच लिया। इसके विपरीत, यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि अंग्रेजो ने १९४४ की 'सार्जेन्ट-योजना' मे शिक्षा का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया, जिसमे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अनेक लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। यह तर्क निराधार नही है, परन्तु इसका खंडन करते हुए हम निःशङ्क रूप से कह सकते है कि 'सार्जेन्ट-योजना' मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की केवल कल्पना ही की गई थी और अंग्रेजो के भारत से प्रस्थान की शुभ वेला तक वह निरी कल्पना ही रही, अर्थात् ३ वर्ष की लम्बी अवधि मे उस कल्पना को यथार्थता मे परिवर्तित करने के लिये एक भी क्रियात्मक पग नही उठाया गया।

साराश में, अंग्रेज, भारत मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं विकास करने मे पूर्णतः असफल रहे। इस असफलता के प्रमुख कारणो की ओर हम नीचे संकेत कर रहे है —

(१) *प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों के समन्वय में असफलता*—अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का प्रमुख दोष यह था कि वह प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय करने मे असफल रही। भारत और इंगलैण्ड के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं नैतिक

---

1. "The Indian education of the last one hundred years is charged with making India less religious and therefore less moral, or again *less willing to accept the dictum of elders* and therefore less disciplined, and less loyal to authorities"—*M. R. Paranjpe : op. cit.*, p. v.

आदर्शों मे किसी प्रकार का साम्य नही था। एक आध्यात्मिकता मे विश्वास करता था, तो दूसरा भौतिकवादिता मे। अंग्रेज मिशनरियो ने अपनी संस्कृति और धर्म को श्रेष्ठ समझा और भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं को घृणा की दृष्टि से देखा। उन्होने भारतीय धर्म को नष्ट करके, उसके स्थान पर ईसाइयत को प्रतिष्ठित करने मे पृथ्वी और आकाश को एक कर दिया।

अग्रेज शासको ने राज और धन मे मद मे बेसुध होकर इस बात का स्वप्न मे भी विचार नही किया कि प्राच्य एवं पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय भी किया जा सकता था। यदि उनमे से कुछ चैतन्य प्रशासको के मस्तिष्क मे यह विचार आया भी, तो किपलिंग (Kipling) ऐसे लेखको ने यह लिखकर उन्हे हतोत्साहित कर दिया—"पूर्व और पश्चिम, संसार के दो छोर हैं और इन दोनो का मिलन असम्भव है।"[1]

इसके अतिरिक्त, अग्रेजो ने इस देश के शासक होने के नाते अपने को भारतीयो से श्रेष्ठतर समझा। शासको एव शासितो के मध्य एक दीवार खडी हो गई और वह क्रमश: ऊँची होती चली गई। होटलो, रेलो के डिब्बो, क्लबो और स्कूलो मे प्रवेश करने की नीति भी भेद-भाव पर आधारित कर दी गई। विभिन्न संस्थाओ पर यह छाप लगा दी गई—"केवल यूरोपियनो के लिये"। नवाम्युत्थान के युग मे राष्ट्रीय नेताओ ने अंग्रेजो की नीति का उत्तर पाश्चात्य-संस्कृति एवं आदर्शों का तिरस्कार करके देना प्रारम्भ किया। ऐसी स्थिति मे पूर्व और पश्चिम का संयोग वास्तव मे असम्भव सिद्ध हो गया।

(२) साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण—अंग्रेज भारत को अपने साम्राज्य का एक अविच्छिन्न अङ्ग समझते थे और प्रत्येक सम्भव नीति से इस पर अपने प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते थे। उन्होने इस बात की कभी कल्पना ही नही की कि भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करके सम्मानित पद भी दिया जा सकता था। अपने शासन-काल के आदि से अन्त तक उन्होने अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये इस देश का शोषण किया। उनका विश्वास था कि दैव ने उनको इस असभ्य देश को सभ्य बनाने का कार्य सौंपा है। अंग्रेज धर्म-प्रचारको का विचार था कि ईसाई धर्म को स्वीकार करके ही भारतीयो को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। जहाँ इस प्रकार की भावनायें कार्य कर रही थी, वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के निर्माण की बात सोचना बिल्कुल असम्भव था।

(३) शिक्षा के उद्देश्यो मे अस्थिरता—भारतीय शिक्षा के उद्देश्यो के सम्बन्ध मे अंग्रेज प्रशासको के विचारो मे कभी स्थिरता नही रही। उद्देश्यो का रूप समय-समय तथा अवसर के अनुसार सदैव परिवर्तित होता रहा। उदाहरणार्थ—हेस्टिंग्ज और डंकन, शिक्षा के द्वारा उन व्यक्तियो की क्षति-पूर्ति करना चाहते थे, जिन्हे अग्रेजी-

---

1. "East is East and West is West, and never the twain shall meet."

परिणाम यह हुआ कि नवयुवको मे अनुशासनहीनता तथा भक्तिहीनता की भावनाओ का समावेश हुआ ।[1]

(६) **शिक्षा का मन्द विकास**—अंग्रेजो पर एक दोपारोपण यह भी किया जाता है कि यद्यपि उन्होने अपनी शिक्षा और उसकी पद्धति को इस देश मे प्रचलित किया, परन्तु उन्होने अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नही किया । फलत. शिक्षा के विकास की गति अत्यन्त मन्द रही । लगभग १५० वर्षो मे अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली द्वारा केवल १५ प्रतिशत भारतीयो को शिक्षित बनाया जा सका । इसका प्रमुख कारण यह था कि अंग्रेजी शिक्षा-नीति का आधार 'निस्यन्दन-सिद्धान्त' (Downward Filtration Theory) था । अंग्रेजो ने अपना ध्यान केवल उच्च वर्ग की शिक्षा पर ही केन्द्रित रखा और जनसाधारण की शिक्षा की सर्वथा अवहेलना की ।

राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास में असफलता

भारत के अंग्रेज शासको पर सर्वमहान् दोपारोपण यह किया जाता है कि वे भारत मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं विकास नही कर सके । इस आक्षेप को निर्मूल नही कहा जा सकता है । १९१९ के 'भारत-सरकार-अधिनियम' के अनुसार भारतीय शिक्षा को लोकप्रिय मंत्रियो को हस्तान्तरित करके अंग्रेजो ने इस देश की शिक्षा से अपना हाथ खीच लिया । इसके विपरीत, यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि अंग्रेजो ने १९४४ की 'सार्जेन्ट-योजना' मे शिक्षा का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया, जिसमे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अनेक लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते है । यह तर्क निराधार नही है, परन्तु इसका खंडन करते हुए हम नि.शङ्क रूप से कह सकते है कि 'सार्जेन्ट-योजना' मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की केवल कल्पना ही की गई थी और अंग्रेजो के भारत से प्रस्थान की शुभ वेला तक वह निरी कल्पना ही रही, अर्थात् ३ वर्ष की लम्बी अवधि मे उस कल्पना को यथार्थता मे परिवर्तित करने के लिये एक भी क्रियात्मक पग नही उठाया गया ।

साराश मे, अंग्रेज, भारत मे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं विकास करने मे पूर्णत. असफल रहे । इस असफलता के प्रमुख कारणो की ओर हम नीचे संकेत कर रहे है —

(१) **प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों के समन्वय में असफलता**—अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का प्रमुख दोप यह था कि वह प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय करने मे असफल रही । भारत और इंगलैण्ड के सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक एवं नैतिक

---

1. "The Indian education of the last one hundred years is charged with making India less religious and therefore less moral, or again less willing to accept the dictum of elders and therefore less disciplined, and less loyal to authorities."—M. R. Paranjpe : *op. cit.*, p. v.

आदर्शों मे किसी प्रकार का साम्य नही था। एक आध्यात्मिकता मे विश्वास करता था, तो दूसरा भौतिकवादिता मे। अंग्रेज मिशनरियों ने अपनी संस्कृति और धर्म को श्रेष्ठ समझा और भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओ को घृणा की दृष्टि से देखा। उन्होंने भारतीय धर्म को नष्ट करके, उसके स्थान पर ईसाइयत को प्रतिष्ठित करने मे पृथ्वी और आकाश को एक कर दिया।

अंग्रेज शासको ने राज और धन मे मद के वेमुख होकर इस बात का स्वप्न मे भी विचार नही किया कि प्राच्य एवं पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय भी किया जा सकता था। यदि उनमे से कुछ चैतन्य प्रशासको के मस्तिष्क मे यह विचार आया भी, तो किपलिंग (Kipling) ऐसे लेखको ने यह लिखकर उन्हें हतोत्साहित कर दिया—"पूर्व और पश्चिम, संसार के दो छोर है और इन दोनो का मिलन असम्भव है।"[1]

इसके अतिरिक्त, अंग्रेजो ने इस देश के शासक होने के नाते अपने को भारतीयो से श्रेष्ठतर समझा। शासको एवं शासितो के मध्य एक दीवार खडी हो गई और वह क्रमशः ऊँची होती चली गई। होटलो, रेलो के डिब्बो, क्लबो और स्कूलो मे प्रवेश करने की नीति भी भेद-भाव पर आधारित कर दी गई। विभिन्न संस्थाओ पर यह छाप लगा दी गई—"केवल यूरोपियनो के लिये"। नवाभ्युत्थान के युग मे राष्ट्रीय नेताओ ने अंग्रेजो की नीति का उत्तर पाश्चात्य-संस्कृति एवं आदर्शों का तिरस्कार करके देना प्रारम्भ किया। ऐसी स्थिति मे पूर्व और पश्चिम का संयोग वास्तव मे असम्भव सिद्ध हो गया।

(२) **साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण**—अंग्रेज भारत को अपने साम्राज्य का एक अविच्छिन्न अङ्ग समझते थे और प्रत्येक सम्भव नीति से इस पर अपने प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते थे। उन्होने इस बात की कभी कल्पना ही नही की कि भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करके सम्मानित पद भी दिया जा सकता था। अपने शासन-काल के आदि से अन्त तक उन्होने अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये इस देश का शोषण किया। उनका विश्वास था कि दैव ने उनको इस असभ्य देश को सभ्य बनाने का कार्य सौंपा है। अंग्रेज धर्म-प्रचारको का विचार था कि ईसाई धर्म को स्वीकार करके ही भारतीयो को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। जहाँ इस प्रकार की भावनायें कार्य कर रही थी, वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के निर्माण की बात सोचना बिल्कुल असम्भव था।

(३) **शिक्षा के उद्देश्यो में अस्थिरता**—भारतीय शिक्षा के उद्देश्यो के सम्बन्ध में अंग्रेज प्रशासको के विचारो मे कभी स्थिरता नही रही। उद्देश्यो का रूप समय-समय तथा अवसर के अनुसार सदैव परिवर्तित होता रहा। उदाहरणार्थ—हेस्टिंग्ज और डंकन, शिक्षा के द्वारा उन व्यक्तियो की क्षति-पूर्ति करना चाहते थे, जिन्हे अंग्रेजी-

1. "East is East and West is West, and never the twain shall meet."

शासन की स्थापना से हानि हुई थी। १८१३ के 'आज्ञा-पत्र' में प्राच्य साहित्य तथा ज्ञान का प्रोत्साहित करने का आदेश दिया गया। १८५४ के 'घोषणा-पत्र' में शिक्षा का उद्देश्य—भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करने के साथ-साथ, अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ऐसे व्यक्तियों का उत्पन्न करना बताया गया, जो राज्य को सुदृढ़ बना सकें। १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—चरित्र-निर्माण करना निर्धारित किया गया। इस प्रकार, शिक्षा के उद्देश्यों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। ऐसी दशा में राष्ट्रीय शिक्षा का विचार न आना—कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

(४) शिक्षा-प्रसार की दोषपूर्ण विधियाँ—यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अंग्रेजों ने भारत में शिक्षा-प्रसार की जितनी विधियों का अनुसरण किया, वे सभी दोषपूर्ण थीं। सर्वप्रथम उन्होंने भारत की देशी शिक्षा-व्यवस्था को बेमौत मार डाला। उनका विचार था कि देशी विद्यालयों के स्थान पर अंग्रेजी ढंग के स्कूलों की स्थापना करके शिक्षा-प्रसार का कार्य सुगमतापूर्वक किया जा सकेगा। परन्तु वे अपने इस कार्य में असफल हुए। इसी प्रकार उनका 'निस्यन्दन सिद्धान्त' भी निरर्थक सिद्ध हुआ। शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को प्रतिष्ठित करना, माध्यमिक स्कूलों एवं कॉलेजों में अंग्रेजी की शिक्षा को प्रधानता देना एवं भारतीय भाषाओं की अवहेलना करना—शिक्षा प्रसार की दोषपूर्ण विधियों के कुछ अन्य ज्वलन्त उदाहरण हैं।

(५) शिक्षा विभाग की अवहेलना—अंग्रेजों ने जितना ध्यान अन्य विभागों की ओर दिया, उसका शतांश भी शिक्षा-विभाग की ओर नहीं दिया। जिस प्रकार के सुयोग्य एवं कुशल मनुष्यों को अन्य विभागों में कार्य करने के लिए इंगलैंड से भारत भेजा गया, उस प्रकार के मनुष्यों को भारतीय शिक्षा-विभाग में नियुक्त नहीं किया गया। सर माइकेल सैडलर (Sir Micheal Sadler) एवं सर अलैक्जैण्डर ग्रान्ट (Sir Alexander Grant) की सी प्रतिभा वाले शिक्षा विशेषज्ञ और नहीं थे। १८९६ में आई० ई० एस० के पद का निर्माण किया गया, पर इसके सेवा-प्रतिबन्धों को उनसे कहीं कम आकर्षक रखा गया, जितने कि आई० सी० एस० के थे। ऐसी दशा में सुयोग्य व्यक्तियों के भारत आने का प्रश्न ही नहीं उठता था। जो व्यक्ति आये भी, उनमें इतनी कार्य-क्षमता नहीं थी कि वे इस देश के लिए राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की योजना बना सकते।

निष्कर्ष

उपरिलिखित ब्रिटिश-कालीन शिक्षा एवं अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के लाभ-हानियों अथवा गुण-दोषों पर दृष्टि डालने से सहसा यही विचार उत्पन्न होता है कि अंग्रेजों ने अपनी भाषा और शिक्षा-पद्धति को परवश भारत पर लाद कर एक ऐसा जघन्य अपराध किया, जिसके लिये वे अक्षम्य हैं। पर यदि हम अपनी भावुकता के वशीभूत न होकर निष्पक्ष एवं तटस्थ रूप से विचार करें, तो हमें यह स्वीकार करने के

लिए बाध्य होना पडेगा कि अग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था हमारे लिए एक अद्वितीय वरदान बनकर आई। अग्रेजी के अध्ययन से ही हमारे पिछले १०० वर्षों मे युगान्तर हुआ। इसका श्रीगणेश उस समय हुआ, जब हमने ज्ञान एवं प्रकाश के लिए अपना मुँह पूर्व से पश्चिम की ओर मोडा। पाश्चात्य साहित्य, शिक्षा तथा विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीयो ने देश मे सर्वतोमुखी सुधार की ज्योति को जाग्रत किया, धर्मान्धता एव बुद्धिहीन श्रद्धा का स्थान विवेक तथा तर्क ने ग्रहण किया, उदारता एव स्वतन्त्र विचार ने मूर्खतापूर्ण कट्टरता तथा शास्त्रवाद पर विजय प्राप्त की। धार्मिक रूढियो एव सामाजिक कुरीतियो की वेडियों से भारत को मुक्ति प्राप्त होने लगी। सती-प्रथा, शिशु-हत्या आदि कुत्सित दूषणो की अन्त्येष्टि हुई। जातीय भेद-भाव का अभेद्य दुर्ग ध्वस हो रहा है और सर्वत्र अस्पृश्यता का जनाजा निकाला जा रहा है। पाश्चात्य देशो मे प्रतिपादित समानता, स्वतन्त्रता एव राष्ट्रीयता के सिद्धान्तो ने हमारे देश पर अमिट छाप लगा दी है। भारतीय विधान-सभा द्वारा स्वीकृत नवीन शासन-विधान पर इसकी स्पष्ट छाया दृष्टिगोचर होती है। पश्चिम मे किये गए वैज्ञानिक आविष्कारो एव यन्त्रो को ग्रहण करके भारत के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का कायाकल्प हो रहा है। इन सबके लिए हम अग्रेजी शिक्षा के ऋणी हैं। यदि भारत में अग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन न किया गया होता, तो हम आज भी सम्भवत अन्य असभ्य जातियो के समान अन्धकार मे अपना मार्ग टटोल रहे होते।

साराश

अंग्रेजी शिक्षा के लाभ—(१) पाश्चात्य ज्ञान एव विज्ञान से सम्पर्क, (२) भारतीय समाज का आधुनीकरण, (३) साहित्यिक एव सांस्कृतिक जागृति, (४) वैज्ञानिक उन्नति, (५) ललित कलाओ का पुनरुत्थान, (६) लोकप्रिय राजनैतिक सस्थाओं का विकास, (७) शिक्षा प्रसार के नवीन साधन, और (८) भारतीय पुनर्जागरण।

अग्रेजी शिक्षा से हानियाँ—(१) अग्रेजी शिक्षा-प्रणाली देश के वातावरण के प्रतिकूल, (२) राष्ट्रीय विशेषताओ का विनाश, (३) अग्रेजी शिक्षा का निकृष्ट ध्येय, (४) अग्रेजी माध्यम के दुष्परिणाम, (५) धर्म-हीनता एव नैतिक पतन, और (६) शिक्षा का मन्द विकास।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास मे असफलता—(१) प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों के समन्वय मे असफलता, (२) साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण, (३) शिक्षा के उद्देश्यो मे अस्थिरता, (४) शिक्षा-प्रसार की दोषपूर्ण विधियाँ, और (५) शिक्षा-विभाग की अवहेलना।

TEST QUESTIONS

1. Discuss critically the view that the British totally failed to evolve a national system of education for India.
इस विचार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए कि अंग्रेज भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली का विकास करने में पूर्णतः असफल हुए।
2. "The British educational administration did several good things which India will always acknowledge." Elucidate.
"ब्रिटिश शैक्षिक प्रशासन ने अनेक उत्तम कार्य किये, जिनके लिए भारत सदैव आभारी रहेगा।" स्पष्ट कीजिए।

२१

प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा
(१९४७-१९७१)

प्रस्तावना

"राष्ट्र का विकास—उसके निवासियो की शिक्षा पर निर्भर है।" स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप मे भारत ने अपने नवनिर्माण के लिए शिक्षा-प्रसार की आवश्यकता का अनुभव किया। ऐसा करना स्वाभाविक था, क्योकि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग (Age Group) के केवल ३० प्रतिशत बच्चे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अत: देश की राष्ट्रीय सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क, सार्वभौमिक तथा अनिवार्य बनाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से स्वतन्त्र भारत के सविधान की ४५वी धारा मे स्पष्ट रूप से १० वर्ष के अन्दर सभी बच्चो के लिए प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने की घोषणा की गई है।[1] परन्तु इस घोषणा से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तो मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के सफल प्रयत्न किये जा चुके थे।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

पराधीन भारत मे भी राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय जन-असन्तोष के फलस्वरूप अनेक प्रान्तो मे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए अधिनियम

---

1. "The State shall endeavour to provide within a period of ten years from the commencement of this Constitution for the free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."—Article 45 of the *Constitution adopted by Free India* on January 26, 1950.

पारित किये जा चुके थे। इनका वर्णन पहले किया जा चुका है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से प्राथमिक शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व राज्य-सरकारो पर है। १ जुलाई, १९५७ को भारत-सरकार द्वारा स्थापित की गई 'अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा-परिषद्'[१], केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारो को प्राथमिक शिक्षा के विकास एव अनिवार्य नि.शुल्क प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे परामर्श देकर प्रशंसनीय कार्य कर रही है।[२] १९६१ मे स्थापित की गई 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड की स्थायी प्राथमिक शिक्षा-समिति'[३] ने प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यो एवं उद्देश्यो को निर्धारित किया है तथा उसके प्रसार के लिए अनेक नवीन योजनायें कार्यान्वित की हैं।[४]

उपर्युक्त प्रयासो के फलस्वरूप स्वतन्त्रता के उपरान्त होने वाली प्राथमिक शिक्षा की प्रगति का अनुमान निम्नांकित तालिका से सहज ही लगाया जा सकता है[५] —

वर्ष	विद्यालय-संख्या	छात्र-संख्या	शिक्षक-संख्या	व्यय (करोड रुपयो मे)
१९५०-५१	२,०९,६७१	१,८२,९३,९६७	५,३७,९१८	३६·४९
१९५५-५६	२,७८,१३५	२,२९,१९,७३४	६,९१,२४९	५३·७३
१९६०-६१	३,३०,३९७	२,६६,४२,२५३	७,४१,६९५	७३·४४
१९६१-६२	३,५१,५३०	२,९४,७४,३७७	७,९४,७४७	८२·६७
१९६२-६३	३,६६,२६२	३,१२,८६,९२९	८,३२,९९६	९२·९४
१९६३-६४	३,७७,१०६	३,३१,०३,२७१	८,८१,४३८	९९·०१
१९६४-६५	३,८५,२५०	३,३५,७८,०००	९,०६,९००	१०५·१८

प्राथमिक शिक्षा पर विहंगम दृष्टिपात

प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये अब तक जो प्रयत्न किये गये है, उनसे स्पष्ट होता है कि विद्यालय जाने वाले बच्चो मे पिछले १५ वर्षों मे बहुत महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। यद्यपि शेष जनसंख्या को स्तर पर लाने के लिये अब भी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है, फिर भी यह उत्साहवर्द्धक है कि अनुसूचित जातियो (Scheduled Castes) एव आदिम जातियो (Aborigines) के बच्चो के नामाकन मे वृद्धि पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से हुई है। इसी प्रकार, बालक और बालिकाओ की शिक्षा मे जो बडा अन्तर था, वह अब शनैः-शनैः कम होता जा रहा है।[६]

1. All India Council for Elementary Education.
2. *Hindustan Year-Book*, 1970, p. 180.
3. Standing Committee of Central Advisory Board of Education on Primary Education.
4. Prem Kirpal : *A Decade of Education in India*, p. 57.
5. *India*, 1968, p. 65.
६. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २२२।

विद्यालय जाने वाले बच्चो की सख्या मे जो वृद्धि हुई है, वह सराहनीय है, पर भारतीय संविधान के उस निर्देश को पूरा नही किया जा सका है, जिसके अनुसार १४ वर्ष तक के बच्चो को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जायगी। फिर भी, इस दिशा मे प्रभावशाली कदम के रूप मे अधिक बल इस बात पर दिया जा रहा है कि पढाई छोडकर बैठ जाने वाले बच्चो की संख्या कम-से-कम हो। इस समय प्राथमिक कक्षाओ मे ऐसे बच्चो की संख्या ६० प्रतिशत है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये अनेक उपाय किये गये हैं, जैसे—विद्यालयो का उत्तम संगठन, बिना मूल्य लिये पाठ्य-पुस्तको का वितरण, दोपहर के भोजन की व्यवस्था एवं स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार पाठ्यक्रम मे संशोधन।[1]

प्राथमिक शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के लिए केन्द्रीय सरकार की सहायता से 'राज्य-शिक्षा-संस्थानो' (State Institutes of Education) की स्थापना की योजना को १९६३-६४ मे कार्यान्वित किया गया। इन संस्थानो के लक्ष्य हैं—सेवारत विद्यालय-निरीक्षको एवं प्रशिक्षण-विद्यालयो के अध्यापकों का प्रशिक्षण, प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको के लिये अध्ययन की विशेष सामग्री की खोज एवं इन शिक्षको के लिये उचित साहित्य का प्रकाशन। हरियाना और नागादेश के अतिरिक्त शेष सब राज्यो मे 'राज्य-शिक्षा-संस्थानो' की स्थापना की जा चुकी है। इन संस्थानो के व्यय का भार आधा राज्य सरकारो द्वारा और आधा केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाता है।[2]

विशिष्ट विद्यालयो एवं पश्चिमी बंगाल के शहरी क्षेत्रो मे स्थित कुछ प्राथमिक विद्यालयो के अतिरिक्त, प्राथमिक स्तर की शिक्षा सम्पूर्ण देश मे नि:शुल्क है। लगभग सभी राज्य-सरकारें प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे उपयुक्त अधिनियमो का निर्माण कर चुकी हैं या पुराने अधिनियमो को संशोधित करके समयानुकूल बना चुकी हैं। आन्ध्र प्रदेश, आसाम, गुजरात, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल और दिल्ली की सरकारो ने अपने प्राथमिक शिक्षा-अधिनियमो को वर्तमान परिस्थितियो के अनुकूल बनाकर नवीन रूप प्रदान किया है।[3]

प्राथमिक विद्यालयो मे छात्रो की संख्या मे वृद्धि करने के लिये कार्यान्वित की जाने वाली योजनाओ के फलस्वरूप ६-११ वय-वर्ग के बच्चो की संख्या, जो १९५०-५१ मे ९५ लाख थी, १९६५-६६ मे बढकर लगभग ५१४·५ लाख हो गई।[4] इसी प्रकार, ११-१४ वय-वर्ग के बच्चो की संख्या ३१·२ लाख से बढकर लगभग १३०·५

१. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २२३।
2. *21st Year of Freedom*, p. 121.
3. *Hindustan Year-Book*, 1970, p. 180.
4. *India*, 1969, p. 62.

लाख हो गई।[1] १९६९-७० में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में २१ लाख ७० हजार नये दाखिलों का लक्ष्य रखा गया है।[2] १९७३-७४ में ६-१४ वय-वर्ग के ८६·८ करोड़ बच्चों को दाखिला किया जायगा, जिनमें से ५२ ६५ बालक और ३४ १४ करोड़ बालिकायें होंगी।[3]

बालकों और बालिकाओं की इस अभिवृद्धित संख्या के कारण चौथी योजना के अन्त तक ६,४४,००० नये शिक्षकों की आवश्यकता होगी। शिक्षकों की पूर्ति करने के लिये, और साथ ही उन्हें अध्यापन-कार्य में अधिक दक्ष बनाने के लिये शिक्षक-प्रशिक्षण की योजनायें तैयार की गई हैं।[4]

बेसिक शिक्षा

१९४४ में 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने 'सार्जेन्ट-योजना' में प्रतिपादित बेसिक शिक्षा की सामान्य रूपरेखा को मान्यता प्रदान की। १९४५ में वर्धा में होने वाली 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' की बैठक ने भारत के लिये बेसिक शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया और इसका नाम 'नई तालीम' रखा। इस 'संघ' ने १९४७ में बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया, जिसका देश के सब प्रान्तों ने स्वागत किया।

१९४८ में भारत-सरकार द्वारा बी० जी० खेर की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गई और उसको ऐसे सुझाव देने का आदेश दिया गया, जिनसे देश में बेसिक शिक्षा की योजना को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित किया जा सके। 'खेर-समिति' ने अपने प्रतिवेदन में लिखा कि बेसिक शिक्षा को १६ वर्ष के अन्दर दो पंचवर्षीय योजनाओं और एक षड्वर्षीय योजना द्वारा कार्यान्वित किया जाय प्रथम दो योजनाओं में ६ से ११ वर्ष वाले और षड्वर्षीय योजना में १४ वर्ष तक के बच्चों के लिये बेसिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया जाय।

'खेर-समिति' के सुझावों और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' की सिफारिश स्वीकार करके भारत-सरकार ने १९५० से पूर्व ही प्राथमिक शिक्षा को बेसिक रूप देने, बेसिक विद्यालयों की स्थापना करने और प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सरकार के इन प्रयासों के फलस्वरूप बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली प्रगति को आगे (पृ० ३६०) की तालिका में स्पष्ट किया गया है —

---

1 *India*, 1969, p 62
२ नवभारत टाइम्स, ३० अगस्त, १९६९।
3 *Hindustan Times*, 22 April, 1969
4 *Ibid*

बेसिक शिक्षा की प्रगति व व्यय[1]

विवरण	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१	१९६१–६२	१९६२–६३	१९६३–६४	१९६४–६५
(अ) स्कूलों की संख्या							
१. जूनियर बेसिक	३३,३७९	४२,९७१	६५,९४९	७३,९८२	७८,२९३	८३,४६१	८२,०००
२. सीनियर बेसिक	३८८	४,४८२	१४,२९९	१५,४८५	१६,५५३	१७,०३६	१८,०००
३. पोस्ट बेसिक	—	१९	३१	३१	२४	१७	३८
(ब) छात्रों की संख्या							
१. जूनियर बेसिक	८,४६,२४०	३७,३०,४५९	६५,०१,१३४	७६,४३,४१२	८३,९९,९३७	९२,८७,१४४	९०,३५,०००
२. सीनियर बेसिक	६६,४८२	१३,२९,७४८	३२,२०,२९८	३५,८९,५५०	३८,८२,७३४	१,२०,०६५	४२,९७,०००
३. पोस्ट बेसिक	—	२,३७७	४,३४०	४,७१२	५,८३८	४,४६७	५,६५०
(स) शिक्षकों की संख्या							
१. जूनियर बेसिक	७४,७५६	१,११,३४७	१,७५,६०६	१,९६,४२९	२,११,४१३	२,४१,१६२	२,३८,०००
२. सीनियर बेसिक	२,५६३	३९,६७२	१,०२,०८३	१,११,८१०	१,२०,०४८	१,२४,५९८	१,३१,८००
३. पोस्ट बेसिक	—	—	२४९	२६५	२६३	२१८	३४०
(द) व्यय करोड़ रुपयों में							
१. जूनियर बेसिक	३·९४	८·११	१५·९९	१८·८७	२०·८७	२४·४८	२४·५४
२ सीनियर बेसिक	०·२१	४·०६	१२·३६	१३·५३	१५·१८	१६·३४	१८·१६
३. पोस्ट बेसिक	—	०·०४	०·०४	०·०५	०·०५	०·०५	०·०९

1. *India*, 1969. p. 65.

पंचवर्षीय योजनाओं में बेसिक शिक्षा की प्रगति

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त मे ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के लगभग ५० प्रतिशत बच्चो को शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो गई। इनमे ६८ प्रतिशत बालक और ३२ प्रतिशत बालिकायें थी। ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग मे जिन बच्चो को सुविधा प्राप्त हुई, उनकी संख्या बढकर १४ से २७ प्रतिशत हो गई, पर इसमे लडकियाँ केवल २० प्रतिशत ही थी।[1]

द्वितीय योजना के अन्त तक ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के ६० प्रतिशत तथा ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग के १९ प्रतिशत बच्चो के लिये शिक्षा की सुविधा दी गई। प्राथमिक कक्षाओ मे से ६६ लाख छात्र बढे, जिनके लिये ६०,००० नए प्राथमिक स्कूलो की आवश्यकता पडी। आशा की जाती थी कि बेसिक स्कूलो की संख्या १२,००० हो जायगी।[2]

तृतीय योजना मे ५७,७६० प्राथमिक विद्यालयो को बेसिक स्कूलो मे परिवर्तित करने, वर्तमान विद्यालयो को बेसिक ढाँचे के ढङ्ग पर लाने, सभी प्रशिक्षण संस्थाओ का बेसिक प्रणाली के आधार पर पुनर्गठन करने, नगर-क्षेत्रो मे बेसिक स्कूल खोलने और बेसिक शिक्षा को प्रत्येक स्थानीय समुदाय के विकास कार्यों से सम्बद्ध करने की व्यवस्था थी।[3]

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रगति में योग

केन्द्रीय सरकार द्वारा बेसिक शिक्षा की प्रगति मे विशेष योग दिया जा रहा है। जो राज्य बेसिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं, उनको केन्द्रीय सरकार किये जाने वाले व्यय का ५० प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप मे देती है। जो राज्य प्राथमिक स्कूलो को बेसिक प्राथमिक स्कूलो का रूप देना चाहते हैं, उन्हे केन्द्रीय सरकार कुल व्यय का ७५ प्रतिशत देती है। नवीन बेसिक स्कूलो की स्थापना मे किये गये व्यय का २५ प्रतिशत भार केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया गया है।

उपरिलिखित कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध मे परामर्श लेने के लिए एक 'स्थायी बेसिक शिक्षा-समिति'[4] स्थापित की है। अप्रैल १९५६ मे इस समिति ने देश मे बेसिक शिक्षा का प्रसार करने के उद्देश्य से एक विस्तृत योजना तैयार की, और बेसिक शिक्षा के प्रति सरकार की नीति भी निर्धारित की। इस समिति ने सिफारिश की है कि राज्यो मे अधिक से अधिक संख्या मे उत्तर-

१. दूसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० १८७।
२. वही, पृ० १८७-१८८।
३. संक्षिप्त तीसरी पंचवर्षीय योजना, पृ० १५०।
4. Standing Committee of the Central Advisory Board of Education on Basic Education.

बेसिक स्कूल स्थापित किये जायें, माध्यमिक स्कूलो मे बेसिक शिक्षा प्रदान की जाय एवं बेसिक स्कूलो मे अंग्रेजी की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

बेसिक शिक्षा-प्रसार के आधारभूत तत्त्व

बेसिक शिक्षा-प्रसार के दो आधारभूत तत्त्व है—(१) सार्वभौमिक, अनिवार्य एवं नि शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना, और (२) वर्तमान प्राथमिक स्कूलो को बेसिक स्कूलो मे परिवर्तित करना।

प्रथम कार्य मे अभी तक जो सफलता प्राप्त हुई है, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। द्वितीय कार्य मे विभिन्न कठिनाइयो का अनुभव किया जा रहा है, जिनमे प्रमुख अधोलिखित हैं :—

१. बेसिक स्कूलो के लिये पर्याप्त संख्या मे प्रशिक्षित अध्यापक उपलब्ध नही है।
२. बेसिक स्कूलो के पास उपयुक्त भवन, शिक्षण-सामग्री तथा धन का अभाव है।
३. भारत के अनेक राज्यो मे बेसिक शिक्षा का क्रियात्मक रूप से विरोध किया गया है।
४. यद्यपि बेसिक शिक्षा बालको के लिये अति रोचक एव आकर्षक है, परन्तु शिक्षको के लिये पर्याप्त कठिन है। इस पद्धति को अपनाने मे उनको कठोर परिश्रम करना पडता है। आधुनिक परिस्थितियो मे जबकि शिक्षक अपने अल्प वेतन के कारण असन्तुष्ट हैं, वे परिश्रम से बचना चाहते है। ऐसी दशा मे बेसिक स्कूलो की उन्नति होना सम्भव नही जान पडता है।

बेसिक शिक्षकों का प्रशिक्षण

बेसिक विद्यालयो को सुचारु रूप से चलाने के लिये प्रशिक्षित अध्यापको का होना परम आवश्यक है। अतः उनको प्रशिक्षित करने की दिशा में लगभग सभी राज्य-सरकारो ने रचनात्मक कदम उठाये है। आसाम मे 'गुरु-प्रशिक्षण-केन्द्रों' (Guru Training Centres) को बेसिक प्रशिक्षण-संस्थाओं मे परिणत कर दिया गया है, बिहार, बम्बई और उत्तर प्रदेश मे बेसिक ट्रेनिंग स्कूल और बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज हैं। इसी प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थायें देश के लगभग सभी राज्यो मे हैं।

कुछ व्यक्तिगत संस्थायें भी बेसिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार अध्यापकों को प्रशिक्षित करने का कार्य कर रही हैं; यथा—जामिया-मिलिया इस्लामिया टीचर्स-ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, दिल्ली, श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय टीचर्स बेसिक सेन्टर, कोयम्बटूर, नई तालीम भवन, सेवाग्राम, ग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग सेन्टर, बम्बई; सर्वोदय महाविद्यालय, तर्की, बिहार; विद्या भवन, उदयपुर; तथा विद्या-भवन, शान्ति-निकेतन।

उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय

राज्य-सरकारो द्वारा उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय स्थापित किये गये है। इन प्रशिक्षण विद्यालयो से एक 'प्रदर्शन स्कूल' (Demonstration School) सम्बन्धित होता है। इनके उद्देश्य निम्नांकित है :—

१ बेसिक स्कूलो के लिए अध्यापको, निरीक्षको एव निर्देशको को तैयार करना।

२. बेसिक शिक्षा-योजना मे कार्य करने के लिए प्रशासको तथा आयोजको को प्रशिक्षित करना।

३ पूर्व-बेसिक तथा उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालयो को बेसिक ट्रेनिंग स्कूलो के लिये अध्यापको को तैयार करना।

४. बेसिक शिक्षा के क्षेत्र मे नये अनुसन्धान तथा परीक्षण करना।

५ बेसिक विद्यालयो मे शिक्षण के लिए नवीन विधियो की खोज करना।

६ शिक्षण के लिए सहायक सामग्री तैयार करना, यथा—पुस्तके, मॉडल, चार्ट और श्रव्य तथा दृश्य साधन।

७ बेसिक शिक्षको की ज्ञान-वृद्धि के लिए उपयुक्त पुस्तकें तथा पढने योग्य अन्य साहित्य प्रकाशित करना।

८ बेसिक शिक्षको, निरीक्षको एव अन्य शिक्षाधिकारियो द्वारा अनुभव की जाने वाली कठिनाइयो को दूर करना।

उपरिकथित योजना के अनुसार—अब तक भारत के अनेक राज्यो मे उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय खोले गये है, यथा—आसाम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर-प्रदेश, पजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमालय प्रदेश, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, मैसूर, हैदराबाद और सौराष्ट्र। इन राज्यो मे प्राय सभी प्रशिक्षण-विद्यालय राजकीय है, परन्तु कुछ व्यक्तिगत सस्थाएँ भी उनमे सम्मिलित कर ली गई हैं, यथा—जामिया-मिलिया इस्लामिया टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, दिल्ली, विद्याभवन, उदयपुर, और श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय, टीचर्स बेसिक सेन्टर, कोयम्बटूर।

योजना के अन्तर्गत उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयो के अतिरिक्त, पूर्व-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों का भी निर्माण किया गया है।

बेसिक शिक्षा की समस्यायें व कठिनाइयाँ

बेसिक शिक्षा-योजना १९३८ मे भारत के विभिन्न प्रान्तो मे क्रियान्वित की गई थी। उस समय से लेकर आज तक एक लम्बी अवधि व्यतीत हो चुकी है, परन्तु बेसिक शिक्षा की उतनी प्रगति नही हुई है, जितनी कि आशा थी। यद्यपि बेसिक शिक्षा-प्रणाली प्राचीन शिक्षा-पद्धति से कहीं उत्तम है, तथापि इसके परिणाम सुन्दर

नही निकले हैं ।[1] इसके अतिरिक्त, बेसिक शिक्षा को लोकप्रियता भी प्राप्त नही हुई है ।[2] इन सब बातो का कारण यह है कि बेसिक शिक्षा की अनेक समस्याएँ हैं, अनेक कठिनाइयाँ है । जब तक इन समस्याओ का समाधान नही किया जायगा, और जब तक बेसिक शिक्षा के मार्ग मे रोडे अटकाने वाली कठिनाइयो को दूर नही किया जायगा, तब तक न तो संतोषजनक परिणाम ही निकलेंगे, और न बेसिक शिक्षा की प्रगति ही होगी । हम इन समस्याओ तथा कठिनाइयों पर नीचे प्रकाश डाल रहे है :—

१. सरकार की उदासीनता

प्राथमिक अथवा बुनियादी शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा-संरचना का आधार है । इसी आधार पर शिक्षा के विशाल भवन का निर्माण किया जाता है । इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के बावजूद भी प्राथमिक शिक्षा का विकास तथा संगठन करना सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है, परन्तु इस दिशा मे कोई भी रचनात्मक कदम नही उठाया गया है । १६५० के भारतीय संविधान मे यह बात लेखबद्ध कर दी गई है कि १० वर्ष के अन्दर ६ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग के बालकों तथा बालिकाओ के लिये सरकार की ओर से निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कर दी जायगी । परन्तु खेद है कि इसके लिये कोई ठोस प्रयत्न नही किया गया है । जो कार्य-क्रम सरकार द्वारा बनाये गये है, उनके आधार पर यह आशा की जाती है कि १६७०-७१ तक ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के ६२'२ प्रतिशत, तथा ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग के ४७'४ प्रतिशत बच्चो के लिये शिक्षा-सुविधायें प्राप्त होगी ।[3] सरकार की इस प्रत्यक्ष असफलता का प्रमुख कारण यह है कि उसने प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता की नीति का अनुसरण किया है । जबकि विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा के विकास एवं विस्तार तथा उसकी समस्याओ के समाधान के लिये सुझाव देने के उद्देश्य से आयोगों की नियुक्ति की गई है, प्राथमिक बेसिक शिक्षा के लिये इस प्रकार का कोई कार्य नही किया गया है । स्पष्ट रूप से सरकार ने अपने एक पुनीत कर्त्तव्य की अवहेलना की है और अपने एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का पालन नहीं किया है ।

---

1. "While the superiority of Basic over the old system is admitted by almost everyone, results have not always been commensurate with the hopes entertained about the system."

—*Progress of Education in India* (1947-52), p. 27.

2. "The masses have not much liking for it."—D. Muzumdar : "Nai Talim in the Crucible", *Modern Review*, April, 1955, p. 312.

३. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २२२ ।

२ बेसिक शिक्षा प्रणाली से जनता की अनभिज्ञता

अपने दीर्घकालीन अस्तित्व के कारण सामान्य शिक्षा पद्धति से भारतीय पूर्णत अवगत हो चुके हैं और उसके गुण दोषो को भली प्रकार समझते हैं। परन्तु १९३७ मे प्रतिपादित बेसिक शिक्षा-प्रणाली से जन-साधारण का पूर्ण परिचय प्राप्त नही हुआ है। सरकार ने इस देश की अधिकाश निरक्षर जनता का ध्यान बेसिक शिक्षा की विधियो एव उससे होने वाले लाभो की ओर किसी भी प्रकार के प्रचार द्वारा आकर्षित नही किया है। यही कारण है कि कुछ क्षेत्रो म जनता ने बेसिक शिक्षा का घोर विरोध किया है।[1] ऐसी परिस्थिति मे बेसिक शिक्षा के प्रसार एव उसकी लोकप्रियता का प्रश्न ही नही उपस्थित होता।

३ बेसिक शिक्षा की गलत धारणा

बेसिक शिक्षा का सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय गाधी जी का मुख्य उद्देश्य यह था कि बालक को किसी लाभप्रद हस्तशिल्प के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाय। बेसिक शिक्षा-योजना को कार्यान्वित करने वाले व्यक्ति महात्मा जी के इस आदर्श को विस्मृत कर चुके हैं। लगभग सभी बेसिक स्कूलो मे कताई पर बल दिया जाता है, और प्रत्येक विषय के शिक्षण की अवधि कठोरतापूर्वक निश्चय कर दी गई है। फलत, अध्यापको एव छात्रो को वह स्वतन्त्रता नही प्राप्त है, जिसके लिये महात्मा गाधी अपनी योजना मे प्रयत्नशील थे। ऐसी दशा मे बेसिक शिक्षा को लाभ होने की अपेक्षा हानि होने की ही अधिक सम्भावना है।

४. उच्च वर्ग के व्यक्तियो का दृष्टिकोण

भारत मे समाजवादी समाज की स्थापना का नारा हमारे नेतागणो द्वारा बुलन्द किया जा रहा है। वे तथा अन्य धनी-मानी व्यक्ति बेसिक शिक्षा का गुणगान करते हैं और उसके प्रसार के लिये लम्बे-लम्बे व्याख्यान देते हैं। परन्तु जब स्वय उनके बच्चो की शिक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है, तब वे उन्हे बेसिक प्राथमिक स्कूल मे न भेजकर किसी उत्तम व्यक्तिगत सस्था अथवा पब्लिक स्कूल मे भेजते हैं, और इस प्रकार की सस्थाओ का आये दिन शिलान्यास होता है। जब तक यह वर्ग-भेद समाप्त न होगा, जब तक देश के धनी व्यक्तियो, निर्धन कृषको एवं दरिद्र श्रमिको के बच्चे एक साथ एक ही प्रकार के प्राथमिक स्कूलो मे अध्ययन नही करेंगे, तब तक बेसिक शिक्षा-योजना की सफलता का विचार कल्पना मात्र रहेगा। केवल निम्न वर्गों के लिये इस योजना को उपयुक्त बताना—एक हास्यास्पद तथा लज्जा-जनक बात है।

---

1 "In some cases, the introduction of Basic education appears to have met with resistance from the people and the teaching profession"—*Progress of Education in India* (1947-52), p 27

५ अभिभावको का दृष्टिकोण

बेसिक शिक्षा के प्रति अभिभावको मे किसी प्रकार का उत्साह परिलक्षित नही होता है। उनका कथन है कि वे अपने बच्चो को स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से भेजते है, न कि कताई व बुनाई और गुडाई व निकाई के लिये। ये कार्य तो वे घर पर ही कर सकते हैं और अपने इस कार्य से माता-पिता का हाथ भी बँटा सकते हैं। अत उन्हे स्कूल भेजना व्यर्थ है। जब अभिभावको का बेसिक शिक्षा के प्रति यह दृष्टिकोण है, तब उसकी प्रगति की आशा करना ही व्यर्थ है।

६ शिक्षको का अभावग्रस्त जीवन

बेसिक स्कूलों के अध्यापको को इतना अल्प वेतन मिलता है कि सुख-सुविधा की वस्तुओ को जुटाने की बात तो दूर रही, वे अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओ को भी पूर्ण करने मे असमर्थ रहते हैं। इन असतुष्ट एव अर्द्ध-क्षुधित अध्यापको से बेसिक शिक्षा की कठिन प्रणाली को कठिन परिश्रम करके चलाने की आशा की जाती है, यह कितनी हास्यास्पद बात है। जब तक बेसिक विद्यालयो के अध्यापको की आर्थिक दशा मे सुधार नही किया जायगा, तब तक बेसिक शिक्षा की योजना केवल परिहास का ही कारण रहेगी।

७ स्कूल-भवनो का अभाव

बेसिक शिक्षा की असफलता का एक अन्य कारण यह भी है कि स्कूलो के लिए उपयुक्त भवनो का अभाव है। अनेक स्कूल-भवन ऐसे है, जिनकी छतें बरसात में टपकती हैं, जिनमे छात्रो के बैठने के लिये पर्याप्त स्थान नहीं है और जो अस्वस्थ एवं अस्वच्छ वातावरण मे स्थित हैं। कितने ही ग्रामीण विद्यालय टूटे-फूटे खडहरो व पुरानी झोपडियो मे चलते है। ऐसे विद्यालयो के छात्रो को वर्ष के अधिकाश भाग मे वृक्षो की शरण लेनी पडती है और प्रकृति के प्रतिकूल थपेडो को सहन करना पडता है। ऐसी दशा मे बेसिक शिक्षा मे न तो छात्रो की रुचि ही उत्पन्न हो सकती है और न शिक्षा का स्तर ही ऊँचा उठ सकता है।

८. अन्य समस्याएँ एव कठिनाइयाँ

बेसिक शिक्षा की अन्य समस्याएँ व कठिनाइयाँ अग्रलिखित हैं · (१) प्रशिक्षण का भारी व्यय, (२) ग्रामीण जनता की निर्धनता एव निरक्षरता, (३) उपयुक्त पाठ्य-पुस्तको तथा शिक्षण-सामग्री का अभाव, (४) दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम, और (५) स्थानीय संस्थाओ की घृणास्पद राजनीति।

यदि बेसिक शिक्षा-योजना को सम्पूर्ण भारत मे क्रियान्वित किया जाना है और साथ ही बेसिक-शिक्षा मे कार्य-क्रम को सफल बनाना है, तो हमे बेसिक-शिक्षा को उपर्युक्त समस्याओ तथा कठिनाइयो से मुक्त करना पडेगा। इस विशाल कार्य को केवल सरकार ही सम्पन्न नही कर सकेगी, जनता को भी सरकार के साथ कधे-से-कधा

मिलाकर कार्य मे संलग्न होना पडेगा। तभी राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की बेसिक शिक्षा-योजना को सफलता प्राप्त होगी।

बेसिक शिक्षा का विहंगावलोकन

बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। बेसिक शिक्षा मे प्रगति तो अवश्य हुई है, परन्तु उसे उत्साहवर्द्धक नही कहा जा सकता है। बेसिक प्राथमिक शिक्षा को और भी अधिक सम्पन्न बनाने, प्राथमिक स्कूलो को बेसिक स्कूलो मे परिणत करने तथा सामान्य और बेसिक विद्यालयो के भेद-भाव को कम करने के लिये एक राष्ट्रीय कार्य-क्रम तैयार किया गया है। इस कार्यक्रम की दो प्रमुख विशेषतायें ये हैं कि—(१) इसके लिये न तो अधिक धन की आवश्यकता है, और (२) न उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो की।

नवीन जूनियर एवं सीनियर बेसिक स्कूलो को प्रारम्भ करने तथा सामान्य शिक्षा के स्कूलो और अध्यापक-प्रशिक्षण-विद्यालयो को बेसिक ढङ्ग मे परिणत करने एवं नवीन बेसिक अध्यापक-प्रशिक्षण-सस्थाओ का निर्माण करने के साथ-साथ परवर्ती-बेसिक क्षेत्र के सुधार की ओर भी ध्यान दिया गया है। १९५८-५९ में एक योजना क्रियान्वित की गई, जिसके अन्तर्गत स्वैच्छिक संघटनों एवं राज्य-सरकारो को नवीन परवर्ती बेसिक स्कूल, जिनमे माध्यमिक शिक्षा दी जा सके और वर्तमान माध्यमिक बेसिक स्कूलो मे सुधार करने तथा सीनियर बेसिक स्कूलो मे उच्च कक्षाओ की व्यवस्था करने के लिये आर्थिक सहायता दी गई। इस योजना के अतिरिक्त, पोस्ट-बेसिक स्कूल भी स्थापित किये गए है, जिससे कि जूनियर और बेसिक सीनियर स्कूलो म अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद छात्र बेसिक प्रणाली पर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर सकें।[1]

"राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा-सस्था' अपने आरम्भिक काल, फरवरी १९५६ से ही प्रशिक्षण, अनुसन्धान एव साहित्य प्रकाशन के कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर रही है। इस सस्था ने बच्चो की पुस्तको की पुरस्कार प्रतियोगिता, बच्चो की पुस्तको के लेखको को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से 'साहित्य रचनालयो (Literacy Workshops) के आयोजन एव बच्चा के निमित्त आदर्श पुस्तको के प्रकाशन की योजनाओ के साथ-साथ, बेसिक शिक्षा के अध्यापको एवं छात्रो के लिए उपयोगी साहित्य और टीकाओ, सहायक पाठ्य-सामग्री तथा मूलाधार पुस्तको के उत्पादन की योजनाओ का भी श्रीगणेश कर दिया है।[2]

बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित सुधार अभी तक ग्रामीण क्षेत्रों मे ही किये गये हैं। सरकार नागरिक क्षेत्रा मे भी बेसिक शिक्षा का विस्तार करने की चेष्टा कर रही है।

1. *India*, 1969, p 65.
2 *Ibid.*

सरकार ने दिल्ली मे एक 'केन्द्रीय बेसिक स्कूल' स्थापित किया है जिससे कि वह नागरिक क्षेत्रो के बेसिक स्कूलो के लिए उदाहरणस्वरूप हो और उन्हे यह दिखा सके कि वे कितनी उन्नति कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त देश के पब्लिक स्कूलो मे शिक्षा की बेसिक प्रणाली को क्रियान्वित करने के प्रश्न पर विचार करने हेतु एक विशेष समिति की नियुक्ति हो चुकी है।

पचवर्षीय योजनाओ के अन्तगत बेसिक शिक्षा को जो प्रोत्साहन दिया गया है उसके फलस्वरूप देश म इस शिक्षा की सुविधाओ म पर्याप्त विस्तार हुआ है। नये बेसिक स्कूलो की अति विशाल सख्या की स्थापना की गई है, और गैर बेसिक स्कूलो को बेसिक स्कूलो म परिणत करने का काय अति तीव्र गति से चल रहा है। अनेक प्राथमिक विद्यालयो म हस्त शिल्प का शिक्षण इसलिये प्रारम्भ कर दिया गया है, जिससे कि उनको बेसिक स्कूलो म सरलता से परिवर्तित किया जा सके। बेसिक प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापको की माँग की पूर्ति करने के लिये नये बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय निर्मित किये गये है और विद्यमान प्रशिक्षण सस्थाओ म छात्राध्यापको की सख्याओ म वृद्धि कर दी गई है। जो शिक्षक परम्परागत विधि से प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं, उनको लाभान्वित करने के लिए बेसिक प्रशिक्षण-सस्थाओ मे अल्पकालीन प्रशिक्षण योजना कार्यान्वित कर दी गई है।

बेसिक शिक्षा के प्रसार म केन्द्रीय सरकार ने अति सराहनीय काय किये है। हम उनका वणन अधोलिखित शीर्षको म कर रहे हैं —

१. पोस्ट-बेसिक शिक्षा—केन्द्रीय सरकार ने पोस्ट-बेसिक विद्यालयो के निर्माण और प्रगति के लिए एक योजना का निर्माण किया है। इसके अनुसार राज्य सरकारो को इस प्रकार के विद्यालयो का सम्पूर्ण व्यय और व्यक्तिगत सगठनो को व्यय का ६० प्रतिशत केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया जाता है।

२ परिवर्तन का कायक्रम—सन १९५९ म ११ मई से १३ मई तक इलाहाबाद मे प्राथमिक विद्यालयो को बेसिक रूप प्रदान करने के लिए एक राष्ट्रीय सेमिनार हुआ जिसमे सभी राज्यो के शिक्षा सचालको ने भाग लिया। सेमिनार मे प्राथमिक विद्यालयो को बेसिक स्कूलो म परिणत करने की समस्याओ पर विचार किया गया और उन समस्याओ के समाधान हेतु सुझाव भी दिये गए। सेमिनार ने इस बात की सिफारिश की कि तृतीय योजना के अन्त तक प्राथमिक विद्यालयो को बेसिक स्कूलो म परिणत करने का काय समाप्त कर दिया जाय।

३ बेसिक शिक्षा के लिए साहित्य एव अन्य सामग्री का निर्माण—बेसिक शिक्षा के लिए उपयुक्त साहित्य एव अन्य वाछित सामग्री का निर्माण करने के लिए ठोस कदम उठाये जा रहे है। इस काय पर प्रति वष लगभग एक लाख रुपया व्यय किया जा रहा है। इस काय के अन्तगत अब तक शिक्षको के लिए ६ निर्देशन पुस्तकें (Guide Books) चुनी जा चुकी है और बालको के लिए सामान्य विज्ञान पर २५ पुस्तको का प्रकाशन किया जा चुका है। इस काय के अन्तगत विभिन्न हस्तशिल्पो की शैक्षिक सम्भावनाओ पर पाच शोध योजनाओ (Research Projects) पर काम हो चुका है।

४ सेन्ट्रल बेसिक स्कूल, नई दिल्ली—नई दिल्ली में उच्चतर माध्यमिक-स्तर का एक नगरीय बेसिक स्कूल स्थापित करने का प्रस्ताव है। इस स्कूल का निर्माण करने का उत्तरदायित्व दिल्ली की 'गांधी स्मारक निधि' को दिया गया है।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का भार राज्य-सरकारो पर है। 'अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा-परिषद्'—केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो को प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी परामर्श देती है। प्राथमिक शिक्षा का उन्नयन करने के लिये 'राज्य-शिक्षा-संस्थानो' की स्थापना की गई है। लगभग सभी राज्यो में प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम लागू कर दिये गये हैं। १९७३-७४ मे ६-१४ वय-वर्ग के ८६ ८ करोड बच्चो को दाखिला दिया जायगा।

बेसिक शिक्षा—'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' देश में बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करने की सिफारिश की। १९४८ की 'खेर-समिति' ने योजना-सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये। अत १९५० से पूर्व ही भारत-सरकार ने देश मे बेसिक शिक्षा की योजना को लागू कर दिया।

बेसिक शिक्षा की प्रगति—प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्त मे ६ से ११ वर्ष वाले वय वर्ग के लगभग ५० प्रतिशत और द्वितीय योजना मे लगभग ६० प्रतिशत बच्चो को शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो गई। तृतीय योजना मे ५७, ७६० प्राथमिक विद्यालयो को बेसिक स्कूलो में परिवर्तित किया गया। केन्द्रीय सरकार बेसिक शिक्षा की प्रगति मे योग दे रही है। वह राज्य-सरकारो द्वारा बेसिक शिक्षा पर किये गये व्यय का ३० प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप मे देती है।

बेसिक शिक्षको का प्रशिक्षण—बेसिक शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये प्रत्येक राज्य मे राजकीय बेसिक ट्रेनिंग स्कूल और कॉलेज है। कुछ व्यक्तिगत संस्थायें भी इस दिशा मे कार्य कर रही है। कुछ राज्यो में उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय भी स्थापित किये गये है।

बेसिक शिक्षा की समस्याएँ व कठिनाइयाँ—(१) सरकार की उदासीनता, (२) बेसिक शिक्षा प्रणाली से जनता की अनभिज्ञता, (३) बेसिक शिक्षा की गलत धारणा, (४) उच्च वर्ग के व्यक्तियो का दृष्टिकोण, (५) अभिभावको का दृष्टिकोण, (६) शिक्षको का अभावग्रस्त जीवन, (७) स्कूल भवनो का अभाव, (८) प्रशिक्षण का भारी व्यय, (९) ग्रामीण जनता की निर्धनता एव निरक्षरता, और (१०) दोषपूर्ण पाठ्य क्रम तथा पाठ्य-पुस्तको का अभाव।

TEST QUESTIONS

1 How has the Government of India tried to tackle the various problems connected with the Basic Education during the last five years ?

पिछले पाँच वर्षों में भारत-सरकार ने बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिये क्या प्रयास किये हैं ?

2. "While the superiority of Basic System over the old system is admitted by almost everyone, results have not always been commensurate with the hopes entertained about the system." Comment on the statement and give reasons in support of your answer.

"यद्यपि बेसिक प्रणाली को प्राचीन प्रणाली से सभी व्यक्तियों द्वारा श्रेष्ठ माना जाता है, पर इस प्रणाली के परिणाम सदैव आशाओं के अनुरूप नहीं हुए है।" इस कथन की आलोचना कीजिये और अपने उत्तर की पुष्टि में कारण दीजिये।

२२

माध्यमिक शिक्षा और उसके दोष
(१९४७–१९७१)

प्रस्तावना

हमारे देश मे माध्यमिक शिक्षा का समुचित संगठन किया जाना अति आवश्यक है, क्योकि शिक्षा का व्यक्तियो की सामाजिक, सास्कृतिक एवं आर्थिक दशाओ पर अत्यधिक व्यापक प्रभाव पडता है। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए स्वतन्त्र भारत मे समितियो एव आयोगो की नियुक्तियाँ की गई, जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित है :—

१. **ताराचन्द समिति**[1] (१९४८)—इस समिति की अनेक सिफारिशो मे से एक महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि माध्यमिक स्कूल बहुमुखी (Multilateral) होने चाहिये, परन्तु स्थानीय परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए एक-मुखी (Unilateral) स्कूलो को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। 'समिति' की एक सिफारिश यह भी थी कि माध्यमिक शिक्षा की समस्याओ की जाँच करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की जाय।

२. **विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग**[2] (१९४८-४९)—इस *'आयोग'* का प्रमुख उद्देश्य—विश्वविद्यालय-शिक्षा की जाँच करना था, परन्तु इसने माध्यमिक शिक्षा का भी परीक्षण किया और अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। *'आयोग'* के मतानुसार शिक्षा की सम्पूर्ण संरचना मे माध्यमिक शिक्षा सबसे 'निर्बल कडी' (Weakest Link) थी। *'आयोग'* ने कहा कि स्कूल या इण्टरमीडिएट कॉलेज मे १२ वर्ष अध्ययन करने के

---

1. Tarachand Committee.
2. University Education Commission.

उपरान्त ही छात्रो को विश्वविद्यालय मे प्रवेश करने की अनुमति दी जाय। इस *आयोग का विस्तृत वर्णन आगे किया जायेगा।*

३. माध्यमिक शिक्षा-आयोग[1] **(१९५२-५३)**—'ताराचन्द समिति' और 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' की सिफारिशो के फलस्वरूप 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की गई, जिसने माध्यमिक शिक्षा का अध्ययन किया और उसके सुधार के सम्बन्ध मे बहुमूल्य सुझाव दिये। इस आयोग का विस्तृत वर्णन अध्याय २३ मे किया जायगा।

माध्यमिक विद्यालयों के प्रकार

इस समय भारत के विभिन्न राज्यो मे विभिन्न प्रकार के विद्यालय दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमे माध्यमिक शिक्षा प्रदान की जाती है, यथा—मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, उच्चतर माध्यमिक स्कूल, टेकनिकल स्कूल, बहुउद्देशीय स्कूल (Multi-Purpose Schools), सीनियर बेसिक स्कूल, उत्तर-बेसिक स्कूल (Post-Basic Schools), और इण्टरमीडिएट कॉलेज।

इस समय देश मे माध्यमिक शिक्षा के २६,८८३ उपविभाग (Sections) हैं। इनमें से २६'८१ प्रतिशत ऐसे स्कूलो से हैं, जिनमे केवल माध्यमिक शिक्षा दी जाती है; ४८'६४ प्रतिशत ऐसे स्कूलो मे हैं, जिनमे केवल मिडिल और माध्यमिक स्तर की शिक्षा दी जाती है, और २४'५४ प्रतिशत ऐसे स्कूलो मे है, जिनमे प्राथमिक, मिडिल और माध्यमिक शिक्षा दी जाती है।[2]

माध्यमिक शिक्षा का प्रसार

भारत मे माध्यमिक शिक्षा का प्रसार अति तीव्र गति से हुआ है। इसकी पुष्टि निम्नांकित तालिका से दी जाती है[3] :—

वर्ष	स्कूल-संख्या	छात्र-संख्या	शिक्षक-संख्या	व्यय (करोड़ रुपये मे)
१९५०–५१	२०,८८४	५२,३२,००९	२,१२,०००	३०'७४
१९५५–५६	३२,५६८	८५,२६,५०९	३,३८,१८८	६२'०२
१९६०–६१	६६,९२०	१,८१,२२,३५६	६,४१,६८९	१११'८३
१९६१–६२	७५,२२१	२,०५,६५,७३९	७,१२,५९०	१२७'९६
१९६२–६३	८२,८१७	२,२६,७०,११६	७,९०,०७१	१४७'०५
१९६३–६४	८८,५८४	२,४७,३९,६६९	८,५२,००७	१६६'८८
१९६४–६५	९६,१५०	२,५२,९५,०००	८,८९,७५०	१८४'३३
१९६५–६६	१,२०,१५०	२,५८,०५,७३९	—	—

1. Secondary Education Commission.
2. *Second All-India Educational Survey*, p. 58.
3. *India*, 1969, p. 64.

केन्द्रीय सरकार और माध्यमिक शिक्षा

केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन एव सुधार के लिये ठोस कदम उठा रही है। 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार सरकार ने १९५५ मे 'अखिल भारतीय माध्यमिक परिषद्'[1] की स्थापना की। इसका प्रमुख उद्देश्य—माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करना और इस शिक्षा के सम्बन्ध मे केन्द्रीय एव राज्य-सरकारो को परामर्श देना है। माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये दिल्ली मे स्थित 'सेन्ट्रल इस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन'[2] का विस्तार किया गया है। माध्यमिक विद्यालयो की पाठ्य पुस्तको मे सुधार करने के निमित्त दिल्ली मे 'केन्द्रीय पाठ्य पुस्तक अनुसधान ब्यूरो'[3] की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त अग्रजी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के विचार से १९५८ मे हैदराबाद मे 'सेन्ट्रल इस्टीट्यूट ऑफ इगलिश'[4] स्थापित किया गया है। इस सस्था मे अग्रेजी शिक्षण के सम्बन्ध मे अनुसन्धान-कार्य और शिक्षको का प्रशिक्षण किया जाता है।[5]

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने के लिये केन्द्रीय सरकार १९६४-६५ से विज्ञान शिक्षण, विज्ञान शिक्षको के प्रशिक्षण और पुस्तकालयो की सम्पन्नता पर विशेष बल दे रही है। 'नेशनल इस्टीटयूट ऑफ एजूकेशन' मे 'विज्ञान-विभाग' की स्थापना की गई है, जो माध्यमिक स्कूलो मे विज्ञान शिक्षण के लिये उचित पाठ्य क्रम, पाठय पुस्तको, उपकरणो और शिक्षण विधियो आदि के बारे मे नवीन खोज करता रहता है।[6]

पचवर्षीय योजनाओ मे माध्यमिक शिक्षा

'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध मे जो ढाँचा बनाया था, उसे कार्यान्वित करने का कार्य पचवर्षीय योजनाओ म प्रारम्भ कर दिया गया है। चतुथ योजना मे इस कार्य के लिये १,२१० करोड रुपये की धन राशि निर्धारित की गई है, जबकि तृतीय, द्वितीय तथा प्रथम योजना मे यह धन राशि क्रमश ८८ करोड, ४८ करोड और २० करोड थी।[7] इस प्रकार यह आशा की जाती है कि माध्यमिक शिक्षा का नवीकरण एक कदम और आग बढेगा। अन्य कार्य-क्रमो मे इस समय वतमान हाई स्कूलो का एक अनुपात उच्चतर माध्यमिक स्कूलो तथा

1 All India Council for Secondary Education
2 Central Institute of Education
3 Central Bureau of Text-Book Research
4 Central Institute of English
5 *Hindustan Year-Book*, 1970, p 181
6 *21st Year of Freedom*, p 124
7 चौथी पचवर्षीय योजना, पृ० २२१।

बहु-उद्देशीय स्कूलो मे परिणत किया जायगा तथा नये बहु-उद्देशीय स्कूलो की स्थापना की जायगी। प्रथम तथा द्वितीय योजना-काल मे २,११५ बहु-उद्देशीय विद्यालयो के निर्माण का आयोजन किया गया था।[1] तृतीय योजना के अन्त मे इन विद्यालयो की संख्या ३९०७ थी।[2]

द्वितीय योजना मे माध्यमिक विद्यालयो मे विज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है। इस योजना की समाप्ति पर १४,००० माध्यमिक विद्यालयो मे से ११,५०० मे विज्ञान की शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हो चुकी है।[3] तृतीय योजना-काल मे सभी माध्यमिक स्कूलो मे सामान्य-विज्ञान के अनिवार्य विषय की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त २१,८०० माध्यमिक स्कूलो मे से ९,५०० से अधिक मे विज्ञान ऐच्छिक विषय के रूप मे भी पढाया जाने लगा।

माध्यमिक शिक्षा का विहंगावलोकन

१९५२ के 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की सिफारिशो और 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' के परामर्श के अनुसार भारत-सरकार ने यह निश्चय किया कि माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार का होगा —

१. ८ वर्ष की एकीकृत प्राथमिक बेसिक शिक्षा।
२. ३ या ४ वर्ष की विविध पाठ्यक्रमो (Diversified Courses) की माध्यमिक शिक्षा।
३. हायर सेकण्डरी के बाद प्रथम डिग्री (बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० कॉम०) प्राप्त करने के लिये ३ वर्ष की विश्वविद्यालय-शिक्षा।[4]

उत्तर प्रदेश, गुजरात, मद्रास, केरल और नागादेश के अतिरिक्त सभी राज्य माध्यमिक शिक्षा को उपरोक्त स्वरूप के अनुसार पुनर्गठित करने के लिये प्रयत्नशील हैं। पर सब राज्यो को आर्थिक और प्रशासकीय कठिनाइयो तथा प्रशिक्षित अध्यापको के अभाव के कारण समान सफलता प्राप्त नही हुई है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से हो जाती है कि १९६४-६५ के कुल २५,०१७ माध्यमिक विद्यालयो मे केवल ६,१२८ उच्चतर माध्यमिक स्कूल थे। इन सब विद्यालयो मे १९५५-५६ मे छात्रो की संख्या २९ लाख से बढकर १९६५-६६ मे ५४ लाख हो गई।[5] १९६९-७० में मिडिल स्कूलों मे ९ लाख ४० हजार और हाई व हायर सेकण्डरी स्कूलो मे ५ लाख

1. संक्षिप्त तीसरी पंचवर्षीय योजना, पृ० १५१।
2. *The Times of India Directory & Year-Book*, 1967, p 142.
3. तीसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० ९९।
4. *India*, 1969, p 64.
5. *Ibid*.

३० हजार नये दाखिलो का लक्ष्य रखा गया है।[1] १९७३-७४ मे ९वी से ११वी कक्षाओ तक ३ लाख ८० हजार नये दाखिलो की आशा है।[2]

'शिक्षा-आयोग' ने विश्वविद्यालय की प्रथम डिग्री प्राप्त करने के लिये १५ वर्ष (१० वर्ष की हाई स्कूल शिक्षा २ वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और ३ वर्ष की प्रथम डिग्री की शिक्षा) की अवधि निश्चित की है।[3] कुछ राज्यो ने 'शिक्षा आयोग' द्वारा निर्धारित की जाने वाली यह अवधि स्वीकार कर ली है और वे चौथी योजना के अन्त तक अपनी शिक्षा-संस्थाओ मे प्रदान की जाने वाली शिक्षा को इसके अनुरूप बना देंगे।[4]

उपरोक्त छात्र सख्याओ से विदित हो जाता कि माध्यमिक स्तर की शिक्षा का काफी विस्तार हुआ है। पर अब सरकार द्वारा शिक्षा के विस्तार की अपेक्षा शिक्षा के स्तर को सुधारने पर अधिक बल दिया जा रहा है। शिक्षा सुधार की योजनाओ के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को विविध रूपी बनाने के लिये अब तक देश के विभिन्न भागो मे लगभग ४००० बहु-उद्देशीय विद्यालयो की स्थापना की जा चुकी है।

सरकार माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप को इस प्रकार पुनर्गठित करने का प्रयास कर रही है जिससे कि उसका प्रमुख लक्ष्य—कृषि एव औद्योगिक क्षेत्रा के लिये कुशल व्यक्ति तैयार करना हो जाय। इस लक्ष्य को सामने रखकर व्यावसायिक शिक्षा को सबसे अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। छात्रो का शैक्षिक एव व्यावसायिक मार्ग प्रदशन करने के लिये अनेक राज्यो मे 'शैक्षिक एव व्यावसायिक मार्ग प्रदशन राज्य कार्यालयो'[5] की स्थापना की जा चुकी है।[6] केन्द्रीय सरकार इन कार्यालयो को और जहाँ ये नही हैं, वहाँ इनको स्थापित करने के लिये शत प्रतिशत आधार पर वित्तीय सहायता देती है।

विज्ञान की शिक्षा पर पहले से अधिक बल दिया जा रहा है। माध्यमिक विद्यालयो के विज्ञान के अध्यापको को पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से अध्ययन करने और 'ग्रीष्मकालीन सस्थाना' (Summer Institutes) म भाग लेने के लिये प्रोत्साहन

---

1 नवभारत टाइम्स ३० अगस्त, १९६९।

2 *Hindustan Times*, 21 April, 1969

3 *India* 1969, p 64

4 *Hindustan Times*, 21 April, 1969

5 State Bureaux of Educational & Vocational Guidance

6 *Hindustan Year-Book*, 1970, p 181

दिया जा रहा है, जिससे उनके ज्ञान और पढाने की कुशलता मे वृद्धि हो। 'राष्ट्रीय शिक्षा-अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्'[1] ने 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' एवं 'संयुक्त राज्य-सहायता-कोष' के सहयोग से १९६७-६८ मे देश के विभिन्न भागो मे विज्ञान के विभिन्न विषयो मे ५६ ग्रीष्मकालीन संस्थानो का आयोजन किया, जिनसे लगभग २८,००० शिक्षक लाभान्वित हुए।[2]

विज्ञान की शिक्षा मे सुधार करने के लिये केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकारो को माध्यमिक विद्यालयो की प्रयोगशालाओ को पूर्ण रूप से सुसज्जित करने, विज्ञान के शिक्षको को प्रशिक्षण देने और 'राज्य-विज्ञान-शिक्षा-संस्थाओ'[3] की स्थापना करने मे होने वाले व्यय का आधा भार वहन करती है। अब तक ११ राज्यो मे 'राज्य-विज्ञान-शिक्षा-संस्थाओ' की स्थापना हो चुकी है।[4]

'राष्ट्रीय शिक्षा-अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिषद्'—अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर और मैसूर के 'प्रादेशिक कॉलेजो' (Regional Colleges) का संचालन करती है। इन कॉलेजो के मुख्य कार्य हैं—बहु-उद्देशीय विद्यालयो के लिये शिक्षको को तैयार करना, विस्तार-सेवाओ (Extension Services) के लिये प्रादेशिक केन्द्रो के रूप मे कार्य करना, विज्ञान के शिक्षको के ज्ञान एवं कुशलता मे वृद्धि करना, शिक्षक-प्रशिक्षण की व्यवस्था करना और अप्रशिक्षित अध्यापको के लिये पत्राचार-पाठ्यक्रम का आयोजन करना।[5]

उक्त 'परिषद्' ने पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षा-सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करने का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 'परिषद्' ने १९६७-६८ मे ३१ आदर्श पाठ्य-पुस्तको का प्रकाशन किया एव निकट भविष्य मे इस प्रकार की २५ पुस्तकें और प्रकाशित होने वाली है। अहिन्दी क्षेत्रो के लिये हिन्दी की पाठ्य-पुस्तको को प्रकाशित करने की योजना 'परिषद्' के विचाराधीन है।[6]

देश मे कुछ वर्षों से 'केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय' द्वारा स्थापित किये गये 'केन्द्रीय विद्यालय' कार्य कर रहे हैं। ये सावास उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं। इनमे विशेष रूप से सैनिक और केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो के बच्चो को प्रवेश मिलता है। इन स्कूलो मे अंग्रेजी और हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाती है और सभी स्कूलो का पाठ्यक्रम एक-सा है। इन स्कूलो के छात्रो के लिये 'अखिल भारतीय

1. National Council of Educational Research & Training, (NCERT).
2. *21st Year of Freedom*, p. 124.
3. State Institutes of Education.
4. *21st Year of Freedom*, p. 121.
5. *Ibid*, p. 121.
6. *Ibid*, p. 124.

उच्चतर माध्यमिक परीक्षा' की व्यवस्था की गई है, जिसकी व्यवस्था दिल्ली मे स्थापित 'केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा-बोर्ड'[1] द्वारा की जाती है। केन्द्रीय विद्यालयो के संचालन और प्रशासन का भार 'केन्द्रीय विद्यालय संगठन' नामक समिति पर है। इस समय सम्पूर्ण देश मे ११८ केन्द्रीय विद्यालय हैं, जिनमे ५७,००० छात्र और छात्रायें शिक्षा ग्रहण कर रही हैं।[2]

माध्यमिक परीक्षा-प्रणाली मे सुधार करने के लिये लगभग सब राज्यो मे 'मूल्यांकन यूनिटों' (Evaluation Units) की स्थापना की जा चुकी है।[3]

साराश मे, माध्यमिक शिक्षा को नये सिरे से सुधारने की दिशा मे प्रयत्न किये जा रहे है और एक ऐसी पद्धति का विकास करने का प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे विश्वविद्यालयो मे आज जो इतनी भीडभाड दिखाई दे रही है, वह रुक जाय। इसके साथ ही, माध्यमिक विद्यालय छोडने वालो को ऐसा प्रशिक्षण देने की योजना बनाई जा रही है, जिससे उनको रोजगार मिल सके और जब वे जीवन मे प्रवेश करें, तब उत्पादक कार्यकर्त्ता सिद्ध हो।[4]

माध्यमिक शिक्षा के दोष

शिक्षा की सरचना मे माध्यमिक शिक्षा का स्थान अति महत्वपूर्ण है। यह प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च-शिक्षा को जोडने वाली एक कडी है। परन्तु खेद का विषय है कि यह सबसे निर्बल कडी है। आज माध्यमिक शिक्षा मे इतने दोष उत्पन्न हो गये हैं कि जब तक उनका निराकरण नही किया जायगा, तब तक समग्र रूप से भारतीय शिक्षा का उन्नयन असम्भव है। यही कारण है कि आधुनिक भारत मे माध्यमिक शिक्षा की कटु आलोचना हो रही है और सर्वत्र उसमे सुधार करने के लिए आवाज बुलन्द की जा रही है। संक्षेप मे, हमारी माध्यमिक शिक्षा के दोष निम्नांकित हैं :—

१. उद्देश्य-विहीनता

माध्यमिक शिक्षा उद्देश्य-विहीन है। स्वतन्त्र भारत मे भी शिक्षा का वही उद्देश्य है, जो परतन्त्र भारत मे था। शिक्षा केवल इस उद्देश्य से प्राप्त की जाती है कि कोई नौकरी मिल जाय। आवश्यकता इस बात की है कि माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा की पूरक न रखकर एक स्वतन्त्र इकाई बना दिया जाय। माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए—छात्रों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की क्षमता

---

1. Central Board of Secondary Education.
2. *21st Year of Freedom*, p. 121.
3. *India*, 1969, p. 64.
4. चौथी पंचवर्षीय योजना, (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २२४।

प्रदान करना। अत: यह आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा, छात्रो की व्यावसायिक एवं उत्पादक क्षमता का विकास करे।

२. अनुपयुक्त पाठ्य-क्रम

माध्यमिक विद्यालयो का पाठ्य-क्रम एक-मार्गीय (Single Track) है। सभी विद्यार्थियो को एक पूर्व-निर्धारित पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पडता है। छात्रो को अपनी रुचि एव जिज्ञासा के अनुसार विषयो के चयन का अवसर प्राप्त नही होता है। परिणाम यह होता है कि उनके मौलिक विचारो एवं मानसिक शक्तियो का विकास नही हो पाता है। साथ ही, पाठ्य-क्रम का विद्यार्थियो के वातावरण और वास्तविक एवं व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नही है, फलत जीवन-क्षेत्र मे पदार्पण करने पर वे अपने को एक ऐसी विचित्र स्थिति मे पाते है कि वे सामाजिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित नही कर पाते है।[1] आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्य-क्रम का विस्तार किया जाय और उसमे विभिन्न उद्योगो, व्यवसायो तथा कृषि-सम्बन्धी विषयो का समावेश किया जाय और छात्रो को उनकी रुचियो के अनुसार विषयो को चुनने मे विशेषज्ञो द्वारा सहायता दी जाय।

३. अनुशासनहीनता

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा का एक प्रमुख दोष है—अनुशासनहीनता। छात्रो पर अनुशासनहीन होने का आक्षेप लगाना अनुचित है। वस्तुत. शिक्षा-प्रणाली, परीक्षा-पद्धति, उद्देश्य-विहीन शिक्षा आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके फलस्वरूप छात्रो मे अनुशासनहीनता की उत्पत्ति पर आश्चर्य नही किया जा सकता है। हम यह स्वीकार करने को उद्यत हैं कि राजनैतिक आन्दोलन छात्रो मे अनुशासनहीनता के लिए कुछ सीमा तक उत्तरदायी हैं, परन्तु पूर्णतः नही। निम्न सामाजिक मूल्यों का भी समाज के सदस्य के रूप मे छात्रो पर प्रभाव पडा है। फिर आर्थिक कठिनाइयो मे ग्रस्त अध्यापको ने इस बात की चिन्ता करना छोड दिया है कि विद्यार्थी समाज किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है। इन कारणो के अतिरिक्त भद्दे चलचित्रो, कामोद्दीपक फिल्मी गानो एव जातीय पक्षपात ने भी छात्रो की अनुशासनहीनता मे अत्यधिक योग प्रदान किया है। अतः यदि हम इस देशव्यापी अनुशासनहीनता का निराकरण करने के इच्छुक हैं, तो हमे उपर्युक्त सभी दोषो के निवारण की ओर समुचित ध्यान देना

1. "The education given in our schools is isolated from life. The curriculum as formulated and as presented through the traditional methods of teaching does not give the students insight into the everyday world in which they are living. When they pass out of school, they feel ill-adjusted and cannot take their place confidently and competently in the community."—*Report of the Secondary Education Commission*, p. 22.

पडेगा। साथ ही छात्रो को जीवन मे अनुशासन का महत्त्व बताकर उनके अन्तर मे अनुशासन के प्रति प्रेम एव श्रद्धा की भावना को जाग्रत करना होगा। यह कार्य तभी सम्पन्न किया जा सकता है—*जब सरकार, जनता और अभिभावक दृढ निश्चय करके इस दिशा मे एक साथ क्रियात्मक पग उठाएँ।*

४ व्यक्तिगत स्कूलो की अवाछनीय वृद्धि

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा प्रसार के नाम पर माध्यमिक विद्यालयो की सख्या मे असाधारण वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि अवाछनीय होने के साथ-साथ छात्रो, अध्यापको एव अन्त मे देश के लिए अभिशाप सिद्ध हुई है। इनमे से अधिकाश स्कूल किसी जाति विशेष, राजनैतिक दल या सेठ-साहूकार की निजी सम्पत्ति हैं, जिनमे जातिवाद का ताण्डव नृत्य होता है, जिन्हे राजनैतिक रगमच मे परिणत कर दिया है और जो प्रबन्धको की आय के निश्चित साधन हो गए हैं। अध्यापको को अल्प वेतन पर नियुक्त किया जाता है, उनके वेतन मे से कटौती की जाती है और ग्रीष्मावकाश मे उनसे त्याग-पत्र ले लिया जाता है। ऐसे स्कूलो के अनुशासन, शिक्षा-स्तर एव शिक्षको और छात्रो के चरित्र का अनुमान सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। स्कूल निरीक्षक भी ऐसे स्कूलो के प्रति या तो स्वयमेव उदासीन हो जाते हैं, या कोई कडी कार्यवाही करने को इच्छा करने पर भी अपने को असमर्थ पाते हैं, क्योकि उनमे स्कूल प्रबन्धको से लोहा लेने की शक्ति नही होती है। ये *व्यक्तिगत स्कूल माध्यमिक शिक्षा के भाल पर ऐसे कलक-बिन्दु हैं, जिनको शीघ्रातिशीघ्र धो डालना* आवश्यक है। *यह कार्य करने की सामर्थ्य केवल सरकार मे है*, और केवल शिक्षा का राष्ट्रीयकरण ही इसका एकमात्र उपाय है।

५ शिक्षा का निम्न स्तर

माध्यमिक शिक्षा का एक अन्य स्पष्ट दोष यह है कि शिक्षा का स्तर निम्न है। इसके लिये मुख्य रूप से हमारी सरकार उत्तरदायी है, क्योकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार का ध्यान शिक्षा प्रसार पर ही केन्द्रित रहा है, और उसकी गुणात्मक उन्नति की ओर तनिक भी नही गया है। परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं। युद्धजनित मँहगाई के कारण सभी वस्तुओ के मूल्यो मे कई गुना वृद्धि हो गई है परन्तु शिक्षको का वेतन वही है, जो युद्ध से पूर्व था। सरकार शिक्षको की *दशा की ओर पूर्णत उदासीन रही है जबकि अन्य विभागो म कर्मचारियो को पर्याप्त वेतन और मँहगाई दी जा रही है।* शिक्षको को इतना वेतन नहीं मिलता है कि वे अपनी दैनिक आवश्यकताओ की भी पूर्ति कर लें। ऐसी दशा मे उनकी कार्य-क्षमता कम हो जाना और उनके द्वारा कार्य की उपेक्षा किया जाना स्वाभाविक है। फिर अनेक विद्यालय ऐसे हैं, जिनके पास इतना भी धन नही है कि वे उपयुक्त भवन और पाठ्य-सामग्री की व्यवस्था कर लें। इन सभी बातो ने शिक्षा के स्तर पर अपना कुप्रभाव डाला है और उसका स्तर निम्न हो गया है। वर्तमान परिस्थितियो म

सरकार का यह स्पष्ट कर्तव्य हो जाता है कि वह इन स्कूलों की ओर ध्यान दे और इनके शिक्षा-स्तर को उठाने का पूरा-पूरा प्रयास करे।

६. दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली

माध्यमिक परीक्षा-प्रणाली में एक नहीं, अपितु अनेक दोष भरे हुए हैं। इस प्रणाली में जितने ही दोषों का उल्लेख किया जाय, उतने ही कम हैं। वस्तुतः यह भारत की साम्प्रदायिक, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रथाओं से भी अधिक बुरी है। 'मैट्रीकुलेशन' परीक्षा का सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर शासन है। एक विद्यालय और उसके शिक्षकों तथा छात्रों की श्रेष्ठता परीक्षा की कसौटी पर जाँची जाती है। वही विद्यालय उत्तम समझा जाता है, जिसका परीक्षा-फल उत्तम होता है। ऐसी परिस्थितियों में अध्यापक उत्तम परीक्षा-फल देने के लिये अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। विद्यार्थी ज्ञान के अर्जन से वास्तविक लाभ उठाने की अपेक्षा केवल पुस्तकों को यंत्रवत् रटते हैं, जिससे उन्हें परीक्षा में अच्छे अङ्क प्राप्त हों। परिणाम यह होता है कि उनके मस्तिष्क तथा व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है। परीक्षा ही छात्रों के ज्ञान और अध्यापकों की कार्य-क्षमता की वास्तविक कसौटी नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में इस प्रकार परिवर्तन किया जाय, जिससे छात्र अर्जित ज्ञान से लाभान्वित हो सकें और अध्यापकों की कार्य-क्षमता को भी आँका जा सके।

७. सुसंगठित सामाजिक जीवन का अभाव

विद्यालयों में सुसंगठित सामाजिक जीवन का सर्वथा अभाव है। कारण यह है कि खेल, पर्यटन, शारीरिक व्यायाम तथा विनोदात्मक एवं सामाजिक क्रियाओं का कोई भी आयोजन नहीं किया जाता है, जिससे छात्रों में सम्पर्क स्थापित हो और उनमें घनिष्ठता बढ़े। इसके अतिरिक्त स्कूलों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का पूर्ण अभाव है। इस प्रकार सामान्यतः एक साधारण स्कूल—एक फैक्ट्री के समान होता है, जिसका प्रमुख उद्देश्य—छात्रों को 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में उत्तीर्ण कराना होता है। इसके अतिरिक्त भी स्कूलों के कुछ और कार्य हैं। उन्हें छात्रों को देश के भावी नागरिकों के रूप में तैयार करना है। अतः जब तक छात्रों को विद्यालयों में सुसंगठित सामाजिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा नहीं दी जायगी, तब तक वे देश के कुशल एवं कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक नहीं बन सकेंगे।

निष्कर्ष

हमने ऊपर माध्यमिक शिक्षा के दोषों की ओर संकेत किया है। यहाँ यह कहना आवश्यक नहीं है कि उन दोषों का शीघ्रातिशीघ्र उन्मूलन आवश्यक है। बिना ऐसा किये उच्च शिक्षा में सुधार और देश की प्रगति की आशा करना व्यर्थ है। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षा प्राप्त करके हमारे नवयुवक यद्यपि देश के योग्य नागरिक

नहीं बन सकते है। विद्यालय ही वे स्थान है, जहाँ छात्रो के चरित्र एव देश के भावी नागरिको का निर्माण होता है। अत यह आवश्यक हो जाता है कि हमारे विद्यालय और उनमे प्रदान की जाने वाली शिक्षा पूर्णत दोष रहित हो। हमारी शिक्षा प्रणाली मे माध्यमिक शिक्षा—सबसे दुर्बल सस्थान (Weakest Spot) है। हम उसे सबसे शक्तिशाली सस्थान बनाना है। तभी हम सभ्य देशो के साथ दौड मे आगे निकल सकेंगे।

साराश म, हमारी माध्यमिक शिक्षा स्वतन्त्र भारत की आकाक्षाओ एव आवश्यकताओ के अनुरूप होनी चाहिए। इसे भारत के प्रत्येक नवयुवक को अपने देश का योग्य नागरिक बनाना चाहिए।' [1]

साराश

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता का अनुभव करके *'ताराचन्द समिति', 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग'* और *'माध्यमिक शिक्षा आयोग'* की नियुक्तियाँ की गई। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात माध्यमिक विद्यालयो और उनमे पढने वाले छात्रो की सख्या मे अति सराहनीय प्रगति हुई है।

केन्द्रीय सरकार और माध्यमिक शिक्षा—केन्द्रीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिये 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद' की स्थापना की है *'सेन्ट्रल इस्टीटयूट ऑफ ऐजूकेशन'* को विस्तृत किया है और *'केन्द्रीय पाठ्य पुस्तक अनुसन्धान ब्यूरो'* का निर्माण किया है।

पचवर्षीय योजनाओ मे माध्यमिक शिक्षा—पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' द्वारा बनाये गये ढाँचे को कार्यान्वित करने का कार्य प्रारभ कर दिया गया है। प्रथम योजना मे इस कार्य पर २० करोड रुपया, द्वितीय योजना मे ४८ करोड रुपया और तृतीय योजना मे ८८ करोड रुपया व्यय किया गया। चतुर्थ योजना मे १,२१० करोड रुपया व्यय किया जायगा। द्वितीय योजना के अन्त तक ?,११५ बहु उद्देशीय विद्यालय स्थापित किये गये। तृतीय योजना के अ त मे इनकी सख्या ३,६०७ थी।

माध्यमिक शिक्षा के दोष—(१) उद्देश्य विहीनता, (२) अनुपयुक्त पाठयक्रम, (३) अनुशासनहीनता (४) व्यक्तिगत स्कूलो की अवाछनीय वृद्धि, (६) निम्न शिक्षा स्तर, (६) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, और (७) सुसगठित सामाजिक जीवन का अभाव।

---

1 'In short, our education must be brought into line with the aspirations and requirements of free India It should train every young Indian to be a worthy son of his motherland'

—*Seven Years of Freedom*, (Ministry of Education), p 5

TEST QUESTIONS

1. Secondary Education is considered to be the weakest link in our educational system. What are its major weaknesses and how are they sought to be removed ?

   हमारी शिक्षा-प्रणाली मे माध्यमिक शिक्षा को सबसे निर्बल कड़ी समझा जाता है। इसके प्रमुख दोष क्या है, और उनको किस प्रकार दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए ?

2. Comment upon the view that the present system of Secondary Education in India is the gift of the British regime and needs drastic changes. What modification would you like to introduce to suit present needs ?

   इस कथन की आलोचना कीजिये कि भारत मे माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान प्रणाली ब्रिटिश शासन की देन है और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तनो की आवश्यकता है। वर्तमान आवश्यक्ताओ के लिये आप कौन-सा उचित परिवर्तन करना चाहेगे ?

3. Secondary Education in India is said to be excessive in quantity and defective in quality. Discuss the reforms that you would like to introduce in Secondary Education.

   भारत मे माध्यमिक शिक्षा परिमाण मे अत्यधिक और गुण में दोषपूर्ण कही जाती है। उन सुधारो का वर्णन कीजिए जो आप माध्यमिक शिक्षा मे करना चाहेगे।

२३

माध्यमिक शिक्षा-आयोग[1]

(१९५२-१९५३)

मुदालियर कमीशन[2]

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे अति तीव्र विकास हुआ। अनेक माध्यमिक विद्यालयो का नवनिर्माण किया गया और उनमे अध्ययन करने वाले छात्रो की सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। स्वतन्त्र भारत मे राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो मे बडी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा था, अत उनसे *सामजस्य स्थापित करने के लिए माध्यमिक शिक्षा के पुर्ननिर्माण की आवश्यकता का* अनुभव किया गया। १९४८ मे 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा कि माध्यमिक शिक्षा की जाँच करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की जाय। १९५१ मे *'बोर्ड' ने अपनी माँग को फिर दोहराया।* उसने *बलपूर्वक कहा* कि माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की अत्यधिक आवश्यकता है, क्योकि माध्यमिक शिक्षा एक मार्गीय (Unilateral) बन चुकी है। उसे समाप्त करने वाले छात्रो के समक्ष विश्वविद्यालयो मे प्रवेश *करने या नौकरी की खोज मे भटकने के अतिरिक्त अन्य कोई* मार्ग नही है। अत इस बात की आवश्यकता है कि माध्यमिक शिक्षा को छात्रो की रुचिया एव रुझानो के अनुकूल बनाया जाय, जिससे वे शिक्षा से वास्तविक लाभ उठा सकें।

---

1 Secondary Education Commission

2 Mudaliar Commission

आयोग की नियुक्ति

'केन्द्रीय बोर्ड' के सुझाव को स्वीकार करके भारत सरकार ने २३ सितम्बर, १९५२ को मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति, डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर (Dr Lakshmanswami Mudaliar) की अध्यक्षता मे 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को 'मुदालियर शिक्षा-आयोग' (Mudaliar Education Commission) भी कहा जाता है।

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य

'आयोग' की नियुक्ति के दो मुख्य उद्देश्य थे —

१. भारत की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करके उस पर प्रकाश डालना।

२ माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संङ्गठन एवं सुधार के लिए निम्नलिखित के सम्बन्ध मे सुझाव देना—

(क) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, सगठन एव विषय-वस्तु,

(ख) माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक बेसिक तथा उच्च शिक्षा के सम्बन्ध,

(ग) विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयो का पारस्परिक सम्बन्ध,

(घ) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अन्य समस्याएँ।[1]

'आयोग' ने विभिन्न राज्यो का भ्रमण करके माध्यमिक शिक्षा के प्रत्येक पहलू का ज्ञान प्राप्त किया। तदुपरान्त उसने १४ अध्यायो मे विभाजित २४४ पृष्ठ की एक बृहद रिपोर्ट तैयार की और २८ अगस्त, १९५३ को उसे भारत-सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

आयोग के विचार एव सुझाव

माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न अवयवो एव उनसे सम्बन्धित समस्याओ के विषय मे 'आयोग' द्वारा जो विचार व्यक्त किये गये और जो सुझाव दिये गये, उनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है —

१ माध्यमिक शिक्षा के दोष

१. माध्यमिक शिक्षा का जीवन से कोई सम्बन्ध नही है।

२ इस शिक्षा से व्यावहारिक जगत का किंचित् मात्र भी ज्ञान नही प्राप्त होता है।

३ अध्यापन की रीतियाँ परम्परागत हैं और वे छात्रो को प्रभावित करने मे असमर्थ हैं।

४ माध्यमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम छात्रो को दिन-प्रतिदिन के उस विश्व के सम्बन्ध मे कोई ज्ञान नही देता है, जिसमे वे रह रहे हैं।

---

1. *Secondary Education Commission Report*, p 2

५ माध्यमिक शिक्षा—एक-पक्षीय एव सकीर्ण है और छात्रो की रुचि के अनुकूल नही है ।

६ माध्यमिक शिक्षा—विद्यार्थियो के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को शिक्षित एव विकसित करने मे विफल रहती है ।

७ अग्रेजी भाषा—शिक्षा का माध्यम एव अध्ययन का अनिवार्य विषय है । अत जिन छात्रो को इस भाषा का समुचित ज्ञान नही होता है, वे इसके अध्ययन मे कठोर परिश्रम करके अपने समय तथा शक्ति को नष्ट करते है ।

८ शिक्षण विधियाँ इतनी दोषपूर्ण है कि वे छात्रो मे विचार की स्वतन्त्रता अथवा क्रिया की रुचि का विकास करने मे प्राय विफल रहती हैं ।

९ शिक्षण-विधियाँ—छात्रा मे सहकारिता की भावना उत्पन्न करने की अपेक्षा प्रतिस्पर्धा की भावना पर अधिक बल देती हैं ।

१० कक्षाओ मे छात्रो की सख्या इतनी अधिक होती है कि अध्यापको एव छात्रो मे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नही हो पाता है ।

११ वर्तमान शिक्षा मे छात्रो के चरित्र-निर्माण की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया जाता है । फलत छात्रो म अनुशासनहीनता की वृद्धि हो रही है ।

१२ परीक्षा-प्रणाली अत्यधिक दोषपूर्ण है । यह अध्यापक का निर्जीव तथा यान्त्रिक रीतियो को प्रोत्साहित करती है और महत्वहीन वस्तुओ पर बल देती है । इससे छात्रो के ज्ञान की वास्तविक परीक्षा नही हो पाती है ।

२ माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

(१) लोकतान्त्रिक नागरिकता का विकास[1]—भारत एक स्वतन्त्र राज्य है, और उसका उद्देश्य—धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्र की स्थापना करना है । अत माध्यमिक शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिको का निर्माण किया जाना चाहिए—जो भारत के नवीन वातावरण के अनुकूल हो । आदर्श नागरिको मे विचार-स्वच्छता, भाषण एव लेखन मे स्पष्टता, सामाजिकता, अनुशासन, सहयोग, सहिष्णुता, सच्ची देशभक्ति और विश्व-नागरिकता की भावना के गुणो का होना अनिवार्य है । अत हमारी शिक्षा का उद्देश्य—छात्रो म इन गुणो का विकास करना होना चाहिए । ऐसा करने पर ही वे अपने देश के आदर्श नागरिक बन सकेंगे और गणतन्त्र को सफल बना सकेंगे । सक्षेप मे, माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य—लोकतान्त्रिक नागरिकता का विकास होना चाहिए ।

(२) व्यावसायिक कुशलता मे वृद्धि[2]—माध्यमिक शिक्षा का एक अन्य

1. Development of Democratic Citizenship
2 Improvement of Vocation'l Efficiency.

उद्देश्य—नागरिकों में व्यावसायिक कुशलता की वृद्धि करना है। अतः छात्रों को औद्योगिक शिक्षा दी जानी आवश्यक है। यह शिक्षा उन्हें किसी व्यवसाय को करने के लिए उपयुक्त बनायेगी और उन्हें नौकरी की खोज मे इधर-उधर नहीं भटकना पड़ेगा।

(३) व्यक्तित्व का विकास[1]—माध्यमिक शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—नागरिकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। अतः शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे छात्रों का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास करके भारत मे राष्ट्रीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान सम्भव हो सके। इसके लिये यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम मे कला, हस्तशिल्प, संगीत, नृत्य एवं व्यासंगो (Hobbies) को सम्मानित पद प्रदान किया जाय।

(४) नेतृत्व का विकास[2]—प्रजातन्त्र उसी दशा मे सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है, जबकि उसका प्रत्येक नागरिक अनुशासन एवं नेतृत्व मे शिक्षा प्राप्त कर चुका हो। अतः माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य—छात्रों को अनुशासन के साथ-साथ नेतृत्व की भी शिक्षा प्रदान करना है। विद्यालयों मे इस प्रकार के अनेक अवसर आते हैं, जब छात्रों पर अपने समाज का नेतृत्व करने का भार आ पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि ऐसे अधिक-से-अधिक अवसर छात्रों को दिये जायँ, जिससे उनमे नेतृत्व के गुणों का विकास हो सके। ऐसे विद्यार्थी ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर सकेंगे। कारण यह है कि वे सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रों मे अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने मे संकोच नहीं करेंगे और उसका निर्वाह भी कर सकेंगे।

३. माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठन[3]

१. माध्यमिक शिक्षा की अवधि ७ वर्ष होनी चाहिये।
२. यह शिक्षा ११ से १७ वर्ष तक की आयु के बालकों तथा बालिकाओं के लिये होनी चाहिये।
३. शिक्षा-काल दो भागों मे विभाजित किया जाय : (क) ३ वर्ष की जूनियर माध्यमिक शिक्षा, और (ख) ४ वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा।
४. वर्तमान इन्टरमीडिएट कक्षा को तोड़ दिया जाय। उसकी ११वीं कक्षा को माध्यमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम मे, और १२वीं कक्षा को डिग्री कोर्स मे सम्मिलित कर दिया जाय।
५. डिग्री कोर्स ३ वर्ष का कर दिया जाय। उच्चतर माध्यमिक-विद्यालयों

1. Development of Personality.
2. Development of Leadership.
3. New Organizational Pattern of Secondary Education.

से विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने वाले छात्रों के लिये १ वर्ष का 'पूर्व-विश्वविद्यालय (Pre-University) कोर्स रखा जाय।'

६ बहु-उद्देशीय (Multi-Purpose) स्कूलों की स्थापना की जाय। छात्रों के विविध उद्देश्यों, योग्यताओं एवं क्षमताओं की प्राप्ति करने के लिए इन स्कूलों का पाठ्य-क्रम उनकी विभिन्न रुचियों के अनुकूल हो।

७. ग्रामीण विद्यालयों में कृषि की शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाय। इन विद्यालयों में उद्यान-विज्ञान (Horticulture), पशु-पालन एवं कुटीर उद्योग धन्धों की भी व्यवस्था की जाय।

८ बहुत बड़ी संख्या में प्राविधिक स्कूलों की स्थापना की जाय। ये स्कूल या तो स्वतन्त्र रूप से स्थापित किये जायँ या बहु-उद्देशीय स्कूलों से सम्बद्ध हों।

९ बड़े नगरों में केन्द्रीय प्राविधिक संस्थानों का निर्माण किया जाय, जिससे कि वे अनेक स्थानीय स्कूलों की माँग की पूर्ति कर सकें।

१० यथासम्भव प्राविधिक स्कूलों की स्थापना विभिन्न उद्योगों में संलग्न कारखानों के पास की जाय, और वे कारखानों के घनिष्ठ सहयोग में कार्य करें।

११ अधिनियम द्वारा यह अनिवार्य कर दिया जाय कि कल-कारखाने, प्राविधिक स्कूलों के छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करें।

१२ उद्योगों पर 'उद्योग-शिक्षा-कर' (Industrial Education Cess) लगाया जाय और इससे प्राप्त धन को प्राविधिक शिक्षा के विस्तार में व्यय किया जाय।

१३ पब्लिक स्कूलों को कुछ समय तक यथावत चलने दिया जाय, परन्तु एक निश्चित अवधि में उनकी शिक्षा का संगठन उसी प्रकार कर दिया जाय, जैसा कि अन्य माध्यमिक स्कूलों का हो।

१४ बालकों तथा बालिकाओं के पाठ्य क्रम में किसी प्रकार की विभिन्नता की आवश्यकता नहीं है, परन्तु बालिकाओं को 'गृह-विज्ञान' के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जाय।

४. भाषाओं का अध्ययन[1]

१ माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा (Regional Language) होनी चाहिये। परन्तु अनेक 'भाषा भाषी अल्पसंख्यकों' (Linguistic Minorities) के लिए केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' के सुझावों के अनुसार विशेष प्रकार की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये।

---

1 Study of Languages

२ मिडिल स्कूलो मे प्रत्येक छात्र को कम-से-कम दो भाषायें सिखाई जानी चाहिये। अंग्रेजी और हिन्दी की शिक्षा जूनियर बेसिक स्तर के बाद दी जानी चाहिये। परन्तु इस सिद्धान्त पर ध्यान रखा जाय कि एक ही वर्ष में दोनो भाषाओ की शिक्षा प्रारम्भ न कर दी जाय।

३. हायर सेकण्डरी स्तर पर कम से कम दो भाषाओ की शिक्षा दी जाय। इनमे से एक मातृभाषा हो और दूसरी क्षेत्रीय भाषा।

५. माध्यमिक विद्यालयो का पाठ्य-क्रम

१. पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिये, जिससे छात्रो की विभिन्न योग्यताओ एवं क्षमताओ का विकास किया जा सके।

२. पाठ्य-क्रम मे विविधता तथा लचीलापन होना चाहिये, जिससे कि उसे छात्रो की आवश्यकताओ एवं अभिरुचियो के अनुकूल बनाया जा सके।

३ पाठ्य-क्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये।

४ पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिये, जिससे छात्रो को न केवल कार्य करने, अपितु अवकाश का सदुपयोग करने के लिये शिक्षित किया जा सके।

५. पाठ्य-क्रम मे ऐसे विषय नही होने चाहिये, जिनका एक-दूसरे से कोई सम्ब ध न हो, अपितु पाठ्य-क्रम के समस्त विषयो मे अन्त.सम्बन्ध होना आवश्यक है।

६. पाठ्य-क्रम के विषय

(क) मिडिल अथवा जूनियर हाई स्कूल—(१) भाषायें, (२) समाज-विज्ञान, (३) सामान्य विज्ञान, (४) गणित (५) कला एवं सगीत, (६) शिल्प (Craft), और (७) शारीरिक शिक्षा (Physical Education)।

(ख) हायर सेकण्डरी स्कूल—इन स्कूलो के पाठ्य-क्रम मे विविधता (Diversification) की आवश्यकता है, जिससे छात्रो की अभिरुचियो तथा योग्यताओ का विकास किया जा सके। उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पाठ्य-क्रम मे अग्रलिखित ७ समूह होने चाहिये :—(१) मानव-विज्ञान (Humanities), (२) विज्ञान, (३) टेक्निकल विषय, (४) वाणिज्य-विषय (Commercial Subjects), (५) कृषि-विज्ञान, (६) ललित कलायें (Fine Arts), और (७) गृह-विज्ञान।

छात्र उपर्युक्त समूहो मे से किसी भी समूह के विषयो को ले सकते हैं, परन्तु सभी समूहो के विद्यार्थियो के लिये कुछ 'आन्तरक विषय' (Core-Subjects) होंगे, जिनका अध्ययन सब विद्यार्थियो को करना पडेगा। ये विषय हैं :—(१) भाषा, (२) सामान्य विज्ञान, (३) समाज विज्ञान, और (४) शिल्प।

६. शिक्षण की प्रावैगिक विधियाँ[1]

१. विद्यालयो मे शिक्षण-विधियो का उद्देश्य—केवल कुशलतापूर्वक ज्ञान

1. Dynamic Methods of Teaching.

प्रदान करना ही नही होना चाहिये, अपितु छात्रो मे उपयुक्त मूल्यो (Desirable Values), उचित दृष्टिकोणो (Proper Attitudes) एवं कार्य करने की आदतो का समावेश करना चाहिये।

२. शिक्षण मे मौखिक बातो (Verbalism) एवं कंठस्थ करने की क्रिया (Memorization) पर बल नही दिया जाना चाहिये। इसके विपरीत, शिक्षण ऐसी परिस्थितियो के माध्यम द्वारा किया जाना चाहिये, जो साभिप्रायिक (Purposeful), मूर्त्त (Concrete) एवं वास्तविक हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये शिक्षण-विधियों मे 'क्रिया-पद्धति' (Activity Method) और 'योजना-पद्धति' (Project Method) को स्थान देना चाहिये।

३. समस्त विषयो के शिक्षण मे बोलने और लिखने मे स्पष्ट रूप से विचार करने एवं स्पष्ट रूप से विचारो को व्यक्त करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिये।

४. शिक्षण-विधियो का उद्देश्य—छात्रो को अधिक-से-अधिक ज्ञान देना नही होना चाहिये, अपितु उन्हे इस बात की शिक्षा देना होना चाहिये कि वे *व्यक्तिगत प्रयासो से किस प्रकार ज्ञान का अर्जन कर सकते हैं।*

५. छात्रो को समुदाय मे कार्य करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने चाहिये, जिससे उनमे सामुदायिक जीवन का विकास हो सके।

८. चरित्र-निर्माण की शिक्षा[1]

१. छात्रो के चरित्र का निर्माण करना—सभी अध्यापको का विशेष उत्तरदायित्व है। अत: स्कूल के प्रत्येक कार्य-क्रम मे चरित्र-निर्माण की शिक्षा दी जानी चाहिये।

२. उत्तम अनुशासन के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षको एवं छात्रो मे घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किया जाय।

३. सामूहिक खेलो एवं सह-पाठ्य-क्रियाओ (Co-curricular Activities) को प्रोत्साहित किया जाय, और उनकी शैक्षिक सम्भावनाओ (Educational Possibilities) को खोजकर उनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जाय।

४. राजनैतिक चुनावो एवं प्रचार-कार्य मे १७ वर्ष से कम आयु के छात्रो का प्रयोग न किया जाय। एक कानून बनाकर इसको दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया जाय।

---

1. Education of Character.

५ अतिरिक्त पाठ्य-क्रियाओ (Extra-curricular Activities) को विद्यालयो मे दी जाने वाली शिक्षा का अभिन्न अग समझा जाय और सब अध्यापको को इन क्रियाओ मे अपने समय का एक निश्चित भाग व्यय करना अनिवार्य कर दिया जाय।

६ सब स्कूलो मे एन० सी० सी०, फर्स्ट एड और जूनियर रेड-क्रास कार्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

९ माध्यमिक विद्यालयो मे मार्ग-प्रदर्शन एवं समुपदेशन[1]

'आयोग' ने अनुभव किया कि माध्यमिक विद्यालयो मे पढने वाले छात्रो का मार्ग-प्रदर्शन एव समुपदेशन किया जाना आवश्यक है, जिससे कि वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रो के व्यवसायो एव कार्यों को भली-भाँति समझ लें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये 'आयोग' ने निम्नाकित सुझाव दिये —

१ शिक्षाधिकारियो द्वारा छात्रो के शैक्षिक मार्ग-प्रदर्शन पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये।

२ यह आवश्यक है कि छात्र, उद्योगो के विभिन्न व्यवसायो के क्षेत्र, प्रकृति एव महत्त्व की जानकारी प्राप्त करें। अत विभिन्न उद्योगो से सम्बन्धित कार्यों के फिल्म तैयार किये जायें और उन्ह छात्रो को दिखाया जाय। साथ ही छात्रो को विभिन्न उद्योगो के कल-कारखानो मे ले जाया जाय।

३ विद्यालयो मे प्रशिक्षित 'मार्ग-प्रदर्शन अधिकारियो' (Guidance Officers) और 'जीविकोपार्जन शिक्षको (Career Masters) की नियुक्ति की जाय।

४ केन्द्रीय सरकार मार्ग-प्रदर्शन अधिकारियो तथा जीविकोपार्जन-शिक्षको के प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। राज्य की सरकारें अध्यापको तथा अन्य उपयुक्त व्यक्तियो को केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशिक्षण सस्था मे ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिये भेजें।

१० छात्रो का शारीरिक कल्याण[2]

१ सब राज्यो मे 'स्कूल स्वास्थ्य सेवा' (School Medical Service) को उचित रूप से सगठित किया जाय।

२ विद्यालयो मे अध्ययन करने वाले सब छात्रो की प्रति वर्ष पूर्ण रूप से स्वास्थ्य परीक्षा की जाय।

३ जो छात्र गम्भीर रोगो से पीडित हो या जो निरन्तर अस्वस्थ रहते हो, उनकी स्वास्थ्य बार-बार परीक्षा की जाय।

---

1. Guidance & Counselling in Secondary Schools
2 Physical Welfare of Students

४ सभी रोगी छात्रो की चिकित्सा विद्यालय-स्वास्थ्य-अधिकारी (School Health Officer) द्वारा की जाय।

५ छात्रावासो और निवास-विद्यालयो (Residential Schools) म सतुलित एव पौष्टिक आहार की व्यवस्था की जाय।

६ स्कूलो के कुछ अध्यापको को प्राथमिक चिकित्सा (First Aid) तथा स्वास्थ्य के सामान्य सिद्धान्तो मे प्रशिक्षित किया जाय।

७ छात्रो को स्वस्थ रखने के लिये उनसे शारीरिक श्रम करवाया जाय।

८ ४० वर्ष से कम आयु के शिक्षक, छात्रो के साथ शारीरिक श्रम के कार्य करें, जिससे छात्रो के समक्ष एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित हो और वे शारीरिक श्रम करने मे सकोच न करें।

११ परीक्षा एव शैक्षिक मूल्याकन[1]

१ 'वाह्य परीक्षाओ' (External Examinations) की सख्या मे कमी की जाय।

२ परीक्षा मे पूछे जाने वाले प्रश्नो के ढङ्ग मे इस प्रकार परिवर्तन किया जाय कि परीक्षा 'निबन्धात्मक ढग' (Essay Type) की न रह जाय।

३ छात्रो के कार्य का अतिम मूल्याकन करते समय 'आन्तरिक परीक्षाओ' (Internal Examinations) के साथ साथ नियतकालिक-परीक्षाओ (Periodical Tests) और 'विद्यालय-अभिलेखो (School Records) को भी उचित महत्त्व प्रदान किया जाय।

४ वाह्य तथा आन्तरिक परीक्षाओ मे छात्रो के कार्य का मूल्याकन अको मे न किया जाकर, प्रतीकात्मक (Symbolic) होना चाहिये।

५ प्रत्यक छात्र का एक 'विद्यालय अभिलेख' रखा जाय, जिसमे विभिन्न क्षेत्रो म उसके द्वारा किये गये कार्यों एव उनमे प्राप्त सफलता का उल्लेख हो।

६ सेकण्डरी स्कूल का सम्पूर्ण पाठय-क्रम समाप्त होने के उपरान्त ही केवल एक सार्वजनिक परीक्षा ली जाय।

१२ अध्यापको की उन्नति

'आयोग' के मतानुसार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक 'अध्यापक' है। किसी विद्यालय की विख्याति उसम काय करने वाले शिक्षका पर निर्भर है। अत 'आयोग' ने शिक्षका की विभिन्न समस्याओ का अध्ययन करके उनकी स्थिति मे सुधार करने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की —

१ सम्पूर्ण देश मे शिक्षका क चुनाव एव नियुक्ति की विधि एक-सी होनी चाहिये।

---

1. Examination & Educational Evaluation

२ व्यक्तिगत विद्यालयो एवं स्थानीय संस्थाओ द्वारा संचालित स्कूलो मे शिक्षको के चुनाव के लिये एक समिति होनी चाहिये। समिति के सदस्यो मे स्कूल का प्रधानाचार्य भी होना चाहिये।

३. प्रशिक्षित अध्यापको की परिवीक्षा (Probation) की अवधि १ वर्ष होनी चाहिये।

४ माध्यमिक विद्यालयो के अध्यापक प्रशिक्षित स्नातक होने चाहिये। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षको की वही योग्यता होनी चाहिये जो इण्टरमीडिएट कॉलेजो के अध्यापको की होती है।

५ समान योग्यता एव समान कार्य करने वाले शिक्षको को समान वेतन दिया जाना चाहिये।

६ अध्यापको को पर्याप्त वेतन नही मिलता है। अत विशिष्ट समितियो की नियुक्ति की जाय, जो इस बात का सुझाव दें कि वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखते हुए अध्यापको को कितना वेतन दिया जाना चाहिये।

७ अध्यापको को अपनी और अपने आश्रित सम्बन्धियो की चिन्ताओ से मुक्त करने के लिये प्रत्येक राज्य मे त्रिमुखी लाभ-योजना कार्यान्वित की जानी चाहिये। इसके अन्तर्गत अध्यापको को पेन्शन, प्रॉविडेन्ट-फण्ड और जीवन-बीमा की सुविधायें दी जायें।

८ अध्यापको के बच्चो को नि शुल्क शिक्षा दी जाय, विद्यालयों के समीप उनके निवास की व्यवस्था की जाय। स्वास्थ्यवर्द्धक स्थानों, कैम्पों, शिक्षा-सम्मेलनो आदि मे जाने के लिये उन्हें [illegible] और छुट्टी दी जाय तथा चिकित्सालयो मे मुफ्त इलाज की सुविधा दी जाय।

९ अध्यापको की कठिनाइयो पर विचार करने और उनकी शिकायतें सुनने के लिये 'विवाचन मण्डल' (Arbitration Boards) अथवा समितियो की नियुक्ति की जाय।

१०. शिक्षको द्वारा ट्यूशन पढ़ाने की प्रथा समाप्त कर दी जाय।

. अध्यापको का प्रशिक्षण

१. प्रशिक्षण-विद्यालय केवल दो प्रकार के होने चाहिये—(क) प्रथम उनके लिये जो माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं। इनका प्रशिक्षण-काल २ वर्ष का होना चाहिये, (ख) द्वितीय उनके लिये जो स्नातक हैं। इनका प्रशिक्षण-काल इस समय १ वर्ष है, परन्तु कुछ समय के पश्चात् २ वर्ष का [illegible] दिया जाय।

२. छात्राध्यापकों को [illegible] पाठ्य-क्रिया [illegible] किया जाय।

३. प्रशिक्षण-[illegible] पाठ्यक्रम [illegible] (Refresher [illegible]) विशेष [illegible] (Short [illegible])

और कार्य-शाला मे व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshops) की व्यवस्था की जाय ।

४ प्रशिक्षण-विद्यालयो मे छात्राध्यापको से किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाय । सब छात्राध्यापको को राज्य की ओर से उपयुक्त शिष्यवृत्तियाँ (Stipends) दी जायँ । जो शिक्षक किसी स्कूल मे कार्य कर रहे हो, उन्हे प्रशिक्षण-काल के लिये पूर्ण वेतन पर छुट्टी दी जाय ।

५. अध्यापिकाओ के अभाव की पूर्ति करने के लिये अंशकालिक प्रशिक्षण पाठ्य-क्रमो की व्यवस्था की जाय ।

१४. प्रशासन को समस्यायें[1]

१. प्रशासन की समस्याओ पर शिक्षा-मन्त्री को परामर्श देने का उत्तर-दायित्व शिक्षा-संचालक पर होना चाहिये । शिक्षा-मन्त्री तक उसकी सीधी पहुँच होनी चाहिए और उसका पद संयुक्त शिक्षा-सचिव के समकक्ष होना चाहिये ।

२. केन्द्र एवं राज्यो मे एक समिति का निर्माण किया जाना चाहिये, जो शिक्षा-सम्बन्धी मामलो पर विचार करके उपयुक्त योजनायें बनाये ।

३. लोक-शिक्षा संचालक की अध्यक्षता मे २५ सदस्यो का एक 'माध्यमिक शिक्षा-परिषद' स्थापित किया जाय, जो माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित नीतियो को निर्धारित करे ।

४. परिषद् की एक उपसमिति परीक्षाओ की व्यवस्था करे ।

५. एक 'शिक्षक-प्रशिक्षण परिषद्' (Teachers' Training Board) की स्थापना की जाय, जो अध्यापको के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करे ।

६. विद्यालय-निरीक्षक स्कूलो की समस्याओ का अध्ययन करके, उनमे सुधार करने के लिये सुझाव दें और समय-समय पर अध्यापको को शिक्षण-कार्य के सम्बन्ध मे परामर्श दें ।

७. विद्यालयो को मान्यता तभी प्रदान की जाय, जब वे मान्यता-सम्बन्धी सभी शर्तों को पूर्ण कर दें ।

८. मान्यता-प्राप्त विद्यालयो का सचालन सरकार द्वारा स्वीकृत प्रबन्ध-कारिणी समिति करें । समिति का कोई सदस्य विद्यालय के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप न करे ।

'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' का मूल्यांकन

'मुदालियर कमीशन' ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संङ्गठन के सम्बन्ध मे जो सुझाव दिये हैं, उनको प्राय. सभी शिक्षा-विशारदो ने व्यावहारिक और लाभप्रद माना है । परन्तु कुछ विचारक ऐसे भी हैं, जिनका दृष्टिकोण भिन्न है । अतः 'आयोग'

1. *Problems of Administration*

द्वारा दिये गये सुझावो के गुण-दोषो का विवेचन करके एक निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है।

गुण :—

१. आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यो को निर्धारित करके अति अभिनन्दनीय कार्य किया है। इस बात मे मत-विभिन्नता नही हो सकती है कि हमारी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—लोकतान्त्रिक नागरिकता का विकास करना होना चाहिये।
२. पाठ्य-क्रम की विविधता से माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायगा। सभी बालको की अभिरुचियाँ तथा अभियोग्यतायें समान नही होती है। अतः पाठ्य-क्रम को उनकी अभिरुचियो एवं अभियोग्यताओ के अनुसार होना आवश्यक है।
३. बहु-उद्देशीय स्कूलो की स्थापना से शिक्षा का रूप व्यावहारिक हो जायगा और छात्र अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं के अनुसार विषयो का चयन करके अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकेंगे।
४. भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के ग्रामीण विद्यालयो मे कृषि की शिक्षा को अनिवार्य बनाये जाने का सुझाव अति महत्वपूर्ण है।
५. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश का औद्योगीकरण अति तीव्र गति से किया जा रहा है। नवीन उद्योगो की आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिये प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था का सुझाव देकर आयोग ने अति प्रशंसनीय कार्य किया है।
६. आयोग की इस सिफारिश को सभी शिक्षाविदो ने स्वीकार किया है कि—शिक्षण की विधियो मे क्रिया-रीतियो को स्थान दिया जाय और पाठन-सामग्री के प्रयोग से उनको सजीव बनाया जाय।
७. माध्यमिक विद्यालयो के छात्रों के चरित्र-निर्माण की अति आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे जो सुझाव दिये गये हैं, वे छात्रो को चरित्रवान् एवं अनुशासन-प्रिय बनाने मे सहायक सिद्ध होंगे।
८. छात्रो का मार्ग-प्रदर्शन करने का सुझाव वस्तुतः अद्वितीय है। अनेक बालक अपनी योग्यताओ से परिचित न होने के कारण प्रायः गलत व्यवसायो तथा कार्य-क्षेत्रो मे प्रवेश करके असफलता को आमन्त्रित करते हैं। अनुभवहीन बालक प्रशिक्षित व्यक्तियो से मार्ग-प्रदर्शन का लाभ उठाकर अपनी शक्तियो का उचित दिशाओ मे प्रयोग कर सकेंगे।
९. परीक्षा एवं शैक्षिक मूल्यांकन के विषय मे आयोग के सुझाव माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे युग-प्रवर्तक सिद्ध होगे। यदि आयोग के सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया जाय, तो हमारी दोषपूर्ण शिक्षा-प्रणाली दोष-मुक्त हो जायेगी।

१० अध्यापक शिक्षा के केन्द्र-बिन्दु है। इसी विचार को ध्यान मे रखते हुए आयोग ने शिक्षको की दशा, सेवा-प्रतिबन्धो (Service Conditions), वेतन, प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध मे बहुमूल्य सुझाव दिये है। उन सुझावो को कार्यान्वित करने से हमारी शिक्षा का कायाकल्प हो जायगा।

दोष —

१ माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन के सम्बन्ध म दिय गये सुझाव सर्वथा अपूर्ण है। व्यक्तिगत विद्यालयो की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यो की योग्यता के विषय मे कुछ नही कहा गया है।

२ किसी भी राष्ट्र के उत्थान मे सुशिक्षित स्त्रियो की अत्यधिक आवश्यकता होती है। आयोग ने स्त्री-शिक्षा के विस्तार के सम्बन्ध मे कोई भी महत्त्वपूर्ण सुझाव नही दिया है।

३ *इन्टरमीडिएट कक्षा को तोड़ने का सुझाव उपयुक्त प्रतीत नही होता* है। जिस स्तर पर विश्वविद्यालयो तथा डिग्री कॉलेजो मे इस कक्षा के विद्यार्थियो को शिक्षा दी जा रही है, उस स्तर पर माध्यमिक विद्यालयो मे शिक्षा देना सम्भव नही होगा। इसके अतिरिक्त, इस योजना को कार्यान्वित करने मे एक बडी धन-राशि की आवश्यकता होगी।

४ माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक छात्र को तीन भाषाओ का अध्ययन करना आवश्यक होगा—मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी। तीन भाषाओ के अतिरिक्त आन्तरिक विषयो का भी अध्ययन अनिवार्य होगा। इन सबके साथ-साथ एक समूह के विषय और लेने पडेंगे। इस प्रकार, छात्रो के लिये पाठ्य-क्रम बहुत भारी हो जाता है।

५. बालको तथा बालिकाओ के पाठ्य-क्रम मे भेद नही किया गया है।

निष्कर्ष

'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' के उपर्युक्त सुझावो के गुणावगुण की विवेचना करने के उपरान्त यह बात निर्विवाद रूप से मान्य है कि अधिकाश सुझाव अति महत्त्वपूर्ण और श्लाघनीय हैं। यदि उनके अनुसार हमारी माध्यमिक-शिक्षा का पुनर्संङ्गठन किया जाय, तो उसका रूप पूर्णत परिवर्तित हो जायगा और वह देश के नवयुवको का हित करके अन्ततोगत्वा देश का कल्याण करेगी।

आयोग के सुझावो का कार्यान्वयन

'आयोग' के अधिकाश सुझावो को केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया गया है। हम उनका सक्षिप्त विवरण आगे दे रहे है —

१ वर्तमान स्कूलों को बहु-उद्देशीय स्कूलों में बदल कर नया रूप दिया जाना।

२ कृषि-शिक्षा का विस्तार करने के लिये 'ग्रामीण उच्च शिक्षा-समिति' और 'ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के लिये राष्ट्रीय परिषद्' की स्थापना।

३. प्राविधिक शिक्षा के लिए इंजीनियरिंग के कॉलेजों तथा प्राविधिक विद्यालयों (Polytechnics) का निर्माण।

४ माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य रूप से तीन भाषाओं का अध्यापन।

५ छात्रों के शारीरिक कल्याण के लिये 'अखिल भारतीय क्रीडा परिषद्' की स्थापना और केन्द्रीय सरकार द्वारा कैम्पों तथा सन्तरण-तड़ागों (Swimming Pools) आदि के लिये सहायता-अनुदान।

६ विज्ञान आदि विषयों के अध्यापन में सुधार, मिडिल स्कूलों में दस्तकारी की शिक्षा देने तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करने की सुविधाओं का आयोजन।

७ माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिये 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्' की स्थापना।

सारांश

माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता का अनुभव करके 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की सिफारिश की। अतः भारत सरकार ने मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। इसमें दो विदेशी विद्वानों को भी स्थान दिया गया।

आयोग के सुझाव—आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के दोषों की विशद व्याख्या की और उनको दूर करने के लिये अग्रलिखित सुझाव दिये—(१) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, (२) माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठन, (३) भाषाओं का अध्ययन, (४) माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य-क्रम, (५) पाठ्य-क्रम के विषय, (६) शिक्षण की प्रावैगिक विधियाँ, (७) चरित्र-निर्माण की शिक्षा, (८) माध्यमिक विद्यालयों में मार्ग-प्रदर्शन एवं समुपदेशन, (९) छात्रों का शारीरिक कल्याण, (१०) परीक्षा एवं शैक्षिक-मूल्यांकन, (११) अध्यापकों की उन्नति, (१२) अध्यापकों का प्रशिक्षण, एवं (१३) प्रशासन की समस्याएँ।

सरकार द्वारा सुझावों का कार्यान्वयन—(१) बहु-उद्देशीय स्कूलों की स्थापना, (२) 'ग्रामीण उच्च-शिक्षा समिति', 'अखिल भारतीय क्रीडा-परिषद्', और 'अखिल-भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद्' की स्थापना, (३) कृषि-शिक्षा का विस्तार,

(४) इंजीनियरिंग कॉलेजो एवं प्राविधिक विद्यालयो का निर्माण, और (५) माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओ का अध्यापन।

TEST QUESTIONS

1 "Teacher-Training has not received the attention it deserves in the development of our educational system" Explain What are the recommendations of the *Mudaliar Commission of 1953 in regard to this* ?
"हमारी शैक्षिक प्रणाली के विकास मे शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रति वह ध्यान नही दिया गया है, जो दिया जाना चाहिए।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। इसके सम्बन्ध मे १९५३ के मुदालियर कमीशन की क्या सिफारिशें है ?

2 Critically examine the recommendations of the Mudaliar Commission for the reorganization of Secondary Education in India What steps have been taken so far, towards their implementation ?
भारत मे माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के लिये मुदालियर कमीशन की सिफारिशो का विवेचनात्मक वर्णन कीजिये। उनको कार्यान्वित करने के लिए अब तक कौन-से उपाय किये गये हैं ?

3 Discuss the pattern of Secondary Education as recommended in the Report of the Secondary Education Commission
माध्यमिक शिक्षा-आयोग के प्रतिवेदन मे दिये हुए माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप का वर्णन कीजिये।

4. Comment upon the *National Pattern of Education suggested* by the *Mudaliar Commission* bringing out its merits and demerits
मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के नवीन आकार के बारे मे क्या सिफारिशें की है—माध्यमिक शिक्षा-आयोग द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा के आकार की व्याख्या कीजिये और गुणो और दोषो का स्पष्टीकरण कीजिये।

२४

विश्वविद्यालय-शिक्षा

(१९४७-१९७०)

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयो की सख्या मे श्लाघनीय वृद्धि हुई है। देश के विभाजन से पूर्व भारत मे २१ विश्वविद्यालय थे, परन्तु उसके उपरात १९ रह गये। उस समय से लेकर आज तक ५५ नये विश्वविद्यालयो की स्थापना हो चुकी है। इस प्रकार अब हमारे देश मे ७४ विश्वविद्यालय है।

स्वतन्त्र भारत मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो की संख्या मे भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। १९४७ मे उच्च-शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो की संख्या १,९९,२५३ थी।[1] परन्तु १९६६ मे यह संख्या बढकर १९,५९,००० हो गई, और सरकार द्वारा उच्च-शिक्षा पर १३१·४१ करोड रुपये व्यय किये गये।[2]

विश्वविद्यालयों के प्रकार

विश्वविद्यालय तीन प्रकार के हैं—(१) सम्बद्धक (Affiliating) विश्वविद्यालय—जिनमे अध्यापन-कार्य नही होता है, अपितु ये परीक्षाओ के सचालन आदि की व्यवस्था करते है, (२) सम्बद्धक तथा शिक्षण (Affiliating & Teaching) विश्वविद्यालय—जो उपर्युक्त कार्य के साथ-साथ, अध्यापन एवं शोध-कार्य की सुविधायें भी प्रदान करते है, और (३) सावास तथा शिक्षण (Residential & Teaching) विश्वविद्यालय—जो सभी प्रकार के अध्यापन कार्य की व्यवस्था करते है और उनका अपने अधीन कॉलेजो पर नियन्त्रण रहता है।

---

1. S. N. Mukerji : *op. cit*, p. 362.
2. *India*, 1969, p 68.

भारत के विश्वविद्यालय[1]

विश्वविद्यालय	स्थापन-तिथि	प्रकार
१. आगरा विश्वविद्यालय, आगरा	१६२७	सम्बद्धक
२. कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना	१६६२	सावास व शिक्षण
३. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़	१६२१	,, ,,
४. इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद	१८७७	,, ,,
५. आंध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेयर,	१६२६	सम्बद्धक व शिक्षण
६. आंध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, हैदराबाद	१६६४	सावास व शिक्षण
७. अन्नामलई विश्वविद्यालय, अन्नामलई नगर	१६२६	,, ,,
८. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	१६१६	,, ,,
६. बंगलौर विश्वविद्यालय, बंगलौर	१६६४	संघीय (Federal)
१०. बरहामपुर विश्वविद्यालय, बरहामपुर	१६६७	सम्बद्धक
११. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर	१६६०	सम्बद्धक व शिक्षण
१२. बिहार विश्वविद्यालय, मुज़फ्फरपुर	१६६२	,, ,,
१३. बम्बई, विश्वविद्यालय, बम्बई	१६५७	संघीय व शिक्षण
१४ बर्दवान विश्वविद्यालय, बर्दवान	१६६०	सम्बद्धक व शिक्षण
१५. कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता	१८५७	,, ,,
१६. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	१६२२	,, ,,
१७. दिबरूगढ़ विश्वविद्यालय, दिबरूगढ़	१६६५	,, ,,
१८. गोहाटी विश्वविद्यालय, गोहाटी	१६४८	,, ,,
१६. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर	१६५७	,, ,,
२०. गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद	१६४६	,, ,,
२१. इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़	१६५६	,, ,,
२२. इन्दौर विश्वविद्यालय, इन्दौर	१६६४	शिक्षण व संघीय
२३. जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर	१६५७	सम्बद्धक व शिक्षण
२४. जादवपुर विश्वविद्यालय, जादवपुर	१६५५	शिक्षण व एकात्मक (Unitary)
२५. जम्मू व काश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर	१६४८	सम्बद्धक व शिक्षण
२६. जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर	१६६४	सावास व शिक्षण
२७. जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर	१६६४	सम्बद्धक व शिक्षण

1. *India*, 1969, pp. 70-71.

विश्वविद्यालय	स्थापन-तिथि	प्रकार
२८. जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर	१६६२	सावास व शिक्षण
२६. कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी	१६६०	,, ,,
३०. कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा	१६६१	,, ,,
३१. कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर	१६६५	सम्बद्धक
३२. कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड	१६४६	सम्बद्धक व शिक्षण
३३. केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम्	१६३७	संघीय व शिक्षण
३४. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र	१६५६	सावास व शिक्षण
३५. लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	१६२१	,, ,,
३६. मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास	१८५७	सम्बद्धक व शिक्षण
३७. मदुराई विश्वविद्यालय, मदुराई	१६६६	,, ,,
३८. मगध विश्वविद्यालय, बुद्धगया	१६६२	,, ,,
३६. मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ	१६६६	,, ,,
४०. एम० एस० यूनीवर्सिटी ऑफ बडौदा, बडौदा	१६४६	सावास व शिक्षण
४१. मराठावाद विश्वविद्यालय, औरंगाबाद	१६५८	सम्बद्धक व शिक्षण
४२. मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर	१६१६	,, ,,
४३. नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर	१६२३	,, ,,
४४. नार्थ बंगाल विश्वविद्यालय, सिलीगुरी	१६६२	,, ,,
४५. उडीसा यूनीवर्सिटी आफ एग्रीकल्चर एण्ड टेकनालॉजी, भुवनेश्वर	१६६२	सावास व शिक्षण
४६. उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद	१६१८	सम्बद्धक व शिक्षण
४७. पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ	१६४७	,, ,,
४८. पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला	१६६२	सावास व शिक्षण
४६. पटना विश्वविद्यालय, पटना	१६१७	,, ,,
५०. पूना विश्वविद्यालय, पूना	१६४६	सम्बद्धक व शिक्षण
५१. रवीन्द्र भारती, कलकत्ता	१६६२	,, ,,
५२. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	१६४७	,, ,,
५३. राँची विश्वविद्यालय, राँची	१६६०	,, ,,
५४. रवि शंकर विश्वविद्यालय, रायपुर	१६६४	,, ,,
५५. रुडकी विश्वविद्यालय, रुडकी	१६४६	सावास व शिक्षण
५६. सम्बलपुर विश्वविद्यालय, सम्बलपुर	१६६७	सम्बद्धक व शिक्षण
५७. सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर	१६५५	,, ,,
५८. सागर विश्वविद्यालय, सागर	१६४६	,, ,,
५६. सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, अहमदाबाद	१६६५	,, ,,
६०. शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर	१६६२	,, ,,

विश्वविद्यालय	स्थापन-तिथि	प्रकार
६१ एस० एन० डी० टी० वीमेन्स यूनीवर्सिटी, बम्बई	१९५१	सम्बद्धक व शिक्षण
६२ श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति	१९५४	,, ,,
६३ साउथ गुजरात यूनीवर्सिटी, सूरत	१९६५	,, ,,
६४ उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर	१९६२	,, ,,
६५ यूनीवर्सिटी आफ एग्रीकल्चरल साइंसेज, बंगलौर	१९६४	,, ,,
६६ यू० पी० एग्रीकल्चरल यूनीवर्सिटी, पन्यनगर, नैनीताल	१९६०	सावास व शिक्षण
६७. उत्कल विश्वविद्यालय, कटक	१९४३	सम्बद्धक व शिक्षण
६८ वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	१९५८	,, ,,
६९ विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	१९५७	,, ,,
७०. विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन	१९५१	सावास व शिक्षण
७१. ए० पी० सिंह यूनीवर्सिटी ऑफ रीवा, रीवा	१९६८	सम्बद्धक
७२. कालीकट विश्वविद्यालय, कालीकट	१९६८	,,
७३. गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर	१९६७	,,
७४ महाराष्ट्र कृषि विद्यापीठ	१९६८	सम्बद्धक व शिक्षण

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग[1] (१९५३)

सरकार द्वारा १९४८ में नियुक्त 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग'[2] के सुझाव के अनुसार १९५३ में 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' की स्थापना की गई। १९५६ में संसद के एक अधिनियम द्वारा इसे एक स्वतन्त्र संस्था स्वीकार कर लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार अध्यक्ष के अतिरिक्त 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के ९ सदस्य होंगे। इनमें से ३ विश्वविद्यालयों के उपकुलपति, ४ प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञ एवं २ केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि होंगे।

आयोग की स्थिति—३१ मार्च, १९६९ को 'आयोग' की स्थिति इस प्रकार थी : अध्यक्ष—डी० एस० कोठारी, सदस्य—एम० धावन, ताराम मजूमदार, डी० एस० रेड्डी, पी० बी० गजेन्द्रगडकर, जॉ० के० चन्द्रमणि, पी० गोविन्दन नय्यर, इन्दुमति चिमनलाल व बी० के० गोयल, सेक्रेटरी पी० जे० फिलिप।[3]

1 University Grants Commission
2 University Education Commission.
3. *India*, 1969, p. 69.

आयोग के कर्त्तव्य—'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' के कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं —

१. विश्वविद्यालय-शिक्षा मे सुधार करने और शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये विश्वविद्यालयों को परामर्श देना।
२. भारतीय विश्वविद्यालयो मे शिक्षा के स्तर मे समन्वय रखने और विश्वविद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओ पर एक विशेषज्ञ-संस्था के रूप मे केन्द्रीय सरकार को सलाह देना।
३ विश्वविद्यालयो की आर्थिक आवश्यकताओ को जाँच करना और केन्द्रीय सरकार द्वारा उनको सहायता-अनुदान मे दिये जाने वाले धन के सम्बन्ध मे सुझाव देना।
४. विश्वविद्यालयो को अपने कोष मे से दिये जाने वाले धन का वितरण करना और इस सम्बन्ध मे अपनी नीति निर्धारित करना।
५. नवीन विश्वविद्यालयो की स्थापना एवं पुराने विश्वविद्यालयो के कार्य-क्षेत्र की वृद्धि पर पूछे जाने पर अपना मत व्यक्त करना।
६. केन्द्रीय सरकार एव विश्वविद्यालयो द्वारा पूछे गये प्रश्नो का उत्तर देना और उनकी शकाओ का समाधान करना।
७. विश्वविद्यालयो द्वारा विविध सेवाओ के लिए प्रदान की गई उपाधियो के सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार एव राज्य-सरकारो को अपनी सम्मति देना।
८. विश्वविद्यालयो के लिये उपयुक्त समझी जाने वाली सूचनाओ को भारत तथा विदेशो से एकत्र करके विश्वविद्यालयो को प्रेरित करना।
९. विश्वविद्यालयो से उनकी परीक्षाओ, पाठ्य-क्रमो, शोध-कार्यों आदि के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त करना।
१०. विश्वविद्यालय-शिक्षा के विस्तार एवं विकास से सम्बन्धित आवश्यक कार्यों को सम्पन्न करना।[1]

हर्ष का विषय है कि 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' अपने कर्त्तव्यो का सतर्कता से पालन कर रहा है, जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालय-शिक्षा के क्षेत्र मे अभिनन्दनीय विकास हो रहा है। वस्तुत. भारत-सरकार ने आयोग की स्थापना करके महान् आवश्यकता की पूर्ति की है।

विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा

एक अध्ययन-मंडली ने, जिसने अपनी रिपोर्ट जनवरी, १९५७ मे सरकार को दी, सामान्य शिक्षा (General Education) की दो योजनायें तैयार की हैं। इसकी मुख्य योजना मे प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से सम्बन्धित मूल विषयो के अध्ययन की सामान्य शिक्षा, सभी स्नातक-पूर्व (Under-Graduates) गैर-

1. *University Grants Commission Act*, 1956, Section 12.

व्यावसायिक (*Non-Professional*) संकार्यों के लिये अनिवार्य है। वैकल्पिक योजना मे डिग्री पाठ्य-क्रम के प्रथम एव द्वितीय वर्ष मे सामान्य शिक्षा के लिये सप्ताह मे ६ घटो (*Periods*) के अध्यापन की व्यवस्था की गई है। भारत के केवल १५ विश्वविद्यालयो ने सामान्य शिक्षा के पाठ्य-क्रम को लागू किया है।

त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम[1]

देश की नवीन आवश्यकताओ एव अभिरुचियो को ध्यान मे रखकर विश्व-विद्यालय की शिक्षा के पुनर्संङ्गठन के लिये प्रयास किये गये हैं। इस क्षेत्र मे किये गये अधिक महत्त्वपूर्ण निर्णयो मे एक निर्णय 'त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम' प्रारम्भ करने का है। भारत के ४१ विश्वविद्यालयो और ७६३ कॉलेजो मे इस सुधार को क्रियान्वित किया जा रहा है। दिल्ली एव जादवपुर के विश्वविद्यालयो मे इसे क्रमश १९४३-४४ और १९५६-५७ मे ही प्रारम्भ किया जा चुका है। बम्बई विश्वविद्यालय ने इस योजना को अभी तक स्वीकार नही किया है। शेष सभी विश्वविद्यालयो ने इसे क्रियान्वित करना स्वीकार कर लिया है। इस सुधार को क्रियान्वित करने मे जो धन व्यय होगा, उसे 'त्रि वर्षीय पाठ्य-क्रम अनुमान व्यय समिति' की सिफारिश के अनुसार एक ओर 'केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय' एव 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग', और दूसरी ओर राज्य-सरकार तथा प्रबन्धक समान रूप मे वहन करेंगे।

केन्द्रीय विश्वविद्यालय[2]

केन्द्रीय सरकार पर अग्रलिखित पाँच केन्द्रीय विश्वविद्यालयो के संचालन का उत्तरदायित्व है —(१) अलीगढ मुस्लिम यूनीवर्सिटी, (२) बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी, (३) दिल्ली यूनीवर्सिटी, (४) विश्वभारती यूनीवर्सिटी, शान्तिनिकेतन, (५) जवाहरलाल नेहरू यूनीवर्सिटी, नई दिल्ली।[3]

केन्द्रीय सरकार द्वारा अग्राकित सस्थाओ को अनुदान दिया जाता है — (१) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, (२) कन्या गुरुकुल, देहरादून, (३) श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र, पाडेचेरी, (४) लोक भारती, सनोसरा (गुजरात)।[4]

विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोष

विश्वविद्यालय शिक्षा का 'उद्देश्य' बताते हुए १८५२ मे न्यूमैन ने लिखा — "यदि विश्वविद्यालय की शिक्षा का कोई व्यावहारिक उद्देश्य है, तो मैं कह सकता हूँ कि वह समाज के उत्तम नागरिको को प्रशिक्षित करना है।"[5] एक राष्ट्र के विश्व-

---

1. Three Year Degree Course
2. Central Universities
3. *Hindustan Year-Book*, 1970, p 182
4. *Ibid*
5. "If a practical end must be assigned to a university course, then I say it is training of good members of society" —Cardinal Newman : *The Scope & Nature of University Education*, Discourse 6

विद्यालयों की शिक्षा का स्तर वहाँ के निवासियों के बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर का मानदण्ड है। "देश का वैभव विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित होता है। दूषित विश्वविद्यालय सम्पूर्ण राष्ट्र को दूषित कर देते हैं।"[1] विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य न केवल बुद्धिमान नागरिकों का, अपितु सुयोग्य व्यक्तियों का भी निर्माण करना है। 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' ने भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों का भ्रमण करते समय इस बात का अनुभव किया कि—सभी व्यक्ति राष्ट्रीय कल्याण के लिये विश्व-विद्यालय शिक्षा के महत्त्व से अवगत थे, परन्तु वे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की अपूर्णता से क्षुब्ध थे। भावी नागरिकों का निर्माण करने वाले विश्वविद्यालय, शिक्षा की प्राचीन पद्धति से आबद्ध नहीं रह सकते हैं। समाज की अभिवृद्धित जटिलता तथा परिवर्तनशील रूप के कारण यह आवश्यक हो गया है कि यदि वे हमारे राष्ट्रीय जीवन में प्रभावपूर्ण रूप से कार्य करना चाहते हैं, तो वे अपने उद्देश्यों तथा विधियों में परिवर्तन करें।[2] अपने जिन दोषों का निराकरण करके विश्वविद्यालय राष्ट्रीय जीवन में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर सकते हैं, उन पर हम नीचे प्रकाश डाल रहे हैं —

१. विश्वविद्यालय-शिक्षा में अपव्यय[3]

विश्वविद्यालय-शिक्षा में अत्यधिक अपव्यय है। इस सम्बन्ध में **'विश्व-विद्यालय शिक्षा-आयोग'** ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है "सार्व-जनिक धन का प्रति वर्ष महान् अपव्यय हो रहा है, परन्तु इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि सार्वजनिक धन की गम्भीर हानि के प्रति उतनी ही उदासीनता है जितनी कि छात्रों और उनके अभिभावकों पर भयंकर निराशा तुषारापात के प्रति।"[4]

---

1 "The prosperity of the country is linked up with the university A vicious university is like a contaminated fountain which is bound to imperil health of those who drink from it "

—R K Singh · *Our Universities*, p 9

2 "We were everywhere struck by a deep general awareness of the importance of higher education for national welfare and an uneasy sense of the inadequacy of present pattern The universities as the makers of the future cannot persist in the old patterns, With the increasing complexity of society and its shifting pattern, universities have to change their objectives and methods, if they are to function effectively in our national life "

—*Report of the University Education Commission*, pp 5-6

3 Wastage in University Education

4 "A deplorable wastage of public funds goes on year after year But what is worse, there is an unconcerned complacency about this serious loss of public funds on the one hand, and waste of time, enegry and funds of students and their parents, besides terrible frustration of their hopes and inspirations on the other "—*Report of University Education Commission*, p 86

विश्वविद्यालय-शिक्षा मे होने वाले अपव्यय का अनुमान नीचे की तालिका से लगाया जा सकता है —

विभिन्न परीक्षाओ के फल (१९५९-६०)[1]

परीक्षा विवरण	सम्मिलित होने वाले छात्र (सख्या)	उत्तीर्ण होने वाले छात्र (सख्या)	सफलता प्रतिशत
आई० ए०	२,३६,१४६	८७,६१५	३७ १
आई० एस-सी०	९६,१८८	४१,५२६	४३ २
बी० ए०	१३,३५,३४७	५८,४५२	४३ २
बी० एस-सी०	५०,५०६	२२,३९७	४४ ३
एम० ए०	१९,८५४	१६,३४३	८२'३
एम० एस-सी०	५,०१०	३,९७१	७९ ३
व्यावसायिक विषय	८३,८४३	५३,३५४	६० ५

इस अपव्यय को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि केवल योग्य छात्रो को ही विश्वविद्यालयो मे प्रवेश दिया जाय। 'सार्जेन्ट-रिपोर्ट' के अनुसार हाई स्कूल-परीक्षा मे सफल होने वाले छात्रो मे से १५ मे से केवल १ को प्रवेश दिया जाय।[2] इसके अतिरिक्त, पाठय-क्रम मे इस प्रकार सुधार किया जाय कि वह साहित्यिक न रहकर व्यावहारिक हो जाय, अन्यथा अनुत्तीर्ण छात्रो की सख्या मे कमी न हो सकेगी। परीक्षा-प्रणाली मे सुधार करना और अग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के पद से हटाना भी आवश्यक है तभी विश्वविद्यालय-शिक्षा के अपव्यय को कम किया जा सकेगा।

२. *दोषपूर्ण पाठ्यक्रम*

हमारे विश्वविद्यालयो के पाठय-क्रम विभिन्न प्रकार के छात्रो की अभिरुचियो की पूर्ति नही कर पाते हैं, फलस्वरूप उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इस दोष का निवारण करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि विश्वविद्यालयो के पाठय-क्रमो मे उसी प्रकार की विविधता समाविष्ट की जाय, जैसी कि 'मुदालियर कमीशन' ने माध्यमिक विद्यालयो के पाठ्य-क्रम के लिये निर्धारित की है। विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रम का लचीला होना आवश्यक है, जिससे उसको परिवर्तनशील समाज की परिस्थितिया और उसके सदस्यो की आवश्यकताओ के अनुकूल बनाया जा सके। *"शिक्षा प्रणालियो का निर्माण कुछ समय के लिए, न कि सदैव के लिये किया जाता है।* मानव को शिक्षा देने की कोई स्थायी विधियाँ नही हैं। जो पाठय-क्रम वैदिक काल या पुनरुत्थान के युग मे उपयुक्त था, उस २०वीं शताब्दी म बिना परिवर्तित किये प्रयोग

1 *Education in India, (1959-60), p 171*

2 *Sargent Report, p 32.*

नहीं किया जा सकता है।"[1] अतः यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम मे यथाशीघ्र सुधार किया जाए।

३. शिक्षा मे विशिष्टीकरण[2]

विश्वविद्यालय-शिक्षा का एक स्पष्ट दोष यह है कि विभिन्न विषयो मे विशिष्टीकरण पर बल दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्रो को किसी विशेष विषय मे तो दक्षता प्राप्त हो जाती है; परन्तु उनका दृष्टिकोण असन्तुलित रहता है और वे पूर्णतया शिष्ट व्यक्ति नही बन पाते हैं। सैयदैन ने उचित ही लिखा है —"विशिष्टीकरण मे एक प्रकार की संकीर्णता एवं काल्पनिकता होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि विज्ञान के छात्रो को कला और कविता तथा सामाजिक और राजनैतिक समस्याओ का कोई ज्ञान नही होता, और आर्ट्स के विद्यार्थियो को इस बात का ज्ञान नही होता है कि विज्ञान तथा वैज्ञानिक विधियो ने उस संसार को—जिसमें वे निवास करते है, किस प्रकार परिवर्तित कर दिया है।"[3]

विश्वविद्यालय-शिक्षा मे इस अलौकिक विशिष्टीकरण का निराकरण करने के विचार से 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' ने सुझाव दिया है कि 'सामान्य शिक्षा' (General Education) को विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रम मे स्थान दिया जाय। इस शिक्षा का उद्देश्य—वर्तमान पाठ्य-क्रम मे असन्तुलित विशिष्टीकरण के दोषो का उन्मूलन करना है।

४. छात्रों में पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था न होना[4]

हमारे विश्वविद्यालयो मे छात्रो का पथ-प्रदर्शन करने और उनको परामर्श देने की कोई व्यवस्था नही है। इसके अभाव मे छात्र स्वयं अपनी इच्छा से या किसी

---

1. "Educational systems are built for a time and not for all time. There are not changeless ways of educating human nature. A curriculum which had vitality in the Vedic period or Renaissance cannot continue unaltered in the 20th Century." —*Report of the University Education Commission*, p. 44.

2. Specialisation in Education.

3. There is a certain narrow, unimaginative type of specialisation which results in the Science students being complacently ignorant of art and poetry; and Arts students having no appreciation of how science and the scientific technique have transformed the world in which they are living."—K. G. Saiyadain : *Education, Culture & Social Order*, p. 163.

4. No Provision for Students' Guidance & Counselling.

अनुभवहीन व्यक्ति के परामर्श से पाठय-क्रम मे विषयो का चयन करते हैं। परिणाम यह होता है कि अनेक छात्र ऐसे विषयो का चुनाव कर लेते हैं, जो या तो उनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल होते हैं या जिनका अध्ययन करने की उनमे क्षमता नही होती है। जब उन्ह इस बात का ज्ञान होता है, तब इतना विलम्ब हो जाता है कि वे अपने को कुछ करने मे असमर्थ पाते हैं। फलत उन्हे छात्र-जीवन मे असफलता, और इस असफलता के परिणामस्वरूप व्यावहारिक जीवन म निराशा का सामना करना पडता है। अत आवश्यकता इस बात की है कि विश्वविद्यालय-जीवन मे आदि से लेकर अन्त तक छात्रो को अनुभवी तथा प्रशिक्षित व्यक्तिया का पथ प्रदर्शन एव परामर्श प्राप्त हो। इस सम्बन्ध मे जैसी व्यवस्था 'मुदालियर कमीशन' ने माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो के लिए की है, वैसी ही व्यवस्था विश्वविद्यालयो के छात्रो के लिए भी की जानी चाहिए।

५ शिक्षा का निम्न स्तर

हमारे कॉलेजो और विश्वविद्यालयो की शिक्षा का स्तर पर्याप्त निम्न है। आयङ्गर ने उचित ही लिखा है —"हमारे ज्ञान और शिक्षण का स्तर वैस तो कभी भी ऊँचा नही था, परन्तु अब वह अति तीव्रता से नीचे की ओर जा रहा है।'[1] इसके अनेक कारण प्रस्तुत किये जाते हैं। यह बात सवविदित है कि कॉलेजो और विश्वविद्यालयो के अध्यापको पर कार्य का भार अत्यधिक है। फलस्वरूप वे अपने व्याख्यानो को पूर्ण रूप से तैयार करने के लिए समय नही निकाल पात हैं। कक्षाओ मे इतने अधिक छात्र होते है कि उनमे और अध्यापको मे व्यक्तिगत सम्पर्क असम्भव होता है। ट्यूटोरियल पद्धति, विमर्श गोष्ठियो और पुस्तकालयो मे अध्ययन करन की प्रथा का पूर्ण अभाव है। फिर अध्यापको का वेतन इतना न्यून है कि उन्ह अपने कार्य म रुचि लेने की कोई इच्छा ही नही होती है। साथ ही, छात्रा-को प्रतिदिन इतने घण्टे कॉलेजा मे अध्ययन करना पडता है कि कुछ घण्टो के पश्चात् रोचक व्याख्यान भी उनके लिये अरुचिकर प्रतीत होने लगता है। 'राधाकृष्णन् कमीशन' ने विश्वविद्यालयो के अध्यापन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिय कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये है, जिनमे से प्रमुख हैं (१) अध्यापका की वेतन वृद्धि, (२) उनके द्वारा सप्ताह मे १८ घण्टे अध्यापन काय, (३) सेवा प्रतिबन्धो म सुधार, (४) ट्यूटोरियल कक्षाओ की व्यवस्था, (५) पुस्तकालया एव प्रयोगशालाओ का सुसगठन, एव (६) विमर्श-गोष्ठियो को प्रोत्साहन।

६ शिक्षा का माध्यम 'अग्रेजी' होना

हमार देश को स्वतन्त्र हुए आज पूरे २३ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, पर अब

---

1 "Our standards whether in scholarship or teaching, never very high or exacting are now fast racing, to the bottom"
—K R S Iyengar *A New Deal of Our Universities*, p 29

भी विश्वविद्यालयो मे शिक्षा के माध्यम के पद पर 'अंग्रेजी' भाषा प्रतिष्ठित है। हमारी दीर्घकालीन दासता ने हम मे अंग्रेजी से इतना मोह उत्पन्न कर दिया है कि हम अब भी उसका आंचल पकडे हुए हैं। परन्तु इससे हमारे नवयुवको का कितना अनर्थ हो रहा है, इस बात को हमने कभी शान्त मस्तिष्क से नही विचारा है। इस सम्बन्ध मे राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का कथन था :—"विदेशी माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को क्षीण कर दिया है। इसने व्यक्तियो की आयु कम कर दी है, इसने उनको जन-साधारण से पृथक् कर दिया है, इसने शिक्षा को अनावश्यक रूप से महँगा बना दिया है।"[1] इन दोषो को देखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अंग्रेजी को शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा के माध्यम के पद से हटा देना चाहिये। 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' ने सुझाव दिया है कि प्रादेशिक भाषा या सघीय भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। अधिक उपयुक्त यह होगा कि संघीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय, जिससे देश के विभिन्न राज्यो के व्यक्तियो के मध्य सम्पर्क स्थापित करने और अखिल भारतीय सेवाओ की परीक्षा लेने मे सुविधा हो।

७ दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली

हमारे विश्वविद्यालयो की परीक्षा-प्रणाली अनेक दोषो से युक्त है। आज तक जितनी भी समितियाँ एव आयोग नियुक्त किये गये है, उन सब ने इन दोषो पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। १९०२ के **'भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग'** का कथन था—"भारत मे विश्वविद्यालय-शिक्षा का सर्वमहान् दोष यह है कि 'शिक्षण' परीक्षा के अधीन है, न कि 'परीक्षा' शिक्षण के।"[2] १९४९ के **'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग'** का मत था—"यदि हम विश्वविद्यालय-शिक्षा के केवल एक विषय मे सुधार का सुझाव दें तो वह परीक्षाओ के सम्बन्ध मे होना चाहिए।"[3] इस सुधार के विषय मे विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' ने कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये है, जिनमे से मुख्य है —(१) वैज्ञानिक पद्धतियो को परीक्षा-पद्धति मे क्रियान्वित करना, (२) प्रगति-परीक्षाओं द्वारा छात्रो का

---

1 "The imposition of a foreign medium has sapped the energy of the nation. It has shortened the lives of the people, it has estranged them from the masses, it has made education unnecessarily expensive"

2 "The greatest evil from which university education in India suffers, is that teaching is subordinated to examination, and not examination to teaching"—*Report of the University Education Commission*, p 328.

3. "If we are to suggest one single reform in university education, it should be that of examination."—*Report of the University Education Commission*, p 328.

परीक्षण करना, (३) वस्तुनिष्ठ प्रगति-परीक्षाओं का कुलक तैयार करना, और (४) प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के लिये क्रमश ७०, ५५ और ४० प्रतिशत अंक निर्धारित करना।

अन्य दोष

विश्वविद्यालय शिक्षा मे और भी अनेक दोष हैं यथा—धार्मिक शिक्षा का अभाव, जिससे छात्रों का नैतिक पतन हो रहा है। स्वास्थ्य-शिक्षा की व्यवस्था न होने से विद्यार्थियों का शारीरिक विकास अवरुद्ध हो गया है। कॉलेजों एवं विश्व-विद्यालयों के अध्यापक प्रशासन-कार्य में रुचि लेने के कारण शिक्षण-कार्य की अव-हेलना करते हैं। उच्च शिक्षा संस्थायें धनाभाव के कारण शिक्षण सामग्री, छात्रावासों, व्यायामशालाओं आदि का प्रबन्ध नहीं कर पाती है। विश्वविद्यालयों में अनुसंधान-कार्य पर कम ध्यान दिया जाता है।

निष्कर्ष

उपरिकथित प्राय सभी दोषों की ओर 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' का ध्यान आकर्षित हुआ है और उसने उनके निराकरण के लिये अपने प्रतिवेदन में उपचारों का प्रस्ताव किया है, जिनमे से अधिकांश को सरकार द्वारा स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया गया है। हम आशा है कि विश्वविद्यालय शिक्षा अपने वर्तमान दोषों से मुक्त होकर भारत के नवयुवकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के साथ साथ, उनकी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्तियों को विकसित करके, उन्हें देश के योग्य नागरिक बनायेगी।

विश्वविद्यालय-शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में छात्रों में संख्या मे वृद्धि हुई है। १९५०-५१ मे छात्र संख्या ४,०३,५१९ थी, जो १९६५-६६ में बढ़कर १९,४९,००० हो गई।[1] इन आँकड़ों से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में कितनी शक्ति व्यय जा रही है। विश्वविद्यालय एवं कालेज की शिक्षा के प्रकार को उन्नत करने एवं अपव्यय को कम करने के लिये 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' कुछ उपाय कर रहा है। माध्यमिक कक्षाओं में विविधतायुक्त शिक्षा के प्रवर्तन से कदाचित् कॉलेजों मे छात्रों की भीड़ कुछ कम हो जाय। यह भी प्रश्न उपस्थित हुआ है कि—सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती की दृष्टि से किस सीमा तक डिग्री पर निर्भर किया जाय या बिल्कुल ही न किया जाय? इस पर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त की गई एक समिति विचार कर रही है। विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कॉलेज—जिनमें से अनेक में मानदण्ड असन्तोषजनक है, एक और महत्त्वपूर्ण समस्या उपस्थित करते हैं,

---

1 *India*, 1969, p 68

और केन्द्रीय सरकार इस पर भी विचार कर रही है। यह बात निर्विवाद है कि माध्यमिक कक्षाओ एवं विश्वविद्यालयो के स्तर पर सार्वजनिक सेवाओ के लिए भर्ती की शर्तों एवं विधियो में उपयुक्त परिवर्तन करने से विश्वविद्यालय की शिक्षा को वृहत्तर उद्देश्य, अर्थ एवं दिशा प्राप्त होगी और इस प्रकार राष्ट्रीय विकास मे अधिक सहायता मिल सकेगी।

सारांश

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त भारत मे ५५ विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई। इस समय देश मे ७४ विश्वविद्यालय हैं। विश्वविद्यालय ३ प्रकार के है—सम्बद्धक, शिक्षण एवं सम्बद्धक और सावास एवं शिक्षण।

विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग—इसकी स्थापना १९५३ मे की गई, और १९५६ मे संसद के एक अधिनियम द्वारा इसे स्वतन्त्र संस्था स्वीकार कर लिया गया। इस आयोग को विश्वविद्यालय-शिक्षा सम्बन्धी अधिकाश मामलो की देख-रेख का भार सौंपा गया है। आयोग को विभिन्न विश्वविद्यालयो को अनुदान देने तथा उनकी विकास योजनाओ को कार्यान्वित करने का भी अधिकार प्राप्त है। आयोग मे अध्यक्ष के अतिरिक्त ९ सदस्य होते है :—३ विश्वविद्यालयो के उपकुलपति, ४ प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-विशेषज्ञ, और २ केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि।

सामान्य शिक्षा—विश्वविद्यालयो के छात्रो के लिये सामान्य शिक्षा की योजना तैयार की गई है। प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से सम्बन्धित मूल-विषयों के अध्ययन की सामान्य शिक्षा सभी स्नातक-पूर्व गैर-व्यावसायिक संकायों के लिये अनिवार्य होगी।

त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम—४१ विश्वविद्यालयो और ७६३ कॉलेजो मे इस योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। बम्बई विश्वविद्यालय ने इसे स्वीकार नही किया है, और गोरखपुर विश्वविद्यालय इस पर विचार कर रहा है। शेष विश्व विद्यालयो ने इसे क्रियान्वित करना स्वीकार कर लिया है।

केन्द्रीय विश्वविद्यालय—अलीगढ, बनारस, दिल्ली, विश्वभारती और जवाहरलाल विश्वविद्यालयो के संचालन का भार केन्द्रीय सरकार पर है।

विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोष—(१) विश्वविद्यालय-शिक्षा मे अपव्यय; (२) दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम, (३) शिक्षा का विशिष्टीकरण, (४) छात्रों के पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था न होना, (५) शिक्षा का निम्न स्तर, (६) शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना; और (७) दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली।

समस्यायें—(१) छात्रो की संख्या मे असाधारण वृद्धि, (२) उनकी शक्ति या बेकार जाना, (३) सार्वजनिक सेवाओ के लिये डिग्री पर निर्भर होना और अनेक कॉलेजो मे शिक्षा का निम्न स्तर।

TEST QUESTIONS

1 What are the present developments in University Education in India ? *Write a critical essay giving your views on the* reorganization of University Education
भारत म विश्वविद्यालय शिक्षा की वर्तमान अग्रगतियाँ क्या है ? विश्वविद्यालय शिक्षा के पुनगठन के बारे मे अपने विचारा को व्यक्त करते हुए एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखिये ।

2 *Summarise briefly the defects of the University Education*
विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोषा का सक्षेप मे वणन कीजिये ।

3 Write short notes on the following —(a) University Grants *Commission, (b) Scheme of General* Education, *and (c) Three-*Year Degree Course
निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —(अ) विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग, (ब) सामान्य शिक्षा की योजना, (स) त्रि-वर्षीय डिग्री पाठय-क्रम ।

२५

विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग[1]

(१९४८-१९४९)

राधाकृष्णन् कमीशन[2]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयो और उनमे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रो की संख्या मे दिन-प्रतिदिन वृद्धि हुई। परन्तु विश्वविद्यालयो मे जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जा रही थी, उससे जन-साधारण मे अत्यधिक असन्तोष था। विश्वविद्यालय-शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य—छात्रो को किसी परीक्षा के लिये तैयार करना था। स्वतन्त्र भारत की नवीन राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो मे इस प्रकार की शिक्षा देश के नवयुवको के लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझी गई, और देश तथा वातावरण की अवश्यक्ताओ के अनुसार उनके नवनिर्माण की माँग की गई। अतः 'अन्तर्विश्वविद्यालय शिक्षा परिषद'[3] और 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने सरकार से एक 'अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' नियुक्त करने की सिफारिश की, जो देश की नई माँगो के अनुकूल विश्वविद्यालय शिक्षा के पुनर्गठन के लिये सुझाव दे।

आयोग की नियुक्ति

उपर्युक्त सिफारिश को स्वीकार करके भारत-सरकार ने ४ नवम्बर, १९४८ को डा० एस० राधाकृष्णन् (Dr. S. Radhakrishnan) की अध्यक्षता मे 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को 'राधाकृष्णन् कमीशन' भी कहा जाता है।

---

1. University Education Commission.
2. Radhakrishnan Commission.
3. Inter-University Board of Education.

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य

'आयोग' की नियुक्ति के उद्देश्य "भारतीय विश्वविद्यालय-शिक्षा पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना और उन सुधारो तथा विस्तारो के विषय मे सुझाव देना, जो देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओ के उपयुक्त होने के लिये वाञ्छनीय हो सकें।"[1]

'आयोग' ने विश्वविद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित एक प्रश्नावली तैयार करके शिक्षा-विशेषज्ञो के पास भेजी। लगभग ६०० व्यक्तियो ने इस प्रश्नावली के उत्तर दिये। 'आयोग' के सदस्य भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों मे गये। वहाँ उन्होने शिक्षाधिकारियो, छात्रो की संस्थाओ के प्रतिनिधियो एवं अन्य शिक्षाविदो से भेंट की और विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी अवयवो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की। तदुपरान्त 'आयोग' ने अथक परिश्रम से अपनी रिपोर्ट तैयार की और २५ अगस्त, १६४६ को उसे सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

आयोग के विचार एवं सुझाव

'आयोग' ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी पहलुओ पर अपने विचार व्यक्त किये हैं और उनमे सुधार करने के लिये सुझाव भी दिये। हम उनमे से महत्त्वपूर्ण विषयो के सम्बन्ध मे दिये गये सुझावो का संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं :—

१. विश्वविद्यालय-शिक्षा के उद्देश्य

भारतीय संविधान मे न्याय, स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुता की प्राप्ति द्वारा लोकतान्त्रिक गणराज्य स्थापित करने का संकल्प किया गया है। इन्ही आदर्शों को ध्यान मे रखकर 'आयोग' ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताये :—

१. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो मे महान् परिवर्तन हो चुका है। अत: हमारे विश्व-विद्यालयो के कर्त्तव्यो तथा दायित्वो मे वृद्धि हो गई है। अब उन्हे ऐसे व्यक्तियो का निर्माण करना है, जो राजनैतिक, प्रशासकीय तथा व्यावसायिक क्षेत्र मे नेतृत्व ग्रहण कर सकें।
२. विश्वविद्यालय, समाज-सुधार मे महत्त्वपूर्ण योग दे सकते हैं। अत. उनका उद्देश्य—ऐसे नेताओ को जन्म देना होना चाहिये जो दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा साहसी (Intellectual Adventurer) हो।
३. विश्वविद्यालयों को ऐसे विवेकी व्यक्तियो को जन्म देना चाहिए, जो प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा का प्रसार कर सकें, ज्ञान की निरन्तर खोज कर सकें, मानव-जीवन का अर्थ तथा सार जान सकें,

---

1. "......to report on Indian University Education and suggest improvements and extensions that may be desirable to suit present and future requirements of the country."—*Report of the University Education Commission*, p. 1.

रोजगारी की व्यवस्था कर सकें और देश तथा समाज के विभिन्न भौतिक अभावो की पूर्ति के लिए साधनो को जुटा सकें।

४. शिक्षा का उद्देश्य—जीवन और ज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे समन्वय स्थापित करना है। अतः यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयो मे जो विषय पढाये जायँ, वे पाठ्य-क्रम के अभिन्न अङ्ग हो, जिससे कि छात्रो के मस्तिष्क मे विभिन्न तत्त्वो का संकलन न हो, अपितु सम्पूर्ण तत्त्वो का एक ही साँचे मे समावेश हो जाय।

५. छात्रों का आध्यात्मिक विकास करना—विश्वविद्यालयो का एक प्रमुख कर्त्तव्य है।

६. विश्वविद्यालय—देश की सभ्यता तथा संस्कृति के पोषक हैं। यदि हम सभ्य कहलाना चाहते है, तो हमे दुखी-दरिद्रो के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए, स्त्रियो का सम्मान करना चाहिए, शान्ति एवं स्वाधीनता से प्रेम करना चाहिए, और अत्याचार तथा अन्याय से घृणा करनी चाहिए, विश्वविद्यालय की शिक्षा का उद्देश्य—नवयुवको मे इन तत्त्वो का संचार करना होना चाहिए।

७. शिक्षा का उद्देश्य—व्यक्ति के जन्मजात गुणो को खोज निकालना और प्रशिक्षण द्वारा उन गुणो को विकसित करना है। विश्वविद्यालय अपने छात्रो के प्रति इन दोनो कर्त्तव्यो का पालन करें।

८. स्वस्थ मस्तिष्क—स्वस्थ शरीर मे निवास करता है। अतः विश्वविद्यालयो मे छात्रो के न केवल मानसिक विकास, अपितु शारीरिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दिया जाय। शारीरिक शिक्षा विद्यार्थियो मे अनुशासन, साहस, नेतृत्व तथा सामूहिक भावना का विकास करेगी।

९. साहित्य—मानवीय भावनाओ को स्पंदित तथा परिवर्धित करता है। अत विश्वविद्यालयो को भाषा एवं मातृभाषा के साहित्य को सामान्य-शिक्षा मे सर्वप्रथम स्थान देना चाहिए। साथ ही विश्वविद्यालयो मे दार्शनिक अध्ययनो पर बल दिया जाना चाहिए, क्योंकि उनका जीवन के आचरणो तथा उद्देश्यो से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

१०. "हम न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुता की प्राप्ति द्वारा प्रजातन्त्र की खोज मे रत है।"[1] अतः यह आवश्यक है कि हमारे विश्वविद्यालय इन आदर्शों के प्रतीक तथा संरक्षक हो।

२. अध्यापक वर्ग[2]

अध्यापको की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए 'आयोग' ने लिखा—

1. "We are engaged in a quest for democracy through the realisation of justice, liberty, equality and fraternity."—*Report of the University Education Commission*, p. 36.

2. Teaching Staff.

१. अध्यापकों को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि शिक्षण का स्तर गिरता चला जा रहा है। इसके लिए अध्यापक उतने उत्तरदायी नहीं है, जितने कि विश्वविद्यालय और सरकार। अध्यापकों को अन्वेषण तथा पुस्तकालयों की सुविधा प्राप्त नहीं है। यदि विश्व-विद्यालय और सरकार आवश्यक साधनों को जुटा दें, तो अध्यापक अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता हो सकता है।

२ हमारे विश्वविद्यालयों मे लोकतान्त्रिक नियन्त्रण तथा निर्वाचनो की पद्धति है। अत अध्यापकों में विश्वविद्यालय के प्रशासनात्मक कार्यों मे अधिक रुचि हो गई है, और वे अपने अध्यापन कार्य की उपेक्षा करने लगे हैं।

३ अध्यापकों का वेतन न्यून है, उनकी सेवा की शर्तें आकर्षक नहीं हैं, और उन्हे अपना कार्य करने की प्रेरणा नहीं प्राप्त होती है।

उपरिलिखित त्रुटियों को दूर करने के लिये 'आयोग' ने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए, यथा —

१ अध्यापकों को प्राविडेन्ट-फण्ड की अधिक उत्तम सुविधा दी जाय। इसके लिए अध्यापक और विश्वविद्यालय—दोनों आठ-आठ प्रतिशत दें।

२ विश्वविद्यालय के समीप ही अध्यापकों के निवास की व्यवस्था की जाय।

३ अध्यापक अपने पद पर ६० वर्ष की आयु तक रहे, और यदि उनका स्वास्थ्य अच्छा है, तो वे ६४ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते हैं।

४. अध्यापकों को अध्ययन के लिए एक बार मे एक १ वर्ष का अवकाश, और सम्पूर्ण सेवा-काल मे ३ वर्ष का अवकाश मिलना चाहिए।

५ अध्यापकों को एक सप्ताह मे अधिक से अधिक १८ घण्टे (Periods) का अध्यापन कार्य दिया जाय।

६ अध्यापकों को चार वर्गों म विभक्त किया जाय—(क) प्रोफेसर, (ख) रीडर, (ग) लेक्चरर, और (घ) इंसट्रक्टर। इनके अतिरिक्त, अनुसधान अभिसदस्य (Research Fellows) भी हो। इनका वेतनक्रम निम्नलिखित होना चाहिए —

विश्वविद्यालयों में

(क) प्रोफेसर	९००—५०—१,३५० रु०
(ख) रीडर	६००—३०— ९०० रु०
(ग) लेक्चरर	३००—२५— ६०० रु०
(घ) इंस्ट्रक्टर	२५०—२५— ५०० रु०
(ङ) अनुसंधान-अभिसदस्य	२५०—२५— ५०० रु०

सम्बद्ध स्नातक-कक्षा कॉलेज		स्नातकोत्तर-कक्षा कॉलेज
लेक्चरर	२००-१५-३२०-२०-४०० रु०	२००-१५-३०-२०-४००-२५-५०० रु०
सीनियर पोस्ट (प्रत्येक कॉलेज मे दो)	४००-२५-६०० रु०	५००-२५-८०० रु०
प्रिंसिपल	६००-४०-८०० रु०	८००-५०-१,००० रु०

७. अध्यापकों को निम्न पद से उच्च पद पर उन्नति केवल योग्यता के आधार पर दी जाय।

८. जूनियर (लेक्चरर आदि) और सीनियर (रीडर व प्रोफेसर) पदो का अनुपात २ : १ होना चाहिए।

३. अध्यापन के स्तर[1]

हमारे विश्वविद्यालयो का अध्यापन-स्तर निम्न है। अत इस बात की आवश्यकता है कि विश्वविद्यालय अपने शिक्षण-स्तर को उच्चतम बनाएँ। जब तक हमारे विश्वविद्यालय ऐसा नही करेंगे, तब तक हमारी उपाधियो को अपने देश और विदेशो मे आदर प्राप्त नही होगा, और छात्रो को एक बहुत बडी संख्या मे उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूसरे देशो को जाना पडेगा। विश्वविद्यालयो मे शिक्षण-स्तर की अभिवृद्धि करने के लिए 'आयोग' ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. विश्वविद्यालयो मे प्रवेश पाने के लिये विद्यार्थी वर्तमान इंटरमीडिएट परीक्षा या उसके समकक्ष परीक्षा मे उत्तीर्ण हो।

२. प्रत्येक प्रान्त मे अधिक संख्या मे इन्टरमीडिएट कॉलिज खोले जायँ, जिनमे योग्य शिक्षक और समुचित शिक्षण-सामग्री हो।

३ हाई स्कूल एवं इन्टर के उपरान्त छात्रो को व्यावसायिक एव प्राविधिक स्कूल मे जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, और इस प्रकार के स्कूल पर्याप्त संख्या मे स्थापित किये जायँ।

४. शिक्षण-विश्वविद्यालयो की कला एव विज्ञान कक्षाओ मे ३,००० और सम्बद्ध कॉलेजो मे १,५०० से अधिक छात्र न रखे जायँ।

५. परीक्षा-दिवसो को छोडकर कार्य करने के दिन एक वर्ष मे कम-से-कम १८० हो।

६. शिक्षको के व्याख्यान परिश्रम से तैयार किये जायँ, ट्यूटोरियल-कक्षाओ की व्यवस्था की जाय और पुस्तकालय मे अध्ययन तथा लिखित-कार्य पर बल दिया जाय।

७. किसी भी कक्षा के लिए पाठ्य-क्रम निश्चित न किया जाय।

८. व्यक्तिगत परीक्षार्थियो के ऊपर अधिक नियन्त्रण रखा जाय।

---

1. Standards of Teaching.

९. विभिन्न व्यवसायो में लगे हुए व्यक्तियो के लिए सायंकाल के समय कक्षाओं का प्रबन्ध किया जाय।
१०. पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं को पूर्ण रूप से सुसंगठित तथा आधुनिक ढंग से सुसज्जित किया जाय।
११. विश्वविद्यालयो मे हाई-स्कूल तथा इंटर कॉलेजो के अध्यापको के लिए 'अभिनवन पाठ्यक्रम' (Refresher Course) की व्यवस्था की जाय।
१२. स्नातकोत्तर स्तर पर विमर्श-गोष्ठियो (*Seminars*) को प्रोत्साहित किया जाय।

४. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम 'औपचारिक' (Formal) शिक्षा के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि पाठ्य-क्रम के द्वारा ही छात्रो को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त कराया जा सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि ज्ञान की विभिन्न शाखाओं एवं अनुभवो मे अन्तर्सम्बन्ध एवं सामंजस्य हो। जब तक छात्र ज्ञान तथा अनुभव की एकता का अनुभव नही करेंगे, तब तक उनके मस्तिष्क का सन्तुलित विकास सम्भव नही होगा। विश्वविद्यालयो, कॉलिजो और माध्यमिक-स्कूलो मे कला एवं विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ, सामान्य-शिक्षा (General Education) की भी व्यवस्था की जाय, जिससे कला एव साहित्य के छात्र विज्ञान के विषयो का, और विज्ञान के छात्र कला एवं साहित्य के विषयो का ज्ञान अर्जित कर सकें। इस प्रकार 'सामान्य-शिक्षा' तथा 'विशेपीकृत शिक्षा' (Specialization) मे सामंजस्य स्थापित करके, संकुचित विशेपता को दूर किया जा सकेगा। साथ ही, छात्रो के व्यक्तित्व का उपयुक्त विकास हो सकेगा और वे सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे। सामान्य शिक्षा का पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-वस्तु विशिष्ट क्षेत्रो के अनुरूप होने चाहिए।

पाठ्य-क्रम के विषय मे 'आयोग' के कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं :—

१. स्नातक की उपाधि प्राप्त करने की अवधि ३ वर्ष हो। स्नातकोत्तर उपाधि 'आनर्स कोर्स' के १ वर्ष पश्चात् और स्नातक बनने के २ वर्ष उपरान्त प्रदान की जाय।
२. विश्वविद्यालयो तथा माध्यमिक स्कूलो मे सामान्य शिक्षा के सिद्धान्तो एवं प्रयोगो का शिक्षण अविलम्ब प्रारम्भ कर दिया जाय।
३. छात्रों के वैयक्तिक एवं सामूहिक हितो को ध्यान मे रखकर विभिन्न क्षेत्रो का अध्ययन किया जाय और सामान्य-शिक्षा तथा विशेपीकृत-शिक्षा मे समन्वय स्थापित किया जाय।

५. स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान[1]

मानव-सभ्यता ने उन विशेषज्ञों के कार्यों मे अत्यधिक लाभ उठाया है, जिन्होंने

---

1. *Post-Graduate Training & Research.*

प्रकृति के रहस्यो तथा मानव के व्यवहारो मे गहराई तक प्रवेश किया है। आधुनिक जीवन अन्वेषण तथा अनुसंधान का ही परिणाम है। प्रगतिशील समाज अपने तीन समूहो के समावेश पर निर्भर रहता है—विद्वान्, अन्वेषक (Discoverer), एवं आविष्कारक (Inventor)। विद्वान् अतीत की खोज करते है और बुद्धि, सौन्दर्य तथा श्रेष्ठता के आदर्शों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। अन्वेषक नवीन मतों की खोज करते है, और आविष्कारक उन्हे हमारी वर्तमान आवश्यकताओ के लिये प्रयुक्त करते हैं। "विश्वविद्यालय इस प्रकार के मनुष्यो को जन्म देने के लिये मुख्य अभिकरण होते है, जो प्रगतिशील क्रियाओ का प्रभावपूर्ण साधन मे एकीकरण करते हैं।"[1] विश्वविद्यालय ज्ञान का प्रसार करने के लिये उतने ही उत्तरदायी हैं, जितने कि नागरिको को प्रशिक्षित करने के लिये। 'अनुसंधान' विश्वविद्यालयो का प्रमुख कर्त्तव्य है। अत आवश्यकता इस बात की है कि हमारे विश्वविद्यालयो मे वैज्ञानिक अन्वेषण को प्राथमिकता दी जाय। केवल तभी हमारे देश मे ऐसे प्रशिक्षित अन्वेषण-कर्ता उत्पन्न होगे, जो बौद्धिक जीवन के आदर्श प्रभाव स्थापित करेंगे और देश की भौतिक प्रगति मे सक्रिय योग देंगे। विश्वविद्यालयो मे स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान-कार्य को सफल बनाने के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. स्नातकोत्तर कक्षाओ के नियमो मे साम्य होना चाहिये और उनके शिक्षण का संगठन—भाषण, गोष्ठी (Seminar) एवं प्रयोगशाला कार्य पर आधारित होना चाहिये। उनके पाठ्य-क्रम मे एक विशिष्ट विषय का उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान की विधियो का प्रशिक्षण सम्मिलित किया जाना चाहिये।
२. पी० एच-डी० के छात्रो को अखिल-भारतीय स्तर पर निर्वाचित किया जाय। उनके अनुसंधान-कार्य की अवधि कम से कम २ वर्ष होनी चाहिये।
३. पी० एच-डी० एवं अन्य अनुसन्धान कार्य करने वाले विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्तियो तथा अभिवृत्तियो (Research Fellowships) की व्यवस्था की जानी चाहिये।
४. डी० लिट्० एवं डी० एस-सी० की उपाधियाँ केवल उच्चकोटि की मौलिक कृतियो पर प्रदान की जानी चाहिये।
५. शिक्षा-मंत्रालय को विज्ञान मे अनुसन्धान-कार्य को प्रोत्साहित करने के लिये पर्याप्त संख्या मे छात्रवृत्तियाँ देनी चाहिये।

---

1. "The Universities are the chief agencies for producing those types of men who will fuse progressive activities into an effective instrument."—*Report of the University Education Commission*, p. 140.

६ विश्वविद्यालयो के विज्ञान विभाग को अनुसन्धान-कार्य के लिये सरकार द्वारा उदार सहायता-अनुदान दिया जाना चाहिये ।

६ व्यावसायिक शिक्षा

'आयोग' ने व्यावसायिक शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा—"व्यावसायिक शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो पुरुषो और स्त्रियो को व्यावसायिक भावना के साथ परिश्रमपूर्ण एव उत्तरदायी सेवा के लिये तैयार करती है।"[1] 'आयोग' के मतानुसार व्यावसायिक शिक्षा पर महान् उत्तरदायित्व है। हमारी सकटपूर्ण सभ्यता उसी दशा मे जीवित रह सकती है, जब हमारे व्यावसायिक मनुष्य अपनी नैतिक शक्तियो और मानसिक योग्यताओ को आधुनिक गहन समस्याओ का समाधान करने मे प्रयोग करें। व्यावसायिक शिक्षा का आधार केवल व्यावसायिक कार्यपटुता ही नही होनी चाहिये, अपितु सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, सामाजिक एव मानवीय मूल्यो तथा सम्बन्धो को समझने की क्षमता और बिना पूर्व ग्रह के यथार्थता को देखने की अनुशासित शक्ति भी होनी चाहिये। अत यह आवश्यक है कि व्यावसायिक शिक्षा मनुष्य को ऐसा ज्ञान प्रदान करे, जिससे वह सम्पूर्ण मानवीय तथा सामाजिक रगभूमि मे अपने व्यवसाय को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने की योग्यता प्राप्त करे। यदि व्यावसायिक शिक्षा इस कार्य मे असफल होती है तो वह आधुनिक सभ्यता, शान्ति और व्यवस्था प्रदान करने मे असफल रहेगी।[2]

इस प्रकार व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व तथा दायित्व पर प्रकाश डालकर, 'आयोग' ने भारत के विभिन्न व्यवसायो के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किय, उनकी ओर हम नीचे सकेत कर रहे हैं —

(क) कृषि (Agriculture)—कृषि शिक्षा के सम्बन्ध मे 'आयोग' ने निम्नांकित सिफारिशें की —

१ भारत कृषि प्रधान देश है। अत कृषि-शिक्षा को प्रमुख राष्ट्रीय समस्या मान लेना चाहिये।

२ प्रजातान्त्रिक देश म कृषि की ठोस नीति का निर्माण उन्ही व्यक्तियो द्वारा किया जा सकता है, जो कृषि का ज्ञान रखते हैं एव कृषि-कार्य मे सलग्न हैं। अत राष्ट्रीय आर्थिक योजना मे प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा म कृषि शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिय।

1. "Professional education is the process by which men and women prepare for exacting responsible service in the profess ional spirit"—*Report of the University Education Commission*, p. 174

2 *Ibid*, pp 174-175

३ कृषि-शिक्षा, कृषि-अनुसंधान तथा कृषि-नीति का निर्माण यथासम्भव उन्ही व्यक्तियो या संस्थाओ के हाथ मे होना चाहिये, जिन्हे कृषि-जीवन का विशेष ज्ञान हो।

४ कृषि-शिक्षा की संस्थायें यथासम्भव ग्रामीण क्षेत्रो मे होनी चाहिये, जिससे छात्रो को कृषि-जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हो सके।

५ वर्तमान कृषि-कालिजो को पर्याप्त आर्थिक सहायता देकर अधिक साधन सम्पन्न बनाया जाय, और उनमे योग्य शिक्षको की नियुक्ति की जाय।

६ नवीन कृषि-कॉलिजो को यथासम्भव नवीन ग्रामीण विश्वविद्यालयो से सम्बद्ध रखा जाय, जिससे कृषि-शिक्षा को अन्य क्षेत्रो से सम्बन्धित रख कर अधिक सम्पन्न बनाया जा सके।

७. केन्द्रीय और राज्य-सरकारो द्वारा 'प्रयोगात्मक फार्म' (Experimental Farms) खोले जायें। कृषि अनुसंधान-कार्य उन्ही फार्मो मे किया जाय।

८ वर्तमान कृषि-अनुसंधानशालाओ को आर्थिक सहायता देकर विस्तृत किया जाय।

९ 'इण्डियन कॉउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' के साधनो मे वृद्धि की जाय और वह विभिन्न कृषि-अनुसन्धान-केन्द्रो के लिये सयोजक का कार्य करे।

१० विश्वविद्यालयो मे अनुसधान-केन्द्रो की स्थापना की जाय।

(ख) वाणिज्य (Commerce)—'आयोग' ने विभिन्न स्तरो पर वाणिज्य की शिक्षा का विवेचन करने के उपरात उसके विषय मे निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ विश्वविद्यालय मे वाणिज्य की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो को ३ या ४ विभिन्न प्रकार की फर्मो मे व्यावहारिक (Practical) कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाय।

२ स्नातक-परीक्षा पास करने के पश्चात् छात्रो को किसी विशेष शाखा मे विशेषज्ञ बनने का परामर्श दिया जाय और उन्हे व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाय।

३ एम० कॉम० मे पुस्तकीय ज्ञान कम रखा जाय, और केवल कुछ ही छात्रो को यह कोर्स लेने की आज्ञा दी जाय।

(ग) शिक्षा व्यवसाय (Teaching Profession)—शिक्षा-व्यवसाय मे सुधार करने के उद्देश्य से 'आयोग' ने अधोलिखित सिफारिशें की —

१ प्रशिक्षण-सस्थाओ के पाठ्य-क्रम मे सुधार किया जाय। पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा विद्यालयो मे अध्यापन के अभ्यास को अधिक महत्व दिया जाय।

२ छात्राध्यापको के कार्य का मूल्याकन करने मे उनके अध्यापन की सफलता पर विशेष ध्यान रखा जाय।

३ अध्यापन के अभ्यास के लिये केवल उपयुक्त विद्यालयो को ही चुना जाए।
४ प्रशिक्षण-विद्यालयो मे अधिकाश अध्यापक वे हो, जो स्कूलो मे पढाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हो।
५. शिक्षा-सिद्धान्त (Theory of Education) का पाठ्य-क्रम लचीला और स्थानीय वातावरण के अनुकूल बनाया जाय।
६ एम० एड० डिग्री के लिये उन्ही व्यक्तियो को प्रोत्साहित किया जाय, जिन्हे कुछ वर्ष के शिक्षण का अनुभव हो।
७ प्रोफेसरो तथा लेक्चररो द्वारा मौलिक कार्य अखिल भारतीय स्तर पर किया जाय।

(घ) इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी (*Engineering & Technology*)—इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी की शिक्षा के सम्बन्ध मे 'आयोग' की मुख्य सिफारिशें निम्नांकित थी —

१ वर्तमान इंजीनियरिंग तथा टेक्नॉलॉजी की सस्थाओ को देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाय और उनकी उपयोगिता मे वृद्धि करने के प्रयास किये जायँ।
२ फोरमेन, ड्राफ्ट्समेन और ओवरसियरो को शिक्षा देने वाले इंजीनियरिंग स्कूलो की संख्या मे वृद्धि की जाय।
३. इंजीनियरिंग स्कूलो और कॉलेजो मे अध्ययन करने वाले छात्रो को कारखानो मे कार्य करके व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दिया जाय।
४ देश के विभिन्न उद्योगो की मॉग को ध्यान मे रखते हुए इंजीनियरिंग और टेकनॉलॉजी की सस्थाओ के पाठ्य क्रम को विस्तृत किया जाय।
५. इंजीनियरिंग के प्रचलित पाठ्यक्रम मे सुधार किया जाय। प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम मे छात्रो को इंजीनियरिंग की समस्त शाखाओ की शिक्षा दी जाय और तदुपरान्त विशिष्ट शाखा की।
६ वर्तमान इंजीनियरिंग और टेकनॉलॉजीकल कॉलेजो मे स्नातकोत्तर-अध्ययन एव अनुसंधान की यथासम्भव व्यवस्था की जाय।
७. उच्च-शिक्षा प्रदान करने के लिये टेकनॉलॉजीकल संस्थाओ का शीघ्रातिशीघ्र निर्माण किया जाय।
८ इंजीनियरिंग कॉलेजो को राजकीय विभागो तथा मन्त्रालयो के नियत्रण मे रखकर विश्वविद्यालयो से सम्बन्ध कर दिया जाय।

(ङ) क़ानून (*Law*)—कानून की शिक्षा के सम्बन्ध मे 'आयोग' के सुझाव निम्नलिखित थे —

१. देश के सभी कानून-कॉलेजो का पूर्ण रूप से पुनर्गठन किया जाय।

२. कानून-विभाग के अध्यापको की नियुक्ति विश्वविद्यालयो द्वारा उसी प्रकार की जाय, जिस प्रकार अन्य विभागों के अध्यापको की, की जाती है।
३. छात्रो को कानून की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति तभी दी जाय, जब वे ३ वर्ष का सामान्य डिग्री कोर्स पास कर लें।
४. कानून के विशेष विषयो का पाठ्यक्रम ३ वर्ष का हो।
५. कानून के अध्यापक पूर्णकालीन और अंशकालीन—दोनो प्रकार के होने चाहिये। पूर्णकालीन अध्यापक कानून के आधारभूत विषयो की, और अंशकालीन अध्यापक व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा दें।
६. कानून के छात्रो को अपने अध्ययन-काल मे अन्य डिग्री कोर्स लेने की अनुमति केवल विशेष परिस्थितियो मे दी जाय।

(च) चिकित्सा (Medical)—चिकित्सा-शिक्षा के विषय मे 'आयोग' ने जो विचार प्रकट किये, उनमे से मुख्य इस प्रकार हैं :—

१. किसी भी मेडिकल कॉलिज मे १०० से अधिक छात्रो को प्रवेश न दिया जाय।
२. कॉलेज के जिन विभागो का सम्बन्ध अस्पताल से हो, वे सब एक ही स्थान पर हो।
३. कॉलिज मे प्रवेश लेने वाले प्रत्येक छात्र के लिये १० रोगी हो।
४. स्नातक-पूर्व एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्रो को ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रशिक्षण दिया जाय।
५. स्नातकोत्तर शिक्षा केवल उन्ही कॉलिजो मे दी जाय, जिनमे सुयोग्य शिक्षा एवं उपयुक्त साधन हो।
६. सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं सुश्रुषा (Nursing) को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाय।
७. देशी चिकित्सा-प्रणालियो मे अनुसंधान-कार्य के लिये विशेष सुविधायें प्रदान की जायें।
८. मेडिकल कॉलेजो के प्रथम वर्ष मे चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास, भारतीय चिकित्सा-प्रणाली को विशेष रूप से ध्यान मे रखकर पढाया जाय।

७. धार्मिक शिक्षा

हिन्दू और मुस्लिम युगो मे धार्मिक शिक्षा—भारतीय शिक्षा-पद्धति का विशेष अंग थी। धार्मिक शिक्षा को छात्र के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को नियंत्रित करने के लिये आवश्यक समझा जाता था। अंग्रेज शासको ने धार्मिक तटस्थता की नीति का अनुसरण किया और धार्मिक शिक्षा को भारतीय शिक्षा-पद्धति मे कोई स्थान नही दिया। परन्तु आधुनिक युग मे भौतिकवाद से पीडित व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिये धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। स्वतन्त्र भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है, परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि वह धर्म

की अवहेलना करता है। वह धार्मिक संकीर्णता का विरोधी है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के अनुसरण की अनुमति देता है। यदि हमारे धर्म-निरपेक्ष राज्य का यह आधार है, तो धर्म-निरपेक्षता का अर्थ 'धर्म का निषेध' नही है। इसका अर्थ है—गहन आध्यात्मिकता, न कि संकीर्ण धार्मिकता। अत हमारे सविधान के आधारभूत सिद्धान्तो के अनुसार आध्यात्मिक शिक्षा आवश्यक हो जाती है। इसी दृष्टिकोण को अपने समक्ष रखकर 'आयोग' ने धार्मिक शिक्षा के विषय मे निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये —

१. सभी शिक्षा-संस्थायें कुछ मिनट के मौन-चिन्तन के पश्चात् अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ करें।
२. डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष मे विश्व के महान् धार्मिक नेताओ—बुद्ध, कनफ्यूसियस, सुकरात, ईसा, शंकर, रामानुज, माधव, मुहम्मद, कबीर, नानक, गाधी—की जीवनियाँ पढाई जायें।
३ द्वितीय वर्ष मे विश्व के धार्मिक ग्रन्थो मे से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भाग पढाये जायें।
४. तृतीय वर्ष मे धर्म-दर्शन की प्रमुख समस्याओं का अध्ययन किया जाय।

८ शिक्षा का माध्यम

'आयोग' को विश्वविद्यालयो तथा अन्य उच्च शिक्षा-संस्थाओ मे शिक्षा के माध्यम की समस्या पर अति गम्भीर विचार करना पडा। कारण यह था कि अन्य किसी समस्या पर शिक्षा-विशेषज्ञो का इतना मतभेद नही था, जितना कि शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर। इसके अतिरिक्त माध्यम की समस्या पर विचार करते समय आयोग को विभिन्न राज्यो और जातियो की भाषाओ का शिक्षा के माध्यम के रूप मे निष्पक्ष होकर विचार करना पडा। अन्ततोगत्वा 'आयोग' माध्यम के विषय मे नीचे दिये हुए निष्कर्षों पर पहुँचा —

१. सघीय भाषा मे अन्य स्रोतो से आये हुए शब्दो का समन्वय किया जाय और इस प्रकार उसे समृद्ध बनाया जाय।
२. अन्तर्राष्ट्रीय प्राविधिक एव वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दो (International Technical & Scientific Terminology) को अपनाया जाय और भारतीय भाषाओ की ध्वनि, प्रकृति एव उच्चारण के अनुसार उनका भारतीयकरण किया जाय।
३ उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप मे यथाशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया जाय।
४ विभिन्न कठिनाइयो के फलस्वरूप संस्कृत को शिक्षा के माध्यम के स्थान पर प्रतिष्ठित नही किया जा सकता है।
५. उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों को तीन भाषाओ का ज्ञान कराया जाय—प्रादेशिक भाषा (मातृभाषा), सघीय भाषा (राष्ट्रभाषा), और अंग्रेजी।

६. उच्च शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा (Regional Language) हो, परन्तु राष्ट्रभाषा को एक या अधिक विषयो की शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है।

७. संघीय भाषा के लिए केवल देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाय और इस लिपि के वर्तमान दोषो को दूर किया जाय।

८. संघीय एवं प्रादेशिक भाषाओ को विकसित करने के लिये यथाशीघ्र क्रियात्मक पग उठाया जाय।

९. वैज्ञानिको एवं भाषा-विशेषज्ञो की एक समिति नियुक्त की जाय, जो सभी भारतीय भाषाओ मे समान रूप से प्रयोग किये जाने के लिये एक वैज्ञानिक शब्द-कोश का निर्माण करे, और जो सभी भारतीय भाषाओ मे विभिन्न विद्वानो की पुस्तको का प्रकाशन करे।

१०. राज्य-सरकारें उच्चतर माध्यमिक स्कूलो, डिग्री कॉलिजो और विश्व-विद्यालयो की सभी कक्षाओ मे संघीय भाषा की शिक्षा की व्यवस्था करें।

११. नवीन ज्ञान के सम्पर्क मे रहने के लिये हाई स्कूल और विश्वविद्यालयो मे अंग्रेजी का अध्ययन यथापूर्व रखा जाय।

६. परीक्षाएँ

भारतीय शिक्षा मे परीक्षाओं की प्रधानता है। गत वर्षों में नियुक्त की गई समितियो और आयोगो ने प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के दोषो की तीक्ष्ण आलोचना की है। इन दोषो की संख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है और अभी तक उनके निराकरण का कोई प्रयास नही किया गया है। आयोग ने लिखा : - "हमे विश्वास है कि यदि हम विश्वविद्यालय-शिक्षा के केवल एक विषय मे सुधार का सुझाव दें, तो वह परीक्षाओ के सम्बन्ध मे होना चाहिए। यद्यपि परीक्षाओ के प्रति भारत तथा संसार मे अत्यधिक असन्तोष है और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं महत्वपूर्ण शिक्षा-संस्थायें उनके उन्मूलन के पक्ष मे हैं, तथापि हम इस दृष्टिकोण से सहमत नही हैं। यदि परीक्षाओ की उचित रूप से व्यवस्था की जाय, तो वे शिक्षा-प्रणाली मे महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती है।"[1] इस विचार से प्रेरित होकर आयोग ने परीक्षाओ मे सुधार करने के लिए अग्रलिखित सुझाव दिये :—

---

1. "We are convinced that if we are to suggest one single reform in University Education it should be that of the examinations. We know that in India as elsewhere in the world, dissatisfaction with examinations has been so keen that eminent educationists and important educational organizations have even advocated the abolition of examinations. We do not share that extreme view and feel that examinations rightly designed and intelligently used, can be a useful factor in the educational process."—*Report of the University Education Commission*, p. 328.

१. शिक्षा-मन्त्रालय और विश्वविद्यालयो मे परीक्षा लेने की वैज्ञानिक पद्धतियो का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय और इस अध्ययन के परिणामो को परीक्षा-पद्धति मे क्रियान्वित करके, उसमे सुधार किया जाय ।

२. प्रत्येक विश्वविद्यालय मे तीन सदस्यो का एक पूर्णकालीन बोर्ड स्थापित किया जाय । इस बोर्ड के दो प्रमुख कार्य होगे —

(क) विश्वविद्यालय अथवा कॉलेज के अध्यापको को वस्तुनिष्ठ परीक्षाओ (Objective Tests) की नवीन योजनायें बनाने मे परामर्श देना और पाठ्य-क्रम मे संशोधन के लिये सामग्री देना ।

(ख) सम्बद्ध कॉलिजो के छात्रो का समय-समय पर प्रगति परीक्षाओ (Progressive Tests) द्वारा परीक्षण करना ।

३. कक्षा मे छात्रो की प्रगति का मूल्याकन करने के लिए यथाशीघ्र वस्तुनिष्ठ प्रगति-परीक्षाओ (Objective Progressive Tests) का एक कुलक (Set) विकसित किया जाय ।

४ राजकीय पदो के लिय विश्वविद्यालय की डिग्री की अनिवार्यता न की जाय । सेवा-आयोग (Service Commissions) कुछ शुल्क लेकर परीक्षाओ की व्यवस्था करें और उनमे उत्तीर्ण होने वाले छात्रो मे से चुनाव किया जाय ।

५ कक्षा-कार्य को परीक्षाओ मे कोई महत्त्व नही दिया जाता है । अत यह आवश्यक है कि परीक्षा के पूर्णाङ्को का तृतीय भाग कक्षा-कार्य के लिये सुरक्षित कर दिया जाय ।

६ तीन वर्ष के डिग्री पाठ्य-क्रम की परीक्षा तीन वर्ष उपरान्त न ली जाय, अपितु प्रत्येक वर्ष के अन्त म 'स्वत पूर्ण इकाइयो' (Self-contained Units) मे परीक्षा ली जाय, और विद्यार्थी को प्रत्येक विषय मे पास होना आवश्यक हो ।

७ परीक्षक का चुनाव बडी सावधानी से किया जाय । केवल वे ही व्यक्ति परीक्षक नियुक्त किये जायँ, जो अपने विषय को ५ वर्ष तक पढा चुके हों ।

८ परीक्षाओ के स्तर को ऊँचा करने के लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणियो के लिये न्यूनतम अङ्क क्रमश ७०, ५५ और ४० प्रतिशत निर्धारित किये जायँ ।

९. मौखिक परीक्षायें (Viva-Voce Tests) केवल स्नातकोत्तर एव व्यावसायिक परीक्षाओ के लिए हों ।

१०. छात्र, उनके कार्य तथा उनका कल्याण[1]

"नवयुवक की शिक्षा तथा नवीन ज्ञान की खोज—विश्वविद्यालयों के प्रमुख

1. Students, their activities and welfare

कर्त्तव्य हैं। आज के बालक और बालिकायें—कल के परिपक्व नागरिक हैं। छात्र का निर्माण विश्वविद्यालय के लिये नहीं होता है, अपितु विश्वविद्यालय छात्र का निर्माण करने के लिये होता है। अत यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय प्रत्येक सम्भव प्रयास और विधि से छात्रों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण और अधिकतम विकास करें।'[1] अत 'आयोग' ने छात्रों के व्यक्तित्व के विकास और चरित्र-निर्माण के लिये निम्नांकित सुझाव दिये —

१ विश्वविद्यालयों और कॉलिजों म छात्रों का प्रवेश बिना किसी प्रकार का भेद भाव किये, केवल योग्यता के आधार पर दिया जाय।

२ प्रथम डिग्री कोर्स मे विद्यार्थियो के लिये विभिन्न प्रकार क पाठ्य-क्रमो की व्यवस्था की जाय।

३ विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर, व्यावसायिक एव उच्च अनुसधान कार्य पर अपना ध्यान केंद्रित करें।

४ योग्य किन्तु निर्धन छात्रो को परीक्षाओ के आधार पर छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायें।

५ प्रवेश के समय और तदुपरान्त वर्ष मे एक बार प्रत्येक छात्र और छात्रा की नि शुल्क स्वास्थ्य परीक्षा की जाय।

६ प्रत्येक विश्वविद्यालय मे छात्रो की चिकित्सा के लिये अस्पताल हो।

७ सक्रामक रोगो से पीडित छात्रो को विश्वविद्यालय या कॉलेज मे प्रवेश न दिया जाय।

८ छात्रो के सम्पर्क म रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की एक वर्ष मे एक बार स्वास्थ्य परीक्षा की जाय।

९ शिक्षा-सस्था के भवन, छात्रावास आदि—सभी स्थानो की सफाई रखी जाय और इस काय की रिपोर्ट नियमित रूप से उप-कुलपति को दी जाय।

१० मध्याह्न के समय उचित मूल्य पर छात्रो को पौष्टिक भोजन दिया जाय।

११ छात्रो के सक्रामक रोगो—चेचक, हैजा, टाइफाइड आदि के टीके लगाये जायें।

---

1 "Education of the youth and the discovery of new truth are the principal functions of universities The boys and girls of today are the matured citizens of tomorrow The student is not created for the university but the university exists for the student, and therefore, it must spare no effort and omit no devices which may promote the fullest and most complete realization of the student s possibilities on all planes—physical intellectual and spiritual"—*Report of the University Education Commission*, pp 344–345

१२ प्रत्येक विश्वविद्यालय मे एक 'डाइरेक्टर ऑफ फिजीकल एजूकेशन' की नियुक्ति की जाय ।
१३ छात्रो के खेल-कूद, जेमनेशियम आदि की उपयुक्त व्यवस्था की जाय ।
१४ सभी शिक्षा-सस्थाओ मे एन० सी० सी० की स्थापना की जाय । जो छात्र एन० सी० सी० दल के सदस्य न हो, उनके लिये २ वर्ष की शारीरिक शिक्षा अनिवार्य हो । एन० सी० सी० का समस्त व्यय केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया जाय ।
१५ छात्रो को समाज-सेवा (Social Service) कार्य के लिये प्रेरणा दी जाय ।
१६ विश्वविद्यालयो मे छात्रावासो की उचित व्यवस्था की जाय । एक छात्रावास मे ५० से अधिक विद्यार्थी न हो । उन्हे खेल, व्यायामशाला और सामुदायिक जीवन व्यतीत करने की सुविधा दी जाय ।
१७ विश्वविद्यालयो के छात्र-सघ राजनीति से यथासम्भव कोई सम्बन्ध न रखें । छात्र-सघ म विश्वविद्यालय के अधिकारी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें ।
१८ उत्तम प्रशासन मे छात्रा की रुचि उत्पन्न की जाय और 'प्रोक्टोरियल-प्रणाली (Proctorial System) का विकास किया जाय ।
१९ विश्वविद्यालयो म 'छात्र कल्याण परामर्शदात्री समिति' (Advisory Board of Student Welfare) की स्थापना की जाय ।
२० अनुशासन बनाये रखने के लिये छात्रा को लाभदायक तथा रचनात्मक कार्यों म रत रखा जाय ।

११. स्त्री शिक्षा

स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए आयोग ने लिखा —"शिक्षित स्त्रिया के बिना शिक्षित व्यक्ति नही हो सकते हैं । यदि सामान्य शिक्षा पुरुषो या स्त्रियो तक सीमित रखी जाती है, तो स्त्रियो को भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिए, क्योकि ऐसी दशा मे शिक्षा को अन्य पीढी को हस्तान्तरित किया जा सकेगा ।"[1] स्त्री शिक्षा के महत्व और आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए, 'आयोग' ने इस विषय मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये —

१ स्त्रियो की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे वे सुमाता और सुगृहिणी बन सकें ।

---

1. "There cannot be an educated people without educated women. If general education had to be limited to men or women, that opportunity should be given to women, for then it would most surely be passed on to the next generation"—*Report of the University Education Commission*, p 393.

२ पुरुषो के जिन कॉलेजो मे स्त्रियो को शिक्षा दी जा रही है, उनमे स्त्रियो को जीवन की सामान्य सुविधायें तथा शिष्टाचारो की समुचित व्यवस्था की जाय।

३. स्त्रियो की शिक्षा-सुविधाओ मे विस्तार किया जाय।

४ स्त्रियो को अपने हितो के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करने मे सुयोग्य पुरुषो और स्त्रियो द्वारा परामर्श दिया जाय।

५ शिक्षा प्राप्त करने मे स्त्रियाँ, पुरुषो का अनुकरण न करें, अपितु स्त्रियोचित शिक्षा प्राप्त करें।

६ स्त्रियो एव पुरुषो की शिक्षा अनेक बातो मे समान हो सकती है, परन्तु वह पूर्णत एक-सी नही होनी चाहिये।

७ शिक्षा सस्थाओ का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये, जिससे स्त्रियाँ सामान्य समाज मे अपना सामान्य स्थान ग्रहण कर सकें।

८ गृह अर्थशास्त्र (Home Economics) और गृह-प्रबन्ध (Home Management) की शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्त्रियो को प्रेरणा दी जाय।

९ सह-शिक्षा की सस्थाओ मे स्त्रियो के प्रति शिष्ट व्यवहार किया जाय।

१० समान कार्य के लिये अध्यापिकाओ को उतना ही वेतन दिया जाय, जितना पुरुष-शिक्षको को दिया जाता है।

१२ ग्रामीण विश्वविद्यालय

भारत खेतिहर देश है। अत उसकी उन्नति और आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिये ग्रामीण कॉलेजो तथा विश्वविद्यालयो की आवश्यकता है। इस दिशा मे कार्य प्रारम्भ करना वाछनीय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये छोटे-छोटे आवासिक स्नातक-पूर्व कॉलेज स्थापित किये जायें। उनके केन्द्र में एक विश्वविद्यालय हो। कॉलेजो मे पढने वाले छात्रो की सख्या लगभग ३०० हो, और समस्त कॉलेजो तथा विश्वविद्यालय के छात्रो की सख्या २,५०० से अधिक न हो।

सभी कॉलेजो मे पृथक् अध्यापक और शिक्षण की सुविधा हो। परन्तु जहाँ तक पुस्तकालयो, प्रयोगशालाओ आदि का प्रश्न है, वे सब कॉलेजो के लिय एक ही स्थान पर हो सकते है। इन कॉलेजो का प्रमुख ध्येय—छात्रो को सामान्य शिक्षा देना और उनकी व्यक्तिगत रुचियो का विकास करना, होना चाहिए। जिस समय छात्र स्नातक-पूर्व कक्षा मे अध्ययन कर रहे हो, उन्हें विश्वविद्यालय या व्यावसायिक स्कूल मे किसी पाठ्य-क्रम का अध्ययन करने की सुविधा होनी चाहिए। इस प्रकार की सुविधा से उनका अधिक विकास सम्भव हो सकेगा, और वे स्नातक-पूर्व शिक्षा के साथ-साथ किसी विषय की विशेष शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे। स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो मे कठोर विभाजन नही होना चाहिए, जिससे कि एक विद्यार्थी कुछ विषयो की स्नातक-पूर्व शिक्षा प्राप्त करते हुए भी स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण कर सकें।

राधाकृष्णन् कमीशन का मूल्यांकन

'राधाकृष्णन् कमीशन' ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी अंगों की विस्तृत समीक्षा करके, उनके सम्बन्ध मे अनेक सुझाव दिये हैं, जिनको सर्व-सम्मति से अद्वितीय माना गया है। कुछ विचारकों ने 'आयोग' पर दोषारोपण लगाया है कि उसने स्त्री-शिक्षा के विषय मे उत्तम सिफारिशें नही की है और धार्मिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। हम इस आक्षेप को सर्वथा निराधार समझते हैं, क्योंकि भारत की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिकोण मे रखते हुए 'आयोग' ने स्त्री-शिक्षा और धार्मिक-शिक्षा के विषय मे जो सुझाव दिये हैं, वे पर्याप्त रूप से अभिनन्दनीय हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि 'आयोग' ललित-कलाओं के सम्बन्ध मे बिल्कुल मौन है, यद्यपि उसे इनके सम्बन्ध में भी अपनी सिफारिशें देनी थी।

आज तक विश्वविद्यालय-शिक्षा का परीक्षण करने के लिये जितने भी आयोगों और समितियों की नियुक्ति हुई है, उन सब में 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। यदि 'आयोग' की सभी सिफारिशों को क्रियान्वित कर दिया जाय, तो हमारे विश्वविद्यालयों की रूपरेखा पूर्णतया परिवर्तित हो जायगी और वे वास्तव मे राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हो जायेंगे। **डा० राजेन्द्र प्रसाद** ने आयोग के कार्यों की सराहना करते हुए लिखा है —"आयोग ने हमारी विश्व-विद्यालय शिक्षा की प्राप्तियों पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करके एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है, और साथ ही अति अमूल्य प्रस्ताव तथा सुझाव भी दिये हैं।"[1]

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने आगे कहा है—"विश्वविद्यालय आयोग के प्रतिवेदन का महत्त्व अधिकांश रूप से इस बात मे है कि वह इस देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मे आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करता है और इस आधार पर उसकी शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं की विवेचना करता है। यही कारण है कि प्रतिवेदन को अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के सुझाव देने पड़े हैं। साथ ही प्रतिवेदन का एक गुण यह भी है कि वह अतीत से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहता है, अपितु उसमे प्राप्य सर्वोत्तम बातों को सुरक्षित रखना चाहता है।"[2]

---

1 "The Commission has submitted a very valuable report containing a review of the achievements of our university education and also suggestions and recommendations which are of a far-reaching character."—*Speeches of President Rajendra Prasad*, Publication Division, 1955, p 5

2 "*The value of the University Commission Report* lies very largely, in the fact that it recognises the necessity for a fundamental change in the set-up of things in this country and proceeds to deal with its educational problems on that basis. *It has,*

'आयोग' के सुझावो से प्रभावित होकर 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' ने अपनी २२ व २३ अप्रैल, १९५० की विशेष बैठको मे उनमे से अधिकाश को स्वीकार कर लिया। सरकार ने भी उन सुझावो को मान्यता प्रदान की और उन्हे क्रियान्वित करने का निश्चय किया।

सारांश

'अन्तर्विश्वविद्यालय शिक्षा-परिषद्' और 'केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड' की सिफारिश के अनुसार भारत सरकार ने ४ नवम्बर, १९४८ को 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। आयोग ने २५ अगस्त, १९४९ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट मे विश्वविद्यालय-शिक्षा के विभिन्न अगो पर प्रकाश डाला गया, जिसमे से प्रमुख निम्नलिखित हैं —

१ विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य—राजनैतिक, प्रशासकीय तथा व्यावसायिक क्षेत्रो मे नेतृत्व करने की शिक्षा देना। दूरदर्शी, बुद्धिमान एव साहसी नवयुवको का निर्माण करना। प्रजातन्त्र को सफल बनाने वाले व्यक्तियो को जन्म देना। छात्रो का मानसिक एवं शारीरिक विकास करना। विश्वविद्यालयो का न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुता के आदर्शों का प्रतीक होना।

२ अध्यापक-वर्ग—अध्यापको को पुस्तकालय एव अनुसन्धान की सुविधा देना, वेतन-वृद्धि करना, प्राविडेण्ट फण्ड की उत्तम व्यवस्था करना, सप्ताह मे १८ घण्टे का अध्यापन कार्य देना, और अध्यापको का ४ वर्गों मे विभक्त किया जाना—प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर और इन्सट्रक्टर।

३ अध्यापन का स्तर—अध्यापन का स्तर उच्च करने के लिए शिक्षण-सामग्री की व्यवस्था करना, इण्टरमीडिएट कॉलिज खोलना, किसी कक्षा के लिये पाठ्य-क्रम निश्चित न करना, पुस्तकालयो और प्रयोगशालाओ को सुगठित करना और अध्यापको के लिए अभिनवन पाठ्य-क्रम की व्यवस्था करना।

४ पाठ्य-क्रम—स्नातक की उपाधि प्राप्त करने की अवधि ३ वर्ष होना, सामान्य शिक्षा के सिद्धान्तो का प्रयोग किया जाना, और सामान्य शिक्षा तथा विशेषीकृत शिक्षा म समन्वय करना।

५ स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एव अनुसन्धान—स्नातकोत्तर कक्षाओ के नियमो मे साम्य होना, पी० एच डी० की अवधि २ वर्ष होना, अनुसन्धान करने वाले छात्रो को छात्रवृत्तियाँ देना, और विश्वविद्यालयो के विज्ञान-विभाग को अनुसन्धान के लिये उदार आर्थिक सहायता देना।

---

therefore, had to recommend many revolutionary changes It has, further, the merit of not contemplating a complete break with the past but of conserving the best that is available"—*Ibid*, p. 5.

६ व्यावसायिक शिक्षा—कृषि-शिक्षा को प्रमुख राष्ट्रीय समस्या मानना, कृषि-कॉलेजो को साधन-सम्पन्न बनाना और नवीन कृषि-कॉलेजो को नवीन ग्रामीण-विश्वविद्यालयो से सम्बद्ध करना। वाणिज्य के छात्रो के लिए व्यावहारिक शिक्षण का प्रबन्ध करना, और एम० कॉम० म पुस्तकीय ज्ञान कम रखना। प्रशिक्षण सस्थाओ मे सुधार करना, शिक्षा-सिद्धान्त का पाठ्य-क्रम लचीला होना, और छात्राध्यापको को छात्रवृत्तियाँ देना। इजीनियरिंग और टेक्नॉलॉजी की सस्थाओ को राष्ट्रीय सम्पत्ति समझना, इजीनियरिंग के पाठ्य-क्रम मे सुधार करना और उच्च शिक्षा के लिए टेक्नॉलॉजीकल सस्थायें स्थापित करना। कानून के कॉलेजो का पुनर्गठन करना और कानून के छात्रो को अन्य डिग्री कोर्स लेने की अनुमति कम देना। मेडिकल कॉलेजो म १०० से अधिक छात्र न होना, और देशी चिकित्सा-प्रणालियो मे अनुसन्धान की सुविधायें देना।

७ धार्मिक शिक्षा—दैनिक कार्य आरम्भ करने से पूर्व कुछ मिनट मौन चिन्तन करना, धार्मिक नेताओ की जीवनियाँ पढाना और धर्म-दर्शन की प्रमुख समस्याओ का अध्ययन करना।

८. शिक्षा का माध्यम—उच्च शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा होना, छात्रो को मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी का ज्ञान कराना और भारतीय भाषाओ मे वैज्ञानिक शब्द-कोश तैयार करना।

९. परीक्षायें—छात्रो का प्रगति-परीक्षाओ द्वारा परीक्षण करना, वस्तुनिष्ठ-प्रगति-परीक्षाओ का कुलक तैयार करना, और प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के लिए क्रमश ७०, ५५ और ४० प्रतिशत अङ्क होना।

१० छात्र, उनके कार्य तथा उनका कल्याण—छात्रो के प्रवेश मे भेद-भाव न किया जाना, प्रथम डिग्री कोर्स के लिए विभिन्न पाठ्य-क्रमो की व्यवस्था करना, अनुसधान-कार्य पर ध्यान केन्द्रित करना, छात्रो की स्वास्थ्य चिकित्सा होना, एन० सी० सी० की स्थापना करना, और छात्र कल्याण परामर्शदात्री समिति का सगठन करना।

११ स्त्री-शिक्षा—स्त्रियो को सुमाता और सुगृहिणी बनने की शिक्षा देना, गृह-अर्थशास्त्र और गृह प्रबन्ध की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना और स्त्री-शिक्षा की सुविधाओ का विस्तार करना।

१२ ग्रामीण विश्वविद्यालय—ग्रामो मे सावासिक स्नातक-पूर्व कॉलेज खोलना और उनके केन्द्र मे एक विश्वविद्यालय का होना। कॉलेजो का प्रमुख ध्येय—छात्रो को सामान्य शिक्षा देना और स्नातक-पूर्व तथा स्नातकोत्तर पाठ्य क्रमो मे कठोर विभाजन न होना।

TEST QUESTIONS

1. What reforms have been suggested in the University Education of this country by the Radhakrishnan Commission ?

   राधाकृष्णन् आयोग द्वारा इस देश की विश्वविद्यालय-शिक्षा मे किन सुधारो का सुझाव दिया गया है ?

2. Comment upon the view that the Indian Universities, as they exist today, despite many admirable features, do not fully satisfy the requirements of a national system of education. How far do you think the implementations of the recommendations of University Commission of 1948 can fulfil the needs of the country ?

   इस कथन की आलोचना कीजिए कि आज के भारतीय विश्वविद्यालय अनेक प्रशंसनीय विशेषताओ के बावजूद भी शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली की आवश्यकताओ को पूर्ण नही करते हैं। आपके विचारानुसार १९४८ के विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिशो का कार्यान्वयन देश की आवश्यकताओ को कहाँ तक पूर्ण कर सकता है ?

२६

शिक्षा-आयोग[1]

(१९६४-१९६६)

कोठारी कमीशन[2]

प्रस्तावना

लगभग १०० वर्ष से कुछ कम में नियुक्त किया जाने वाला यह छठा आयोग था। इससे पहले ये पाँच आयोग थे —(१) १८८२ का 'भारतीय शिक्षा-आयोग', (२) १९०२ का 'भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग', (३) १९१७ का 'कलकत्ता विश्वविद्यालय-आयोग', (४) १९४८ का 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग', और (५) १९५२ का 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग'। इनमें से तीन का सम्बन्ध विश्वविद्यालय-शिक्षा से, एक का विद्यालय-शिक्षा से, और शेष एक का माध्यमिक शिक्षा से था। इनमें से किसी भी आयोग का सम्बन्ध शिक्षा के सब पहलुओं से नहीं था। अतः एक ऐसे आयोग की नियुक्ति आवश्यक थी, जिसका सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था से सम्बन्ध हो और जो समग्र रूप से शिक्षा की व्यवस्था के बारे में अपने सुझाव दे सके।

आयोग की नियुक्ति के कारण और उद्देश्य

भारत-सरकार ने १४ जुलाई, १९६४ के अपने 'प्रस्ताव' (Resolution)[3] में 'आयोग' की नियुक्ति के कारण और उद्देश्य अग्रलिखित शब्दों में अंकित किये —

1. Education Commission
2. Kothari Commission
3. *Resolution of the Government of India Setting up the Education Commission*, dated the 14th July, 1964

१ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत-सरकार ने देश की परम्पराओ और मान्यताओ (Values) तथा आधुनिक समाज की आवश्यकताओ और आकाक्षाओ को ध्यान मे रखकर राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करने का प्रयत्न किया है। इस दिशा मे कुछ कदम भी उठाये गये है, पर शिक्षा प्रणाली का विकास समय की आवश्यकताओ के अनुसार नही हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र म अब भी 'विचार और कार्य' (Thought & Action) मे भारी अन्तर दिखाई देता है। देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति मे शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा ही लोकतन्त्रीय समाज का निर्माण कर सकती है। शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता सम्भव है। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर यह आवश्यक समझा गया कि शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जाय। इस जाँच के फलस्वरूप ही सतुलित एव सगठित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास होना सम्भव होगा, और ऐसी ही प्रणाली से राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रो को पूर्ण योग मिलेगा।

२ स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से भारत ने राष्ट्रीय विकास के एक नवीन युग मे प्रवेश किया है। इस युग मे उसके लक्ष्य है—शासन और जीवन के ढङ्ग के रूप मे धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र (Secular Democracy) की स्थापना, जनता की निर्धनता का अन्त, सब के लिये रहन-सहन का उचित स्तर, कृषि का आधुनीकरण, उद्योगो का तीव्र विकास, आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी (Technology) का प्रयोग, तथा परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यो के साथ इसका सामजस्य, समाजवादी ढग के समाज की रचना और इसके फलस्वरूप धन का उचित वितरण और शिक्षा, रोजगार तथा सास्कृतिक प्रगति के लिये सबको अवसरो की समानता। इन लक्ष्यो की प्राप्ति तभी की जा सकती है, जब परम्परागत शिक्षा-प्रणाली मे आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया जाय।

३ स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से सब स्तरो पर शिक्षा का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ है। पर इस विस्तार के बावजूद शिक्षा के अनेक अगो के प्रति व्यापक असन्तोष है। उदाहरणार्थ—अभी तक १४ वर्ष की आयु तक के बच्चो के लिये नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था नही की जा सकी है। निरक्षरता की समस्या का समाधान नही किया जा सका है। माध्यमिक विद्यालयो और विश्वविद्यालयो मे शिक्षा के स्तर को ऊँचा नही उठाया जा सका है। माध्यमिक और उच्च शिक्षा मे पाठ्य-क्रमो के विभिन्नीकरण' (Diversification of Curricula) की योजना को पूर्ण रूप स कार्यान्वित नही किया जा सका है, जिसके परिणामस्वरूप एक ओर शिक्षित व्यक्तियो मे बेरोजगारी अधिक हो

गई है, और दूसरी ओर अनेक उद्योगों में प्रशिक्षित व्यक्तियों का अत्यधिक अभाव है। शिक्षकों के वेतनों और सेवा-प्रतिबन्धों (Service-Conditions) में वांछित परिवर्तन नहीं हुआ, और शिक्षा की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्यायें अभी तक उग्र विवाद के विषय बनी हुई हैं। सारांश में, शिक्षा की 'संख्यात्मक' (Quantitative) वृद्धि तो हुई है, पर 'गुणात्मक' (Qualitative) नहीं। इसके अतिरिक्त, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिये राष्ट्रीय नीतियों और कार्य-क्रमों को लागू नहीं किया जा सका है।

४. भारत-सरकार को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि 'शिक्षा' राष्ट्रीय समृद्धि और कल्याण का आधार है। देश का जितना हित शिक्षा से हो सकता है, उतना किसी दूसरी वस्तु से नहीं। अतः सरकार ने शिक्षा का प्रतिष्ठापन करना निश्चय किया है। सरकार ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सब साधनों का उपयोग करने का भी निश्चय किया है। यह केवल उत्तम और प्रगतिशील शिक्षा के आधार पर किया जा सकता है। अतः सरकार ने शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान पर अधिक से अधिक धन व्यय करने का निश्चय किया है।

५. शैक्षिक विकास के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जानी वांछनीय है, क्योंकि शिक्षा-प्रणाली के विभिन्न अंग एक-दूसरे पर प्रबल प्रतिक्रिया करते हैं और प्रभाव डालते हैं। विश्वविद्यालयों को तब तक शिक्षा के शक्तिशाली और प्रगतिशील केन्द्र नहीं बनाया जा सकता है, जब तक कि उत्तम माध्यमिक स्कूल न हों, और माध्यमिक स्कूल उत्तम तभी होंगे—जब प्राथमिक विद्यालयों का गुणात्मक रूप से सुधार किया जायगा। अतः शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की, न कि कुछ अंगों की जाँच की जानी आवश्यक है। पिछले समय में अनेक आयोगों और समितियों ने शिक्षा के विशेष अंगों और क्षेत्रों का अध्ययन किया है। इसके विपरीत, अब शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र का एक इकाई के रूप में सूक्ष्म अध्ययन किया जाना है।

सरकार ने अपने बताए हुए कारणों को ध्यान में रखकर और भारतीय शिक्षा के उपरिलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'शिक्षा आयोग' को नियुक्त करने का निश्चय किया।

आयोग की [illegible]

अपने निर्[illegible] , तथा [illegible] १९६४ को 'विश्व-
विद्यालय-अनुदान-[illegible] Gran[illegible] [illegible] अध्यक्ष, डॉ०
डी० एस० कोठारी [illegible] अध्[illegible] [illegible]
की। [illegible]

अध्यक्ष के अतिरिक्त, सदस्यो की सख्या १४ थी। इनमे से ९ भारतीय और ५ विदेशी थे।

'आयोग' का उद्घाटन-समारोह २ अक्टूबर, १९६४ को नई दिल्ली के विज्ञान-भवन मे हुआ। उस अवसर पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने अपने सन्देश मे कहा :—"मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि कमीशन शिक्षा के सब पहलुओ—प्राथमिक, विश्वविद्यालीय और टेकनिकल—की जांच करे और ऐसे सुझाव दे, जिनसे हमारी शिक्षा-व्यवस्था को अपने सभी स्तरो पर उन्नति करने मे सहायता मिले।"

"It is my earnest desire that the commission will survey all aspects of education—primary, secondary, university and technical—and make recommendations which will lead to improve our educational system at all its levels."—**President S. Radhakrishnan.**

आयोग के विचार एवं सुझाव

'आयोग' ने शिक्षा के जिन महत्त्वपूर्ण अगो के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किये और सुझाव दिये है, वे निम्नलिखित हैं —

(१) शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य, (२) शिक्षा की सरचना और स्तर, (३) शिक्षक की स्थिति, (४) अध्यापक-शिक्षा, (५) छात्र-संख्या और जनबल, (६) शैक्षिक अवसरो की समानता, (७) विद्यालय-शिक्षा का विस्तार, (८) विद्यालय पाठ्य-क्रम, (९) विद्यालय-प्रशासन और निरीक्षण, (१०) शिक्षण-विधियाँ, मार्ग-प्रदर्शन और मूल्याकन, (११) उच्च शिक्षा, (१२) कृषि की शिक्षा, (१३) व्यावसायिक प्राविधिक और इंजीनियरिंग-शिक्षा, (१४) विज्ञान की शिक्षा, और (१५) वयस्क-शिक्षा।

स्थानाभाव के कारण हम इनका संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं। विशेष और विस्तृत अध्ययन के लिये विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा द्वारा प्रकाशित "शिक्षा-आयोग (कोठारी कमीशन)—सुझाव और समीक्षा" देखिये।

१ शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य[1]

'आयोग' के विचारानुसार शिक्षा को लोगो के जीवन, आवश्यकताओ और आकाक्षाओ से सम्बन्धित किया जाना चाहिये, जिससे कि उनका आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक और सास्कृतिक विकास करके राष्ट्रीय लक्ष्यो को प्राप्त किया जा सके। इस उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये आयोग ने अग्रलिखित पंचमुखी कार्यक्रम का सुझाव दिया है :—शिक्षा द्वारा—(१) उत्पादन मे वृद्धि, (२) सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का विकास, (३) प्रजातन्त्र की सुदृढता, (४) आधुनीकरण की प्रक्रिया

1. Education & National Objectives

मे तीव्रता, (५) सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मान्यताओं का विकास करके चरित्र का निर्माण।

(१) शिक्षा और उत्पादन (Education & Productivity)—शिक्षा द्वारा उत्पादन मे वृद्धि करने के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. विज्ञान की शिक्षा को विद्यालय और विश्वविद्यालय-शिक्षा के सब पाठ्य-क्रमो का अभिन्न अंग बनाया जाय।
२. कार्य-अनुभव (Work Experience) को सम्पूर्ण शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाय, और टेक्नॉलॉजी तथा औद्योगीकरण की दिशा में मोड़ने का प्रयास किया जाय।
३. माध्यमिक शिक्षा को अधिक से अधिक व्यावसायिक रूप दिया जाय।
४. उच्च-शिक्षा मे कृषि-सम्बन्धी और प्राविधिक शिक्षा पर बल दिया जाय।

(२) सामाजिक और राष्ट्रीय एकता (Social & National Integration)–शिक्षा द्वारा सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के विकास के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये है :—

१. सार्वजनिक शिक्षा के लिये 'सामान्य विद्यालय-प्रणाली' (Common School System) को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप मे स्वीकार किया जाय।
२. शिक्षा के सब स्तरो पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा (Social & National Service) को सब छात्रो के लिये अनिवार्य कर दिया जाय।
३. प्रत्येक शिक्षा-संस्था मे सामाजिक और सामुदायिक सेवा के कार्य-क्रम का विकास किया जाय।
४. प्रत्येक जिले मे 'श्रम और सामाजिक सेवा-शिविरो' (Labour & Social Service Camps) की व्यवस्था की जाय।
५ एन० सी० सी० के कार्य-क्रम को चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक जारी रखा जाय।
६. मातृभाषा अर्थात् प्रादेशिक भाषा को विद्यालय और उच्च-शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।
७. अखिल-भारतीय शिक्षा-संस्थाओ मे अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप मे जारी रखा जाय।
८. प्रादेशिक भाषाओ को उन क्षेत्रो मे—जहाँ वे प्रयोग की जाती हैं, जल्दी से जल्दी प्रशासन की भाषायें बनाया जाय।
९. अंग्रेजी के शिक्षण और अध्ययन को विद्यालय-स्तर से जारी रखा जाय।
१०. संसार की कुछ महत्त्वपूर्ण भाषाओ की शिक्षा के लिये कुछ स्कूल और विश्वविद्यालय स्थापित किये जायें।

११. देश के अधिकांश निवासियों के लिये हिन्दी को 'संयोजक भाषा' (Link Language) का रूप दिया जाय ।
१२. राज्यों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये सब भारतीय भाषाओं के विस्तार की व्यवस्था की जाय ।
१३. बी० ए० और एम० ए० के स्तरों पर दो भारतीय भाषाओं के अध्ययन की सुविधा कर दी जाय ।
१४. राष्ट्रीय चेतना के विकास को विद्यालय-शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बनाया जाय ।

(३) **शिक्षा और प्रजातन्त्र की सुदृढ़ता (Education & Consolidation of Democracy)**—शिक्षा द्वारा प्रजातन्त्र की सुदृढ़ता के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाय ।
२. माध्यमिक और उच्च शिक्षा का विस्तार करके सब स्तरों पर कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाय ।
३ जाति, वर्ग, स्थिति, धर्म और लिंग का भेद-भाव किये बिना सब बच्चों को शिक्षा के समान अवसर दिये जायें ।

(४) **शिक्षा और आधुनीकरण (Education & Modernization)**—शिक्षा द्वारा देश का आधुनीकरण करने के बारे में 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. आधुनीकरण करने के लिये टेकनॉलॉजी को अपनाया जाय ।
२. शिक्षा के द्वारा उचित दृष्टिकोणों तथा मान्यताओं (Values) का विकास किया जाय ।
३. शिक्षा के द्वारा स्वतन्त्र अध्ययन, स्वतन्त्र विचार और स्वतन्त्र निर्णय की आदतों का निर्माण किया जाय ।
४. सामान्य व्यक्ति के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाया जाय ।

(५) **सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास (Development of Social, Moral & Spiritual Values)**—इस सम्बन्ध में 'आयोग' के सुझाव निम्नलिखित हैं :—

१. सभी-शिक्षा-संस्थाओं में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मान्यताओं की शिक्षा की व्यवस्था की जाय ।
२. प्राथमिक स्तर पर इन मान्यताओं की शिक्षा रोचक कहानियों के माध्यम से दी जाय ।
३. माध्यमिक स्तर पर इन मान्यताओं के विषय में शिक्षकों तथा छात्रों द्वारा विचार-विमर्श किया जाय ।

४ विश्वविद्यालयो मे 'तुलनात्मक धर्म' (Comparative Religion) नामक विभागो की स्थापना की जाय। इन विभागो मे इस बात की खोज की जाय कि इन मान्यताओ को प्रभावशाली ढङ्ग से किस प्रकार पढाया जाय।

२ शिक्षा की सरचना और स्तर[1]

(१) विद्यालय शिक्षा की नवीन सरचना (New Structure of School Education)—आयोग ने देश म प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का ध्यान मे रखकर, विद्यालय-शिक्षा की जो नवीन सरचना प्रस्तुत की है, वह इस प्रकार हैं —

१० वर्ष की सामान्य शिक्षा

- २ वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा
- ३ या २ वर्ष की निम्न माध्यमिक शिक्षा
- ३ २ वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा
- ४ या ५ वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा
- १ से ३ वर्ष की पूर्व-विद्यालय शिक्षा

(२) सरचना-सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding the Structure)—विद्यालय शिक्षा की नवीन सरचना के बारे मे 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

१ सामान्य शिक्षा की अवधि १० वर्ष की रखी जाय।
२ सामान्य शिक्षा प्रारम्भ होने से पहले १ से ३ वर्ष तक पूर्व-विद्यालय या पूर्व प्राथमिक शिक्षा दी जाय।
३ प्राथमिक शिक्षा की अवधि ७ से ८ वर्ष की रखी जाय और इसको दो भागो म बाँटा जाय —(i) ४ या ५ वर्ष का निम्न प्राथमिक स्तर, (ii) ३ वर्ष का उच्च प्राथमिक स्तर।
४ निम्न माध्यमिक शिक्षा की अवधि ३ या २ वर्ष की रखी जाय।
५ निम्न माध्यमिक स्तर पर दो प्रकार की शिक्षा दी जाय—(i) ३ या २ वर्ष की माध्यमिक शिक्षा, (ii) १ से ३ वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा।
६ उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की अवधि २ वर्ष की रखी जाय।
७ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दो प्रकार की शिक्षा दी जाय (i) २ वर्ष की सामान्य शिक्षा, या (ii) १ से ३ वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा।

1. Educational Structure & Standards

८ प्रथम सार्वजनिक वाह्य परीक्षा १० वर्ष की विद्यालय-शिक्षा के बाद ली जाय।

९ ९वीं कक्षा से पृथक् विद्यालयों की स्थापना करने की प्रचलित विधि को समाप्त किया जाय।

१० १०वीं कक्षा तक किसी विषय में विशिष्टीकरण की आज्ञा न दी जाय।

११ माध्यमिक स्कूल केवल दो प्रकार के रखे जायें—(i) हाई स्कूल, जिनमें शिक्षा की अवधि १० वर्ष की हो, और (ii) हायर सेकण्डरी स्कूल, जिनमें शिक्षा की अवधि ११ या १२ वर्ष की हो।

(३) उच्च शिक्षा की नवीन सरचना (New Structure of Higher Education)—'आयोग' के अनुसार उच्च शिक्षा की सरचना इस प्रकार होगी —

२ या ३ वर्ष का स्नातकोत्तर कोर्स

२ या ३ वर्ष का द्वितीय डिग्री कोर्स

३ वर्ष का प्रथम डिग्री कोर्स

(४) सरचना-सम्बन्धी सुझाव (Suggestions Regarding the Structure)—'आयोग' ने उच्च शिक्षा की नवीन सरचना के बारे में अधोलिखित सुझाव दिये हैं —

१ उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के बाद प्रथम डिग्री कोर्स की अवधि ३ वर्ष रखी जाय।

२ द्वितीय डिग्री कोर्स की अवधि २ या ३ वर्ष की रखी जाय।

३ कुछ विश्वविद्यालयों में 'ग्रेजुएट स्कूलों' (Graduate Schools) की स्थापना की जाय, जिनमें कुछ विषयों में ३ वर्ष के स्नातकोत्तर (Post-Graduate) कोर्स की व्यवस्था की जाय।

४ उत्तर प्रदेश में त्रि-वर्षीय डिग्री कोर्स का प्रारम्भ कुछ चुने हुए विषयों और चुने हुए विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ किया जाय।

(५) स्तरों का उन्नयन (Raising of Standards)—'आयोग' ने शिक्षा के स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं —

१ १० वर्ष की विद्यालय-शिक्षा को गुणात्मक रूप से उन्नत बनाया जाय।

२. १० वर्ष मे कक्षा १० क स्तर को इस स्थिति पर पहुँचा दिया जाय, जिस पर आजकल हायर सेकण्डरी का स्तर है।

३ विश्वविद्यालय उपाधियो के कोर्स मे अधिक उन्नत विषय-वस्तु को स्थान दिया जाय।

४ 'विद्यालय सकुलो' (School Complexes) का निर्माण किया जाय। हर सकुल मे एक माध्यमिक स्कूल और उसके आस पास के सब प्राथमिक स्कूल रखे जायँ। ऐसे सकुल मे होने वाले सब स्कूलो द्वारा सामूहिक रूप से स्तरो मे सुधार करने के लिए प्रयास किया जाय।

३. शिक्षक की स्थिति[1]

'आयोग' ने अनुभव किया कि शिक्षण-व्यवसाय की ओर प्रतिभाशाली व्यक्तियो को आकर्षित करने के लिये शिक्षको की आर्थिक, सामाजिक और व्यावसायिक स्थिति को उन्नत बनाना बहुत आवश्यक है। इस बात को ध्यान मे रखकर 'आयोग' ने शिक्षको की स्थिति मे सुधार करने के विचार से निम्नाकित सुझाव दिये हैं —

(१) **वेतन (Remuneration)**—'आयोग' के वेतन सम्बन्धी सुझाव हैं —

१ भारत-सरकार द्वारा विद्यालय-शिक्षका का न्यूनतम वेतन क्रम (Scales of Pay) निर्धारित किया जाय।

२ सरकारी और गैर सरकारी, सभी विद्यालयो के शिक्षको के वेतन-क्रम मे समानता के सिद्धान्त का पालन किया जाय।

३ विश्वविद्यालयो और उनसे सम्बद्ध कॉलेजो के शिक्षको के वेतन-क्रम में पर्याप्त वृद्धि की जाय।

(२) **शिक्षकों के वेतन क्रम (Scales of Pay of Teachers)**—'आयोग' ने शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर अध्यापको के लिय निम्नाकित वेतन क्रमो का सुझाव दिया है —

शिक्षक	वेतन	
१. माध्यमिक कोर्स पास प्राथमिक स्कूलो के अप्रशिक्षित शिक्षक,	न्यूनतम वेतन	१०० रु०
२ उपरोक्त शिक्षको का ४ वर्ष की सेवा के बाद,	न्यूनतम वेतन	१२५ रु०
३ माध्यमिक कोर्स और २ वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त प्राथमिक स्कूलो के शिक्षक,	न्यूनतम वेतन	१२५ रु०

(क्रमश)

1. Teacher-Status.

४. उपरोक्त शिक्षको का ५ वर्ष की सेवा के बाद;	न्यूनतम वेतन	१५० रु०
५. सेकण्डरी कोर्स और २ वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक;	न्यूनतम वेतन	१५० रु०
६. उपरोक्त शिक्षको का २० वर्ष बाद,	अधिकतम वेतन	२५० रु०
७. श्रेणी (६) मे से १५% चुने जाने वाले शिक्षक;		२५०-३०० रु०
८. १ वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त ग्रेजुएट;	न्यूनतम वेतन	२२० रु०
९. उपरोक्त शिक्षको का २० वर्ष बाद,		४०० रु०
१०. श्रेणी (९) मे से १५% चुने जाने वाले शिक्षक;		४००-५०० रु०
११. अप्रशिक्षित ग्रेजुएट जब तक वे प्रशिक्षण प्राप्त न कर लें,	न्यूनतम वेतन	२२० रु०
१२. स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त माध्यमिक स्कूलो में कार्य करने वाले शिक्षक,		३००-६०० रु०
१३. प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद उपरोक्त शिक्षक,	जितना वेतन वे पा रहे है, उसमे एक वर्ष की वेतन-वृद्धि।	
१४. माध्यमिक स्कूलो के प्रधान,	इनका वेतन इनकी योग्यताओ और विद्यालय के आकार पर निर्भर होगा। इनको सम्बद्ध कॉलिजो के लिये निर्धारित कोई भी वेतन-क्रम दिया जा सकता है।	
१५. सम्बद्ध कॉलिजो के शिक्षक,	(i) लेक्चरार, जूनियर स्केल	३००-२५-६०० रु०
	(ii) लेक्चरार, सीनियर स्केल	४००-३०-६४०-४०-८०० रु०
	(iii) सीनियर लेक्चरार या रीडर	७००-४०-११०० रु०
	(iv) प्रिंसिपल I	७००-४०-११०० रु०
	II	८००-५०-१५०० रु०
	III	१०००-५०-१५०० रु०
१६. विश्वविद्यालयो के शिक्षक	(i) लेक्चरार	४००-४०-८००-५०-९५० रु०
	(ii) रीडर	७००-५०-१२५० रु०
	(iii) प्रोफेसर	११००-५०-१३००-६०-१६०० रु०

(३) कार्य और सेवा की दशायें (Conditions of Work & Service)—'आयोग ने शिक्षको के काय तथा सेवा-सम्बन्धी दशाओ म सुधार करने के लिय अधोलिखित सुझाव दिये है —

१ प्रत्येक शिक्षा सस्था म कुशल काय के लिय न्यूनतम सुविधायें प्रदान की जायें।

२ समस्त शिक्षको को व्यावसायिक उन्नति करने के लिये उपयुक्त सुविधाएँ दी जायें।

३ शिक्षको के काय करने के घटो को निश्चित करते समय न केवल उनके शिक्षण कार्य को, वरन् उनके द्वारा किये जाने वाले सब कार्य को ध्यान मे रखा जाय।

४ शिक्षको को पाँच वष मे कम से कम एक बार भारतवष के किसी भी भाग मे घूमने के लिये उनके वेतन के अनुसार रियायती दर पर रेलवे टिकिट देने की योजना बनायी जाय।

५ व्यक्तिगत विद्यालयो मे शिक्षको की सेवा-दशाएँ सरकारी विद्यालयो मे काम करने वाले शिक्षको की सेवा दशाओ के समान बनाई जायँ।

६ ग्रामीण क्षेत्रो म शिक्षको को आवास प्रदान करने के लिय प्रत्यक प्रकार का प्रयत्न किया जाए।

७ शिक्षको के लिए सहकारी गृह-निर्माण-योजनाओ को प्रोत्साहन दिया जाय।

८ शिक्षको को सभी नागरिक अधिकारो का उपयोग करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। उन्हे जिला, राज्य या राष्ट्र के स्तर पर किसी भी सार्वजनिक पद को ग्रहण करने की आज्ञा दी जाय। ऐसी स्थिति मे उन्हे शिक्षा सस्था से अवकाश दिया जाय।

९ शिक्षको पर चुनावो म भाग लेने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

१० शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर अध्यापिकाओ की नियुक्ति को प्रोत्साहित किया जाय। उनको अधिकाधिक अशकालीन काय करने की सुविधाएँ दी जायें।

४ अध्यापक-शिक्षा[1]

'आयोग ने अध्यापको की व्यावसायिक शिक्षा म सुधार करने और समुन्नत बनाने के लिए अग्राकित सुझाव दिये —

1 Teacher Education

(१) शिक्षक-शिक्षा की पृथकता का अन्त (Removal of the Isolation of Teacher-Education)—'आयोग' का विचार है कि अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिये उसे विश्वविद्यालय के साहित्यिक जीवन, विद्यालय-जीवन तथा शिक्षा-सम्बन्धी नवीनतम विचारों के समीप लाया जाना आवश्यक है। इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

१. 'शिक्षा' विषय को विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० के पाठ्य-क्रमों में स्थान दिया जाय।
२ प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था में 'प्रसार-सेवा-विभाग' (Extension Service Department) की स्थापना की जाय।
३ विभिन्न प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं की पृथक्ता को दूर करने के लिये सब को 'ट्रेनिंग कॉलेज' की संज्ञा दी जाय।
४ प्रत्येक राज्य में 'कॉम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों' (Comprehensive Colleges) का निर्माण किया जाय, जिनमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाय।
५ प्रत्येक राज्य में 'अध्यापक-शिक्षा का स्टेट बोर्ड' (State Board of Teacher-Education) स्थापित किया जाय। यह बोर्ड सब स्तरों और सब क्षेत्रों में अध्यापक-शिक्षा के लिये उत्तरदायी बनाया जाय।

(२) व्यावसायिक शिक्षा में सुधार (Improvement in Professional Education)—अध्यापक-शिक्षा के कार्य-क्रम में गुणात्मक उन्नति करने के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

१ प्रशिक्षण-विद्यालयों के पाठ्य-क्रमों की दिशा और विषय-सामग्री को परिवर्तित किया जाय।
२. विश्वविद्यालयों में सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के एकीकृत (Integrated) पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किये जायँ।
३ अध्यापन के अभ्यास में गुणात्मक सुधार किया जाय।
४ विशिष्ट पाठ्यक्रमों और कार्य-क्रमों का निर्माण किया जाय।
५ अध्यापक-शिक्षा के सब स्तरों पर पाठ्यक्रमों और कार्य-क्रमों को दोहराया जाय।

(३) प्रशिक्षण-काल (Period of Training)—विभिन्न प्रशिक्षण-स्तरों की अवधि के बारे में 'आयोग' के सुझाव निम्नांकित हैं —

१. प्राइमरी स्कूलों के उन शिक्षकों के लिये, जो सेकण्डरी स्कूल-कोर्स पास हैं, प्रशिक्षण की अवधि २ वर्ष की रखी जाय।
२. माध्यमिक स्कूलों के उन शिक्षकों के लिये, जो स्नातक हैं, प्रशिक्षण की

अवधि कुछ समय तक १ वर्ष की रखी जाय, पर इस अवधि को बढ़ाकर २ वर्ष कर दिया जाय।

३ शिक्षा में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की अवधि को बढ़ाकर ४ सत्र (*Term*) अथवा १½ वर्ष का कर दिया जाय।

(४) प्रशिक्षण संस्थाओं में सुधार (Improvement in Training Institutions)—प्रशिक्षण संस्थाओं में गुणात्मक उन्नति करने के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

१ ट्रेनिंग कालेजों के अध्यापकों के पास दो—'स्नातकोत्तर उपाधियाँ' (*Master's Degree*) और 'शिक्षा की उपाधि' (*Degree in Education*) होनी चाहिए।

२ मनोविज्ञान, समाज शास्त्र, विज्ञान या गणित ऐसे विषयों को पढ़ाने के लिये योग्य विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाना चाहिए, भले ही वे अप्रशिक्षित (Untrained) हों।

३ स्कूलों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिये 'ग्रीष्मकालीन संस्थाओं' (Summer Institutes) का संगठन किया जाय।

४ प्राइमरी स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं के अध्यापक या तो शिक्षा विषय में एम० ए० (M. A. in Education) हों, या किसी अन्य विषय में स्नातकोत्तर उपाधि (M. A., M. Sc. आदि) के साथ बी० एड० (B. Ed.) की उपाधि प्राप्त कर चुके हों।

५ प्रशिक्षण संस्थाओं में छात्रों से शुल्क न लिया जाय और उनके लिये छात्रवृत्तियाँ तथा ऋण की व्यवस्था की जाय।

(५) प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार (Expansion of Training Facilities)—प्रशिक्षण-सुविधाओं का विस्तार करने के लिये 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

१ प्रत्येक राज्य को अपने क्षेत्र में प्रशिक्षण सुविधायें प्रदान करने के लिये एक योजना तैयार करनी चाहिए, जिससे शिक्षकों की माँग की पूर्ति तथा शिक्षण-कार्य में लगे हुए शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके।

२ विस्तृत आधार पर पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा और अंशकालीन प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए।

३ विद्यालय शिक्षकों को शिक्षण-कार्य करते हुए शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधायें दी जानी चाहिए।

(६) उच्च शिक्षा के शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी (Professional Preparation of Teachers in Higher Education)—'आयोग' ने उच्च शिक्षा

के कार्य मे सलग्न अध्यापको के लिय अपने व्यवसाय अथवा शिक्षण-कार्य के लिये तैयारी करना आवश्यक समझा है और इस सम्बन्ध मे नीचे लिखे सुझाव दिये —

१ जो व्यक्ति पहली बार लेक्चरार के रूप मे किसी उच्च शिक्षा-सस्था मे नियुक्त होते है, जिन्हे सस्था के अच्छे अध्यापको के व्याख्याना को सुनने के अवसर दिये जायँ ।

२ प्रत्येक विश्वविद्यालय और यथासम्भव प्रत्येक कॉलेज मे नये शिक्षको के लिये नियमित रूप से 'निश्चित पाठ्य-क्रमो' (Orientation Courses) का सगठन किया जाय ।

३ बडे विश्वविद्यालयो या कुछ विश्वविद्यालयो के एक समूह मे इन पाठय-क्रमो को विशिष्ट शिक्षको को नियुक्त करके सचालित किया जाय ।

५. छात्र-संख्या और जनबल[1]

'आयोग' ने जनबल को ध्यान मे रखते हुए माध्यमिक स्कूलों और उच्च शिक्षा-सस्थाओ मे छात्र-सख्याओ के बारे म निम्नलिखित सुझाव दिये है —

१ उत्तर-प्राइमरी शिक्षा (Post-Primary Education) मे छात्र-सख्या-सम्बन्धी नीति को चार बातो पर आधारित किया जाय–(i) माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिये जनता की माँग, (ii) छात्रा के समस्त स्वाभाविक गुणो का पूर्ण विकास, (iii) माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्तरो पर उत्तम शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने की समाज की क्षमता, और (iv) जनबल की आवश्यकतायें ।

२ पहली तीन योजनाओ मे माध्यमिक और उच्च शिक्षा की माँग मे बहुत वृद्धि हुई है और भविष्य मे भी होगी । इस बढती हुई माँग को पूरा करने के लिये अध्यापको, धन और शिक्षण-सामग्री को जुटाना कठिन होगा । अत हायर सेकण्डरी स्कूला, कॉलेजो और विश्वविद्यालया मे चुने हुए छात्रो को प्रवेश दिया जाय ।

३. धनी समाज भी समस्त योग्य छात्रो को माध्यमिक और उच्च शिक्षा देने मे कठिनाई का अनुभव करते है । ऐसा करना भारत के लिए असभव होगा । अत भविष्य म छात्र-सख्या-सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति का यह लक्ष्य निर्धारित किया जाय—योग्य छात्रो मे जो सबसे अधिक प्रतिभा-शाली हो, उनको माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाय और उनको उदारतापूर्वक छात्रवृत्तियाँ दी जायँ, जिससे उनकी आर्थिक कठिनाइयो का समाधान हो जाय ।

---

1 Enrolment & Man power.

४. शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार जनशक्ति या रोजगार प्राप्त करने के अवसरों को ध्यान में रखकर किया जाय।

६. शैक्षिक अवसरों की समानता[1]

'आयोग' ने शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रकार की असमानतायें बताई हैं—(१) शिक्षा के सब पक्षों और स्तरों पर लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में असमानता, (२) उन्नत वर्गों, पिछड़े लोगों, अछूतों, आदिवासियों और पहाड़ी जातियों की शिक्षा में असमानता। दोनों प्रकार की असमानताओं को न्यूनतम सीमाओं तक पहुँचाने के लिये 'आयोग' ने अधोलिखित सुझाव दिये हैं :—

(१) निःशुल्क शिक्षा (Free Education)—निःशुल्क शिक्षा के विषय में 'आयोग' के सुझाव निम्नांकित है :—

१. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त से पूर्व समस्त सरकारी और गैर-सरकारी स्कूलों में प्राथमिक स्तर तक ट्यूशन फ़ीस समाप्त कर दी जाय।
२. निम्न माध्यमिक शिक्षा को पंचवर्षीय योजना के अन्त तक या उससे पूर्व सभी सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों में निःशुल्क बनाया जाय।
३. अगले १० वर्षों में उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-शिक्षा को योग्य एवं जरूरतमन्द छात्रों के लिये निःशुल्क बनाया जाय।

(२) शिक्षा के खर्चों में कमी (Reduction in Costs of Education)—शिक्षा के खर्चों में कमी करने के लिये 'आयोग' के सुझाव निम्नांकित हैं :—

१. प्राथमिक स्तर पर बालकों को पाठ्य-पुस्तकें और लिखने की सामग्री मुफ्त दी जाय।
२. माध्यमिक स्कूलों, कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में 'पुस्तक-गृहों' (Book-Banks) के कार्य-क्रम का विकास किया जाय। इन पुस्तक-गृहों से छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें दी जायें।
३. माध्यमिक विद्यालयों और उच्च शिक्षा-संस्थाओं के पुस्तकालयों में पर्याप्त संख्या में पाठ्य-पुस्तकों को रखा जाय।
४. प्रतिभाशाली छात्रों को पाठ्य-पुस्तकों और अन्य आवश्यक पुस्तकों को खरीदने के लिये अनुदान दिये जाय।

(३) छात्रवृत्तियों की व्यवस्था और योजनाएँ (Provision & Schemes for Scholarships)—'आयोग' ने छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, योजनाओं और छात्र-सहायता के अन्य रूपों के बारे में अग्रलिखित सुझाव दिये हैं :—

1. Equalization of Ed[illegible] Opp[illegible]

१ छात्रवृत्तियो का कार्य-क्रम शिक्षा के सब स्तरो पर सगठित किया जाय ।
२. निम्न प्राथमिक स्तर के उपरान्त किसी भी योग्य एव प्रतिभाशाली बालक को अपनी भावी शिक्षा से वचित न किया जाय ।
३ माध्यमिक स्तर पर पहुँचने वाले १५ प्रतिशत योग्य छात्रो को छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की जायँ ।
४ विश्वविद्यालय-स्तर पर पूर्व-स्नातक छात्रो की सम्पूर्ण सख्या के १५ प्रतिशत को १९७६ तक, और २५ प्रतिशत को १९८६ तक छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की जायँ ।
५ १९७६ तक स्नातकोत्तर छात्रो की सम्पूर्ण सख्या के २५ प्रतिशत को, और १९८६ तक ५० प्रतिशत छात्रो को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ ।
६ 'राष्ट्रीय छात्रवृत्तियो' (National Scholarships) की योजना को विस्तृत किया जाय ।
७ व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) प्राप्त करने वाले छात्रो म से विद्यालय स्तर पर ३० प्रतिशत को, और कॉलेज-स्तर पर ५० प्रतिशत को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ ।
८ प्रतिभाशाली छात्रो को विदेशो मे उच्च अध्ययन करने के लिये प्रतिवर्ष ५०० छात्रवृत्तियाँ दी जायँ ।
९ 'ऋण-छात्रवृत्तियाँ' (Loan Scholarships) कुछ सीमा तक सामान्य शिक्षा के प्रतिभाशाली छात्रो को, और अनिवार्य रूप से विज्ञान तथा व्यावसायिक शिक्षा सस्थाओ के छात्रा को दी जायँ ।
१० छात्रो को अध्ययन-काल मे धन उपार्जन की सुविधायें दी जायँ, जिससे वे अपनी शिक्षा का कुछ व्यय निकाल सकें ।

७ विद्यालय-शिक्षा का विस्तार[1]

'आयोग' ने विद्यालय के सभी स्तरो पर शिक्षा के विस्तार की सिफारिश की है और निम्नलिखित सुझाव दिये है —

(१) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (Pre-Primary Education)—पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये —

१ प्रत्येक राज्य के 'राजकीय शिक्षा-सस्थान' (State Institute of Education) मे पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिये राज्य-स्तर का एक केन्द्र स्थापित किया जाय ।
२ प्रत्येक जिले म पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिय एक केन्द्र स्थापित किया जाय ।

---

1 Expansion of School Education

३. व्यक्तिगत प्रबन्धकों को पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन के लिये प्रोत्साहित किया जाय ।
४ पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के कार्य-क्रमों को लचीला बनाया जाय ।

(२) **प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)**—प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये 'आयोग' ने नीचे लिखे सुझाव दिये हैं —

१ सब बच्चों को १६७५-७६ तक ५ वर्ष की उत्तम और प्रभावशाली प्राथमिक शिक्षा दी जाय ।
२ देश के सब भागों में ७ वर्ष की ऐसी शिक्षा १६८५-८६ तक प्रदान की जाय । इस प्रकार १६८५-८६ तक संविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य को अवश्य प्राप्त किया जाय ।
३ 'अपव्यय' एवं 'अवरोधन' (Wastage & Stagnation) को रोकने पर बल दिया जाय ।
४ प्राथमिक विद्यालयों के विस्तार के लिये ऐसी योजना बनाई जाए कि प्रत्येक बालक को अपने घर से १ मील के घेरे में लोअर प्राइमरी स्कूल, और १ से ३ मील तक के घेरे में अपर प्राइमरी स्कूल मिल जाय ।

(३) **माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)**—'आयोग' का विचार है कि आने वाले कुछ वर्षों में धनाभाव के कारण राज्यों द्वारा माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना सम्भव नहीं है । इसलिए इस शिक्षा के विस्तार के लिये अधोलिखित सिद्धान्तों एवं उपायों के अनुसार कार्य किया जाय —

१ माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाय, जिससे निम्न माध्यमिक स्तर पर २० प्रतिशत, और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ५० प्रतिशत छात्र व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर सकें ।
२ माध्यमिक शिक्षा में अवसरों की समानता पर बल दिया जाय ।
३ लड़कियों, अछूत जातियों एवं जनजातियों में माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिये विशेष कार्य-क्रमों का आयोजन किया जाय ।
४ अगले २० वर्षों में माध्यमिक शिक्षा की संख्या को नियमित किया जाय ।

८. विद्यालय-पाठ्यक्रम[1]

विद्यालय के प्रचलित पाठ्यक्रम के दोषों को दूर करने के लिये 'आयोग' ने विभिन्न कक्षाओं के लिये पाठ्य-क्रम निर्धारित किये हैं, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है —

1 School Curriculum

१. निम्न प्राथमिक (Lower Primary, Classes I to IV)—१. एक भाषा : मातृभाषा या क्षेत्रीय या प्रादेशिक भाषा (Mother Tongue or Regional Language), २. गणित (Mathematics), ३. वातावरण का अध्ययन (Study of Environment)—कक्षा ३ और ४ मे विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन पढाया जाय, ४. सृजनात्मक क्रियाएँ (Creative Activities), ५. कार्य-अनुभव और समाज-सेवा (Work-Experience & Social Service) ,६. स्वास्थ्य-शिक्षा (Health Education) ।

२. उच्चतर प्राथमिक (Higher Primary, Classes V to VII)—१. दो भाषायें : (अ) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, (ब) हिन्दी या अंग्रेजी । २. गणित, ३. विज्ञान, ४. सामाजिक अध्ययन (या इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र), ५. कला (Art), ६. कार्य-अनुभव और समाज-सेवा, ७. शारीरिक शिक्षा (Physical Education), ८. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा (Education in Moral & Spiritual Values) ।

३. निम्न माध्यमिक (Lower Secondary, Classes VIII to X)—१. तीन भाषाएँ : अहिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे सामान्य रूप से अग्रलिखित भाषाएँ होनी चाहिए :—(क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, (ख) उच्च या निम्न स्तर की हिन्दी, (ग) उच्च या निम्न स्तर की अंग्रेजी । हिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे सामान्यतः अग्रलिखित भाषाएँ होनी चाहिये :—(क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, (ख) अंग्रेजी (या हिन्दी यदि अंग्रेजी मातृभाषा के रूप मे ले ली गई है), (ग) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा, २. गणित, ३. विज्ञान, ४. इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र, ५ कला, ६. कार्य-अनुभव और समाज-सेवा, ७. शारीरिक शिक्षा, ८. नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा ।

४. उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary, Classes XI & XII)—१. कोई दो भाषाएँ—जिनमें कोई आधुनिक भारतीय भाषा, कोई आधुनिक विदेशी भाषा तथा कोई शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हो, २. अग्रलिखित मे से कोई से तीन विषय चुने जायँ : (i) एक अतिरिक्त भाषा, (ii) इतिहास, (iii) भूगोल, (iv) अर्थशास्त्र, (v) तर्कशास्त्र (Logic), (vi) मनोविज्ञान, (vii) समाजशास्त्र, (viii) कला, (ix) भौतिकशास्त्र, (x) रसायनशास्त्र, (xi) गणित, (xii) जीव-विज्ञान, (xiii) भूगर्भशास्त्र (Geology), (xiv) गृह-विज्ञान (Home Science), ३. कार्य-अनुभव तथा समाज-सेवा, ४. शारीरिक शिक्षा, ५. कला या शिल्प (Art or Craft), ६. नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा ।

५. त्रि-भाषी फार्मूले में संशोधन (Amendment in the Three-Language Formula)—'आयोग' का विचार है कि स्कूल स्तर पर त्रि-भाषी फार्मूले के लागू होने से बहुत-सी कठिनाइयाँ आयी हैं और यह सफलता भी प्राप्त नही कर सका है ।

अतः असंतोष एवं विरोध की भावनायें उत्पन्न हो गई है। इस स्थिति मे सुधार करने के लिये इस फ़ार्मूले मे संशोधन किया जाना आवश्यक है। 'आयोग' के विचार से यह संशोधन निम्नांकित सिद्धान्तो के आधार पर किया जाना चाहिये :—

१. 'हिन्दी' संघ की राजभाषा के रूप मे मातृभाषा के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे।
२. अंग्रेजी का ज्ञान छात्रो के लिए लाभप्रद होगा।
३. तीन भाषाओ को सीखने के लिये सबसे उपयुक्त स्तर निम्नतर—माध्यमिक स्तर है।
४ हिन्दी या अंग्रेजी का शिक्षण उस समय प्रारम्भ किया जाय, जब उनके लिये अधिकाधिक प्रेरणा एवं आवश्यकता का अनुभव किया जाय।

'आयोग' ने उपरोक्त सिद्धान्तो के आधार पर त्रिभाषी फ़ार्मूले का रूप इस प्रकार अंकित किया है :—

(अ) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।
(ब) संघ की राजभाषा या सह-राजभाषा, जब तक यह है।
(स) एक आधुनिक भारतीय या योरोपियन भाषा, जो छात्र द्वारा पाठ्य-क्रम मे से न चुनी गई हो और शिक्षा का माध्यम न हो।

६. ***हिन्दी का स्थान (Place of Hindi)***—'आयोग' ने कहा है कि अंग्रेजी को उच्च-शिक्षा मे बौद्धिक आदान-प्रदान की भाषा का काम करना होगा। परन्तु अंग्रेजी अधिकांश भारतीय जनता के लिए विनिमय की भाषा नही बन सकती है। यह भाषा कालान्तर मे हिन्दी ही होगी। इसलिए इसे भारत के सभी भागो मे फैलाने के लिए कार्य किया जाना चाहिए।

७. **विभिन्न भारतीय भाषाओ का स्थान (Place of Different Indian Languages)**—'आयोग' की राय मे भारतीय भाषाओ का अध्ययन लिपियो के अन्तर के कारण कठिन है। इसलिये प्रत्येक आधुनिक भाषा का कुछ साहित्य देवनागरी और रोमन लिपि मे प्रकाशित किया जाय। 'आयोग' ने कहा कि स्कूलो मे भाषा की शिक्षा की नई नीति इसलिए आवश्यक हो गई है, क्योकि अंग्रेजी का अनिश्चित काल के लिए प्रतिष्ठित सह-राजभाषा के रूप मे सबसे अधिक प्रयोग होना है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक समुचित भाषा-नीति का होना आवश्यक है। अत. मातृभाषा को स्कूल, कॉलिज और उच्च शिक्षा के स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। 'आयोग' ने कहा है कि हिन्दी के अतिरिक्त, सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ का विकास किया जाय, ताकि एक राज्य से दूसरे मे विनिमय के लिए इन भाषाओ का प्रयोग किया जा सके।

८. **अंग्रेजी का स्थान (Place of English)**—'आयोग' ने अनेक भारतीय शिक्षा-संस्थाओ और विश्वविद्यालयो मे अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाये रखने

पर जोर दिया है। अंग्रेजी की पढ़ाई स्कूल-स्तर से ही जारी रखनी चाहिए। सर्वोत्तम कोटि के स्नातकोत्तर-अध्ययन और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शोध-कार्य के लिए ६ महा-विश्वविद्यालय, जिनमे अंग्रेजी भाषा—शिक्षा का माध्यम हो, विकसित किये जायँ। इन्हें वर्तमान विश्वविद्यालयों मे से ही चुना जाय और इनमे एक प्रौद्योगिक-विज्ञान का तथा एक कृषि का विश्वविद्यालय हो।

६. शास्त्रीय भाषाओं का स्थान (Place of Classical Languages)—'आयोग' ने शास्त्रीय भाषाओ के अध्ययन के महत्त्व को स्वीकार किया है। उसने यह भी स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली मे संस्कृत विशेष अधिकार रखती है। परन्तु 'आयोग' इस प्रस्ताव से सहमत नही है कि संस्कृत या अन्य किसी शास्त्रीय भाषा को त्रि-भाषी फार्मूले मे स्थान प्रदान किया जाय। 'आयोग' का विचार है कि इस फार्मूले मे केवल आधुनिक भारतीय भाषाओ को ही स्थान दिया जाय। 'आयोग' इस बात से सहमत है कि मातृभाषा तथा सस्कृत का एक मिश्रित पाठ्य-क्रम बनाया जा सकता है। परन्तु जनमत इसके पक्ष मे नही है। अतः इन परिस्थितियो मे शास्त्रीय भाषाओं को विद्यालय-पाठ्य-क्रम में केवल वैकल्पिक विषय के रूप मे स्थान दिया जा सकता है। यह स्थान कक्षा ८ तथा आगे की कक्षाओ मे हो।

९. विद्यालय-प्रशासन और निरीक्षण[1]

विद्यालय-प्रशासन और निरीक्षण की चर्चा करते हुए 'आयोग' ने विशेष रूप से निम्नलिखित बातों पर बल दिया है :—

(१) सामान्य विद्यालय-पद्धति (Common School System)—'आयोग' का विचार है कि इस समय भारत मे प्रशासन की निरीक्षण की पद्धतियाँ उचित और सहानुभूतिपूर्ण नही है। इन दोषों को दूर करने के लिये 'सार्वजनिक शिक्षा की सामान्य विद्यालय-पद्धति' (Common School System of Public Education) की स्थापना की जाय। इस पद्धति मे सब सरकारी और गैर-सरकारी स्कूलो का समावेश किया जाय। 'आयोग' ने इस पद्धति के निर्माण के लिये निम्नलिखित उपायो को काम मे लाने के लिये कहा है :—

१. विभिन्न प्रबन्धको के अधीन कार्य करने वाले शिक्षको के बीच जो भेद-भाव प्रचलित है, उसे समाप्त किया जाय।
२. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक प्राथमिक स्तर के बालकों से फीस न ली जाय।
३. पंचम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक निम्न माध्यमिक स्तर की फीस समाप्त कर दी जाय।
४. सरकार का यह दायित्व है कि यदि कोई विद्यालय उपयुक्त ढंग से

1. School Administration & Supervision.

संचालित नहीं किया जा रहा है, तो वह या तो उसका प्रबन्ध स्वय अपने हाथ मे ले ले या उसे बन्द कर दे।

५ व्यक्तिगत विद्यालयो की प्रबन्ध-समितियों मे शिक्षा-विभाग के प्रतिनिधि रखे जायें।

६ गैर-सरकारी विद्यालयो मे शिक्षको की नियुक्ति, उनका वेतन एव उनमे सम्बन्धित सभी अन्य बातें सरकारी विद्यालयो के शिक्षको के समान हो।

(२) प्रशासन और निरीक्षण (*Administration & Supervision*)—'आयोग' ने विद्यालय-प्रशासन और निरीक्षण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित सामान्य सिफारिशें की हैं —

१. प्रशासन को निरीक्षण से पृथक् रखा जाय। जिला-स्तर पर प्रशासन-कार्य 'जिला-विद्यालय-परिषद' (District School Board) के हाथ मे रहे, और निरीक्षण-कार्य जिला शिक्षा-अधिकारी को सौंपा जाय। परन्तु दोनो एक-दूसरे के सहयोग से कार्य करें।

२ प्रत्येक विद्यालय मे दो प्रकार का निरीक्षण किया जाय (१) प्राथमिक विद्यालयो मे वर्ष मे एक बार 'जिला-विद्यालय-परिषद' द्वारा, तथा माध्यमिक स्कूलो मे शिक्षा-विभागो द्वारा, (२) प्राथमिक विद्यालयो मे जिला विद्यालय-अधिकारी और माध्यमिक विद्यालयो मे राज्य-विद्यालय-शिक्षा-परिषदो द्वारा त्रि-वर्षीय (*Triennial*) या पचवर्षीय (*Quinquennial*) निरीक्षण सगठित किये जायें।

३ प्रत्येक राज्य मे 'राज्य विद्यालय-शिक्षा परिषद' (*State Board of* School Education) की स्थापना की जाय। यह प्रचलित माध्यमिक-शिक्षा-परिषदो के कार्यों एवं दायित्वो का निर्वाह करे।

४ शिक्षा-मन्त्रालय मे एक 'राष्ट्रीय विद्यालय-शिक्षा परिषद' (National Board of School Education) की स्थापना की जाय, जो विद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध मे भारत-सरकार को परामर्श दे।

१०. शिक्षण-विधियाँ, मार्ग-प्रदर्शन और मूल्याकन

'आयोग' ने शिक्षण-विधियो, मार्ग प्रदर्शन और मूल्याकन से सम्बन्धित विषयो के बारे मे निम्नलिखित सुझाव दिये —

(१) शिक्षण विधियो मे सुधार (Improvement in Teaching Methods)—आयोग के अनुसार हमारे अधिकाश विद्यालयो मे अभी तक परम्परागत विधियो का

---

1 Teaching Methods & Evaluation

अनुसरण किया जा रहा है। उनमे सुधार करने के लिये 'आयोग' ने नीचे लिखे सुझाव दिये :—

१. शिक्षण-विधियो मे लचीलेपन तथा गतिशीलता को स्थान प्रदान किया जाय।

२. शिक्षा मे गतिशीलता लाने के लिये शिक्षको मे पहलकदमी, परीक्षण, तथा सृजनात्मकता के गुणो का विकास किया जाय।

३. नवीन शिक्षण-विधियो के प्रसार के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रमो, वर्कशापो, प्रदर्शनो, परीक्षणो, विचार-सम्मेलनो, सेमिनारो आदि का आयोजन किया जाए।

(२) पाठ्य-पुस्तको मे सुधार (Improvement in Text-Books)—'आयोग' ने पाठ्य-पुस्तको की निम्न स्थिति मे सुधार करने के लिये अधोलिखित सुझाव दिये है :—

१. राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तको के निर्माण के लिये एक विस्तृत कार्य-क्रम तैयार किया जाय।

२. पाठ्य-पुस्तको को लिखने के लिये देश के प्रतिभाशाली व्यक्तियो को प्रोत्साहित किया जाय।

३. 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण परिषद्' (NCERT) द्वारा जिन सिद्धान्तो एव रूपरेखाओ के अनुसार पाठ्य-पुस्तको के निर्माण के लिये कार्य किया जा रहा है, उन्ही सिद्धान्तो के अनुसार अन्य क्षेत्रो मे भी कार्य किया जाय।

४. प्रत्येक राज्य मे पाठ्य-पुस्तको के निर्माण के लिये एक विशेष समिति की नियुक्ति की जाय।

५. पाठ्य-पुस्तको की तैयारी तथा मूल्यांकन करना—राज्य के शिक्षा-विभाग का दायित्व माना जाय।

६. शिक्षा-विभाग अखिल भारतीय रेडियो से सम्पर्क स्थापित करके रेडियो-प्रसारणो द्वारा विभिन्न पाठो के अध्यापन की व्यवस्था करें।

(३) प्राथमिक स्तर पर मार्ग-प्रदर्शन (Guidance at Primary Stage)—प्राथमिक स्तर पर मार्ग-प्रदर्शन के सम्बन्ध मे 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. प्राथमिक विद्यालय की निम्नतम कक्षा से मार्ग-प्रदर्शन देना प्रारम्भ किया जाय।

२. प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको को प्रशिक्षण-काल मे मार्ग-प्रदर्शन सम्बन्धी बातो से अवगत कराया जाय।

३. छात्रो तथा उनके अभिभावको को आगे की शिक्षा के लिये विषयो का चुनाव करने मे सहायता दी जाय।

(४) माध्यमिक स्तर पर मार्ग-प्रदर्शन (Guidance at the Secondary Stage)—माध्यमिक स्तर पर मार्ग-प्रदर्शन प्रदान करने के लिए अधोलिखित व्यवस्था की जाय :—

१. सभी माध्यमिक स्कूलो के लिए न्यूनतम मार्ग-प्रदर्शन कार्य-क्रम तैयार किया जाय।
२. १० माध्यमिक विद्यालयो के लिये एक परामर्शदाता (Counsellor) नियुक्त किया जाय।
३. प्रत्येक जिले मे कम से कम एक विद्यालय मे मार्ग-प्रदर्शन का विस्तृत कार्य-क्रम संचालित किया जाय।
४. माध्यमिक विद्यालयो के सभी शिक्षको को प्रशिक्षण-काल या सेवा-काल मे मार्ग-प्रदर्शन की धारणा से अवगत कराया जाय।

(५) *मूल्यांकन (Evaluation)—'आयोग' का विचार है कि मूल्यांकन* के लिये लिखित परीक्षा को महत्त्व दिया जाता है। इनमे बहुत से दोषो का प्रचलन हो गया है। अतः इसको सुधारने तथा मूल्याङ्कन के कार्य-क्रम को विस्तृत बनाने के लिये 'आयोग' ने निम्नांकित सुझाव दिये हैं :—

१. मूल्यांकन के नवीन दृष्टिकोण द्वारा लिखित परीक्षाओ को सुधारने के लिये प्रयास किया जाय।
२. छात्रो के विकास के उन मुख्य पक्षो को मापने के लिये विभिन्न रीतियो को खोजा जाय, जिनका मापन लिखित परीक्षा द्वारा नही हो पाता है।
३. निम्न प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन द्वारा मूलभूत कुशलताओ मे छात्रो की उपलब्धियो (Achievements) को सुधारा जाय।
४. उच्चतर प्राथमिक स्तर पर छात्रो की उपलब्धियो की जाँच करने के लिये लिखित परीक्षाओ के अतिरिक्त मौखिक तथा निदानात्मक (Diagnostic) परीक्षाओ का प्रयोग किया जाय। संचित अभिलेख-पत्रो (Cumulative Record Cards) की भी व्यवस्था की जाय।
५. प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर एक वाह्य परीक्षा ली जाय।
६. वाह्य परीक्षाओ के प्रश्न-पत्रो मे प्रश्नो को वस्तुनिष्ठ (Objective) बनाने का प्रयत्न किया जाय।
७. आन्तरिक जाँच (Internal Assessment) व्यापक हो। इसके द्वारा बालको के सभी पक्षो का मूल्यांकन किया जाय। वाह्य परीक्षाओं के

साथ-साथ, आन्तरिक जाँचो को प्रमाण-पत्र प्रदान करने का आधार बनाया जाय ।

११. उच्च शिक्षा

(१) वरिष्ठ विश्वविद्यालयो का विकास (Development of Major Universities)—'आयोग' का विचार है कि उच्च-शिक्षा मे सबसे महत्वपूर्ण सुधार 'वरिष्ठ-विश्वविद्यालयो का विकास' करना है, जहाँ सर्वोत्तम प्रकार का स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान कार्य किया जा सके और जो विश्व के किसी भी भाग मे स्थित सर्वोत्तम विश्वविद्यालयो के कार्य की तुलना मे निम्नतर सिद्ध न हो । 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' यथासम्भव प्रचलित विश्वविद्यालयो मे से 'वरिष्ठ विश्वविद्यालयो के विकास' के लिये ६ विश्वविद्यालयो को चुने, जिनमे कम से कम १ कृषि तथा १ प्रौद्योगिकी का हो । यह कार्य-क्रम १९६६-६७ से प्रारम्भ किया जाना चाहिये । 'वरिष्ठ विश्व-विद्यालय' असाधारण क्षमता एव अध्यवसाय के छात्रो एवं शिक्षको को रखें । इस दृष्टिकोण से वरिष्ठ विश्वविद्यालयो के विकास मे अधोलिखित बातो पर ध्यान दिया जाय —

१ प्रत्येक वरिष्ठ विश्वविद्यालय पूर्व-स्नातक स्तर के लिए कुछ छात्रवृत्तियाँ निर्धारित करे, जिससे वह स्नातकोत्तर कार्य के लिये पर्याप्त संख्या मे प्रतिभाशाली छात्र प्राप्त कर सके ।

२. शिक्षक-वर्ग की नियुक्ति राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर की जाय ।

३ प्रत्येक वरिष्ठ विश्वविद्यालय मे 'उन्नत अध्ययन केन्द्रो के समूह' (Clusters of Advanced Centres) स्थापित किये जायँ ।

४. वरिष्ठ विश्वविद्यालयो का व्यय 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' द्वार वहन किया जाय ।

(२) विश्वविद्यालयों और कॉलिजो में सुधार (Improvement in Universities & Colleges)—वरिष्ठ विश्वविद्यालयो के अतिरिक्त, देश के अन्य सभी विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बद्ध कॉलिजो के सुधार के बारे मे 'आयोग' ने निम्नांकित सुझाव दिये हैं :—

१. वरिष्ठ विश्वविद्यालय अन्य विश्वविद्यालयो तथा उनसे सम्बद्ध कॉलिजो को उत्तम शिक्षक प्रदान करें ।

२. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के प्रतिभाशाली छात्रो मे ऐसी भावना उत्पन्न की जाय कि वे अध्ययन के पश्चात् शिक्षण-व्यवसाय को अपनायें ।

३. विश्वविद्यालय तथा सम्बद्ध कॉलिज अपने नव-निर्वाचित शिक्षकों को यथासम्भव कुछ समय के लिये वरिष्ठ विश्वविद्यालयो मे भेजें, जहाँ वे

अपने विषय से सम्बन्धित नवीन विचारो एवं प्रक्रियाओ की जानकारी प्राप्त करें।

४. प्रतिभाशाली विद्वानो तथा वैज्ञानिको को अनुसन्धान तथा सेमिनारो का संचालन करने के लिए आमंत्रित किया जाय।

(३) शिक्षण मे सुधार (**Improvement in Teaching**)—'आयोग' ने शिक्षण-कार्य मे सुधार करने के लिये अधोलिखित सुझाव दिये हैं —

१. औपचारिक कक्षा-कार्य एवं प्रयोगशाला कार्य के घण्टा मे कमी की जाय और इस कमी से जो समय बचे, उसका प्रयोग एक निर्देशक (Instructor) के पथ-प्रदर्शन मे स्वाध्ययन, निर्धारित कार्य, लेखो को लिखने, समस्याओ के समाधान तथा अनुसन्धान कार्यों को पूर्ण करने के लिये किया जाय।
२. विश्वविद्यालयो तथा कॉलेजो मे पुस्तकालयो को उत्तम बनाया जाय।
३. सभी विषयो मे रटने की प्रवृत्ति को रोका जाय और मौलिक चिन्तन पर बल दिया जाय।
४. कक्षा-कार्य के बाद छात्रो को ४५ मिनट का अध्ययन समय प्रदान किया जाय, जिससे वे व्याख्यान की सामग्री को याद कर सकें।
५. यह नियम बनाया जाय कि कोई भी शिक्षक सत्र के मध्य मे एक संस्था को छोडकर दूसरी संस्था मे न जाय।

(४) मूल्यांकन मे सुधार (**Improvement in Evaluation**)—'आयोग' ने मूल्यांकन मे सुधार करने के लिये अधोलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. समस्त शिक्षण-विश्वविद्यालयों मे बाह्य परीक्षाओ के स्थान पर स्वयं शिक्षकों द्वारा *'आन्तरिक एवं क्रमिक मूल्यांकन'* (*Internal & Continuous Evaluation*) की प्रणाली को ग्रहण किया जाय।
२. 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' विश्वविद्यालयों के सहयोग से 'केन्द्रीय परीक्षा-सुधार यूनिट' (Central Examination Reform Unit) की स्थापना करे।
३. परीक्षकों को उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच करने के परिणामस्वरूप मिलने वाले पारिश्रमिक को समाप्त कर दिया जाय।
४. एक परीक्षक द्वारा जाँची जाने वाली उत्तर-पुस्तिकाओं की संख्या वर्ष में ५०० से अधिक न हो।

(५) शिक्षा का माध्यम (**Medium of Instruction**)—'आयोग' ने विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा के माध्यम के विषय मे निम्नांकित सुझाव दिए हैं —

१. विश्वविद्यालय-स्तर पर 'क्षेत्रीय भाषाओं' (Regional Languages)

को १० वर्ष की अवधि मे शिक्षा के माध्यम के रूप मे ग्रहण किया जाय।

२. पूर्व-स्नातक स्तर पर उच्च शिक्षा यथासम्भव क्षेत्रीय भाषाओ के माध्यम से दी जाय और स्नातकोत्तर स्तर पर अंग्रेजी के माध्यम से।

३ आधुनिक भारतीय भाषाओ (जिनमे उर्दू सम्मिलित हो) के विकास के लिये उच्च अध्ययन केन्द्रो की स्थापना की जाय।

४ शास्त्रीय तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ को विश्वविद्यालय-स्तर पर वैकल्पिक विषयो के रूप मे रखा जाय। इस स्तर पर किसी भी भाषा को अनिवार्य न बनाया जाय।

५ विश्वविद्यालयो तथा सम्बद्ध कॉलेजो मे अंग्रेजी के अध्ययन के लिये उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जायँ।

६. रूसी भाषा के अध्ययन के लिये सुविधाएँ प्रदान की जायँ।

(६) चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली (System of Selective Admission)— उच्च शिक्षा-संस्थाओ मे प्रवेश चाहने वाले छात्रो का चुनाव किस प्रकार किया जायेगा—इस सम्बन्ध मे 'आयोग' के विचार निम्नलिखित हैं —

१. शिक्षा-संस्थाओ मे छात्रो की संख्या का निश्चय संस्थाओ मे उपलब्ध शिक्षण-सुविधाओ और शिक्षको की संख्या के आधार पर किया जाय।

२. विश्वविद्यालयो द्वारा प्रवेश-योग्यताओं की व्यवस्था की जाय।

३. विश्वविद्यालयो द्वारा प्रवेश चाहने वाले छात्रो मे से सर्वोत्तम का चुनाव किया जाय।

(७) नवीन विश्वविद्यालयो की स्थापना (Establishment of New Universities)—'आयोग' के मतानुसार नवीन विश्वविद्यालयो की स्थापना करते समय अधोलिखित सिद्धान्तो को ध्यान मे रखा जाय :—

१. कोई नवीन विश्वविद्यालय तब तक स्थापित न किया जाय, जब तक 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' की सहमति तथा आवश्यक धन की व्यवस्था न हो जाय।

२. नवीन विश्वविद्यालय सामान्यत. उस स्थान पर स्थापित न किया जाय, जहाँ कुछ समय से कोई विश्वविद्यालय संचालित नही किया जा रहा है।

३. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना तभी की जाय, जब इस बात का विश्वास हो जाय कि उससे शिक्षा के स्तर मे उन्नति होगी और उसमे उच्च स्तर का अनुसन्धान कार्य किया जायगा।

१२. कृषि की शिक्षा

'आयोग' ने कृषि की शिक्षा के जिन महत्त्वपूर्ण पक्षो पर अपने विचार व्यक्त किये है, उनकी चर्चा आगे की पक्तियो मे की जा रही है —

(१) **कृषि-विश्वविद्यालय (Agricultural Universities)**—'आयोग' ने देश में कृषि-विश्वविद्यालयो के बारे म निम्नाकित सुझाव दिये है —

१ प्रत्येक राज्य मे एक कृषि-विश्वविद्यालय खोला जाय।
२ कृषि-विश्वविद्यालयो द्वारा अनुसन्धान, शिक्षा तथा प्रसार के कार्य-क्रमो को अपने हाथ मे लिया जाय।
३ कृषि-विश्वविद्यालयो मे स्नातकोत्तर कार्य को उच्च स्तर का बनाया जाय।
४ स्नातकोत्तर कार्य के लिये प्रवेश केवल कृषि-स्नातको के लिए ही सीमित न रखा जाय, वरन् दूसरे क्षेत्रो के प्रतिभाशाली छात्रो को भी प्रोत्साहित किया जाय।
५ प्रथम डिग्री कोर्स की अवधि १० वर्ष की विश्वविद्यालय के बाद ५ वर्ष की रखी जाय।
६ कृषि-विश्वविद्यालयो मे कक्षा-शिक्षण के अतिरिक्त, प्रयोगशाला तथा प्रायोगिक कार्यों पर अधिक बल दिया जाय।
७. शिक्षको के प्रशिक्षण के लिए ५ या ६ केन्द्रो की स्थापना की जाय।
८ कृषि-विश्वविद्यालयो के २५ प्रतिशत छात्रो को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की व्यवस्था की जाय।
९ प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय के पास १,००० एकड भूमि से कम का फार्म न हो, जिसमे कम से कम ५०० एकड भूमि जोतने योग्य हो।
१० उपाधि प्रदान करने से पूर्व १ वर्ष तक के छात्रो से फार्म पर कृषि-कार्य कराया जाय।

(२) **कृषि-कॉलेज (Agricultural Colleges)**—कृषि के कॉलेजो के सम्बन्ध मे 'आयोग' के सुझाव अधोलिखित हैं —

१. नवीन कृषि-कॉलेजो की स्थापना की जाय और समस्त पूर्व-स्नातक तथा स्नातकोत्तर कार्य कृषि-विश्वविद्यालयो मे ही किया जाय।
२. प्रत्येक कृषि-कॉलेज मे २०० एकड भूमि का सुव्यवस्थित फार्म हो।
३ कृषि-कॉलेजो का प्रति पाँचवें वर्ष 'अखिल भारतीय कृषि-अनुसन्धान-परिषद' तथा 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' द्वारा सयुक्त रूप से निरीक्षण किया जाय।

(३) **कृषि-पॉलिटेक्नीक (Agricultural Polytechnics)**—आयोग ने सुझाव

दिया कि कृषि की शिक्षा देने के लिये 'पॉलिटेकनीको' की स्थापना की जाय और उनके सम्बन्ध मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं :—

१. मेट्रीकुलेशन स्तर के उपरान्त कृषि-पॉलिटेकनीको की स्थापना की जाय।
२. इन पॉलिटेकनीको मे १,००० छात्रो तक को शिक्षा दी जाय।
३ कृषि-शिक्षा की माँग की पूर्ति करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के समीप स्थित पॉलिटेकनीको में कुछ समय के लिए कृषि-शिक्षा की व्यवस्था कर दी जाय।

(४) **विद्यालय मे कृषि-शिक्षा (Agricultural Education in Schools)**—'आयोग' का विचार है कि कृषि-शिक्षा को विद्यालय की सामान्य शिक्षा का अभिन्न अग बनाया जाय। इस दृष्टिकोण से 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. समस्त प्राथमिक विद्यालयो (शहरी क्षेत्र के विद्यालयो सहित) मे कृषि-सम्बन्धी जानकारी को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अङ्ग बनाया जाय।
२. विद्यालय-स्तर पर कृषि-कार्य के अनुभव को शिक्षा का प्रमुख अङ्ग बनाया जाय।
३ शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमो मे कृषि तथा ग्रामीण समस्याओ से सम्बन्धित बातो को स्थान प्रदान किया जाय।
४ कॉलिजो और विश्वविद्यालयो मे पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्य-क्रमो मे कृषि और ग्रामीण समस्याओ को स्थान दिया जाय।

१३. व्यावसायिक, प्राविधिक और इंजीनियरिंग शिक्षा[1]

उपरोक्त शिक्षा से सम्बन्धित 'आयोग' ने जिन बातो पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, उनमे महत्वपूर्ण का विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

(१) **व्यावसायिक और प्राविधिक शिक्षा (Vacational & Technical Education)**—आयोग ने व्यावसायिक और प्राविधिक शिक्षा के बारे मे निम्नांकित सुझाव दिये है :—

१. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थानो (Industrial Training Institutes) में प्रशिक्षण की सुविधाओ का और अधिक विस्तार किया जाय।
२. जूनियर टेक्निकल स्कूलो का नाम परिवर्तित करके—टेकनिकल हाई-स्कूल कर दिया जाय।
३. विद्यालय छोड़ने वाले छात्रो के लिये व्यावसायिक तथा प्राविधिक प्रशिक्षण के लिए अंशकालीन शिक्षा, पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा तथा

---

1. Vocational, Technical & Engineering Education.

लघु-गहन कोर्सों (Short-Intensive Courses) के आधार पर सुविधाएँ प्रदान की जायँ।

४. उद्योग के सहयोग से समय-समय पर सर्वेक्षण (Survey) किये जाएँ, और उनके आधार पर टेकनिशियनों (Technicians) के प्रशिक्षण के लिए पाठ्य-विषयों का विस्तार एवं पुनः निरीक्षण किया जाय।

५. डिप्लोमा प्रदान करने वाले स्कूलों में व्यावहारिक कार्य पर अधिक बल दिया जाय।

६. औद्योगिक क्षेत्रों में पॉलिटेकनिकों की स्थापना की जाय।

७. शिक्षकों और छात्रों को छुट्टियों में उत्पादन कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

८. पॉलिटेकनिकों में सर्टिफिकेट और डिप्लोमा स्तर पर बालिकाओं की विशेष रुचि से पाठ्य-विषयों की व्यवस्था की जाय।

(२) इंजीनियरों की शिक्षा (Education of Engineers)—इंजीनियरों की शिक्षा से सम्बन्धित 'आयोग' के सुझाव निम्नलिखित हैं :—

१. इंजीनियरिंग की कुछ शाखाओं, जैसे—विद्युत-अणु-सम्बन्धी (Electronics) और उपकरण-सम्बन्धी (Instrumentation) शिक्षा के लिए योग्य एवं प्रतिभाशाली बी० एस०-सी० पास छात्रों को चुना जाय।

२. डिग्री कोर्स के छात्रों को तृतीय वर्ष में व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाय।

३. 'वर्कशाप-प्रेक्टिस' (Workshop Practice) में उत्पादन कार्य पर अधिकाधिक बल दिया जाय।

४ रासायनिक प्रौद्योगिकी (Chemical Technology), विमान-विद्या (Aeronautics), नक्षत्र-विज्ञान (Astronautics) आदि पाठ्य-विषयों का विकास किया जाय।

५. शिक्षकों के लिये व्यापक रूप से 'ग्रीष्म-संस्थानों' (Summer Institutes) की व्यवस्था की जाय।

६. शिक्षण-व्यवसाय को आकर्षक बनाने के लिये उपयुक्त वेतन-क्रम लागू किये जायँ।

१४. विज्ञान की शिक्षा

'आयोग' ने विज्ञान की शिक्षा पर बहुत बल दिया है और उसके विकास के लिये अधोलिखित सुझाव दिये हैं :—

१. विज्ञान तथा गणित में स्नातकोत्तर पाठ्य-विषयों के स्तर को उच्च बनाया जाय और इस स्तर पर छात्रों की संख्या में भी वृद्धि की जाय, जिससे उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

२. विज्ञान तथा गणित के उच्च अध्ययन-केन्द्रो की स्थापना की जाय। इन केन्द्रो मे योग्य एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियो को शिक्षक नियुक्त किया जाय। यदि सम्भव हो तो कुछ व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के हो।

३. कुछ 'विज़िटिंग प्रोफेसरो' (Visiting Professors) को समझौते के आधार पर २ से ३ वर्ष की अवधि के लिये नियुक्त किया जाय।

४. भारत के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक विदेशो मे कार्य कर रहे है। 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' उन्हे तथा अन्य विदेशी वैज्ञानिको को आमन्त्रित करे।

५. प्रायोगिक भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाय।

६. औद्योगिक कार्य-कर्त्ताओ को पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा तथा सायंकालीन कक्षाओ के माध्यम से वर्कशापो का प्रयोग करने के लिए सुविधाएँ दी जायँ।

७. वैज्ञानिक विषयो के छात्रो को साख्यिकी (Statistics) का सामान्य ज्ञान प्रदान किया जाय।

८. विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को शिक्षा-प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाय, क्योकि यह आज के युग की महत्त्वपूर्ण माँग है।

९. दो वर्ष के एम० एस-सी० कोर्स के अतिरिक्त एक वर्ष या कम अवधि से कुछ विशेष कोर्स प्रदान किये जायँ जो वर्तमान वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकें।

१०. विश्वविद्यालय तथा इंजीनियरिंग संस्थान योग्य औद्योगिक कार्य-कर्त्ताओ को पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा तथा सायंकालीन कक्षाओं के लिये भर्ती करें। इन संस्थानो मे डिप्लोमा तथा डिग्री कोर्सों के अतिरिक्त मिस्त्रियो (Mechanics), प्रयोगशाला-शिल्पियो (Laboratory Technicians) तथा अन्य कुशल कार्य-कर्त्ताओ (Skilled Operators) के लिये विशेष एवं लघु कोर्सों का भी आयोजन किया जाय।

११. एम० एस-सी० स्तर के आगे एक नवीन उपाधि की व्यवस्था की जाय। इस नवीन उपाधि का कोर्स वैकल्पिक आधार पर प्रदान किया जाय।

१२. विज्ञान के 'ग्रीष्म-संस्थानो' (Summer Institutes) की व्यवस्था की जाय। इनमें स्कूलो, कॉलेजो तथा विश्वविद्यालयो के शिक्षको को आमंत्रित किया जाय। इनके द्वारा देश की विज्ञान-शिक्षा मे महत्त्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है।

१५ वयस्क-शिक्षा[1]

'आयोग' ने निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत वयस्क शिक्षा का काफी विस्तृत विवेचन किया है यथा—

(१) वयस्क-शिक्षा की आवश्यकता (Need of Adult Education)—आयोग का विचार है—शिक्षा जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। आज के प्रौढ को तीव्र गति से परिवर्तन होने वाले आधुनिक विश्व का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है। कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा का भार पूर्णतया पुलिस या सेना के हाथ में नही सौंप सकता है। वस्तुत राष्ट्रीय सुरक्षा पर्याप्त सीमा तक नागरिकों की शिक्षा, विभिन्न मामलो म उनके ज्ञान, उनके चरित्र, उनकी अनुशासन की भावना तथा उनकी सुरक्षात्मक कार्यों में सक्रिय रूप मे भाग लेने की योग्यता पर निर्भर है। अत राष्ट्र की सुरक्षा तथा उसकी उन्नति के लिये प्रौढो को शिक्षित किया जाना आवश्यक है। हमारे देश म प्रौढ शिक्षा की और भी अधिक आवश्यकता है, क्योकि भारत की ७० प्रतिशत जनसख्या लिखना और पढना नही जानती है। दूसरे, भारत लोकतन्त्रीय गणतन्त्र है, जिसे प्रौढो की सुरक्षा एव उन्नति के लिये महत्वपूर्ण कार्य करना है। अत प्रौढो को शिक्षित करना परमावश्यक हो गया है।

(२) वयस्क-शिक्षा का कार्य क्रम (Programme of Adult Education)—'आयोग' का मत है कि प्रौढो को शिक्षित बनाने के लिये प्रौढ शिक्षा का प्रभावशाली कार्य-क्रम तैयार किया जाय। उसने इस कार्यक्रम मे निम्नलिखित बातो के समावेश पर बल दिया है —

(i) निरक्षरता का उन्मूलन, (ii) अनवरत शिक्षा, (iii) पत्राचार पाठ्यक्रम, (iv) पुस्तकालय, (v) प्रौढ-शिक्षा मे विश्वविद्यालयो का कार्य, (vi) प्रौढ शिक्षा का सगठन तथा प्रशासन।

(i) निरक्षरता का उन्मूलन (Liquidation of Illiteracy)—'आयोग' ने वयस्क निरक्षरता को दूर करने के लिये अधोलिखित उपायो को प्रस्तुत किया है —

१ निरक्षरता को १० वर्ष की अवधि मे देश के प्रत्येक कोने से समाप्त कर दिया जाय।
२ १९७१ मे साक्षरता का राष्ट्रीय स्तर ६० प्रतिशत तथा १९७६ मे ८० प्रतिशत कर दिया जाय।
३ निरक्षरता के प्रसार को रोकने के लिये निम्नांकित उपायो को काम मे लाया जाय —
   (अ) ६-११ वय-वर्ग के सब बच्चो के लिये ५ वर्ष की सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

1. Adult Education

(ब) ११-१४ वय-वर्ग के उन बच्चो के लिये अंशकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाय, जिन्होंने या तो बीच मे स्कूल छोड दिया हो या विद्यालय जाने की सुविधा का उपभोग न किया हो।

(स) १५-३० वय-वर्ग के प्रौढो के लिये अंशकालीन सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

४ स्त्रियो मे साक्षरता की उन्नति के लिये 'केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद्' (Central Social Welfare Board) द्वारा 'संक्षिप्त कोर्सो (Condensed Courses) का संचालन किया जाय और ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियो को साक्षर बनाने के लिये 'ग्राम-सेविकाओ' (Village-Sisters) की नियुक्ति की जाय।

५ साक्षरता को बनाये रखने के लिये 'अनुसरण कार्य-क्रम' (Follow-up) पुस्तकालय का प्रयोग तथा पठन-सामग्री का उत्पादन किया जाय।

(ii) अनवरत शिक्षा (Continuation Education)—'आयोग' ने शिक्षित वयस्कों की शिक्षा को जारी रखने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये है —

१. सभी प्रकार तथा सभी स्तरों की शिक्षा-संस्थाएँ नियमित समय के पश्चात् उन व्यक्तियो के लिये, जो पढने की इच्छा रखते है, विभिन्न पाठ्य-विषयो के शिक्षण की व्यवस्था करने के लिये प्रोत्साहित की जायँ।

२ शिक्षा-संस्थाओ मे ऐसे पाठ्य-विषयो का आयोजन किया जाय, जिनके द्वारा वयस्को के सामान्य ज्ञान एवं अनुभव मे वृद्धि की जा सके।

३. कार्य-कर्त्ताओ (Workers) को जीवन के दृष्टिकोण को विस्तृत बनाने तथा अपनी कुशलताओ के विकास के लिये आगे शिक्षा प्रदान की जाय। इसके लिये विशेष अंश-कालीन पाठ्य-विषयो का आयोजन किया जाय।

४. 'केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद्' द्वारा संचालित प्रौढ स्त्रियो के लिये संस्थाएँ तथा मैसूर राज्य मे स्थित शिक्षापीठो के समान विशेष संस्थाएँ स्थापित की जायँ।

(iii) पत्राचार-पाठ्यक्रम (Correspondence Courses)—'आयोग' ने वयस्क-शिक्षा का प्रसार करने के लिये 'पत्राचार-पाठ्यक्रम' पर बल दिया है, जिसमे उसने निम्नांकित बातो को स्थान दिया है —

१. उन लोगो के लिये पत्राचार-पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की जाय, जो अंश-कालीन कोर्सों का भी अध्ययन करने मे असमर्थ हैं।

२. जो व्यक्ति पत्राचार-पाठ्यक्रम लें, उन्हें कभी-कभी शिक्षकों से मिलने के अवसर प्रदान किये जायँ।

३ पत्राचार पाठ्यक्रमो का रेडियो तथा टेलीविजन कार्य-क्रमो से सामजस्य स्थापित किया जाय।

४ पत्राचार-पाठ्यक्रम कृषि, उद्योग तथा अन्य क्षेत्रो के कार्य-कर्ताओ के लिये व्यवस्थित किये जायें।

(iv) पुस्तकालय (Libraries)—'आयोग' ने प्रौढ शिक्षा मे पुस्तकालयो के कार्य के विषय मे अधोलिखित सुझाव दिये है —

१ पुस्तकालय सलाहकार-समिति' (Advisory Committee on Libraries) ने सम्पूर्ण देश मे पुस्तकालयो का एक जाल बिछाने का जो सुझाव दिया है, उसे कार्यान्वित किया जाय।

२ विद्यालयो के पुस्तकालयो को सार्वजनिक पुस्तकालयो के रूप मे सगठित किया जाय और उनमे बच्चो तथा नव साक्षरो (Neo-Literates) की रुचियो के अनुसार पठन सामग्री को स्थान दिया जाय।

(v) प्रौढ-शिक्षा मे विश्वविद्यालयो का कार्य (Role of Universities in Adult Education)—'आयोग' का विचार है कि विश्वविद्यालयो को प्रौढो को शिक्षित करने के विषय मे अपने दायित्व को ग्रहण करना चाहिये। विश्वविद्यालयो को समुदाय के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए कार्य करना चाहिये। विश्वविद्यालय पत्राचार-पाठ्यक्रमो, प्रसार व्याख्यानो, सेमिनारो, स्वच्छता, जनसख्या पर नियन्त्रण तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करके उन विचारो को जनता तक पहुँचाने के लिये विभिन्न आन्दोलनो का सचालन कर सकते है। 'आयोग का मत है कि प्रौढ शिक्षा के कार्य क्रमो को सचालित करने के लिये प्रत्येक विश्वविद्यालय प्रौढ-शिक्षा-विभाग खोले और प्रौढ शिक्षा के सम्बन्धित कार्य-क्रमो को चलाने के लिये सरकार द्वारा विश्वविद्यालयो को आर्थिक सहायता दी जाय।

(vi) प्रौढ-शिक्षा का सगठन तथा प्रशासन (Organization & Administration of Adult Education)—'आयोग' ने प्रौढ-शिक्षा के सगठन और प्रशासन के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये हैं —

१. राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा-परिषद्' (National Board of Adult Education) की स्थापना की जाय। इस परिषद् के अधोलिखित कार्य होने चाहिये —

(अ) औपचारिक प्रौढ शिक्षा तथा प्रशिक्षण के विषय मे केन्द्र तथा राज्य-सरकारो को परामर्श देना, उनके लिये विभिन्न कार्य-क्रमो का निर्माण करना।

(ब) प्रौढ शिक्षा के लिये आवश्यक साहित्य तथा पठन-सामग्री के लिये आवश्यक साधनो एव सेवाओ को प्रोत्साहन देना।

(ढ) विभिन्न मन्त्रालयों तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी साधनों में सामंजस्य स्थापित करना।

(ण) सम्पूर्ण देश का शिक्षा-क्षेत्र में हुई प्रगति की जाँच करना और उसकी उत्तरोत्तर उन्नति के लिए सुझाव देना।

(त) शैक्षिक-शिक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धानकार्य को प्रोत्साहित करना।

आयोग का मूल्यांकन

'आयोग' ने अनेक अच्छे सुझाव दिये हैं; जैसे—शिक्षकों के वेतन-स्तरों में वृद्धि, उनको 65 वर्ष तक कार्य करने की अनुमति, विज्ञान पर आधारित शिक्षा, शिक्षा का जीवन से सम्बन्ध आदि। ये सभी सुझाव अभी कागज पर ही लिखे हुए हैं। यदि ये कार्यान्वित हो सकें, तब तो ये हितकर सिद्ध होंगे; अन्यथा जैसे पिछले आयोगों के सुझाव अभी तक उनकी रिपोर्टों में लिखे हुए हैं, उसी प्रकार ये भी लिखे रह जायेंगे।

'आयोग' की सिफारिशों से लाभ जो भी हों, पर यदि उनको मान्यता दे दी गई, तो हानि अधिक होगी। बेसिक शिक्षा, जिस पर करोड़ों रुपये व्यय किये गये हैं और जो हमको अपने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से विरासत में मिली है, उसकी समाप्ति हो जायगी। अंग्रेजी पर बल देने से उसका प्रभुत्व बरकरार बना रहेगा और भारतीय भाषाओं का विकास रुक जायगा। संस्कृत का अध्ययन न करने के कारण हम अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को भूल जायेंगे। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा पर अनावश्यक बल देकर हम आध्यात्मिकता से दूर हो जायेंगे।

उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'आयोग' की सिफारिशों को क्रान्तिकारी और महत्त्वपूर्ण कहना उचित न होगा। इसमें इस बात पर मतभेद नहीं होना चाहिये। 'आयोग' का गठन जिस प्रकार किया गया था, उससे और अधिक आशा नहीं की जा सकती थी। इसके अनेक सदस्य विदेशी थे, जिनको यहाँ की शिक्षा में कोई रुचि नहीं थी। इसके अतिरिक्त, सबसे बड़े खेद की बात यह है कि भारत में शिक्षा का नियोजन करने के लिये विदेशियों से परामर्श लिया गया। क्या भारत में परामर्श देने वालों का अभाव था? एक बात और है। 'आयोग' के विदेशी सदस्य भारत में स्थायी रूप से नहीं रहे। वे आते-जाते रहे। मास्को के प्रोफेसर शुमोवस्की (Shumovsky) जो 'आयोग' के सदस्य थे, केवल रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने के लिये भारत आये। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी सदस्यों को भारत में शिक्षा के नियोजन में कितनी रुचि थी। इस स्थिति में उनके मन में जो भी आया होगा, उन्होंने कह दिया होगा और उसी को 'आयोग' के सचिव ने लेखबद्ध कर लिया होगा, भले ही उसमें कोई उपयोगिता, कोई सार्थकता, कोई औचित्य हो या न हो। इस परिस्थिति में आप स्वयं 'आयोग' के कार्यों और उसके सुझावों का मूल्यांकन कर सकते हैं। ऐसा करने पर आप उसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे जिस पर हम पहुँचे हैं; अ

'आयोग' के प्रतिवेदन मे कोई भी क्रान्तिकारी सुझाव नही है। ऐसा कहलाने के लिये प्रतिवेदन मे भारतीयो की आवश्यकताओ और आकाक्षाओ एव उनकी भावी प्रगति के लिये उपयुक्त शिक्षा-दर्शन का विवेचन होना चाहिये था।

साराश

भारत-सरकार ने १४ जुलाई, १९६४ को 'शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। आयोग ने निम्नाकित के सम्बन्ध मे अपने सुझाव दिये —

१ **शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य**—शिक्षा द्वारा उत्पादन मे वृद्धि करना, सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का विकास करना, प्रजातन्त्र को सुदृढ बनाना, देश का आधुनीकरण करना, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का विकास करना।

२ **शिक्षा की सरचना और स्तर**—१० वर्ष की सामान्य शिक्षा, ३ वर्ष का प्रथम डिग्री कोर्स, २ या ३ वर्ष का द्वितीय डिग्री कोर्स, २ या ३ वर्ष का स्नातकोत्तर कोर्स।

३ **शिक्षक की स्थिति**—विद्यालय-शिक्षको के न्यूनतम वेतन-क्रम का निर्धारण, विश्वविद्यालयो और उनसे सम्बद्ध कॉलेजो के शिक्षको के वेतन-क्रम मे पर्याप्त वृद्धि, शिक्षको के कार्य तथा सेवा-सम्बन्धी दशाओ मे सुधार।

४ **अध्यापक शिक्षा**—शिक्षक-शिक्षा की पृथकता का अन्त, व्यावसायिक शिक्षा मे सुधार, अध्यापक-प्रशिक्षण की २ वर्ष की अवधि, प्रशिक्षण-सस्थाओ मे सुधार, प्रशिक्षण-सुविधाओ का विस्तार, उच्च शिक्षा के शिक्षको की व्यावसायिक तैयारी।

५ **छात्र-सख्या और जनबल**—छात्र-सख्या को जनबल की आवश्यकताओ के अनुसार सीमित करना, चुने हुए छात्रो को प्रवेश देना, रोजगार के अवसरो के अनुसार शिक्षा की सुविधाओ मे विस्तार करना।

६ **शैक्षिक अवसरो की समानता**—नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था, शिक्षा के व्यय मे कमी, छात्रवृत्तियो की व्यवस्था।

७ **विद्यालय-शिक्षा का विस्तार**—पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन, ५ वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायिक रूप।

८ **विद्यालय-पाठ्यक्रम**—निम्न प्राथमिक, उच्चतर प्राथमिक, निम्न माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरो के पाठ्य-क्रम, त्रि-भाषी फार्मूले मे सशोधन, हिन्दी का स्थान, विभिन्न भारतीय भाषाओ का स्थान, अग्रेजी का स्थान, शास्त्रीय भाषाओ का स्थान।

९ **विद्यालय-प्रशासन और निरीक्षण**—सामान्य विद्यालय-पद्धति की स्थापना, और निरीक्षण की पृथकता।

१० **शिक्षण-विधियाँ, मार्ग-प्रदर्शन और मूल्याङ्कन**—लचीली और गतिशील

शिक्षण-विधियाँ, पाठ्य-पुस्तको मे सुधार, प्राथमिक और माध्यमिक स्तरो पर मार्ग-प्रदर्शन, लिखित परीक्षाओं मे सुधार, वस्तुनिष्ठ प्रश्न ।

११. उच्च शिक्षा—वरिष्ठ विश्वविद्यालयो का विकास, विश्वविद्यालयो और कॉलेजो मे सुधार, शिक्षण मे सुधार, मूल्याकन मे सुधार, शिक्षा का माध्यम, चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली, नवीन विश्वविद्यालयो की स्थापना ।

१२ कृषि की शिक्षा—प्रत्येक राज्य मे १ कृषि-विश्वविद्यालय, नये कृषि-कॉलेजो की स्थापना पर प्रतिबन्ध, कृषि-पॉलिटेकनिको की स्थापना, शिक्षा के सभी स्तरो पर कृषि-शिक्षा की व्यवस्था ।

१३. व्यावसायिक, प्राविधिक और इन्जीनियरिंग शिक्षा—औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओ का विस्तार, पॉलिटेकनिको की स्थापना, इ जीनियरिंग की विभिन्न शाखाओ की शिक्षा, 'समर इ स्टीट्यूट्स' की व्यवस्था ।

१४. विज्ञान की शिक्षा—विज्ञान और प्रौद्योगिकी को शिक्षा-प्रणाली का अङ्ग बनाना, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिको को आमन्त्रित करना, वैज्ञानिक और औद्योगिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये विशेष कोर्स प्रदान करना ।

१५ वयस्क शिक्षा—वयस्क शिक्षा की आवश्यकता और कार्यक्रम—निरक्षरता का उन्मूलन, अनवरत शिक्षा, पत्राचार-पाठ्यक्रम, पुस्तकालय, प्रौढ-शिक्षा मे विश्वविद्यालयो के कार्य, प्रौढ-शिक्षा का संगठन और प्रशासन ।

TEST QUESTIONS

1 The appointment of the Education Commission, 1964 (Kothari Commission), has been criticised on the ground that there was no need for the appointment of a Commission so soon after the Reports of the University Education Commission and the Secondary Education Commission (Radhakrishnan and Mudaliar). State what can be said in defence of the appointment of the Commission

   १९६४ मे 'शिक्षा-आयोग' (कोठारी कमीशन) की इस आधार पर आलोचना की गई है कि 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' और 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' (राधाकृष्णन् और मुदालियर) की रिपोर्ट के इतने शीघ्र बाद ही एक आयोग की नियुक्ति की आवश्यकता नही थी । बताइये कि आयोग की नियुक्ति के पक्ष मे क्या कहा जा सकता है ।

2 How far do you agree with the view that the recommendations made by the Education Commission cannot be implemented ? State your reasons for the view you hold.

आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं कि शिक्षा-आयोग की सिफारिशो को कार्यान्वित नही किया जा सकता है ? आपका जो विचार हो, उसके पक्ष मे तर्क दीजिये ।

3 Summarize briefly the recommendations of the Education Commission (Kothari Commission) on teacher education How far are they likely to improve educational standards ?

शिक्षा-आयोग (कोठारी कमीशन) द्वारा की गई शिक्षक प्रशिक्षण विषयक सिफारिशो का सक्षिप्त साराश लिखिए । शैक्षणिक स्तरो के सुधार मे वे कहाँ तक सहायक सिद्ध होगी ?

4 What steps have been suggested by the Education Commission (1964 66) to remove the isolation of training institutions of Primary and Secondary teachers from the main stream of academic life of the university as well as from the daily problems of schools ?

प्राथमिक तथा माध्यमिक अध्यापको के प्रशिक्षण सस्थानो का विश्व विद्यालयो के विद्वत्परिषद् जीवन से तथा विद्यालयो की दैनिक समस्याओ से पार्थक्य को हटाने के लिये शिक्षा-आयोग (१९६४ ६६) ने क्या सुझाव दिये है ?

२७

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
(१९४७-१९७१)

प्रस्तावना

स्वातन्त्र्योत्तर काल मे प्राथमिक, माध्यमिक एव विश्वविद्यालय-शिक्षा के अतिरिक्त, शिक्षा के अन्य क्षेत्रो मे भी आशातीत प्रगति हुई है और विभिन्न प्रकार की शिक्षा की सरकार द्वारा समुचित व्यवस्था की गई है। हम उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं :—

ग्रामीण उच्च-शिक्षा (विश्वविद्यालय व कॉलेज)

ग्रामीण शिक्षा की वर्तमान स्थिति—भारत ग्रामो का देश है। १९६१ की जनगणना के अनुसार इस देश की ८२ प्रतिशत जनता ग्रामो मे निवास करती है।[1] परन्तु खेद का विषय है कि इस विशाल ग्रामीण जन-समुदाय की उच्च शिक्षा की सदैव से अवहेलना की गई है। इस बात की पुष्टि मे हम कह सकते हैं कि शिक्षा पर किये जाने वाले सम्पूर्ण व्यय का केवल ३४ ३ प्रतिशत ग्रामीण शिक्षा पर व्यय किया जाता है।[2] इस धन का अधिकाश भाग—प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा पर व्यय दिया जाता है और उच्च शिक्षा के लिए अति अल्प धन-राशि शेष रह जाती है। यही कारण है कि इतने बडे देश की ग्रामीण जनता के लिए केवल ३ विश्वविद्यालय हैं—आनन्द, अन्नमलई और विश्वभारती। इनमे से प्रथम और तृतीय की स्थापना अभी कुछ ही वर्ष पूर्व १९५६ और १९५१ मे क्रमश हुई है। केवल अन्नमलई विश्व-

1 *India*, 1969, p 15

2. *Progress of Education in India* (1947–52), p. 4.

विद्यालय १९२८ से कार्य कर रहा है। कहने की आवश्यकता नही है कि इन तीनो विश्वविद्यालयो की स्थापना वैयक्तिक प्रयासो के फलस्वरूप ही हुई है। इनके निर्माण के लिए सरकार को कोई श्रेय नही दिया जा सकता है। इन विश्वविद्यालयो के अतिरिक्त ग्रामीण उच्च शिक्षा के लिए लगभग ६० कॉलेज है। ये समस्त तथ्य एवं आँकडे सिद्ध करते हैं कि ग्राम-निवासियो को उच्च शिक्षा से वचित रखकर कितना जघन्य अपराध किया गया है।

विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग—ग्रामीण उच्च शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान सर्वप्रथम १९४९ *'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग'* ने यह लिखकर आकर्षित किया—"सामान्य प्रकार का प्रबन्ध करने के लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि—ग्रामीण विश्वविद्यालय से सम्बद्ध छोटे-छोटे सावासिक स्नातक-पूर्व कालेज हो। इन कॉलेजो के केन्द्र मे विशिष्ट और उच्च शिक्षा की सुविधाओं के लिये एक विश्व-विद्यालय हो।"[1]—(विस्तृत जानकारी के लिए देखिये—अध्याय २५)।

ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-समिति—'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' के सुभाव को मान्यता प्रदान करके भारत-सरकार ने अक्टूबर १९५४ मे 'ग्रामीण-उच्चतर शिक्षा-समिति'[2] की स्थापना की। इस समिति को अग्रलिखित आधारो पर ग्रामीण विश्वविद्यालयो की रूपरेखा तैयार करने का आदेश दिया गया :—(१) ग्रामीण क्षेत्रो मे उच्च-शिक्षा के उद्देश्य—संगठन एवं पाठ्य-क्रम, (२) उच्च-शिक्षा का बेसिक तथा माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्ध, और (३) अन्य सम्बन्धित समस्यायें। समिति ने ग्रामीण क्षेत्रो मे शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओ को 'रूरल इन्स्टीट्यूट्स' (Rural Institutes) मे परिवर्तित करने की सिफारिश की, और इनके पाठ्यक्रम के विषय मे निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. ग्रामीण सेवाओ के लिए ३ वर्ष का डिप्लोमा कोर्स।
२. शिक्षण-डिप्लोमा (Teaching Diploma) के लिए १ वर्ष का कोर्स।
३. शिक्षण-सर्टिफिकेट (Teaching Certificate) के लिए १ वर्ष का कोर्स।
४. ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्त्रियों (Rural Health Workers—Women) के लिए २ वर्ष का सर्टिफिकेट-कोर्स।
५. ओवरसियरो के लिए २ वर्ष का सर्टिफिकेट-कोर्स।
६. कृषि-विज्ञान के लिए २ वर्ष का सर्टिफिकेट-कोर्स।[3]

ग्रामीण उच्च शिक्षा के प्रयास—'ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-समिति' की सिफारिश को स्वीकार करके भारत सरकार ने १९५६ मे 'ग्रामीण क्षेत्रों मे उच्च-शिक्षा के

---

1. *Report of the University Education Commission*, p. 575.
2. Rural Higher Education Committee.
3. *The Committee on Higher Education, Rural Institutes* (Ministry of Education), p. 64.

लिये राष्ट्रीय समिति[1] की नियुक्ति की। यह 'समिति' ग्रामीण उच्चतर शिक्षा के बारे में सभी प्रकार का परामर्श देती है। इस 'समिति' ने १५ संस्थाओं को 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' में परिवर्तित करने के लिये चुना है। इन 'रूरल-इंस्टीट्यूट्स' ने अधोलिखित स्थानों पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है :—(१) श्री निकेतन (पश्चिमी बंगाल), (२) गांधीग्राम (मद्रास), (३) जामिया-नगर (दिल्ली), (४) उदयपुर (राजस्थान), (५) बिरौली (बिहार), (६) बिचपुरी (उत्तर प्रदेश), (७) सनोसर (गुजरात), (८) कोयम्बटोर (मद्रास), (९) गरगोती (महाराष्ट्र), (१०) अमरावती (महाराष्ट्र), (११) राजपुरा (पंजाब), (१२) वर्धा (महाराष्ट्र), (१३) हनुमानमट्टी (मैसूर), (१४) तवनूर (केरल), और (१५) इन्दौर (मध्य प्रदेश)।[2]

इन 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' में निम्नलिखित पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की गई है :—

१. ग्रामीण विज्ञान (Rural Science) में ३ वर्ष का डिप्लोमा कोर्स।
२. कृषि-विज्ञान (Agricultural Science) में २ वर्ष का सर्टिफिकेट कोर्स।
३. सिविल और रूरल इंजीनियरिंग (Civil & Rural Engineering) में ३ वर्ष का सर्टिफिकेट कोर्स।
४. सेनिटरी इंसपेक्टरों (Sanitary Inspectors) का १ वर्ष का कोर्स।
५. हाई स्कूल उत्तीर्ण छात्रों को त्रि-वर्षीय डिप्लोमा कोर्स के लिए तैयार करने के हेतु १ वर्ष का कोर्स।

नौकरी के दृष्टिकोण से 'ग्रामीण विज्ञानों का डिप्लोमा' विश्वविद्यालयों की बी० ए० और बी० एस-सी० की उपाधियों के बराबर माना गया है। १९६७–६८ में 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' को ३२·७ लाख रुपये का अनुदान दिया गया।[3,4]

गरगोती के 'रूरल इंस्टीट्यूट' में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त छात्रों के लिये सामान्य शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण—दोनों कोर्सों का साथ-साथ अध्ययन करने की सुविधा प्रदान की गई है। इन सम्मिलित कोर्सों की अवधि ३ वर्ष है। नौकरी के दृष्टिकोण से इस इंस्टीट्यूट के डिप्लोमा को बी० ए०, बी० टी० के बराबर माना जाता है।[5]

---

1. National Council for Higher Education in Rural Areas.
2. *Hindustan Year-Book*, 1970, p. 185.
3. *Ibid.*
4. *21st Year of Freedom*, p. 127.
5. *India*, 1969, p. 72.

'ग्रामीण अर्थशास्त्र और सहयोग' (Rural Economics & Cooperation) मे १९६१ से स्नातकोत्तर डिप्लोमा (Post-Graduate Diploma) की शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई है। इस डिप्लोमा को भारत-सरकार ने विश्वविद्यालयो की एम० ए० की उपाधि के बराबर मान लिया है।[1]

ग्रामीण उच्च शिक्षा के कार्य-क्रम को सफल बनाने के लिए 'फोर्ड फाउण्डेशन' (Ford Foundation) ने भारत सरकार को ८१·८१ लाख रुपये दिये है। ग्रामीण उच्च-शिक्षा के लिए इस प्रकार प्रयास तो प्रारम्भ कर दिये गए हैं, पर उनको संतोषजनक नही कहा जा सकता है। ग्रामीण उच्च-शिक्षा की समस्या का समाधान केवल १५ विद्यालयो से नही किया जा सकता है। इस प्रकार के विद्यालयो का तो जाल बिछ जाना चाहिए। फिर उनमे केवल स्नातक-पूर्व शिक्षा की ही व्यवस्था न रहे—जैसी कि वर्तमान समय मे है, अपितु स्नातकोत्तर शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाय और ग्रामीण समस्याओ से सम्बन्धित सभी विषयो का पाठ्य क्रम मे समावेश कर दिया जाय।

कुछ सुझाव—ग्रामीण विश्वविद्यालयो की स्थापना के सम्बन्ध मे कुछ सुझाव निम्नलिखित है —

१ भारत के प्रत्येक राज्य मे कम-से-कम एक ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।
२ विश्वविद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक जिले मे एक उच्चतर-माध्यमिक स्कूल और उपयुक्त स्थानो पर 'रूरल इन्स्टीट्यूट' हो।
३ स्कूल बहु-उद्देशीय हो, जो हमारे ग्रामो के लिये विभिन्न प्रकार के कार्यकर्त्ताओ का निर्माण कर सकें।[2]

ग्रामीण विश्वविद्यालय के कार्य—ग्रामीण विश्वविद्यालयो के निम्नलिखित प्रमुख कार्य होने चाहिये —

१. विश्वविद्यालय के क्षेत्राधिकार मे स्थित ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों तथा स्नातक-पूर्व कॉलिजो को मान्यता प्रदान करना।
२ छात्रो को स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान करना।
३. ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित समस्याओ पर अनुसधान करना।
४ ग्राम-निवासियो को अपने समाज की सास्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिये प्रेरणा देना।

---

1. *India*, 1969, p. 72
2 S N. Mukerji : *Education in India—Today & Tomorrow*, p 185
3. *Ibid*, p 185.

प्रौढ़ अथवा समाज-शिक्षा (१९४७–६१)

देश के कर्णधार नेताओं ने स्वतन्त्र भारत को वैधिक समस्याओं में प्रौढ़-शिक्षा की समस्या को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। उन्होंने अनुभव किया कि जिस देश में ८५% अशिक्षित निरक्षर व्यक्ति हैं, वहाँ किसी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक प्रगति होना सम्भव नहीं है। अतः उन्होंने समस्त निरक्षरों को साक्षर बनाने का संकल्प करके विभिन्न योजनाओं का निर्माण किया। सर्वप्रथम प्रौढ़-शिक्षा (Adult Education)[1] को समाज-शिक्षा (Social Education) का नाम देकर उसके क्षेत्र को अभिवृद्धित तथा परिवर्तित किया गया। यह निश्चय किया गया कि निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के साथ-साथ, नागरिकता की शिक्षा भी प्रदान की जाय। इस प्रकार समाज-शिक्षा के अन्तर्गत प्रौढ़-शिक्षा के दृष्टिकोण को अति व्यापक एवं विस्तृत रूप दिया गया।

ग्राम-सुधार योजना—निरक्षर प्रौढ़ों में नागरिकता के गुणों का विकास करने, उन्हें उनके कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक करने, और उनमें ज्ञान का प्रसार करने के लिये भारतीय केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री ने ११ मई, १९४८ को आयोजित किये गये प्रेस-सम्मेलन के समक्ष अपनी 'ग्राम-सुधार योजना' प्रस्तुत की। इस योजना को जनवरी, १९४९ में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड ने स्वीकार किया। यह योजना निम्नलिखित थी :—

१. ग्राम-विद्यालय ग्राम की सम्पूर्ण जनता के लिये शिक्षा, कल्याण-कार्य, खेल-कूद एवं मनोरंजन के केन्द्र होंगे।
२. ग्राम-विद्यालयों में बच्चों, किशोरों एवं प्रौढ़ों के लिये अलग-अलग समय निश्चित रहेगा।
३. सप्ताह में कुछ दिन केवल बालकों, बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिये सुरक्षित रखे जायेंगे।
४. ग्राम-विद्यालय में ऐसी अनेक मोटरें आया करेंगी जो ध्वनि-विस्तारक यंत्र (Loud-speaker) एवं प्रक्षेपक (Projector) से सुसज्जित होंगी। चलचित्र, मैजिक लालटेन और ग्रामोफोन का भी प्रयोग किया जायगा। ग्रामों के प्रत्येक स्कूल को एक सप्ताह में कम से कम एक बार मोटर की सेवा अवश्य उपलब्ध होगी।
५. ग्राम-विद्यालयों में रेडियो लगाये जायेंगे और बच्चों, किशोरों तथा प्रौढ़ों के लिये समाज-शिक्षा के उपयुक्त कार्य-क्रम प्रसारित किये जायेंगे।
६. ग्राम-विद्यालयों में लोकप्रिय नाटकों के अभिनय की व्यवस्था की जायगी और सर्वश्रेष्ठ नाटक लिखने वालों को पुरस्कृत किया जायगा।

---

1. Adult or Social Education.
2. *First Year-Book of Education*, p. 913.

७ ग्राम-विद्यालयो मे राष्ट्रीय एवं लोकगीतो मे अभिरुचि उत्पन्न करने के लिये समुचित प्रबन्ध किया जायगा।

८ ग्राम-विद्यालयो मे स्थानीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए किसी हस्तशिल्प तथा व्यवसाय की सामान्य शिक्षा दी जायगी।

९ स्वास्थ्य, कृषि तथा श्रम-विभागो के सहयोग से ग्राम-निवासियो के लिये स्वास्थ्य-विज्ञान, कृषि की वैज्ञानिक प्रणालियाँ, कुटीर उद्योग-धन्धो एव सहकारिता का ज्ञान प्रदान करने के लिये व्याख्यान-मालाओ की आयोजना की जायगी।

१० सूचना एवं प्रसार विभाग के सहयोग से ग्राम-विद्यालया मे चलचित्र तथा स्लाइड प्रदर्शित किये जायँगे। ग्राम-निवासियो को राष्ट्रीय समस्याओ से अवगत कराने के लिये विद्वानो एव नेताओ को आमन्त्रित किया जायगा।

११ ग्राम-विद्यालयो तथा ग्रामीणो के मध्य दलो के आधार पर सामूहिक खेलो की व्यवस्था की जायगी।

१२ ग्राम-विद्यालयो मे समय-समय पर मेलो एवं प्रदर्शनिया का प्रबन्ध किया जायगा।

प्रान्तीय शिक्षा मन्त्रियो का सम्मेलन—फरवरी, १९४९ मे दिल्ली मे प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्रियो का एक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमे इस 'द्वादश-सूत्री योजना' पर विचार-विनिमय किया गया। तदुपरान्त यह कार्यक्रम बनाया गया कि ३ वर्ष की अवधि मे १२ से ५० वर्ष की अवस्था वाले निरक्षर व्यक्तियो मे से कम-से-कम ५० प्रतिशत को साक्षर बना दिया जाय। परन्तु केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारो की आर्थिक कठिनाइयो के कारण इस कार्य-क्रम को कार्यान्वित न किया जा सका।

समाज-शिक्षा की नवीनतम योजनाएँ—समाज-शिक्षा के अन्तर्गत एक 'पचसूत्रीय कार्य क्रम' बनाया गया है, जिसके उद्देश्य हैं (१) साक्षरता का प्रसार, (२) स्वास्थ्य तथा सफाई के नियमो का ज्ञान का प्रसार, (३) वयस्क व्यक्तियो के आर्थिक स्तर की उन्नति, (४) नागरिकता की भावना, अधिकारो एव कर्तव्यो के प्रति जनता को जागरूक करना, और (५) समाज एव व्यक्ति की आवश्यकताओ के अनुरूप स्वस्थ मनोरजन की व्यवस्था करना। योजनाओ को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व राज्यो पर है, जबकि केन्द्र मार्ग प्रदर्शन, आर्थिक सहायता एवं समन्वय की व्यवस्था करता है।

उच्च कर्मचारियो को समाज-शिक्षा के कार्य का प्रशिक्षण देने एव प्रमुख समस्याओ पर उपयुक्त अनुसधान करने के लिये दिल्ली मे 'राष्ट्रीय मूलभूत शिक्षा-केन्द्र'[1] की स्थापना की गई है। दिल्ली विश्वविद्यालय मे स्थापित 'पुस्तकालय-संस्थान'[2]

1. National Centre for Fundamental Education,
2. Library Institute.

पुस्तकालयो के क्षेत्र मे इसी प्रकार का कार्य करता है। भारत सरकार 'दिल्ली-सार्वजनिक पुस्तकालय' चला रही है। इन्दौर मे 'श्रमिक-समाज-शिक्षा-संस्थान'[1] स्थापित किया जा चुका है।

विभिन्न भारतीय भाषाओ मे सस्ते दामो की और अच्छे स्तर की पुस्तको के प्रकाशन के लिये 'नेशनल बुक ट्रस्ट' (National Book Trust) द्वारा कार्य किया जा रहा है। ध्येय यह है कि इन पुस्तको को अधिकाधिक पाठको तक पहुँचाया जाय।

'केन्द्रीय चलचित्र संग्रहालय' मे शिक्षा एवं संस्कृति-सम्बन्धी विभिन्न विषयो पर ४,६७४ चलचित्र आदि हैं, जो संग्रहालय की सदस्य शिक्षा-संस्थाओ को नि शुल्क दिये जाते हैं। १,०४५ शिक्षा-संस्थान एवं सामाजिक संगठन इस संग्रहालय के सदस्य हैं। 'श्रव्य-दृश्य शिक्षा' शीर्षक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती है।

केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारे श्रव्य-दृश्य (Audio-Visual) कार्यकर्त्ताओं की प्रशिक्षण-गोष्ठियो का भी आयोजन करती रहती हैं। एक 'केन्द्रीय श्रव्य-दृश्य शिक्षा-संस्था' स्थापित की जा चुकी है।

सरकार—वयस्को की अशिक्षा को मिटाने के प्रश्न पर बराबर गम्भीर ध्यान देती रही है। शिक्षा-मंत्रालय ने विभिन्न कार्य-क्रमो मे समन्वय करना जारी रखा है और सम्बन्धित शिक्षा के क्षेत्र मे सहायक सेवायें और प्रायोगिक परियोजनायें प्रारम्भ कर दी हैं। प्रायोगिक परियोजनाओ मे मुख्यत इन परियोजनाओं की चर्चा की जा सकती है—वर्क्स सोशल एजूकेशन इंस्टीट्यूट, इन्दौर, इंस्टीट्यूट ऑफ लाइब्रेरी साइंस, दिल्ली, और मैसूर स्टेट विद्यापीठ कार्यक्रम।

नव-साक्षरो के लिये १४ विभिन्न भाषाओ मे लिखी गई पुस्तको की प्रतियोगिता के अन्तर्गत ४० व्यक्तियो को पुरस्कार दिये गये।[2] नेशनल बुक-ट्रस्ट के 'मेमोरेण्डम ऑफ एसोसिएशन एण्ड रूल्स' मे परिवर्तन किया गया है, और ट्रस्ट का उद्देश्य और अधिक स्पष्ट किया गया है। ट्रस्ट ने अंग्रेजी-हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओ मे पुस्तकें प्रकाशित की हैं। ट्रस्ट के कार्य-क्रम मे "भारत-भूमिवासी' नामक एक पुस्तकमाला प्रकाशन सम्मिलित है।

स्त्री-शिक्षा (१९४७-७१)

१९४७ के बाद स्त्री-शिक्षा का श्लाघनीय विकास हुआ है। यह बात आगे (पृ० ४७७) की तालिकाओ से स्पष्ट हो जाती है :—

---

1. Workers' Social Education Institute.
2. *21st year of Freedom*, p. 135.

(तालिका १)[1]

शिक्षा के स्वरूप	(१९४९–५०)	(१९६०–६१)
	छात्राओं की संख्या	छात्राओं की संख्या
१ विश्वविद्यालय-शिक्षा		
शोध	८५	७६८
एम० ए० व एम० एस-सी०	१,६५६	९,२१५
बी० ए० व बी० एस०-सी०	१०,७५९	६३,३७९
इन्टर (आर्ट्स व साइंस)	२३,५४०	७६,५१७
व्यावसायिक शिक्षा	४,०५५	२६,१२४
विशिष्ट शिक्षा	७७१	७,३५५
२ स्कूल-शिक्षा		
हाई व हायर सेकण्डरी	७,०८,००७	२६,२७,५७३
मिडिल	—	—
प्राथमिक	५०,३४,७४०	१,०९,४४,०५१
पूर्व-प्राथमिक	१२,३०६	८२,१२२
३ व्यावसायिक शिक्षा	३५,७६०	८५,५४०
४ विशिष्ट शिक्षा	१,७९,६४१	३,३६,८४०
योग	६०,११,३२०	१,४२,५९,४८४

(तालिका २)[2]

बालिकाओं की व्यावसायिक शिक्षा (१९६२–६३)

विषय	कॉलेजों में	स्कूलों में
कृषि	१७९	२२३
कॉमर्स	१,१६८	१७,३५४
इंजीनियरिंग	५२७	१,५०२
कानून	८९९	—
औषधि-शास्त्र	११,३१४	९,००६
शारीरिक शिक्षा	१३२	६२९
अध्यापिका-प्रशिक्षण		
(i) बेसिक	८,३३५	३५,७९१
(ii) गैर-बेसिक	११,५७०	५,८९४
टेक्नॉलॉजी	३०	—
टेकनिकल	—	३०,०९८
पशु-औषधि शास्त्र	३८	—
अन्य विषय	२५७	४८
योग	३४,४४९	१,००,५४५

1 *Programme of Educational Development* (1961-66), pp 17-17 A & *Education in India*, Vol I. pp 269-272

2 *Education in the States* (1962 63), pp. 4-5

१९६८-६९ मे शिक्षा के सब स्तरो पर बालिकाओ की सख्या २,६२,२०,००० थी।[1]

स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति[2]—केन्द्रीय सरकार ने श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता मे मई, १९५८ मे 'स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति' की नियुक्ति की। समिति का उद्देश्य—स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ पर अपने सुझाव देना था। समिति ने जनवरी, १९५९ मे अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। रिपोर्ट मे दिये गये मुख्य-मुख्य सुझाव निम्नलिखित है —

१. स्त्री-शिक्षा को देश की समस्याओ मे प्रमुख स्थान प्रदान किया जाना चाहिये।
२. पुरुषो एवं स्त्रियो की शिक्षा मे जो विषमता है, उसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिये। दोनो की शिक्षा मे समानता स्थापित करना सरकार का कर्त्तव्य है।
३. केन्द्रीय सरकार को स्त्री-शिक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लेना चाहिए और स्त्री-शिक्षा के विकास एवं विस्तार के लिये एक योजना बनाकर एक निश्चित समय मे पूर्ण कर देनी चाहिये।
४. केन्द्रीय सरकार सभी राज्यो के लिये स्त्री-शिक्षा के विस्तार की नीति निर्धारित करे, और उसका अनुसरण किये जाने के लिये राज्य-सरकारो को आर्थिक सहायता दे।
५. केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय मे स्त्री-शिक्षा का एक पृथक् विभाग स्थापित किया जाना चाहिये।
६. राज्यो मे स्त्री-शिक्षा के प्रसार के निमित्त 'बालिका एव स्त्री-शिक्षा की राज्य-समितियाँ'[3] स्थापित की जायँ।
७. ग्रामीण-क्षेत्रो मे स्त्री-शिक्षा के प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। इस व्यय का पूर्ण भार सरकार वहन करे।
८. द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे जितना धन स्त्री-शिक्षा के लिये निर्धारित किया गया है, उसके अतिरिक्त १० करोड रुपये और व्यय किये जायँ।

स्त्री-शिक्षा की नवीन योजनायें—१९५९-६० मे बालिकाओ की शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमो तथा वयस्क स्त्रियो की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओ पर सरकार को परामर्श देने के लिये महिला-शिक्षा की एक 'राष्ट्रीय परिषद्' स्थापित की गई। शिक्षा-मन्त्रालय ने महिलाओ की शिक्षा के लिये एक विशेष व्यवस्था की है, जो कि तृतीय पंचवर्षीय योजना मे सम्मिलित की गई है। राज्य-सरकारो को परामर्श दिया गया है कि प्रत्येक राज्य के शिक्षा-विभाग मे एक उप-निर्देशक अथवा सयुक्त-निर्देशक

1. *Times of India Directory*, 1969, p. 969.
2. The National Committee on Women's Education.
3. State Councils of Education for Girls & Women.

नियुक्त किया जाना चाहिये, जिसका कार्य—बालिकाओ तथा महिलाओ की शिक्षा से सम्बन्धित विशेष कार्यक्रम बना और कार्यान्वित करना होगा। तीसरी योजना मे स्त्री-शिक्षा पर १७५ करोड रुपये व्यय किये गये।[1]

बालिकाओ और वयस्क महिलाओ की शिक्षा के एक विशेष कार्यक्रम के लिये 'राष्ट्रीय परिषद्' की सिफारिशो को अमल मे लाने के लिये शिक्षा-मंत्रालय द्वारा विशेष व्यवस्था की गई है। यह विशेष व्यवस्था तृतीय पंचवर्षीय योजना का अंश थी। छात्राओ के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि उनमे हॉकी, वाली-बाल, फुटबाल, क्रिकेट आदि आधुनिक खेलो के प्रति रुचि उत्पन्न हो। शिक्षा प्राप्त करने वाले बालको और बालिकाओ की संस्थाओ मे अब भी अत्यधिक अन्तर है। इस अन्तर को दूर करने के लिये चौथी योजना मे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अधिक से अधिक बालिकाओ और महिलाओ को अध्ययन की विशेष सुविधायें प्रदान की जायेंगी।[2]

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा (१९४७–७१)

इन वर्गो को शिक्षा की अधिक से अधिक सुविधाएँ देने के लिये उपाय किये जा चुके है और व्यावसायिक तथा प्राविधिक प्रशिक्षण पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

भारत सरकार ने १९४४-४५ मे अनुसूचित जातियो के विद्यार्थियो को छात्र-वृत्तियाँ देने की एक योजना आरम्भ की। १९४८-४९ से अनुसूचित आदिम जातियो के विद्यार्थियो को तथा १९४९-५० से पिछडे वर्गो के विद्यार्थियो को भी यह लाभ दिया जाने लगा है। १९६७-६८ मे अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम जातियो तथा अन्य पिछडे वर्ग के छात्रो को २१,७२१ छात्रवृत्तियाँ देने मे सरकार ने १·१ करोड रुपये व्यय किये।[3] १९५९-६० मे यह व्यय इस प्रकार था :—

जाति व वर्ग	प्रदत्त छात्रवृत्तियाँ	व्यय किया गया धन
अनुसूचित जातियाँ	३८,६९७	१,४३,४०,१००
अनुसूचित आदिम जातियाँ	६,११२	२२,८८,६९१
अन्य पिछडे वर्ग	१७,१९३	९०,९८,५११
योग	६२,००२	२,५७,२७,३०२

1. *The Times of India Directory & Year-Book*, p. 146.
2. *Hindustan Times*, 21 April, 1969.
3. *India*, 1969, p. 127.

भारत सरकार ने १९५३-५४ से इन वर्गों के योग्य विद्यार्थियों को विदेशों में अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्तियाँ देने की योजना आरम्भ कर दी है। तीनों समूहों में से प्रत्येक के लिये १२ छात्रवृत्तियाँ है। स्वदेश में भी मैट्रिक से आगे शिक्षा प्राप्त करने के लिये छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। पहली योजना में इस प्रकार की ३७,०७७; दूसरी योजना में १,६१,४७२; और तीसरी योजना में ३,१५,३५८ छात्रवृत्तियाँ दी गईं। तीसरी योजना में इन छात्रवृत्तियों पर १४·२१ करोड़ रुपये व्यय हुए। १९६७-६८ में इन छात्रवृत्तियों पर ५·१४ करोड़ रुपये व्यय किये गये।[1]

केन्द्रीय सरकार ने सभी प्राविधिक तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओं में इन वर्गों के छात्रों के प्रवेश के लिये स्थान सुरक्षित रखने, आवश्यक उत्तीर्ण अंकों की मात्रा में कमी करने तथा अधिकतम आयु-सीमा में वृद्धि करने के सुझाव दिये, जिनको देश की विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं ने कार्यरूप दिया है।

विकलाङ्गों की शिक्षा (१९४७–७१)[2]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय तक भारत में विकलाङ्गों की शिक्षा की बहुत कम व्यवस्था थी। अन्धों की शिक्षा के लिये कलकत्ता में २, बिहार में २, बम्बई में ४, मध्य प्रान्त में १, मद्रास में ६, पंजाब में २, उत्तर प्रदेश में ६, अजमेर में १, और तुगलकाबाद (दिल्ली) में १ स्कूल था। इनके अतिरिक्त गूँगों और बहिरों के लिये ३३, मानसिक दुर्बलता वालों के लिये २, और कोढ़ियों के लिये २ स्कूल थे। १३ सुधार-गृह (Reformatories) भी थे। इन स्कूलों में विकलांगों को साधारणतया बुनने, कातने, बेंत के काम, रस्सी बनाने आदि की शिक्षा दी जाती थी। अन्धों को 'ब्रेल-लिपि' (Braille-Code) द्वारा, जिसका आविर्भाव १८४१ में हो चुका था, लिखने-पढ़ने की भी शिक्षा दी जाती थी। पटना के अन्धों के स्कूल में टाइप-राइटिंग की शिक्षा की व्यवस्था थी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त राज्यों के शिक्षा-मंत्रालयों एवं शिक्षा-विभागों ने विकलांगों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। मई, १९५२ में 'भारतीय बाल-कल्याण परिषद्'[3] की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य—बाल-कल्याण के क्षेत्र में अनुसंधान करना है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्था 'केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड'[4] है। यह किशोर अपराधियों, विकलांगों एवं बाल-कल्याण के कार्यों की देखभाल करता है। चौथी पंचवर्षीय योजना में इस बोर्ड द्वारा बाल-कल्याण कार्यों के लिये ६ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे।[5]

---

1. *India*, 1969, p. 127.
2. Education of the Handicapped.
3. Indian Council of Child-Welfare.
4. Central Social Welfare Board.
5. *India*, 1969, p. 112.

'राष्ट्रीय परामर्श-परिषद्' सरकार को विकलांगो की शिक्षा, प्रशिक्षण एव नियोजन सम्बन्धी समस्याओ पर परामर्श देती है। उन्नतर शिक्षा अथवा प्राविधिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये अन्धे, बहिरे एवं विकलाग छात्रो को छात्रवृत्तियाँ दी जाती है।

इस समय भारत मे विकलागो के लिए अग्रलिखित प्रमुख सस्थायें है[1] — (१) अन्ध-राष्ट्रीय केन्द्र, देहरादून, (२) राष्ट्रीय पुस्तकालय, दिल्ली, (३) वयस्क बहिर-प्रशिक्षण केन्द्र, हैदराबाद, (४) विकलाग कामदिलाऊ दफ्तर—बम्बई, दिल्ली, हैदराबाद, मद्रास, जलधर, कानपुर, अहमदाबाद, बगलौर और कलकत्ता, (५) अधे बच्चो का आदर्श विद्यालय, देहरादून (१९५९), (६) अधो का शिक्षक-प्रशिक्षण केन्द्र, बम्बई (१९६३), (७) केन्द्रीय ब्रेल मुद्रणालय, देहरादून (१८५१), जो १० भारतीय भाषाओ मे अन्धो के लिये साहित्य प्रकाशित करता है।

१९६८-६९ म विकलागो के लिए २०२ स्कूल थे, जबकि १९५८-५९ मे इनकी सख्या १२४ थी। इन स्कूलो मे १३२ अन्धो के लिए, और ७५ गूँगो के लिये थे।[2]

शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये दो नवीन योजनायें प्रारम्भ की गई है। इनमे से एक योजना के अन्तर्गत नेत्रहीनो और गूँगे-बहिरो के स्कूलो मे काम करने वाले तीन शिक्षको को भ्रमण करने के लिये छात्रवृत्तियाँ दी गई हैं। इस योजना का उद्देश्य—देश की अन्य संस्थाओ के कार्यो को देखने के लिए शिक्षको को भेजना और इस प्रकार उनके अनुभव मे वृद्धि करना है।

दूसरी योजना के अन्तर्गत विकलागो के विद्यालयो मे दस्तकारी सिखाने वाले पाँच शिक्षको को बंगलौर और कलकत्ता मे 'अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड' की प्रशिक्षण सस्थाओ मे प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण सस्था और भारत सरकार इन प्रशिक्षणार्थियो को मासिक भत्ता देती है और इन प्रशिक्षणार्थियो के स्थान पर उनकी सस्थाओ मे रखे जाने वाले शिक्षको के लिए सरकार सस्थाओ को सहायता देती है।

भारत सरकार ने नेत्रहीनो को पढ़ाने वाले शिक्षकों के प्रशिक्षण की एक योजना तैयार की है। एक सामान्य पाठ्यकम तैयार किया गया है और यह पाठ्यक्रम 'यूनीसैफ (UNICEF) के सहयोग से, जिसने कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थियो को वृत्ति देना स्वीकार कर लिया है तथा 'अमरीकन फाउण्डेशन फार ओवरसीज ब्लाइंड' (American Foundation for Overseas Blind) जिसने कुछ आवश्यक पुस्तकें और साज-सामान देना स्वीकार कर लिया है, के सहयोग से चलाई जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत पहला पाठ्यक्रम बम्बई म जुलाई, १९६३ मे प्रारम्भ किया गया।

प्राविधिक शिक्षा[3] (१९४७–७१)

१९४७ मे जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तब देश मे प्राविधिक शिक्षा दने के लिये

1. *Hindustan Year-Book*, 1970, p 186
2. *India*, 1969, pp. 113 & 114.
3. Technical Education

३८ संस्थायें थी । इन संस्थाओ मे २,९४० छात्र प्रतिवर्ष डिग्री कोर्स के लिये प्रवेश पाते थे । इन संस्थाओ के अतिरिक्त ४३ पॉलीटेकनीक भी थे, जिनमे प्रतिवर्ष ३,६७० छात्र विभिन्न डिप्लोमा कोर्सों के लिये प्रवेश पा सकते थे ।[1]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त देश के कर्णधारो ने यह अनुभव किया कि भारत की भौतिक प्रगति तभी सम्भव है जब उद्योगो, यातायात के साधनो, कृषि आदि के विकास के लिये प्राविधिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति हो । अत प्रथम पंचवर्षीय योजना मे प्राविधिक शिक्षा के अधिकतम विकास पर बल दिया गया । यह निश्चित किया गया कि इजीनियरिग के १४ कॉलिज स्थापित किये जायें । इनके अतिरिक्त औद्योगिक, प्राविधिक तथा व्यावसायिक स्कूलो की स्थापना, क्राफ्ट स्कूलो का जूनियर टेकनिकल हाई स्कूलों मे परिवर्तन, सामान्य माध्यमिक विद्यालयो का टेकनिकल हाई-स्कूलो के रूप मे विकास, और औद्योगिक एव प्राविधिक स्कूलो का कॉलिजो मे रूपान्तर करने की योजनाओ का निर्माण किया गया ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे किये गये उपायो के अतिरिक्त, द्वितीय योजना मे प्राविधिक कर्मचारियों की बढती हुई माँग के कारण औद्योगिक एवं प्राविधिक शिक्षा के विस्तार को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया । इसी उद्देश्य से द्वितीय योजना मे व्यावसायिक व प्राविधिक शिक्षा के लिए ४८ करोड रुपये की व्यवस्था की गई, जबकि प्रथम योजना मे यह धनराशि २३ करोड थी । तृतीय योजना मे प्राविधिक शिक्षा के विकास के कार्यक्रम को पूर्ण करने के लिए १४२ करोड रुपए रखे गये ।[2] चौथी योजना मे इस धनराशि को बढाकर २५३ करोड रुपये कर दिया गया है ।[3]

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति

(तालिका १)

व्यावसायिक व टेकनिकल स्कूल शिक्षा[4]

वर्ष	स्कूल-संख्या	छात्र-संख्या	शिक्षक-संख्या	व्यय (करोड रुपयो मे)
१९५०-५१	२,३३९	१,८७,९६४	११,५९८	३'९६
१९५५-५६	३,०७४	२,६२,४६५	१६,५९७	५'४५
१९६०-६१	४,१४५	४,०१,२७४	२७,१५२	११'४१
१९६१-६२	३,७५१	४,०८,४४२	२८,८५७	१२'८०
१९६२-६३	३,८४६	४,२४,२६४	२९,८४९	१३'०४
१९६३-६४	४,१३७	४,५७,३५०	३३,४९४	१६'२४
१९६४-६५	३,१४७	२,९७,१४६	१७,३८०	७'२९
१९६५-६६	३,२६०	२,९०,०००	१८,५००	८'२२

1. *Administration of Education in India*, Edited by S. N. Mukerji, p 234.

2. *Third Five-Year Plan*, p. 107.

3. चौथी पचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २३१ ।

4. *India*, 1969, p. 65.

(तालिका २)
उच्च टेकनिकल शिक्षा[2]

वर्ष	संस्थायें		प्रवेश पा सकने वाले छात्र		उत्तीर्ण होने वाले	
	इजीनियरिंग व टेकनिकल डिग्री	इजीनियरिंग व टेकनिकल डिप्लोमा	इजीनियरिंग व टेकनिकल डिग्री	इजीनियरिंग व टेकनिकल डिप्लोमा	इजीनियरिंग व टेकनिकल डिग्री	इजीनिय व टेकनि डिप्लोम
१९५१	५३	८९	४,७८८	६,२१६	२,६९३	२,६२
१९५६	७१	१०९	६,६१२	१०,३१८	४,३३७	४,१०
१९६१	१११	२०९	१५,४९७	२६,५२५	७,०२६	१०,३४
१९६२	११४	२३१	१७,६६९	२९,९२४	८,४२६	१२,०४
१९६३	११८	२४८	२०,७४४	३७,८२२	९,१२०	१२,९३
१९६४	१२६	२६१	२१,७००	४१ ३००	१०,३२०	१७,२८
१९६५	१३३	२७४	२४,६९५	४८,०४८	१०,२८२	१७,६९
१९६६	१३७	२८४	२५,००६	४८,५७९	१३,०५१	२२,२६०
१९६७	१३८	२८४	२३,८७९	४८,१९५	१३,७७२	२१,१९१
१९६८	१३८	२८४	२१,८५२	४२,०३१	१४,५९३	२३,२२४

तीसरी योजना मे २३ इंजीनियरिंग कॉलेज और ९४ पॉलीटेकनीक स्थापि करने की योजना थी, जिनमे से २१ कॉलेज और ७७ पॉलीटेकनीक स्थापित किये ज चुके हैं। चण्डीगढ़ मे भवन निर्माण कला का कॉलेज स्थापित किया गया है। राज्य योजनाओ के अन्तर्गत स्त्रियो के लिये २४ पॉलीटेकनीक स्थापित किय जायेंगे। इन से अब तक १८ पॉलीटेकनीक स्थापित किये जा चुके है। उद्योग और अन्य तक्नीक सस्थाओ मे कार्य करने वाले व्यक्तियो के लिये ११ केन्द्र स्थापित किये जा चुके है जहाँ अशकालिक डिप्लोमा पाठ्य-क्रमो की व्यवस्था की गई है।[2]

खडगपुर के 'इण्डियन इस्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलॉजी' ने १९५१ मे कार्य करन प्रारम्भ किया। बम्बई के 'इण्डियन इस्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलॉजी' ने १९४८ से, मद्रास के 'इण्डियन इस्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलॉजी' ने १९५९ से, और कानपुर के 'इस्टीट्यूट' ने १९६० से अध्यापन-कार्य करना प्रारम्भ किया। दिल्ली मे स्थापित किये जाने वाले 'कॉलेज ऑफ इजीनियरिंग और टेक्नॉलॉजी' को १९६३ से 'इण्डियन इस्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलॉजी' की स्थिति प्रदान की गई है। १८६६–६७ मे इन सब सस्थाओ मे छात्रो की सख्या ७,९८४ थी। खडगपुर, बम्बई और मद्रास की सस्थाओ ने ३ वर्ष का विशिष्ट बी० एस-सी० पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। राँची म 'इस्टीट्यूट ऑफ फोर्ज एण्ड फाउण्ड्री टेकनॉलॉजी' की स्थापना की गई है।[3]

1 *India*, 1969, p. 69.
2. *India*, p. 69.
3. *Ibid*, p. 72.

चिकित्सा-शिक्षा (१९४७-७१)

शिक्षा व प्रशिक्षण—इस समय देश मे ९३ मेडिकल कॉलेज, १५ दन्त-चिकित्सा कॉलेज और आधुनिक चिकित्सा-शिक्षा के लिये अन्य प्रकार की ११ संस्थायें हैं। नये मेडिकल कॉलेजो की स्थापना और पुरानो के विस्तार के कारण अधिक छात्र चिकित्सा-शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। १९५५ मे इन छात्रो की संख्या ३,६६० थी। १९६९ मे यह संख्या बढकर ११,५०० हो गई।[1]

सेन्ट्रल हेल्थ एजूकेशन ब्यूरो—इस ब्यूरो की स्थापना नवम्बर, १९५६ मे हुई थी। यह देश मे विभिन्न राष्ट्रीय और राज्य-स्वास्थ्य कार्यक्रमो के द्वारा स्वास्थ्य-शिक्षा मे समन्वय और उसकी उन्नति करता है। यह दो मासिक पत्रिकायें 'स्वस्थ हिन्द' (अंग्रेजी मे) और 'आरोग्य सन्देश' (हिन्दी मे) तथा दो त्रैमासिक पत्रिकायें 'Cheb News' (अंग्रेजी मे) और 'स्वास्थ्य शिक्षा' (हिन्दी मे) प्रकाशित करता है। ब्यूरो सेवा-रत व्यक्तियो के लिये अल्पकालीन और दीर्घकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करता है।[2]

ऑल-इण्डिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज्—इस संस्था की स्थापना संसद के एक अधिनियम के अनुसार १९५६ मे की गई थी। यह औषधि-विज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे शोध-कार्य करता है, स्नातक की उपाधि के लिये छात्रो को शिक्षा देता है और कुछ विषयो मे स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो की व्यवस्था करता है। इस संस्था मे सम्पूर्ण भारत के छात्रो को लिखित प्रतियोगिता के आधार पर चुना जाता है। इस समय इस संस्था मे २५९ स्नातक पूर्व और २९७ स्नातकोत्तर छात्र हैं। इसमे ५७५ रोगी-शय्याओ वाला चिकित्सालय है।[3]

विशिष्ट प्रशिक्षण—उपचारिकाओ के प्रशिक्षण की सुविधायें देश के लगभग सभी बडे चिकित्सालयो और बम्बई, हैदराबाद, जयपुर, नई दिल्ली, पूना, इंदौर और बैंलोर के उपचारण कॉलेजो मे हैं। मद्रास की 'आन्ध्र महिला सभा' जैसे कई गैर-सरकारी संघटनो ने भी केन्द्र से अनुदान प्राप्त करके उपचारिकाओ के अल्पकालीन पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की है। देश मे नर्सो, दाइयो और स्वास्थ्य-निरीक्षको के लिये ५९९ नर्सिग स्कूल और कॉलेज हैं।[4]

कृषि-शिक्षा (१९४७-७१)

स्वतन्त्र भारत मे कृषि-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इस समय देश मे ७० कृषि-कॉलेज और ८ कृषि-विश्वविद्यालय हैं।[5] ये विश्वविद्यालय अमरीका

1. *India*, 1969, p. 101.
2. *Ibid.*
3. *Ibid.*
4. *India*, 1968, p. 102.
5. *The Times of India Directory & Year-Book*, 1969, p. 271.

के 'लैंड ग्रांट इंस्टीट्यूट्स' के प्रकार के हैं, जिनमे कृषि-शिक्षा, अनुसधान और विस्तार के कार्य-क्रमो को समन्वित रूप प्रदान किया गया है।[1] ये विश्वविद्यालय बंगाल मे कल्याणी, उडीसा मे भुवनेश्वर, पजाब मे चंडीगढ, राजस्थान मे उदयपुर, उत्तर-प्रदेश मे पन्तनगर, आध्र मे राजेन्द्रनगर, मध्य-प्रदेश मे जबलपुर और मैसूर मे हेब्बल नामक स्थानो मे है। चौथी पंचवर्षीय योजना मे ४ नये कृषि-विश्वविद्यालय स्थापित किये जाने का विचार है, जिनमे से एक महाराष्ट्र मे होगा और दूसरा मद्रास राज्य मे।

१९२९ मे स्थापित की जाने वाली 'इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिचर्स' नामक सस्था देश म कृषि की शिक्षा और अनुसंधान को नियोजित और समन्वित करती है। इस संस्था के पास अपना स्वयं का कोई अनुसंधान केन्द्र नही है। अत यह केन्द्र और राज्यो की अनुसधान सस्थाओ, विश्वविद्यालयो और मान्यता-प्राप्त कृषि-कॉलेजो मे किये जाने वाले अनुसधान कार्य मे योग देती है।[2]

प्रतिभाशाली छात्रो को कृषि, कृषि-इजीनियरिंग, गृह-विज्ञान, दुग्ध व्यवसाय और पशु-चिकित्सा के विषयो मे पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रमो के अध्ययन की ओर आकर्षित करने के लिये छात्रवृत्तियो की एक योजना १९६३-६४ से चालू की गई है। इस योजना के अनुसार ७५ रुपये मासिक की २५० छात्रवृत्तियाँ योग्यता और निर्धनता के आधार पर दी जाती हैं। 'इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च' द्वारा कृषि और दुग्ध-व्यवसाय के विषयो का अध्ययन करने वाले स्नातकोत्तर छात्रो को २०० रुपये से २५० रुपये प्रतिमास की अभिसदस्यता भी दी जाती है।[3]

शिक्षा की नवीनतम गतिविधियाँ

स्वतन्त्र भारत मे शिक्षा के अन्य क्षेत्रो की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है और शिक्षा-मन्त्रालय ने ठोस कदम उठाये हैं। हम इन नवीनतम गतिविधियो का संक्षिप्त परिचय अग्राकित शीर्षको के अन्तर्गत दे रहे है —

शारीरिक शिक्षा और खेल-कूद

शारीरिक शिक्षा—शारीरिक शिक्षा की एक एकीकृत योजना क्रियान्वित की गई है। इसमे शारीरिक शिक्षा, राष्ट्रीय अनुशासन योजना और ए० सी० सी० की वर्तमान याजनाओं की सर्वोत्तम बातो को सम्मिलित किया गया है। 'कुंजरू समिति' की सिफारिशो के अनुसार इस एकीकृत योजना को अधिकाश राज्यो और सघीय क्षेत्रो ने स्वीकार कर लिया है।

'नेशनल फिटनेस कोर' की योजना के अन्तर्गत देश के समस्त हाई और हायर-सेकण्डरी स्कूलो को लाना है। १९६७-६८ के प्रारम्भ मे इस योजना के अन्तर्गत १३,५०० से अधिक विद्यालय थे।[4]

---

1. *The Eighteenth Year of Freedom*, p. 166
2. *Hindustan Year-Book*, 1970, p 211.
3. *The Eighteenth Year of Freedom*, p 166,
4. *India*, 1968, p. 75.

१९५७ मे ग्वालियर मे 'लक्ष्मीबाई कॉलेज ऑफ फिजिकल एजूकेशन' की स्थापना की गई थी। इस कालेज मे त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम, स्नातकोत्तर अध्ययन और अनुसंधान की व्यवस्था है। इस कॉलेज की गतिविधियो मे निरन्तर विस्तार हो रहा है।

जनता मे शारीरिक स्वास्थ्य की चेतना को उदय करने के लिये १९६० मे 'नेशनल फिजिकल ऐफिशेन्सी ड्राइव' की योजना क्रियान्वित की गई थी। १९६८-६९ मे इस योजना को नवम्बर, १९६८ से जनवरी १९६९ तक सम्पूर्ण देश मे लागू किया गया।[1]

खेल-कूद—खेल-कूद-विषयक गतिविधियो को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिये निम्नलिखित कार्य किये जा रहे है —

१. राष्ट्रीय खेलकूद-संघटनो को सहायता दी जाती है, टीमो को विदेशो मे खेलने के लिये भेजा जाता है, विदेशी टीमो को भारत मे आकर खेलने के लिये आमन्त्रित किया जाता है तथा राष्ट्रीय प्रतियोगिताओ का भी आयोजन किया जाता है।
२. 'राजकुमारी खेलकूद-प्रशिक्षण योजना' के अन्तर्गत प्रशिक्षण केन्द्र खोले जा रहे है।
३. अधिकाश राज्यो मे 'राज्यीय खेलकूद परिषद्' स्थापित कर दी गई हैं और शेष मे स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

'अखिल-भारत खेलकूद परिषद्' नामक केन्द्रीय शिक्षण-संस्था स्थापित की जा चुकी है। यह परिषद् देश मे खेल-कूद के विकास के सम्बन्ध मे भारत-सरकार तथा खेलकूद-संघ को परामर्श देती रहती है।

१९६१ मे पटियाला मे स्थापित किया जाने वाला 'नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ स्पोर्ट्स' अब तक १,००३ खेल-शिक्षको को प्रशिक्षित कर चुका है। इसमे विभिन्न खेलो के पाठ्य-क्रम विदेशी कुशल व्यक्तियो की अध्यक्षता मे आयोजित किये जाते है। इसका उद्देश्य—शैक्षिक संस्थाओ और ग्रामीण क्षेत्रो मे खेलकूद को लोकप्रिय बनाना है। 'नेशनल कोचिंग स्कीम' के अनुसार यह संस्था विभिन्न राज्यो मे ३५ प्रादेशिक केन्द्र स्थापित कर चुकी है।[2]

ग्वालियर के शारीरिक शिक्षा के कॉलेज और पटियाला के नेशनल इंस्टीट्यूट के कार्यों मे समन्वय स्थापित करने के लिये भारत-सरकार ने जनरल के० एम० केरिअप्पा की अध्यक्षता मे एक समिति की नियुक्ति की है।[3]

युवक-कल्याण[4]

युवक-कल्याण के क्षेत्र मे होने वाले अभिनन्दनीय कार्य अग्रलिखित है :—

---

1 *India*, 1969, p 76
2 *India*, 1968, p 75.
3. *India*, 1969, p 76
4 Youth Welfare

(१) वार्षिक अन्तर्विश्वविद्यालय युवक समारोहो का संगठन, (२) अन्तर्कालेज समारोहो के संगठन के लिये विश्वविद्यालयो की आर्थिक सहायता, (३) युवक-कल्याण कार्यों के सफल कार्यान्वयन और समन्वय के लिये युवक-कल्याण बोर्डों और समितियो की उन्नति करने के लिये विश्वविद्यालयो की आर्थिक सहायता, (४) छात्रो मे शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान उत्पन्न करने के लिये और उनको ग्रामीणो के सम्पर्क मे लाने के लिये श्रम और समाज-सेवा शिविरो का संगठन, (५) विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षा-संस्थाओ को छात्रो के लिये व्यायामशालाओ, तैरने के तालावो, रंगमंचों, मनोरंजन के लिये हॉलो, खुले थियेटरो आदि की व्यवस्था करने के लिए आर्थिक सहायता, और (६) स्कूलो मे स्काउटिंग की उन्नति।

भारतीय भाषाओं का विकास

भारतीय भाषाओ के विकास का प्रश्न अत्यन्त आवश्यक बन गया है। यह आवश्यक है कि वे शीघ्र ही सम्पन्न हो जायें, कार्य करने की कुशलता प्राप्त करें और आधुनिक ज्ञान के आदान-प्रदान मे प्रभावशाली माध्यम बनें। इस बात का प्रयत्न किया जाय कि सभी भारतीय भाषाओ मे परस्पर आदान-प्रदान हो। इन उद्देश्यो को सामने रखते हुए यह प्रस्ताव है कि प्रत्येक मुख्य भाषा के लिए एक संस्थान स्थापित किया जाय, साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन दिया जाय और विश्वकोश तथा कोश एवं अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किये जाएँ। विश्वविद्यालयो को भी प्रोत्साहन दिया जाय जिससे कि वे आधुनिक भारतीय भाषाओ के अपने विभागो को अधिक विकसित करें।

उपरोक्त पुस्तको के प्रकाशन के लिये भारत-सरकार द्वारा व्यय का आधा धन दिया जाता है। फलस्वरूप, अनेक पुस्तको का प्रकाशन हुआ, जिनमे से महत्त्वपूर्ण हैं :— स्वामी विवेकानन्द, तैलुगु विश्वकोश, बंगला भाषा मे 'रामचरितमानस' और जवाहरलाल नेहरू की पुस्तको का जामिया-मिलिया इस्लामिया द्वारा उर्दू मे अनुवाद।[1]

हिन्दी का विकास

संविधान के अनुच्छेद ३५१ मे हिन्दी को भारत-संघ की सरकारी भाषा घोषित किया गया है। इसके अनुसार हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की गई हैं। इनमे से प्रमुख योजनायें हैं—हिन्दी अध्यापकों के प्रशिक्षण-कॉलेजो की स्थापना, अहिन्दी-भाषी राज्यों मे विद्यालयों के लिए योग्य हिन्दी-अध्यापको की व्यवस्था, हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए ऐच्छिक सङ्गठनो और व्यक्तियों को अनुदान, हिन्दी मे पुस्तकें और अन्य पाठ्य-सामग्री तैयार कराना, आदि।

अहिन्दी-भाषी राज्यो मे हिन्दी के प्रचार के लिए १९६३-६४ मे ४७१,००० रुपये और १९६४-६५ मे १४१,००० रुपये अनुदान के रूप मे दिये गये। इस प्रकार

1. *21st Year of Freedom*, p. 139.

के राज्यो मे तीसरी योजना मे हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा देने वाले स्कूलो और कॉलेजो की स्थापना की गई। इन स्कूलो, कॉलेजो और सार्वजनिक पुस्तकालयो को हिन्दी की पुस्तकें मुफ्त दी गई। अन्य भाषाओ की उत्तम पुस्तको को हिन्दी मे अनुवाद कार्य दिल्ली, भोपाल, बनारस, राँची और जयपुर के सरकारी दफ्तरो मे किया जा रहा है। इस कार्य के लिए विदेशी भाषाओ की अनेक पुस्तको को चुना गया है। इनमे से १९६९ के अन्त तक ७८० पुस्तको का अनुवाद दिल्ली के 'सेन्ट्रल हिन्दी डाइरेक्ट्रेट' द्वारा किया जा चुका है।[1]

छात्रवृत्तियाँ

समान अवसर प्रदान करने और प्रतिभा को प्रोत्साहन देने के लिये छात्रवृत्ति एक महत्त्वपूर्ण साधन है। अत भारत सरकार ने छात्रवृत्तियो की विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की है, जिनको निम्नलिखित पाँच भागो मे विभाजित किया जा सकता है[2]—

१ भारतवासियो को अपने देश मे अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ।
२ भारतवासियो को विदेशो मे अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ।
३ अन्य देशो से विद्वानो के विनिमय के कार्यक्रम।
४ विदेशियो को भारत मे अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्तियाँ।
५ अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम जातियो और अन्य पिछडे वर्गों के छात्रो के लिये छात्रवृत्तियाँ।

उपरोक्त छात्रवृत्तियो पर व्यय प्रति वर्ष बढ रहा है। यह व्यय १९५०-५१ म २ ७५ करोड रुपये से बढकर १९६०-६१ मे २० करोड रुपये हो गया और १९६५-६६ मे लगभग ३५ करोड हो गया। चौथी योजना मे माध्यमिक, विश्वविद्यालय और तकनीकी शिक्षा पर छात्रवृत्तियो की व्यय-व्यवस्था बढकर ५४ करोड रुपये हो जायगी और कृषि शिक्षा तथा चिकित्सा शिक्षा की छात्रवृत्तियो पर १५ करोड रुपये अलग से व्यय होगे। इसके परिणामस्वरूप, छात्रो को दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ एव अन्य रियायतो पर वार्षिक व्यय १९७०-७१ तक बढकर लगभग ५७ करोड रुपये हो जायगा।[3]

शिक्षको की दशा मे सुधार

पिछले कुछ वर्षों से शिक्षको के वेतनो और सेवा-दशाओ म सुधार करने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होने के कारण अनेक राज्य सरकारो ने अपने शिक्षको की वेतन-दरो को बढा दिया है। राज्य सरकारें इस बात का भी प्रयत्न कर रही हैं कि सरकारी और गैर-सरकारी स्कूलो मे कार्य करने वाले शिक्षको के वेतनो की असमानता को दूर कर दिया जाय। कुछ

---

1 *21st Year of Freedom*, p. 138
2, *Hindustan Year-Book*, 1970, pp. 188-189.
३ चौथी पचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २३०।

(१) वार्षिक अन्तर्विश्वविद्यालय युवक समारोहो का संगठन, (२) अन्तर्कालेज समारोहो के संगठन के लिये विश्वविद्यालयो की आर्थिक सहायता, (३) युवक-कल्याण कार्यो के सफल कार्यान्वियन और समन्वय के लिये युवक-कल्याण बोर्डो और समितियो की उन्नति करने के लिये विश्वविद्यालयो की आर्थिक सहायता, (४) छात्रो मे शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान उत्पन्न करने के लिये और उनको ग्रामीणो के सम्पर्क मे लाने के लिये श्रम और समाज-सेवा शिविरो का संगठन, (५) विश्वविद्यालयो और अन्य शिक्षा-संस्थाओ को छात्रो के लिये व्यायामशालाओ, तैरने के तालाबो, रंगमंचों, मनोरंजन के लिये हॉलो, खुले थियेटरो आदि की व्यवस्था करने के लिए आर्थिक सहायता, और (६) स्कूलो मे स्काउटिंग की उन्नति ।

भारतीय भाषाओ का विकास

भारतीय भाषाओ के विकास का प्रश्न अत्यन्त आवश्यक बन गया है । यह आवश्यक है कि वे शीघ्र ही सम्पन्न हो जायें, कार्य करने की कुशलता प्राप्त करें और आधुनिक ज्ञान के आदान-प्रदान में प्रभावशाली माध्यम बनें। इस बात का प्रयत्न किया जाय कि सभी भारतीय भाषाओ मे परस्पर आदान-प्रदान हो । इन उद्देश्यो को सामने रखते हुए यह प्रस्ताव है कि प्रत्येक मुख्य भाषा के लिए एक संस्थान स्थापित किया जाय, साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन दिया जाय और विश्वकोश तथा कोश एव अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किये जाएँ । विश्वविद्यालयो को भी प्रोत्साहन दिया जाय जिससे कि वे आधुनिक भारतीय भाषाओ के अपने विभागो को अधिक विकसित करें ।

उपरोक्त पुस्तको के प्रकाशन के लिये भारत-सरकार द्वारा व्यय का आधा धन दिया जाता है। फलस्वरूप, अनेक पुस्तको का प्रकाशन हुआ, जिनमे से महत्त्वपूर्ण हैं — स्वामी विवेकानन्द, तेलुगु विश्वकोश, बंगला भाषा मे 'रामचरितमानस' और जवाहरलाल नेहरू की पुस्तको का जामिया-मिलिया इस्लामिया द्वारा उर्दू मे अनुवाद ।[1]

हिन्दी का विकास

संविधान के अनुच्छेद ३५१ मे हिन्दी को भारत-संघ की सरकारी भाषा घोषित किया गया है । इसके अनुसार हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की गई है। इनमे से प्रमुख योजनायें हैं—हिन्दी अध्यापको के प्रशिक्षण-कॉलेजो की स्थापना, अहिन्दी-भाषी राज्यो मे विद्यालयो के लिए योग्य हिन्दी-अध्यापको की व्यवस्था, हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए ऐच्छिक सङ्गठनो और व्यक्तियों को अनुदान, हिन्दी मे पुस्तकें और अन्य पाठ्य-सामग्री तैयार कराना, आदि ।

अहिन्दी-भाषी राज्यो मे हिन्दी के प्रचार के लिए १९६३-६४ मे ४७१,००० रुपये और १९६४-६५ मे १४१,००० रुपये अनुदान के रूप मे दिये गये । इस प्रकार

1. *21st Year of Freedom*, p. 139.

के राज्यो मे तीसरी योजना मे हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा देने वाले स्कूलो और कॉलेजो की स्थापना की गई। इन स्कूलो, कॉलेजो और सार्वजनिक पुस्तकालयो को हिन्दी की पुस्तकें मुफ्त दी गईं। अन्य भाषाओ की उत्तम पुस्तको को हिन्दी मे अनुवाद-कार्य दिल्ली, भोपाल, बनारस, रांची और जयपुर के सरकारी दफ्तरो मे किया जा रहा है। इस कार्य के लिए विदेशी भाषाओ की अनेक पुस्तको को चुना गया है। इनमे से १६६६ के अन्त तक ७८० पुस्तको का अनुवाद दिल्ली के 'सेन्ट्रल हिन्दी डाइरेक्ट्रेट' द्वारा किया जा चुका है।[1]

छात्रवृत्तियाँ

समान अवसर प्रदान करने और प्रतिभा को प्रोत्साहन देने के लिये छात्रवृत्ति एक महत्त्वपूर्ण साधन है। अत भारत सरकार ने छात्रवृत्तियो की विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की हैं, जिनको निम्नलिखित पाँच भागो मे विभाजित किया जा सकता है[2]—

१. भारतवासियो को अपने देश मे अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ।
२ भारतवासियो को विदेशो मे अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ।
३ अन्य देशो से विद्वानो के विनिमय के कार्यक्रम।
४ विदेशियो को भारत मे अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्तियाँ।
५. अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम जातियो और अन्य पिछड़े वर्गों के छात्रो के लिये छात्रवृत्तियाँ।

उपरोक्त छात्रवृत्तियो पर व्यय प्रति वर्ष बढ रहा है। यह व्यय १६५०-५१ मे २ ७५ करोड रुपये से बढकर १६६०-६१ मे २० करोड रुपये हो गया और १६६५-६६ मे लगभग ३५ करोड हो गया। चौथी योजना मे माध्यमिक, विश्वविद्यालय और तकनीकी शिक्षा पर छात्रवृत्तियो की व्यय-व्यवस्था बढकर ५४ करोड रुपये हो जायगी और कृषि-शिक्षा तथा चिकित्सा-शिक्षा की छात्रवृत्तियो पर १५ करोड रुपये अलग से व्यय होंगे। इसके परिणामस्वरूप, छात्रो को दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ एव अन्य रियायतो पर वार्षिक व्यय १६७०-७१ तक बढकर लगभग ५७ करोड रुपये हो जायगा।[3]

शिक्षको की दशा मे सुधार

पिछले कुछ वर्षों से शिक्षकों के वेतनो और सेवा-दशाओ मे सुधार करने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होने के कारण अनेक राज्य सरकारो ने अपने शिक्षको की वेतन-दर को बढा दिया है। राज्य सरकारें इस बात का भी प्रयत्न कर रही है कि सरकारी और गैर-सरकारी स्कूलो मे कार्य करने वाले शिक्षको के वेतनो की असमानता को दूर कर दिया जाय। कुछ

1. *21st Year of Freedom*, p. 138.
2. *Hindustan Year-Book*, 1970, pp. 188-189.
३. चौथी पचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २३०।

(१) वार्षिक अन्तर्विश्वविद्यालय युवक समारोहों का संगठन, (२) अन्तर्कालेज समारोहों के संगठन के लिये विश्वविद्यालयों की आर्थिक सहायता, (३) युवक-कल्याण कार्यों के सफल कार्यान्वयन और समन्वय के लिये युवक-कल्याण बोर्डों और समितियों की उन्नति करने के लिये विश्वविद्यालयों की आर्थिक सहायता, (४) छात्रों मे शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान उत्पन्न करने के लिये और उनको ग्रामीणों के सम्पर्क मे लाने के लिये श्रम और समाज-सेवा शिविरों का संगठन, (५) विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षा-संस्थाओं को छात्रों के लिये व्यायामशालाओं, तैरने के तालाबों, रंगमंचों, मनोरंजन के लिये हॉलों, खुले थियेटरों आदि की व्यवस्था करने के लिए आर्थिक सहायता, और (६) स्कूलों मे स्काउटिंग की उन्नति।

भारतीय भाषाओं का विकास

भारतीय भाषाओं के विकास का प्रश्न अत्यन्त आवश्यक बन गया है। यह आवश्यक है कि वे शीघ्र ही सम्पन्न हो जायें, कार्य करने की कुशलता प्राप्त करें और आधुनिक ज्ञान के आदान-प्रदान मे प्रभावशाली माध्यम बनें। इस बात का प्रयत्न किया जाय कि सभी भारतीय भाषाओं मे परस्पर आदान-प्रदान हो। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए यह प्रस्ताव है कि प्रत्येक मुख्य भाषा के लिए एक संस्थान स्थापित किया जाय, साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन दिया जाय और विश्वकोश तथा कोश एवं अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किये जाएँ। विश्वविद्यालयों को भी प्रोत्साहन दिया जाय जिससे कि वे आधुनिक भारतीय भाषाओं के अपने विभागों को अधिक विकसित करें।

उपरोक्त पुस्तकों के प्रकाशन के लिये भारत-सरकार द्वारा व्यय का आधा धन दिया जाता है। फलस्वरूप, अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ, जिनमे से महत्त्वपूर्ण हैं:— स्वामी विवेकानन्द, तैलुगु विश्वकोश, बंगला भाषा मे 'रामचरितमानस' और जवाहरलाल नेहरू की पुस्तकों का जामिया-मिलिया इस्लामिया द्वारा उर्दू मे अनुवाद।[2]

हिन्दी का विकास

संविधान के अनुच्छेद ३५१ में हिन्दी को भारत-संघ की सरकारी भाषा घोषित किया गया है। इसके अनुसार हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की गई हैं। इनमे से प्रमुख योजनायें हैं—हिन्दी अध्यापकों के प्रशिक्षण-कॉलेजों की स्थापना, अहिन्दी-भाषी राज्यों मे विद्यालयों के लिए योग्य हिन्दी-अध्यापकों की व्यवस्था, हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए ऐच्छिक सङ्गठनों और व्यक्तियों को अनुदान, हिन्दी मे पुस्तकें और अन्य पाठ्य-सामग्री तैयार कराना, आदि।

अहिन्दी-भाषी राज्यों मे हिन्दी के प्रचार के लिए १९६३-६४ मे ४७१,००० रुपये और १९६४-६५ मे १४१,००० रुपये अनुदान के रूप मे दिये गये। इस प्रकार

1. *21st Year of Freedom*, p. 139.

के राज्यो मे तीसरी योजना मे हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा देने वाले स्कूलो और कॉलेजो की स्थापना की गई। इन स्कूलो, कॉलेजो और सार्वजनिक पुस्तकालयो को हिन्दी की पुस्तकें मुफ्त दी गई। अन्य भाषाओ की उत्तम पुस्तको को हिन्दी मे अनुवाद-कार्य दिल्ली, भोपाल, बनारस, रॉची और जयपुर के सरकारी दफ्तरो मे किया जा रहा है। इस कार्य के लिए विदेशी भाषाओ की अनेक पुस्तको को चुना गया है। इनमे से १६६६ के अन्त तक ७८० पुस्तको का अनुवाद दिल्ली के 'सेन्ट्रल हिन्दी डाइरेक्ट्रेट' द्वारा किया जा चुका है।[1]

छात्रवृत्तियाँ

समान अवसर प्रदान करने और प्रतिभा को प्रोत्साहन देने के लिये छात्रवृत्ति एक महत्त्वपूर्ण साधन है। अत. भारत सरकार ने छात्रवृत्तियो की विभिन्न योजनायें प्रारम्भ की है, जिनको निम्नलिखित पाँच भागो मे विभाजित किया जा सकता है[2]—

१. भारतवासियो को अपने देश मे अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ।
२. भारतवासियो को विदेशो मे अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ।
३ अन्य देशो से विद्वानो के विनिमय के कार्यक्रम।
४ विदेशियो को भारत मे अध्ययन करने के लिये छात्रवृत्तियाँ।
५. अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम जातियो और अन्य पिछड़े वर्गो के छात्रो के लिये छात्रवृत्तियाँ।

उपरोक्त छात्रवृत्तियो पर व्यय प्रति वर्ष बढ रहा है। यह व्यय १६५०-५१ मे २·७५ करोड रुपये से बढकर १६६०-६१ मे २० करोड रुपये हो गया और १६६५-६६ मे लगभग ३५ करोड हो गया। चौथी योजना मे माध्यमिक, विश्वविद्यालय और तकनीकी शिक्षा पर छात्रवृत्तियो की व्यय-व्यवस्था बढकर ५४ करोड रुपये हो जायगी और कृषि-शिक्षा तथा चिकित्सा-शिक्षा की छात्रवृत्तियो पर १५ करोड रुपये अलग से व्यय होगे। इसके परिणामस्वरूप, छात्रो को दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ एवं अन्य रियायतो पर वार्षिक व्यय १६७०-७१ तक बढ़कर लगभग ५७ करोड रुपये हो जायगा।[3]

शिक्षको की दशा मे सुधार

पिछले कुछ वर्षों से शिक्षको के वेतनो और सेवा-दशाओं मे सुधार करने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होने के कारण अनेक राज्य सरकारो ने अपने शिक्षको की वेतन-दर को बढ़ा दिया है। राज्य सरकारें इस बात का भी प्रयत्न कर रही है कि सरकारी और गैर-सरकारी स्कूलो मे कार्य करने वाले शिक्षको के वेतनो की असमानता को दूर कर दिया जाय। कुछ

1. *21st Year of Freedom*, p. 138.
2. *Hindustan Year-Book*, 1970, pp. 188-189.
३. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २३०।

राज्य-सरकारो ने गैर-सरकारी स्कूलो के अध्यापको के लिये पेंशन, प्राविडेन्ट फण्ड और जीवन-बीमा की त्रिविध लाभ-योजना क्रियान्वित कर दी है।

शिक्षको के कल्याण मे वृद्धि करने के लिये १९६२ मे 'नेशनल फाउन्डेशन फॉर टीचर्स वेलफेयर' की स्थापना की गई थी। 'फाउन्डेशन' ने सरकारी अनुदानो और व्यक्तिगत चन्दो से लगभग ६० लाख रुपया एकत्रित कर लिया है। जो राज्य शिक्षको के कल्याण के लिये धन एकत्रित करेगा, उसे 'फाउन्डेशन' आर्थिक सहायता देगा। राज्य-सरकार और 'फाउन्डेशन' के धन का अनुपात ८० प्रतिशत और २० प्रतिशत होगा।

'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' राज्यो के विश्वविद्यालयो और सरकारी तथा गैर-सरकारी कॉलेजो के अध्यापको को नये वेतन दर देने के लिये आर्थिक सहायता दे रहा है। अब तक ३५ विश्वविद्यालय नये वेतन-दर देने के लिये तैयार हो गये है। जब सब विश्वविद्यालयो मे वेतन-दर लागू हो जायेंगे, तब लगभग ५००० विश्वविद्यालय-शिक्षक लाभान्वित होगे।

साराश

१ **ग्रामीण उच्च-शिक्षा**—ग्रामीण उच्च शिक्षा की ओर ध्यान नही दिया गया है। ग्रामीण जनता की उच्च शिक्षा के लिये केवल ३ विश्वविद्यालय और ६० कॉलेज है। 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' ने अपनी रिपोर्ट मे सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। 'ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-परिषद्' ने ग्रामीण क्षेत्रो म शिक्षा प्रदान करने वाली सस्थाओ को 'रूरल इन्स्टीट्यूट्स' मे परिवर्तित करने की सिफारिश की। १५ सस्थाओ को 'रूरल इन्स्टीट्यूट्स' मे परिवर्तित कर दिया गया है।

२ **प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा**—प्रौढ शिक्षा को समाज-शिक्षा का नाम देकर उसके रूप को अभिवृद्धित कर दिया गया है। निरक्षर वयस्को मे ज्ञान का प्रसार करने के लिये 'द्वादश सूत्रीय योजना' प्रस्तुत की गई है। समाज-शिक्षा के अन्तर्गत एक 'पचसूत्रीय कार्यक्रम' बनाया गया है।

३ **स्त्री-शिक्षा**—स्त्री-शिक्षा के सभी क्षेत्रो मे सराहनीय प्रगति हुई है। 'स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति' ने स्त्री शिक्षा की विभिन्न समस्याओ पर उत्तम सुझाव दिये हैं। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत लडकियो की शिक्षा के विस्तार तथा अध्यापिकाओ की शिक्षा के लिये प्रारम्भ की गई योजना मे उत्तम प्रगति हुई है। तृतीय योजना मे स्त्री शिक्षा पर १७५ करोड रुपये व्यय किये गये।

४ **पिछडे वर्गों की शिक्षा**—अनुसूचित जातियो, अनुसूचित आदिम-जातियो एव पिछडे वर्गों की शिक्षा की ओर सरकार विशेष ध्यान दे रही है। सभी सस्थाओ मे इन वर्गों के छात्रो के लिये स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं और उन्हें छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं।

५ **विकलागों की शिक्षा**—स्वतन्त्रता प्राप्ति तक विकलागो की शिक्षा की

बहुत कम व्यवस्था थी। स्वतन्त्र भारत मे 'भारतीय बाल-कल्याण परिषद्' 'समाज कल्याण बोर्ड' और 'राष्ट्रीय परामर्श परिषद्' इस दिशा म कार्य कर रहे ह।

६ प्राविधिक शिक्षा—स्वतन्त्र भारत म प्राविधिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर दी गई है। पहली दूसरी और तीसरी योजना मे इस शिक्षा पर क्रमश २३, ४८ और १४२ करोड रुपय व्यय किये गये। चौथी योजना म २५३ करोड रुपये व्यय किय जायेंगे।

७ चिकित्सा शिक्षा—इस समय देश म ६३ मेडिकल कालेज और १८ दन्त-चिकित्सा कॉलेज हैं। नर्सों, दाइयो और स्वास्थ्य निरीक्षको के लिए ५६६ नर्सिङ्ग स्कूल और कॉलेज हैं।

८ कृषि शिक्षा—स्वतन्त्र भारत मे कृषि शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस समय देश म ७० कृषि-कॉलेज और ८ कृषि विश्वविद्यालय है।

९ शिक्षा की नवीनतम गतिविधियाँ—इनके अन्तगत शारीरिक शिक्षा, युवक-कल्याण, भारतीय भाषाओ का विकास, हिन्दी का विकास, छात्रवृत्तिया अध्यापको की अवस्था म सुधार—आदि हैं।

TEST QUESTIONS

1 The idea of Rural Universities has recently gained much favour with the Indian leaders Bearing in mind the recom mendations of the Radhakrishnan Commission outline a scheme to make the idea a real success in the country

कुछ समय से ग्रामीण विश्वविद्यालयो का विचार भारतीय नेताओ को अत्यधिक प्रिय हो गया है। राधाकृष्णन्-आयोग की सिफारिशो का ध्यान मे रखते हुए देश मे इस विचार को वास्तविक रूप से सफल बनाने के लिये किसी योजना की रूपरेखा तैयार कीजिये।

2 Write a brief account of the progress of women s education or social education from 1947 to 1971

१९४७ से १९७१ तक स्त्री शिक्षा या समाज शिक्षा की प्रगति का सक्षिप्त वर्णन कीजिये।

3 Describe briefly the recent educational developments in India

भारत म शिक्षा की नवीनतम गतिविधियो का सक्षेप म वणन कीजिये।

२८

पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा

प्रस्तावना

शताब्दियो से परतन्त्रता की शृङ्खलाओ मे बन्दी भारत अगस्त १९४७ मे मुक्त हुआ। परन्तु विगत दो विश्वयुद्धों, अंग्रेजों की शोषण-नीति तथा देश के विभाजन ने राष्ट्र के समक्ष अति जटिल समस्यायें उपस्थित कर दी। उन समस्याओ का निवारण एवं देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियो का पुनर्संङ्गठन करके ही स्वाधीनता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव थी। अतः विश्व के अनेक समृद्ध तथा सभ्य देशो के समान भारत ने अपनी बिखरी हुई शक्तियो को एकत्र करने, एक निश्चित दिशा मे अग्रसर होने, और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास करने का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से अप्रैल १९५१ मे अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की। इसमे अन्य विषयों के साथ-साथ शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

पहली पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

तत्कालीन भारतीय शिक्षा की स्थिति

१९५१ मे भारतीय शिक्षा की स्थिति अति शोचनीय थी। अनेक दोषों से युक्त होने के अतिरिक्त, देश मे साक्षरता का प्रतिशत केवल १७.२ था। इससे स्पष्ट है कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध नही थी। वस्तुतः ६-११ वर्ष की आयु के कुल ४० प्रतिशत, ११-१७ वर्ष की आयु के कुल १० प्रतिशत, और १७-२३ वर्ष की आयु के ०.९ प्रतिशत व्यक्तियों को ही शिक्षा की सुविधायें प्राप्त थी, जब कि योरोप और अमरीका के देशो मे ८० से लेकर १०० प्रतिशत तक बालक-बालिकाएँ शिक्षा से लाभ उठा रहे थे।

इसके अतिरिक्त, उच्च शिक्षा को अनावश्यक अधिक महत्त्व, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का अभाव, नगरो एवं ग्रामो में शिक्षा-सुविधाओ की असमानता

स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा और प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी आदि कुछ ऐसे दोष थे, जिनका निवारण अनिवार्य था। अतः भारतीय शिक्षा को जनतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिये शिक्षा का पुनर्गठन अनिवार्य था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में क्रियात्मक पग उठाया गया।

शिक्षा-पुनर्गठन के लिये सुझाव

योजना-आयोग (Planning Commission) ने भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. बेसिक एवं समाज-शिक्षा के क्षेत्रों का प्रसार करना।
२. माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-शिक्षा को नवीन रूप देकर सुव्यवस्थित करना।
३. व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा को देश की आवश्यकताओं के अनुसार नवीन रूप प्रदान करना।
४. स्त्री-शिक्षा का विस्तार करना और ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देना।
५. अध्यापकों के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध करना।
६. अध्यापकों के वेतन और उनके सेवा-प्रतिबन्धों (Conditions of Service) में सुधार करना।
७. शिक्षा में पिछड़े हुए राज्यों को उदार सहायता-अनुदान देकर वहाँ शिक्षा का विकास एवं विस्तार करना।

शिक्षा पर व्यय

अनुमान लगाया गया कि प्रथम योजना-काल में ६-१४ वर्ष की आयु के शत-प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने के लिये लगभग ४०० करोड़ रुपये प्रति वर्ष व्यय होंगे। इसके अतिरिक्त २०० करोड़ रुपये बेसिक और हाई स्कूल के अध्यापकों के प्रशिक्षण, तथा २७२ करोड़ रुपये स्कूलों के भवनों के लिये आवश्यक थे। सरकार ने इतनी विशाल धन-राशि व्यय करने के लिये अपने को असमर्थ पाया और योजना-काल में १६९ करोड़ रुपये की स्वीकृत दी। इस धन में से ४४ करोड़ केन्द्र द्वारा और १२५ करोड़ राज्य-सरकारों द्वारा व्यय किये गये। यह धन-राशि इतनी अल्प थी कि इससे देश की शिक्षा-सम्बन्धी समस्त आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो सकती थी। अतः सरकार ने जनता से अपील की, कि वह धन, धरती, सेवा और भवन देकर इस कार्य में हाथ बँटाए।

शिक्षा-योजना के लक्ष्य

योजना-आयोग को आशा थी कि पहली पंचवर्षीय योजना के अन्त तक अग्रांकित लक्ष्य प्राप्त हो जायँगे :—

१ १९५६ से पूर्व ही ६-११ वर्ष की आयु के ६० प्रतिशत बालको को शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी।

२ विद्यालयो मे ६-११ वर्ष तक की आयु वाली बालिकाओ की सख्या ४० प्रतिशत हो जायगी।

३ स्कूलो मे माध्यमिक शिक्षा के लिये योग्य आयु के बच्चो की सख्या १५ प्रतिशत तक पहुँच जायगी, और इन स्कूलो म शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओ की सख्या भी बढकर १० प्रतिशत हो जायगी।

४ समाज-शिक्षा के क्षेत्र मे १४-४० वर्ष की आयु के स्त्री पुरुषो को व्यावसायिक अर्थो व सामाजिक क्षेत्र मे कार्य करने की शिक्षा दी जायगी। इसमे भाग लेने वाले स्त्री एव पुरुषो की सख्या कम से कम क्रमश १० और २० प्रतिशत होगी।

इस योजना मे विश्वविद्यालय-शिक्षा के विस्तार का कोई लक्ष्य निर्धारित नही किया गया।

समालोचना

पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारतीय शिक्षा के विकास, विस्तार एव पुनर्गठन के लिये एक योजना का निर्माण करके अप्रैल १९५१ म उसे कार्यान्वित कर दिया गया। इस योजना मे गुणो के साथ-साथ दोषो का अभाव ही नही, प्रत्युत इसके अन्तर्गत भी अनेक ऐसी बातें थी, जो दोषपूर्ण थी, यथा—

१ योजना मे शिक्षा के जो लक्ष्य निर्धारित किये गय थे, उन्हे प्राप्त करने मे सफलता न मिली।

२ इसने अंग्रेजो द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली के दोषो का स्पष्ट उल्लेख करके भी उनके निवारण के लिये कोई रचनात्मक पग नही उठाया।

३ पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की ओर रचमात्र भी ध्यान नही दिया गया।

४ योजना-आयोग ने शिक्षको की असतोषजनक स्थिति के प्रति सहानुभूति व्यक्त करके भी उनके आर्थिक हित तथा सामाजिक सम्मान के लिय जो प्रयास किये, वे प्राय नगण्य ही कहे जा सकते हैं।

५ सार्वजनिक शिक्षा को लोकतन्त्र के लिये आवश्यक बताकर भी आयोग ने पचवर्षीय योजना मे शिक्षा के लिये इतनी अल्प धनराशि निर्धारित की, जो लज्जा की बात कही जा सकती है।

६ इसका सचालन सुचारु रूप से नही किया गया। लाखो रुपया का दुरुपयोग किया गया। शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कार्य उत्साहपूर्वक प्रारम्भ किये जाने के पश्चात् तनिक-सी बाधा उपस्थित होने पर स्थगित कर दिये गये, जिससे धन और शक्ति का भयङ्कर नाश हुआ।

उपरिलिखित दोषो के बावजूद भी भारतीय शिक्षा के इतिहास मे शिक्षा के नियोजन का यह प्रथम प्रयास था। अनुभव मनुष्य का सर्वोत्तम शिक्षक है। योजनाकारो ने शिक्षा-योजना के दोषो तथा त्रुटियो से एक नवीन पाठ सीखा, और उसके आधार पर द्वितीय योजना मे उससे मुक्त रहकर शिक्षा के प्रसार एव पुनर्गठन का दृढ संकल्प किया। फलस्वरूप उन्हे पहली योजना की अपेक्षा दूसरी योजना मे अधिक सफलता मिली।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

प्रस्तावना

पहली पचवर्षीय योजना का उद्देश्य—शिक्षा को लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अनुकूल बनाना और भारतीय शिक्षा-प्रणाली मे निहित दोषो का उन्मूलन करना था। इस प्रयास मे केवल आंशिक सफलता प्राप्त हुई। योजना मे जो अभाव थे, उनकी ओर संकेत करते हुए श्री देशमुख ने आलंकारिक भाषा मे कहा था—"तस्वीर मे कुछ धब्बे भी है और धब्बो का होना स्वाभाविक ही है, क्योकि तस्वीर बहुत बडी बन रही है।" प्रथम योजना-काल मे शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति न हो सकी। इसी बात को ध्यान मे रखकर, दूसरी पचवर्षीय योजना मे शिक्षा के पुनर्गठन पर विशेष रूप से बल दिया गया।

शिक्षा-योजना के उद्देश्य

दूसरी पचवर्षीय योजना मे शिक्षा-योजना के निम्नांकित उद्देश्य थे —

१. बेसिक तथा प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना।
२. माध्यमिक शिक्षा को बहुउद्देशीय बनाकर उसका रूप परिवर्तन करना।
३ कॉलेज और विश्वविद्यालयो के शिक्षा-स्तर मे सुधार करके उसको ऊँचा करना।
४. प्राविधिक, प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा के लिए सुविधाओ का विस्तार करना।
५. समाज-शिक्षा एवं सांस्कृतिक विकास के कार्य-क्रमो को कार्यान्वित करना।

शिक्षा पर व्यय

पहली योजना मे शिक्षा पर १६९ करोड रुपये व्यय किये गये थे। दूसरी योजना मे ३०७ करोड व्यय करने की व्यवस्था की गई। दोनो योजनाओ मे व्यय का विभाजन अग्रांकित तालिका से स्पष्ट है :—

पहली व दूसरी योजना में शिक्षा पर व्यय[1]

शिक्षा का स्तर	व्यय (करोड़ रुपयों में)	
	प्रथम योजना (१९५१—५६)	द्वितीय योजना (१९५६—६१)
प्राथमिक शिक्षा	९३	८९
माध्यमिक शिक्षा	२२	५१
विश्वविद्यालय शिक्षा	१५	५७
औद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा	२३	४८
समाज-शिक्षा	५	५
प्रशासन व विविध	११	५७
योग	१६९	३०७

शिक्षा-योजना के लक्ष्य

पहली योजना में शिक्षा के विविध क्षेत्रों में कितनी उन्नति हुई, और दूसरी योजना का क्या लक्ष्य था, इसका विवरण अग्रांकित तालिका (पृ० ४६६) में स्पष्ट है।

समालोचना

भारत-सरकार ने इस योजना की अवधि के लिये शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कार्य-क्रम निश्चित किये, जिनको राष्ट्र के भविष्य के लिये सम्पन्न किया जाना था। देश के औद्योगिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये शिक्षा का पुनर्संङ्गठन किया जाना आवश्यक था। परन्तु ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका। वास्तविक यह है कि विश्व के अन्य विकसित राष्ट्रों—रूस, चीन और अमरीका—के समान हमारी योजना के अभिप्राय को न तो स्पष्ट रूप से समझा गया, और न उसके कार्य-क्रमों को ही निर्धारित किया जा सका।

इस योजना की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें कोई निश्चित योजना नहीं थी। केवल थोड़े से विद्यालयों की स्थापना करने, विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने, पाठ्य-क्रमों में अधिक विषयों का समावेश करने, और कुछ स्थानों पर शिक्षा की अधिक सुविधायें प्रदान करने से शिक्षा को न तो पुनर्संङ्गठित किया जा सकता था, और न इन कार्यों को 'योजना' की संज्ञा ही दी जा सकती थी। तथ्य यह है कि योजनाकारों ने शिक्षा के विकास एवं विस्तार के अर्थ को रंचमात्र भी नहीं समझा।

---

१ दूसरी पंचवर्षीय योजना, पृ० ४६८।

विवरण	१९५०—५१ योजना से पूर्व	१९५५—५६ पहली योजना	१९६०—६१ दूसरी योजना
(क) विभिन्न वय-वर्ग के बच्चो के लिये शिक्षा सुविधाएँ—			
१. (६-११) वय-वर्ग का प्रतिशत	४२.०	५१ ०	६२.७
२. (११-१४) „ „ „	१३.९	१६.२	२२ ५
३. (१४-१७) „ „ „	६.४	९.४	११.७
(ख) संस्थायें—			
१. प्राथमिक बेसिक	२,०९,६७१	२,७४,०३८	३,२६,८००
२. पूर्व-वेसिक	१,४००	८,३६०	३३,८००
३. मिडिल बेसिक	१३,५९६	१६,२७०	२२,७२५
४. उत्तर बेसिक	३५१	१,६४५	४,५७१
५. हाई व हायर सेकण्डरी	७,२७८	१०,६००	१२,१२५
६. बहुउद्देशीय	—	२५०	१,१८७
७. हायर सेकण्डरी बना दिये जाने वाले हाई-स्कूल	—	४७	१,१९७
८. विश्वविद्यालय	२६	३१	३८
(ग) इंजीनियरिंग विद्यालय—			
१. डिग्री देने वाले	४१	४५	५४
२. डिप्लोमा देने वाले	६४	८३	१०४
(घ) टेकनॉलॉजी के विद्यालय—			
१. डिग्री देने वाले	२५	२५	३८
२. डिप्लोमा देने वाले	३६	३६	३७

फिर आर्थिक विकास को पूर्ण रूप से जनता की भलाई का साधन बनाने के लिए शिक्षा के कार्यक्रमो को आर्थिक योजनाओ की अपेक्षा प्राथमिकता नही दी गई। आर्थिक योजनाओं का स्थान सर्वोपरि था और शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओं को गौण स्थान प्रदान किया गया। देश के सभी कुशल कार्यकर्त्ताओ का ध्यान आर्थिक विकास पर केन्द्रित था। शिक्षा के क्षेत्र मे जो व्यक्ति कार्य कर रहे थे, उनमे न तो पर्याप्त कार्य-क्षमता और न कार्य-पटुता ही थी। ऐसी दशा मे शिक्षा के कार्य-क्रमो का असफल होना कोई आश्चर्य की बात नही थी।

आलोचको ने कुछ अन्य दोषों की ओर भी संकेत किया है। उनका कहना है कि दूसरी योजना मे जन-शिक्षा को तिरस्कृत करके माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया। यही कारण है कि सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के व्यय को ६३ करोड से घटाकर ८६ करोड कर दिया गया, जबकि माध्यमिक शिक्षा के व्यय को २२ करोड से बढाकर ५१ करोड, और विश्वविद्यालय-शिक्षा के व्यय को १५ करोड से बढ़ाकर ५७ करोड कर दिया गया।

योजना का एक अन्य दोष यह भी था कि प्रशासन पर होने वाला व्यय ५७ करोड निश्चय किया गया था, जबकि पहली योजना मे यह व्यय केवल ११ करोड था। पहली और दूसरी योजनाओ मे शिक्षा पर होने वाला कुल व्यय क्रमश १६९ करोड और ३०७ करोड था, अर्थात् दूसरी योजना मे पहली योजना की अपेक्षा १३८ करोड रुपया अधिक व्यय किया गया। इस धन मे से लगभग आधा रुपया प्रशासन पर व्यय किया गया। यह बात बुद्धि की समझ से परे है कि आखिर ऐसा क्यो किया गया ?

योजना-आयोग ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि शिक्षा-प्रणाली को सफल बनाने के लिये अध्यापको के वेतन मे वृद्धि और उनके सेवा-प्रतिबन्धो मे सुधार किया जाना अति आवश्यक था। परन्तु खेद का विषय है कि अध्यापको के लिये कुछ भी नही किया गया। शिक्षा-योजना पर एक अन्य दोपारोपण यह किया गया है कि इसमे निरक्षरता का नाश करने के लिये कोई सक्रिय प्रयास नहीकिया गया

अन्त मे, हम यह कह सकते हैं कि कोटि-कोटि कंठो से शिक्षा मे नियोजन क आवश्यकता की पुकार सुनकर भी भारत-सर कार इस ओर पूर्णतया उदासीन रही

तीसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

१. प्रस्तावना

पहली योजना प्रारम्भ होने के बाद से शिक्षा की सुविधाओ मे सभी स्तरो पर प्रशंसनीय विस्तार हुआ। परन्तु जब दृष्टि इस समस्या की विशालता, देश की जनशक्ति का विकास करने और ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित करने की आवश्यकता पर जाती है, जिनमे सब को आगे बढ़ने का अवसर मिल सके, तब विकास की प्रगति को और भी तीव्र कर देना आवश्यक प्रतीत होने लगता है। अतः तीसरी योजना के

मुख्य उद्देश्यों में से एक यह था कि शिक्षा-प्रसार कार्य-क्रम का विस्तार करके इसे प्रत्येक घर तक पहुँचाया जाय, ताकि शिक्षा राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक शाखा में आयोजित विकास की केन्द्र-बिन्दु बन जाय।

शिक्षा-योजना के उद्देश्य

तीसरी योजना में शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य थे :—

१. ६ से ११ वर्ष तक के सभी बच्चों को पढ़ने-लिखने की सुविधा देना।
२. माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के स्तर पर विज्ञान की शिक्षा में सुधार करना।
३. सब वर्गों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देना।
४. प्राविधिक शिक्षा का विस्तार करना।

शिक्षा पर व्यय

नीचे दी गई सारिणी से पहली, दूसरी और तीसरी योजनाओं में सामान्य-शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये निर्धारित व्यय का अलग-अलग ब्यौरा दिया गया है[1] :—

शिक्षा का स्तर	व्यय (करोड़ रुपयों में) पहली योजना (१९५१-५६)	दूसरी योजना (१९५६-६१)	तीसरी योजना (१९६१-६६)
१. प्रारम्भिक शिक्षा	८५	८७	२०९
२. माध्यमिक शिक्षा	२०	४८	८८
३. विश्वविद्यालय शिक्षा	१४	४५	८२
४. अन्य कार्यक्रम :—			
समाज शिक्षा	—	४	६
शारीरिक शिक्षा व युवक-कल्याण	१४	१०	१२
५. अन्य	—	१०	११
योग	१३३	२०४	४०८
६. सांस्कृतिक कार्य-क्रम	—	४	१०
कुल योग	१३३	२०८	४१८

1. *Third Five-Year Plan*, p. 577.

शिक्षा-योजना के लक्ष्य

पहली और दूसरी योजनाओं में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में कितनी उन्नति हुई और तीसरी योजना का क्या लक्ष्य था, इसका विवरण नीचे की सारिणी से स्पष्ट हो जाता है[1] :—

विवरण	१९५०-५१ योजना से पूर्व	१९५५-५६ पहली योजना	१९६०-६१ दूसरी योजना	१९६५-६६ तीसरी योजना
(क) विभिन्न वय-वर्ग के बच्चों के लिये शिक्षा-सुविधायें—				
१. ६-११ वय-वर्ग का प्रतिशत	४२·६	५२·६	६१·१	७६·४
१. ११-१४ ,, ,, ,,	१२·७	१६·५	२२·८	२८·६
३. १४-१७ ,, ,, ,,	५·३	७·८	११·५	१५·६
(ख) संस्थायें—				
१. प्राथमिक व बेसिक	२,०६,६७१	२,७८,१३५	३,४२,०००	४,१५,०००
२. जूनियर बेसिक	३३,३७६	४२,९७१	१,०६,०००	१,५३,०००
३. मिडिल बेसिक	१३,५९६	२१,७३०	३६,६००	५७,७००
४. सीनियर बेसिक	३५१	४,८४२	११,९४०	१६,७००
५. हाई व हायर-सेकण्डरी	७,२८८	१०,८३८	१६,६००	२१,८००
६. बहुउद्देशीय	—	२५४	२,११५	२,४४१
७. विश्वविद्यालय	२७	३२	४६	५८

1. *Third Five-Year Plan*, pp 574-576.

समालोचना

तीसरी योजना मे शिक्षा के जिन कार्य-क्रमो को अपनाया गया, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे देश के नेता शिक्षा के सभी अवयवो को सुसंगठित करके एक नये साँचे मे ढालने के लिये प्रयत्नशील थे। अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये उन्होने शिक्षा के जिन कार्य-क्रमो का निर्माण किया, वे श्लाघनीय थे। इन कार्य-क्रमो मे प्रमुख थे ––६ से ११ वर्ष की आयु के समस्त बच्चो के लिये शिक्षा-सुविधाओ की व्यवस्था, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान की शिक्षा मे विस्तार एवं सुधार प्रत्येक स्तर पर शिक्षको के प्रशिक्षण की सुविधाओ मे सुधार एव विस्तार, छात्रवृत्तियो, फी-शिपो तथा अन्य सहायताओ मे वृद्धि।

इनके अतिरिक्त बालिकाओ की शिक्षा की अधिक उत्तम व्यवस्था की गई और उनका अध्यापन की अन्य सुविधायें प्रदान की गईं। बालको तथा बालिकाओ के शिक्षा-स्तरो मे जो अन्तर था, उनको कम किया गया। प्राथमिक विद्यालयो को बेसिक-स्कूलो मे परिवर्तित किये जाने का प्रयास किया गया। विश्वविद्यालयो मे तीन वर्षीय डिग्री कोर्स पूर्ण रूप से क्रियान्वित किया जाना था तथा स्नातकोत्तर और अनुसधान-सुविधाओ मे विस्तार एव सुधार किया जाना था। इन सभी कार्यक्रमो को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिये तीसरी योजना में शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को दूसरी योजना के दुगुने से अधिक तथा पहली योजना के तिगुने से अधिक कर दिया गया। ये सभी बातें शिक्षा मे भारत-सरकार की प्रबल रुचि की प्रतीक थी।

चौथी पंचवर्षीय योजना

प्रस्तावना

यह सत्य है कि पिछली तीन योजनाओ के काल मे भारत मे शिक्षा के सभी स्तरो पर छात्र-सख्या की बहुत अधिक वृद्धि हुई है। पर सख्या मे वृद्धि होने के साथ-साथ शिक्षा मे अनेक दोष आ गये हैं। इनमे से अति स्पष्ट ये हैं ––शिक्षा का स्तर गिर गया है, भारतीय शिक्षा-पद्धति को आर्थिक विकास के अनुकूल नही बनाया जा सका है। प्राथमिक और उच्च-शिक्षा के स्तरो मे पर्याप्त उन्नति नही हुई है। व्याव-सायिक और कृषि-शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया है। बालिकाओ की शिक्षा, बालको की शिक्षा बहुत पिछडी हुई है। देश के कुछ भाग ऐसे हैं, जहाँ बालकों और बालिकाओ––दोनो की शिक्षा पिछडी हुई है। प्राथमिक स्तर पर 'अपव्यय' और 'अवरोधन' बहुत अधिक है। विश्वविद्यालय स्तर पर काफी छात्र और छात्रायें असफल हो जाते हैं और तीसरी श्रेणी मे पास होते है।

इन दोषो का दूर करने के लिये चौथी योजना मे विशेष प्रयास किये जायेंगे और जिन बातो पर पहले से अधिक ध्यान दिया जायगा, वे इस प्रकार है––शिक्षा की सुदृढता, स्तर, विविधता और अवधि।

शिक्षा-योजना के उद्देश्य

'आयोग' ने चौथी योजना मे शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्य निर्धारित किये हैं —

१ १९७५-७६ तक ६ से १४ वर्ष तक के सभी बच्चो के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना ।

२. सब बालको और बालिकाओ के लिए ८ वर्ष की सार्वभौमिक और अनिवार्य शिक्षा होना ।

३. इस सार्वभौमिक और अनिवार्य शिक्षा को जन-शिक्षा का आधार बनाना ।

४ १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्त करने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार और आवश्यकता होना ।

५. १४ वर्ष की आयु के बाद शिक्षको द्वारा नागरिको और उनके जीवन-कार्यों के लिए तैयार करना, और

६. शिक्षा के प्रत्येक स्तर के बाद कुछ रोजगारो के द्वार खुले होना ।

शिक्षा पर व्यय

चौथी योजना मे शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओ को बढाने के लिए १,२१३ करोड रुपए की व्यवस्था की गई है । यह धनराशि तीनो योजनाओ मे व्यय किय गए धन से २८ प्रतिशत, और तीसरी योजना मे निर्धारित धनराशि से दुगुनी से भी अधिक है। चौथी योजना मे व्यय-व्यवस्था का वितरण नीचे की तालिका से स्पष्ट किया जा रहा है[1] —

		(करोड रुपए)
१	प्रारम्भिक शिक्षा	३२२
२	माध्यमिक शिक्षा	२४३
३	विश्वविद्यालय शिक्षा	१७५
४	अध्यापक-शिक्षा	९२
५	तकनीकी शिक्षा	२५३
६.	समाज शिक्षा	६४
७	सास्कृतिक कार्यक्रम	१८
८	विविध (सामान्य शिक्षा)	४६
	कुल योग	१,२१३

शिक्षा-योजना के लक्ष्य

पिछली तीन योजनाओ के दौरान उपलब्धि और प्रमुख कार्यक्रमो से सम्बन्धित कुछ मदो के लिए चौथी योजना के लक्ष्यो को अग्रांकित तालिका (पृ० ५०२) मे दिया जा रहा है [2] —

---

१. चौथी पचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २३१ ।

२. वही, पृ० २३२ ।

कार्यक्रम	यूनिट	१९५०-५१ की उपलब्धि	१९६०-६१ की उपलब्धि	१९६५-६६ के लक्ष्य	१९६५-६६ के संभावित लक्ष्य	१९७०-७१ के लक्ष्य
१. प्रारम्भिक शिक्षा :						
(क) प्रारम्भिक स्तर (कक्षा १ से ५ तक) नामांकन (Enrolment) :—	लाख	१९१.५	३४९.९	५०२.९	५१५.०	६९५ ०
६-११ आयु-वर्ग का प्रतिशत		४२.६	६२.२	७६.४	७८.७	९२.२
(ख) मिडिल स्तर (कक्षा ६ से ८ तक) नामांकन	लाख	३१.२	६७ ०	१०१.६	११०.०	१९० ०
११-१४ आयु-वर्ग का प्रतिशत		१२.७	२२.५	२९ ८	३२.२	४७.४
२. माध्यमिक स्तर : (कक्षा ९ से ११ तक) नामांकन	लाख	१२.२	२९.६	४६.७	५२.४	९० ०
१४-१७ आयु-वर्ग का प्रतिशत		५.८	११.७	१५.७	१७.८	२२.१
३. विश्वविद्यालय शिक्षा : नामांकन	लाख	३.०	७ ३	११.७	११ ०	१६ ०[1]
१७-२३ आयु-वर्ग का प्रतिशत		०.७	१.५	१.९	१ ९	२ ४
४. तकनीकी शिक्षा (दाखिला क्षमता) :						
(क) डिप्लोमा पाठ्यक्रम	संख्या	५,९००	२५,८००	३७,३९०	४९,९००[2]	६८,०००
(ख) डिग्री पाठ्यक्रम	संख्या	४,१२०	१३,८२०	१९,१४०	२४,७००[2]	३०,०००

१. इसमें से ५ लाख छात्र सम्मिलित हैं, जिन्हें पत्राचार-पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षा दी जायगी।
२. डिप्लोमा पाठ्यक्रम के लिये मान्य क्षमता ५३,२०० की है, जबकि डिग्री पाठ्यक्रम के लिये २८,७०० है।

शिक्षा-योजना का कार्यक्रम

शिक्षा-योजना के कार्य-क्रम मे तीन बातो को विशेष महत्त्व दिया गया है —

१ वर्तमान शिक्षा-पद्धति की कमियो को पूरा करना तथा सामाजिक-आर्थिक विकास की बढती हुई माँग के साथ और अधिक प्रभावशाली रूप मे जोडना।

२ पहली तीन योजनाओ के दौरान, तीव्र विस्तार के परिणामस्वरूप शिक्षा-पद्धति मे जो आन्तरिक दबाव पडे है, उन्हे हटाना।

३. सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार शिक्षा-पद्धति को आगे बढाना।

शिक्षा-योजना के कार्य-क्रम मे जिन अन्य बातो को स्थान दिया गया है, वे निम्नलिखित है —

१. शिक्षा मे अपव्यय को रोकना और शिक्षा-स्तर मे सुधार करना।
२. तकनीकी कर्मचारियो के प्रशिक्षण को उच्च प्राथमिकता देना।
३. प्राथमिक स्तर पर इन बातो पर जोर देना—मुफ्त और सब जगह समान प्राथमिक शिक्षा, अपव्यय को समाप्त करना और पाठ्य-चर्या (Curriculum) पर नये सिरे से काम करना।
४. उच्च स्तर की शिक्षा मे व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना और विज्ञान की शिक्षा का सुदृढ बनाना।
५. मैट्रिक के बाद की और विश्वविद्यालय-शिक्षा मे छात्रो को व्यावसायिक, तकनीकी और नौकरी-पेशा सम्बन्धी विषयो की ओर मोडना।
६ विज्ञान और स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसधान कार्य के लिय सुविधाएँ प्रदान करना।
७. पढाई का स्तर सुधारने के लिये अध्यापको के प्रशिक्षण पर जोर देना और उनकी योग्यता मे वृद्धि के साथ, उनके वेतन मे वृद्धि करना।
८. पाठ्य-चर्या और पढाई की पद्धतियो के अनुसंधान कार्य को और अधिक सघन बनाना।
९. वयस्क शिक्षा के विस्तार पर विशेष जोर देना और आर्थिक विकास के साधन के रूप मे कार्यक्षम साक्षरता पर भी जोर देना।
१०. भारतीय भाषाओ मे पुस्तको के प्रकाशन पर और अधिक ध्यान देना।
११. शिक्षा को जनसाधारण के लिये सुलभ बनाने की दृष्टि से बहुत अधिक सख्या मे ऋण-छात्रवृत्तियाँ देना।
१२. अनुसूचित जाति और आदिम जाति के बच्चो की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना।
१३. शिक्षण-विधियो मे सुधार करना, जिसमे कम व्यय पर अच्छे परिणाम निकल सकें। इस कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये इन बातो पर

जोर देना—बडी शिक्षण-सस्थायें, अधिक समय के लिये भवना, पुस्तकालयो और प्रयोगशालाओ का उपयोग, अशकालीन पाठ्यक्रम तथा पत्राचार पाठ्यक्रम ।

१४ अग्रलिखित कार्यों के लिये स्थानीय साधन जुटाने की दिशा मे प्रयत्न करना—विद्यालय के बच्चो के लिए दोपहर के भोजन की व्यवस्था, विद्यालय-भवन का निर्माण, विद्यालय-सुधार-कार्यक्रमो का विकास तथा विद्यालय और समुदाय मे निकट सम्बन्ध की स्थापना ।

प्राथमिक शिक्षा

तीसरी योजना के अन्त तक प्राथमिक शिक्षा को सब बच्चो के लिये सुलभ नही बनाया जा सका, हालाँकि जो प्रयत्न किये गये, उनसे स्पष्ट होता है कि विद्यालय जाने वाले बच्चो की सख्या मे बहुत महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई । तीसरी योजना के अन्त म ६ ११ आयु-वर्ग के ७८ ५ और ११-१४ आयु वर्ग के ३२ २ प्रतिशत बच्चो को शिक्षा की सुविधा प्रदान की गई । चौथी योजना का लक्ष्य है ६-११ आयु-वर्ग के ९२ २ और ११-१४ आयु-वर्ग के ४७ ४ प्रतिशत बच्चो को शिक्षा की सुविधा प्रदान करना ।[1]

चौथी योजना के अन्त तक विद्यालय जाने वाले बच्चो की सख्या मे जो वृद्धि होगी, वह प्रशसनीय है, पर भारतीय सविधान के उस निर्देश को पूरा नही किया जा सकेगा, जिसके अनुसार १४ वर्ष तक के सभी बच्चो को नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाय । यह लक्ष्य १९८१ से पहले प्राप्त नही हो सकेगा ऐसी आशा है । फिर भी इस दिशा मे प्रभावशाली कदम के रूप मे अधिक जोर इस बात पर दिया जायगा कि पढाई छोडकर बैठ जाने वाले बच्चा की सख्या कम से-कम हो । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आगे लिखे उपाय काम मे लाये जायगे—विद्यालयो का अच्छा सगठन, पाठ्य-पुस्तको को मुफ्त मे उपलब्ध कराना और दोपहर के भोजन कार्यक्रम का विस्तार ।

छात्राओ की सख्या मे वृद्धि करने के लिये विशेष प्रयत्न किये जायेंग । इसका अर्थ यह है कि अध्यापिकाओ की सख्या मे वृद्धि करनी होगी । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये दो कार्य किये जायेगे (i) ग्राम-क्षेत्रो मे अध्यापिकाओ के लिये क्वार्टरो का निर्माण, और (ii) कम शिक्षित अध्यापिकाओ को अपनी शैक्षणिक योग्यता बढाने के लिए प्रोत्साहन ।

माध्यमिक शिक्षा

पिछली तीन योजनाओ मे प्राथमिक शिक्षा का प्रसार बडी तेजी से हुआ और पिछडी जातियो के छात्रो को कई प्रकार की रियायतें दी गई । इसके परिणामस्वरूप माध्यमिक शिक्षा के लिये नामाकन (Enrolment) मे वृद्धि हो गई, अर्थात् १९५०-५१ मे १० लाख से बढकर १९६५-६६ मे ५० लाख (अनुमानित) हो गई ।[2]

---

१ चौथी पचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २२२ ।
२ वही, पृ० २२३ ।

माध्यमिक शिक्षा मे तीव्र प्रसार होने के कारण इसमे अनेक समस्यायें उपस्थित हो गई हैं। इनमे से महत्त्वपूर्ण हैं—माध्यमिक शिक्षा प्राप्त छात्रो मे बेकारी, परीक्षा मे असफल होने वाले छात्रो की भारी सख्या, पढाई का निम्न स्तर माध्यमिक शिक्षा मे अपव्यय और गणित, अग्रेजी तथा विविध पाठ्यक्रमो के लिये शिक्षको का अभाव।

उपरोक्त समस्याओ का समाधान करने के लिये चौथी योजना मे निम्नाकित दिशाओ मे काम किया जायगा —

१ माध्यमिक विद्यालयो की पढाई के स्तर को ऊँचा उठाना,
२ छात्रो को विश्वविद्यालय मे प्रवेश पाने के साथ साथ विभिन्न व्यवसायो के लिये तैयार करना,
३ पाठ्यक्रम मे बहुत अधिक विविधता की व्यवस्था,
४ विज्ञान की शिक्षा पर और अधिक जोर देना
५ उच्च माध्यमिक विद्यालयो को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे परिवर्तित करना,
६ वर्तमान बहुउद्देशीय विद्यालयो को सुदृढ बनाना।

विश्वविद्यालय शिक्षा

स्वतन्त्रता के बाद विशेष बात यह है कि विश्वविद्यालयो का प्रसार हुआ है और कॉलिजो तथा अन्य उच्च-शिक्षा-सस्थाओ म अधिक सख्या मे छात्रो का नामाकन हुआ है। विज्ञान, कला और वाणिज्य सकायो (Faculties) मे विश्वविद्यालय स्तर पर नामाकन १९५०-५१ म ३ लाख था, जो बढकर १९६५-६६ मे ११ लाख हो गया।[1] पहली दोनो योजनाओ मे से हर योजना मे २ लाख नामाकन सख्या बढ गई थी। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि तीसरी योजना मे लगभग ४ लाख हो गई होगी और चौथी योजना मे सम्भवत ६ लाख हो जायगी।

चौथी योजना मे विश्वविद्यालय शिक्षा का पुनर्गठन अधोलिखित दिशाओ मे किया जायगा —

१ कला और वाणिज्य के लिये विद्यार्थियो की सख्या कम करने का प्रयत्न करना,
२ विज्ञान, कृषि, तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा के लिये सुविधाओ को बढाना,
३ पत्राचार पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना,
४ निम्न स्तर के कॉलेज खोलने को प्रोत्साहित करना,
५. पढाई के सामान्य स्तर को ऊँचा उठाना,

---

१. चौथी पचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० २२४।

६. स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसधान की सुविधाओ मे वृद्धि करना,
७. नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना की आज्ञा न देना ।

समालोचना

चौथी पचवर्षीय योजना अभी ऐसी स्थिति मे है कि उसकी समालोचना करना कठिन है । इस योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा पर अभी विचार-विमर्श हो रहा है । इसलिये इनके वास्तविक रूप को अभी तक निश्चय नही किया जा सका है। फिर भी इसने शिक्षा के जिन कार्य-क्रमो का उल्लेख किया है, वे सराहनीय हैं ।

चौथी योजना मे शिक्षा को देश के विकास की आवश्यकताओ के अनुरूप सोद्देश्य रूप मे जोडा जायगा । इसके साथ ही, शिक्षा के विषय और स्तर मे सुधार किया जायगा । इस कार्य मे सफलता पाने के लिये अध्यापको के स्तर को ऊँचा किया जायगा और विशिष्ट क्षेत्रो मे अनुशासन-सम्बन्धी कमियो को दूर किया जायगा । सामान्य शिक्षा के क्षेत्र मे प्राथमिक शिक्षा और कार्य सहित पाठ्यक्रम पर विशेष ध्यान दिया जायगा । अन्य शिक्षा-क्षेत्रो मे कार्य-क्रमो को इस तरह रखा जायगा कि वे सामाजिक आवश्यकताओ के अनुरूप हो सकें । वयस्क साक्षरता कार्य-क्रम को काफी आगे बढाया जायगा और उसका सचालन इस तरह किया जायगा कि वह आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिये प्रभावशाली साधन बन सके ।

आशा है कि शिक्षा-कार्यक्रमो के अन्तर्गत नामाकन सख्या बढाई जायगी—६-११ आयु-वर्ग मे ७८ ४ से ९२ २ प्रतिशत, ११-१४ आयु-वर्ग मे ३२.२ से ४७ ४ प्रतिशत, १४-१७ आयु-वर्ग मे १७.८ से २२.१ प्रतिशत । इजीनियरी और टेकनॉलॉजी, डिप्लोमा व डिग्री पाठ्यक्रम मे दाखिला-क्षमता १९७०-७१ मे क्रमश ६८,००० और ३०,००० हो जायगी, जबकि १९६५-६६ मे यह संख्या क्रमश ४९,६०० और २४,७०० थी ।

सारांश

पहली योजना—योजना से पूर्व शिक्षा की सुविधायें बहुत कम थी । अत 'योजना-आयोग' ने शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध मे कुछ सुझाव दिये । इसके लिये पहली योजना मे १६९ करोड रुपये व्यय किये गये । पर योजना को पर्याप्त सफलता नही मिली, क्योकि वह अपने निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त नही कर सकी । इसके अतिरिक्त लाखो रुपयो का दुरुपयोग किया गया ।

दूसरी योजना—इस योजना मे शिक्षा पर ३०७ करोड रुपये व्यय किये गये । इस योजना की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमे कोई निश्चित योजना नही थी । शिक्षा का पुनर्सङ्गठन नही किया गया । केवल कुछ विद्यालय स्थापित किये गये, विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ दी गई, पाठ्यक्रमो मे अधिक विषयो को स्थान दिया गया, और कुछ स्थानो पर शिक्षा की अधिक सुविधायें कर दी गई ।

तीसरी योजना—इस योजना मे शिक्षा पर ४१८ करोड रुपये व्यय किये गये। इस योजना मे किये जाने वाले प्रमुख कार्य थे —६ से ११ वर्ष की आयु के सब बच्चों के लिए शिक्षा-सुविधाओ की व्यवस्था, माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान की शिक्षा का विस्तार, प्रत्येक स्तर पर शिक्षको के प्रशिक्षण की सुविधाओ मे विस्तार और छात्रवृत्तियो मे वृद्धि।

चौथी योजना—इस योजना मे शिक्षा पर १,२१३ करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। इस योजना के मुख्य उद्देश्य हैं —१९७५-७६ तक ६ से १४ वर्ष तक के सब बच्चो के लिये शिक्षा की व्यवस्था करना, सब बच्चो को ८ वर्ष की अनिवार्य शिक्षा देना, १४ वर्ष तक प्रत्येक नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना, और शिक्षा के प्रत्येक स्तर के बाद कुछ रोजगारो के द्वार खोलना।

TEST QUESTIONS

1. Write a critical note on "Education in India under the first Three Five-year Plans"
   "पहली तीन पचवर्षीय योजनाओ की अवधि मे भारत मे शिक्षा'—पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

2. What efforts will be made for the development of Primary, Secondary and University Education under the Fourth Five-Year Plan?
   चौथी पचवर्षीय योजना के कार्यकाल मे प्राथमिक, माध्यमिक और विश्व-विद्यालय शिक्षा के विकास के लिए क्या प्रयास किए जायेंगे ?